

## श्रीशिवपुराण-माहात्म्य

पराशिवमहादेवः ईने मां समुद्रं भवार्णवम् । कर्मजहङ्गमिहाहं करोमि तत्र संकरः ॥

श्रीनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सुतजीका उन्हें

शिवपुराणकी उत्कृष्ट महिमा सुनाना

श्रीश्रीनकजीने

सुत—महाशायी

सुतजी ! आप सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं । प्रभो ! सुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन करीजिये । ज्ञान और वैराग्य-सहित चरितों द्वारा होनेवाले विवेककी बुद्धि कैसे होती है ? तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-कर्मों आदि धान्यिक विषयोंका निवारण करते हैं ? इस घोर कलियुगकालमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, इस जीवसमुदायको सुद्ध (बैरी सम्पत्तिले युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है ? आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्पलताकारि वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम

वस्तुकारि हो तथा पवित्र करनेवाले उपयोगों में सर्वोत्तम वस्तुकारक उपाय हो । तब ! यह सम्भव ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे जीव ही अपाःकरणकी विशेष बुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मित चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शाश्वती प्राप्ति हो जाय ।

श्रीसुतजीने कहा—सुनिश्चेष्ट श्रीनक ! तुम धन्य हो; क्योंकि मुझसे इसपर पुराण-कथा सुननेका विशेष प्रेम एवं लालसा है। इसलिये मैं कुछ बुद्धिसे विचारकर तुम्हें परम उत्तम शाश्वत वर्णन करता हूँ। तब ! यह सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तोंसे सम्बन्ध, भक्ति आदिको कल्पनेवाला तथा भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला है। इसलिये लिये रसाधन—अनुपमस्वस्व तब दिया है, तुम उसे भक्षण करो। सुने ! यह परम उत्तम शास्त्र है—शिवपुराण, जिसका पूर्वकालमें भगवान् शिवने ही प्रवचन किया था। यह कालकापी सर्वसे बड़ा होनेवाले महान् ब्रह्मका विनाश करनेवाला उत्तम साधन है। मुक्तदेव व्यासने कल्पकुमार मुनिका उद्देश्य पाकर बड़े आदरसे संश्लेषण ही इस पुराणका प्रतिपादन किया है। इस पुराणके प्रणयनका उद्देश्य है—कल्पियुगमें उदवत् होनेवाले मनुष्योंके



परम शिवका साधन ।

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है। इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये। इसका पठन और श्रवण सर्वसाधनरूप है। इससे शिव-भक्ति पाकर जेष्ठतम स्थितियें पहुँच सका मनुष्य वीर्य ही शिवपरमको प्राप्त कर लेता है। इसीलिये सम्पूर्ण सब कारकें मनुष्योंने इस पुराणको पढ़नेकी इच्छा की है—अथवा इसके अभ्यसनोंकी अभीष्ट सफलता माना है। इसी तरह इसका प्रेक्षपूर्वक अध्ययन भी सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देवेवात्ता है। भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा इस जीवनमें बड़े-बड़े उलूह धोरीला उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

यह शिवपुराण नायक अथवा श्रीकृष्ण हज़ार हल्लेकोले युक्त है। इसकी सत्ता संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका अध्ययन करे। सत्ता संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परब्रह्मको सदाय विराजमान है।

और सबसे उलूह गति प्रदान करनेवाला है।

जो निरन्तर अनुसंधानपूर्वक इस शिवपुराणको श्रवण करता है अथवा नित्य प्रेक्षपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यवान् है—इसमें संशय नहीं है। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तःकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त ब्रह्म रूप भगवान् प्रोक्षर उसे अपना पञ्च (धाम) प्रदान करते हैं। जो प्रतिदिन आह्वपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण धर्मोंको योग्यता अन्तमें भगवान् शिवके बड़ेको प्राप्त कर लेता है। जो प्रतिदिन आत्मस्मरण ही देहायी सब आर्तोंके वेदमसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है। यह शिवपुराण निर्मल तथा भगवान् शिवका सर्वेश्वर है; जो इहलोक और परलोकमें भी सुख काइता हो, उसे आदरसे साध प्रत्यक्षपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये। यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, कर्म और प्रोक्षक्य करों पुस्तार्थोंको देनेवाला है। अतः सदा प्रेक्षपूर्वक इसका अध्ययन एवं विशेष पाठ करना चाहिये।

(अध्याय १)



शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति तथा बभ्रुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

श्रीशौनकाजीने कहा—महाभाग सुतजी! आप धन्य हैं, परमार्थ-सत्यके ज्ञाता हैं, आपने कृष्ण करके इमल्लोकोको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है। भूतलपर इस कथाके सधान कल्पजन्मका

सर्वज्ज्ञ सचन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। सुतजी! कलिमुगमें इस कथाके हृदय पढ़न-पौन-से बापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस

जगत्को कुतार्थ कीर्तिसे।

सूतसे बोले—धुने ! जो मनुष्य पत्नी, दुराचारी, बल तथा काम-बलसे आदिने निपत्तर बूढ़े रहनेवाले है, वे भी इस पुताणके श्रवण-पठनसे अवश्य ही सुद्ध हो जाते हैं। इसी विषयसे जानकार मुनि इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है।

पहलेकी बात है, यहाँ किरातोंके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो इनमें अत्यन्त कुर्बान, दक्षि, रस घेबनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह ज्ञान-वेच्छा आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैदिकधर्मसे नापर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर सिद्धांत करनेवाले स्तेनोको लगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक छद्मोंसे चारकर उन-उनका धन छुप्त किया था। परंतु इस पापीका भोड़ा-सा भी मन कभी धर्मके कार्यमें नहीं लगता था। वह वेदवागाणी तथा सब प्रकारसे अन्धारा-भ्रष्ट था।

एक दिन घूमता-धूमता वह देवयोगी प्रतिष्ठानपुर (हूसी-प्रधान) में आ पहुंचा। यहाँ उसने एक शिवालिंग देखा, यहाँ बह्म-रो साधु-नक्षत्रा एकत्र हुए थे। देवराज उस शिवालिंगमें उल्टा गया, किन्तु यहाँ उस ब्राह्मणको धर आ गया। उस धरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। यहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुन रहे थे। धरमें बड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके सुसारविन्दसे निकरने लूँ उस शिवकथाको निरन्तर सुनता रहा। एक मासके बाद वह धरसे अत्यन्त

पीड़ित होकर चल बसा। देवराजके दूत जाते और उसे पार्श्वसे बाँधकर दलपूर्वक कम्पुरीमें ले गये। इसनेमें ही शिवालिकसे कल्याण शिवके पार्षदगण आ गये। उनके नीर अङ्ग कर्पूरके ललान सेजल से, शोध विशुद्धसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अङ्ग चमकते उज्ज्वल थे और सदाशक्ति प्राप्तमें उनके शरीरकी शोभा चका रही थी।



वे सब-के-सब कोकपूर्वक कम्पुरीमें गये और देवराजके हस्तोंको धार-पीटाकर, चारकर समकाल्पर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अमृत विमानवर लिटकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको लज्जत हुए, उस समय कम्पुरीमें बड़ा भारी कोलहल मच गया। उस कोलहल-को सुनकर बर्षाज अपने धन-संगे बाहर





बुद्धि धारी विनम्रार्चनरूप धर्मकर विज्ञान हुआ। इधर, उस बुराचारिणी विदुषीके मा खानेपर वह भूखल्लापा बहूला बहूत सरावतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही।

एक दिन देवयोगसे मिली पुत्र्य बर्षिक आनेपर वह भी भाई-बन्धुओंके साथ मोक्षार्थ-क्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके समूहसे उठते ही उस समय जाकर मिली तीर्थके बालमें जाते किया। फिर वह साधारणतया (मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुओंके साथ धन-तन चुम्बे लगी। पुत्री-बन्धुकी मिली शेषमभिरुचि गयी और वहाँ उठते एक देवता ब्राह्मणके मुखसे पापघ्न विष्णुकी परम बलिष्ठ एवं महत्त्वपूर्णकी उक्त पौराणिक वाचा सुनी। कथाकाव्यक ब्राह्मण कह रही थे कि 'जो विधवा बन्धुओंके साथ व्यवहार



करती है, वे घरमेंके सब तन बन्धुओंके

जारी हैं, तब घरवालोंके हृद उनकी योगिने उभे हुए लोभेका रसि डालते हैं।' पौराणिक ब्राह्मणके मुखसे वह वैराग्य ब्रह्मदेवाली एक बुद्धर बहूला भवसे व्याकुल हो उठीं बर्षिके लगी। जब कभी सपास हुई और चुम्बेकले तन लोग बर्षिके बाहर कले गये, तब वह धर्मवीर गरी एकान्तमें विनम्रार्चनकी कथा बर्षिकेकले उन ब्राह्मण देवतासे होती।

बहूलाके कथा—ब्रह्मन् ! मैं अपने बर्षिके नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा कदा बुराचार हुआ है। स्वधियु ! मेरे उभर अनुपम सुख बर्षिके आय मेरा उभार करिबे। आज आपके वैराग्य-रससे अंतर्ज्ञेय हृद प्रभवकले सुखर मुझे कदा तन लग रहा है। मैं कथि उठी हूँ और मुझे इस संस्कारसे वैराग्य हो गया है। मुझ यह विनम्रकले पापिनीकी विचार है। मैं सर्वका विदुषीके बोध हूँ। बुद्धिगत विषयोमें पैसी हुई हूँ और अपने घरमें विनम्र हो गयी हूँ। हय ! मैं जाने किस-किस पौर ब्राह्मणक पुनीतमें मुझे पढ़ना पढ़ना और बर्षी जीवन बुद्धिकर पुत्र्य कुचालमें धन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देना। बन्धुकातमें उन सबका बन्धुओंको मैं कैसे देखूंगी ? जब मैं बन्धुओंके मेरे गलेमें फंसे झलकार मुझे बर्षिके, तब मैं कैसे बीरज धारण कर लूँगी। गल्लमें जब मेरे जरीरके दुकड़े-दुकड़े निकले जायेंगे, तब समय विशेष दुःख देनेवाली इस महाकातनाको मैं वहाँ कैसे लूँगी ? हय ! मैं मारी गयी ! मैं जल गयी ! मेरा हृदय विदीर्ण हो गया और मैं तन प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर तरहसे अपने ही लुकी रही हूँ। ब्रह्मन् ! आप

ही से वे गुरु, आप ही माता और अन्य ही पिता हैं। आपकी शरणमें उनकी हुई मुक्त होन अवलम्बता आप ही उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये।

बंद और बंधनवश मुक्त हुई बन्धुला ब्राह्मण-  
केलकले केनें चरणोंमें गिर पड़ी। तब उन  
मुक्तिप्राप्त ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाया  
और इस प्रकार कहा।

भूतजी कहते हैं—शौनक ! इस प्रकार

(अध्याय ३-२)

☆

**बन्धुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनना और  
समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा बन्धुलाका पार्वतीजीकी  
सली एवं सुली होना**

ब्राह्मण बोले—जरी। शौभग्यकी कथा  
है कि ब्रह्मचान् संन्यासी कृष्णसे  
शिवपुराणकी इस वैराग्यपुत्र कथाकी  
सुनना सुनें समयथा वेन हो गया है।  
ब्राह्मणकी। तब इसे का। ब्रह्मचान्  
शिवकी शरणमें जाओ। शिवकी कृपासे  
हारा पाप नष्टकाल यह हो जाता है। मैं तुमसे  
ब्रह्मचान् शिवकी परीक्षिकावासे मुक्त उस  
परम बलुका वर्णन करीगा, जिससे तुम्हें  
सदा मुक्त केनेवाली उपाय भरी प्राप्त होगी।  
शिवकी उपाय कथा सुननेसे ही तुम्हारी मुक्ति  
इस तरह पश्चात्तापसे मुक्त एवं मुक्त हो गयी  
है। साथ ही तुम्हारे मनमें शिवकी ओर  
वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप  
करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा  
प्रायश्चित्त है। सत्युक्तोंने सबसे लिये  
पश्चात्तापकी ही उपाय पापोंका नष्टकाल  
कताया है, पश्चात्तापसे ही पापोंकी मुक्ति  
होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही  
वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है;

कर्मोंके सत्युक्तोंने समस्त पापोंकी मुक्तिके  
लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपाय किया है, वह  
सब पश्चात्तापसे समस्त हो जाता है।<sup>१</sup> जो  
पुत्र विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करते विधाय हो  
जाता है, वह अपने कुकर्माके लिये पश्चात्ताप  
नहीं करता, उसे प्रायः उपाय भरी प्राप्ति  
होती। परंतु लिये अपने कुकृत्यपर प्रायश्चित्त  
पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उपाय भरीकता  
पापी होता है, इसमें संशय नहीं। इस  
शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी शिवमुक्ति  
होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती। जैसे  
कर्मोंका करनेपर विफल हो जाता है, वही  
प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे शिव  
अवगत मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं  
है। मनुष्योंके मुक्तिप्राप्त पश्चात्ताप पार्वती-  
लोक ब्रह्मचान् शिव विराजमान रहते हैं।  
इससे यह निश्चयपूर्ण पुत्र्य श्रीसाध्य  
सदाशिवके कर्मोंसे प्राप्त होता है। इस उपाय  
कथाका उपाय समस्त मनुष्योंके लिये  
कल्याणका बीज है। अतः यथोचित

\* पश्चात्ताप: आसक्ति पाप-वं निवृत्ति: पर। सर्वत्र वर्तते तद्वि: सर्वत्रवर्तितेयम् ॥

पश्चात्तापेन मुक्ति: प्रायश्चित्त करोति स:। पश्चेच्छेदो तद्विर्गो सर्वत्रवर्तितेयम् ॥

(विनयसूत्र-अध्याय ३-३ श्लोक ५-६)

(शाखोक्त) मार्गसे इस्की आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। वह भव-धन्यताकी सेवाका एक करनेवाली है। भगवान् शिवकी कृपाको सुन्दर विराजमान करने चाहिये। इससे पूर्णतया मिलसुनि हो जाती है। मिलसुनि होनेसे मोक्षरही भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) के साथ मिश्रण हो एक हो जाती है। तब-ब्रह्म मोक्षरही अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो मुक्तिले चलाता है, उसे परम सद्गुणता चाहिये; क्योंकि उसका विश्राम मार्गको ध्यानमें आसक्त है। वह मिश्रण ही संसारचक्रसे मुक्त नहीं हो पाता।

**ब्राह्मणपत्नी ।** इसलिये तुम शिवजीसे मनकी हवा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम कृपा का-काको सुने—परमात्मा शंकरकी इस कृपाको सुननेसे तुम्हारे शिवकी सुनि होगी और इससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। जो निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके परमशक्तिको चिन्तन करता है, उसकी एक ही कृपासे मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुम्हें सत्य-सत्य कहता हूँ।

**सुतजी** कहते हैं—**श्रीशुक !** ज्ञाना कहकर ये श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण चुप हो गये। उनका हृदय कठमासे जर्जर हो गया था। ये सुनिचित महत्वा कर्मान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये। तदनन्तर हिन्दुकी पत्नी चञ्चल मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके चेहरे आनन्दके औरु हस्तिक अने थे। वह ब्राह्मणपत्नी चञ्चल हृदयसे इच्छासे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके दोनों वारणोंमें गिर पड़ी और हृदय

कोड़कर बोली—‘मैं कृतार्थ हो गयी।’ तब-ब्रह्म उठकर वैराग्ययुक्त उत्तम बुद्धिवाली यह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आसक्त थी, उन महान् शिव-भक्त ब्राह्मणसे हृदय कोड़कर गद्गद प्राणीमें बोली।

**चञ्चलने** कहा—**ब्रह्मन् !** शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ । सर्वज्ञ ! आप सत्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सब चलेपकारमें लगे रहते हैं। इसलिये श्रेष्ठ सत्य पुण्योंमें प्रशंसाके योग्य हैं। साके । मैं परमके समुद्रमें गिर रही हूँ। अब मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक शक्तिशाली समस्त विश्व सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर ये मनमें सम्पूर्ण शिवजीसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उन्हीं इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय ये कर्णें बड़ी लज्जा हो रही हैं।

**सुतजी** कहते हैं—**ऐसा** कहकर हृदय कोड़कर अनुग्रह पाकर चञ्चल उस शिवपुराणकी कथाकी सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणसेवाकी सेवामें तत्पर हो गईं रहने लगीं। तब-ब्रह्म शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और सत्य बुद्धिकाले उन ब्राह्मणदेवसे उन्हीं सम्पन्न उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनकी। इस प्रकार उस गौतमी नामक महामोक्षमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे अपने शिवपुराणकी सब वरम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम ज्ञान कथाको सुनकर वह ब्राह्मणपत्नी आनन्द कृतार्थ हो गयी। इसका विश्राम ही दुःख हो गया। गिर पड़वान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयसे शिवके सगुणस्मृता चिन्तन होने लगा। इस प्रकार उसने भगवान् शिवमें

सभी राजेवाली उग्र भुवि पाकर विषम  
सहिष्णुत्वमय स्वभावका बरकर विमान  
आरम्भ किया। तत्पश्चात् समस्तों ने होकर  
भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चक्रवर्त्तने  
अपने शरीरको विना किसी कष्टके त्याग दिया।  
इतनेमें ही त्रिपुरासु भगवान् विमान के  
हवा एक दिव्य विमान हुए यन्त्रों की यंत्रों,  
जो उनके अपने यन्त्रोंसे संयुक्त और चरि-  
यन्त्रोंके शोभा-राज्योंके समस्त थे। चक्रवर्त्तन  
उक्त विमानपर आकाश हुई और भगवान् विमानों  
श्रेष्ठ यन्त्रोंमें उसे समस्त विमानोंमें सौंप  
दिया। उनके शरीर कात कुल गये थे। वह  
दिव्यराजधारीणी विमानोंके हो गयी थी। उनके  
दिव्य अस्त्रक उन्नीची शोभा बढ़ती थे।  
मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करने का  
गौराङ्गी देवी शोभावाली दिव्य आभूषणोंके  
विभूषित थी। विमानोंमें सौंपकर अपने  
समाप्त होकर विमानोंमें चक्रवर्त्तनको देखा।  
सभी मुख्य-मुख्य देवता उन्नीची सेवामें लगे थे।  
गणेश, बुद्धि, नन्देश्वर तथा श्रीगणेश आदि  
उनकी सेवामें उग्र भक्तिभावसे उत्पन्न थे।  
उनकी अङ्गभक्ति करोड़ों सुन्दरोंके समस्त  
प्रकाशित हो रही थी। उनके नीचे नीचे चक्र  
पाता था। बीच मुक्त और उनके मुक्तों  
वीर-वीर के थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका  
मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने चक्रवर्त्तन  
भागमें गौरी देवीको विराजमान था, जो  
विभू-मुक्तोंके समस्त प्रकाशित थी। श्रीगणेश  
महादेवकीकी कान्ति कष्टोंके समस्त और थी।  
उनका सारा शरीर क्षेत्र परमसे भक्ति था।  
शरीरपर क्षेत्र का शोभा पा रहे थे। इस प्रकार  
परम उन्नीच भगवान् देवताकी सन्नि करोड़  
वह साक्षात्पात्री चक्रवर्त्तन बहुत उत्तम हुई।

अत्यन्त प्रीतिपुक्त होकर उसने सभी कान्तिसे  
सर्व भगवान्को बरकर प्रणाम किया। फिर



सर्व चक्रवर्त्तन का यह प्रेम, आनन्द और  
संवेगों का युक्त हो विभीषणको सही हो गयी।  
उनके नेत्रोंमें आनन्दसुखोंकी अभिराम धारा  
बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो  
गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान्  
देवताओं ने सभी कान्तिसे सारा अपने पास  
कुम्भक और सौम्य मुक्तोंके उसकी ओर देखा।  
पार्वतीजीने से दिव्यराजधारीणी विन्दुशक्ति  
चक्रवर्त्तनके प्रेम्पूर्ण अपनी सभी बना लिया।  
वह उस चक्रवर्त्तनमें ज्योतिःकल्प समस्त-  
कल्पमें अविच्छन्न निवास पाकर दिव्य सौख्यसे  
सम्पन्न हो अत्यन्त सुखान् अनुभव करने लगी।

(अध्याय ४)

चञ्चुलाके प्रचक्रसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्हुरका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर विन्दुगक पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतिको शिवधाममें सुखी होना

सूतजी बोले—जैनक ! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चञ्चुलाके जन्मदेवीके पास आकर प्रणाम किया और दोनों कुक्ष जोड़कर यह उनकी स्तुति करने लगी।

चञ्चुला बोले—गिरिराजकी ! स्वप्नमाता उये। मनुष्योये सद्यः अन्धकार सेवन किया है। संपन्न सुखोये देवेकाली सम्पुष्टिये। आप ब्रह्मसकलिये है। विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंका सेवक है। आप ही सगुणा और निर्गुणा हैं तथा आप ही सृष्ट्या संहितामयसकलिये अन्ध प्रकृति हैं। आप ही संसारकी सृष्टि, कलन और संहार करनेवाली हैं। बीजों मुक्तोका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और मोक्षर—इन तीनों देवताओंका अन्धकार-स्थान तथा उनकी अन्ध प्रतीक करनेवाली परमशक्ति आप ही हैं।

सूतजी कहते हैं—जैनक ! जिनके सङ्गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चञ्चुला इस प्रकार बौधायनीकी उमाकी स्तुति करके फिर झुकाने चुप हो गयी। उसके नेत्रोंमें प्रेम्के अभिषु उमड़ आये थे। तब कलनवाले बरी हुई पीछरदिया चक्रवर्त्तन करकेदेवीने चञ्चुलाको सम्बोधित करके कहे प्रेम्से इस प्रकार कहा—

पार्वती बोली—सखी चञ्चुले ! सुन्दर ! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न है। बोले, क्या कर बीजति हो ? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अन्धेन नहीं है।

चञ्चुला बोली—गिरिराज

कुम्हारी ! मेरे दति विष्णु इस समय कहाँ है, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती ! कलनगलकी दीनवालाके ! मैं अपने उन पतिदेवसे फिर प्रकार संतुष्ट हो लूँ, वीरता ही उपाय करिजिये। बोझर ! महादेवि ! मेरे गति एक सुखजातीय प्रेम्पाके प्रीति अन्धकार से और पापमें ही डूबे रहो थे। उमाकी मनु मुझसे पहले ही हो गयी थी। मैं जाने थे फिर गतिको प्राप्त हुए।

गिरिराज बोले—सखी ! तुम्हारा विष्णु नामकाल गति बहुत घापी था। उसका अन्धकारण बहुत ही दूषित था। प्रेम्पाका सम्बोधन करनेवाला वह परामुह करनेके बाद नाकमें बहुत अन्धकार प्रतीक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह परमात्मा अपने सेव कलनके लोभकेके लिये विन्ध्यपर्वतपर निवास हुआ है। इस समय वह पिशाच-अन्धकारी हो है और नाना प्रकारके द्वेष बना रहा है। वह दुष्ट नहीं चापु पीकर रहता और एक एक प्रकारके कष्ट सहता है।

सूतजी कहते हैं—जैनक ! गौरी-देवीकी यह बात सुनकर आप तबका कलन करनेवाली चञ्चुला उस समय पतिके मन्त्र दुःखसे दुःखी हो गयी। फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे बोझरको प्रणाम करके पुनः पूछा।

चञ्चुला बोली—बोझर ! महादेवि ! मुझपर कुछ कीजिये और दूषित कर्य करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। देवि ! कुतित बुद्धिवाले मेरे

उस पापताया पतितको जिस उपायसे उन्नत गति प्राप्त हो सकती है, वह भीत कालमें : आपको नमस्कार है।

पार्वतीने कहा—तुम्हारा पति यदि दिव्य-पुराणकी पुण्यवधी उन्नत कला सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उन्नत गतिका भागी हो सकता है।

अम्बालेके समान चतुर अम्बालेसे कुछ गौरीदेवीका वह कथन अत्यन्तपूर्ण सुनकर चञ्चलमाने हाथ जोड़ करके झुकाकर उन्हें धारदार उपाय दिखाने और अपने पतितके समस्त पापोंकी क्षुद्रि तथा उन्नत गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे वह प्रार्थना की कि 'मेरे पतिको दिव्यपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये' उस उन्नतगतिपतिके धारदार प्रार्थना करनेपर दिव्यपति गौरीदेवीको बड़ी कृपा आयी। उस भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् दिव्यकी उपाय भीतिवत् गन्ध करनेवाले गन्धार्चन तुम्हारी कुलधर उसी प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा—

'तुम्हारे। तुम्हारी भगवान् दिव्यमें प्रीति है। तुम मेरी कन्या बालोको जानकर मेरे अधीन कार्योको सिद्ध करनेवाले हो। इसलिये मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। तुम्हारा व्यवसाय हो। तुम मेरी इस सपनाके साथ शीघ्र ही निश्चयपूर्वकपर जाओ। यहाँ एक महामोह और धर्मकर विज्ञान रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुने। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ कहती हूँ। पूर्व कथने वह निपात निम्नग नामक प्रदान था। मेरी इस सली चञ्चलता पति का। परंतु वह कुछ वेदवाणी हो गया। ज्ञान-संख्या आदि निम्नकर्म छोड़कर



अपनी राहने लगत। इसके कारण उसकी क्षुद्रिग पुत्र का गयी थी—वह कर्मकरकर्मकर विवेक नहीं कर पाता था। अचञ्चलप्राण, सज्जनोंसे द्वेष और क्षुद्रि बालुओंका हन लेना—यही उसका स्थायीकर्म कर्म बन गया था। वह अचञ्चल लेकर जिस करता, बायें हाथसे साता, दाहिनेको रक्ता और कुरातपूर्वक पराये करोमें उन्नत लगा केत था। बायेंहाथसे द्वेष करता और प्रतिदिन वेदवाके सम्पर्कमें रहता था। यहाँ कुछ था। वह पत्नी अपनी पत्नीका परिवर्तन करके सुनोके सङ्घमें ही आनन्द मानता था। वह पुण्यपूर्वक कुराधारमें ही पैसा रहा। फिर अचञ्चल जानेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापिण्डिक भोगस्वाभ धोर धर्मपुत्रमें गया और यहाँ बहुत-से नरकोका उपभोग करते वह दुष्टता जीव इस समय निश्चयपूर्वकपर विज्ञान बना हुआ है। वहाँ























सुख-प्रामाणिक तथा सबसे ऊँच रह गति प्रदान करनेवाला है। यह निर्मल सत्त्वगुण भगवान् सत्वके द्वारा ही प्रतिष्ठित है। इसे ही उचितभक्ति भगवान् सत्त्वसे संश्लेष से संकल्पित किया है। यह समस्त जीव-समुदायके लिये उपकारक, विविध राज्यका नाश करनेवाला, सुलभारहित एवं झगड़ानेवाला कल्पान् प्रदान करनेवाला है। इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कण्ठ (निष्कार) कार्यका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईश्वरद्विज

कथा-कारणवाले सिद्धान्तोंके लिये जाननेकी वस्तु है। इसमें श्रेष्ठ गुण-सम्पत्तिकी संकल्पना है तथा धर्म, धर्म और काम—इस त्रिवर्गकी अभिके समन्वय भी वर्णन है। यह उत्तम सत्त्वगुण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेदान्तसे विवर्णित वरम वस्तु—परमेश्वरका इसमें नाम किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़कर और सुनता है, वह समस्त चिकित्सा शिव होकर वरम गतिमें प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १)

४

## साध्य-साधन आदिका विचार तथा श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

व्यासजी कहते हैं—सुनजीवना यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोलें—‘अब आप हमें वेदान्तसार-सर्वस्वका अद्भुत सत्त्वगुणकी कथा सुनाइये।’

सूतजीने कहा—आप सब महर्षिगण शीघ्र-शीघ्रसे रहित कल्पावयव भगवान् शिवकी स्मरण करके पुराणप्रकार शिवपुराणकी, जो वेदके स्वर-रूपसे प्रकट हुआ है, कथा सुनिये। शिवपुराणमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तके सहस्रगुण विशेषरूपसे वर्णन है। इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों कः कालोंके महर्षि परस्पर कल-विवाद करते हुए कहते लगे—‘अमुक वस्तु सबसे ऊँच है और अमुक नहीं है’ उनके इस विवादने अत्यन्त महान् कष्ट धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी समूहोंके साधनानोंके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास

गये और हाथ जोड़कर विनम्रभी भाणीमें बोले—‘प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत्के कारण-कारण करनेवाले तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। इस सब अनन्त काहे हैं कि सम्पूर्ण लोकोसे जो वरात्पर पुराणपुत्र्य कीन हैं ?’

सूतजीने कहा—जहाँसे प्रकटित काणी उनके पत्रपर लीट जाती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन आदिते युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतो एवं इन्द्रियोंके साथ रहते प्रकट हुआ है, वे ही वे देव, महर्षि एवं सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं। वे ही सबसे ऊँच हैं। यतिने ही इसका साक्षात्कार होता है। दूसरे किसी व्यापसे बड़ी इच्छा दर्शन नहीं होता। तब, इसी, हर तथा अन्य देवदेव सब उत्तम धर्मिकभावसे उनका दर्शन करना चाहते हैं। भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-कर्मसे मुक्त हो जाता है। वेदके कृपाप्रसूतसे उनके भक्ति होती है





राज्यकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताना है,  
जिससे अच्छी तरह समझाये जा सके।

नन्दिकेश्वरने कहा- निष्ठाप्य ब्रह्मकुम्भार !  
आपके इस प्रकल्प हम-बैसे लोगोके द्वारा  
कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह  
रोपनीय विषय है और सिद्ध साक्षात् ब्रह्मका  
प्रतीक है। तथापि आप शिष्यवत्त हैं।  
इसलिये इस विषयसे भगवान् शिष्यने जो  
तुल्य बताया है, उसे ही आपके समक्ष प्रस्तुत  
हूँ। भगवान् शिष्य ब्रह्मस्वरूप और निष्कार  
(निराकार) हैं; इसलिये कहींभी पृथक्से  
विष्कार सिद्धकर उपयोग होता है। सम्पूर्ण  
वेदोक्त यही मत है।

रत्नकुमार बोले—सद्गुरुजी !  
आजमे भगवान् दिव्य नवा दूसरे देवताओंके  
सुजनमें सिद्ध और बेरके प्रभावका जो उच्च  
विधागपूर्वक वाक्पथ है, वह वाक्पथ है।  
इसलिये सिद्ध और बेरकी आदि उपलब्धि  
जो उच्च वाक्पथ है, उसीको मैं इस नाम

सुख-व्यथा का कारण है। शिल्प-के प्राक्कट्यकर रहस्य  
रक्षित करने-के-लिये प्रसङ्ग मझे मनाहिये।

इसके उत्तरमें बन्तिकेधारे धरसान् पद्मेके निष्कल स्वल्प विष्णुके आनिर्धायक प्रसङ्ग सुनना आरम्भ किया। उन्होंने ब्रह्म तथा विष्णुके विवाह, वैष्णवाओंकी क्वाकुलता एवं विष्णु, वैष्णवाओंका विष्णु कैलाश-शिवपर गमन, इनके द्वारा चन्द्रोत्तर महामेघका ज्ञान, वैष्णवाओंसे प्रेरित हुए महामेघकीका ब्रह्मा और विष्णुके विवाह-स्वल्पे आगमन तथा दोनोंके बीचमें विष्कल आदि-अपराहित पीकल अधिलम्बके समयमें इनका आनिर्धायक अर्द्ध प्रसङ्गोक्ति कहा कही। मदनपार जीब्रह्म और विष्णु दोनोंके द्वारा उस ज्योतिर्वक प्राप्तकी ईजाई और महाराजका अहं लेनेकी चेष्टा एवं केतकी-पुष्पके साथ-साथमा आदिंक प्रसङ्ग भी सुनये।

(अध्याय ५—६ समाप्त)



प्रतिशोधको जगत् और मनुष्यके लक्ष्यसे सुझानेवाला है। अधिकतर पञ्चाङ्ग-वेदों को यह विचारविप्लव नहीं प्रभावित हुआ है, इसके कारण यह स्वयम् 'असम्यक्त्व' नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके चट्टे-चट्टे गीर्ष प्रकाट होंगे। इस स्थानसे निम्नलिखित करने का करनेसे अभिधीन कोशिकाएँ हो जायगा।

मेरे को जगत् है—'सम्यक्' और 'नियमन'। दूसरे विचारोंके ऐसे जगत् नहीं है। पहले मैं सम्यक्त्वसे प्रभावित हुआ; फिर अपने साक्षात्-कर्मों। 'सम्यक्त्व' मेरा 'नियमन' जगत् है और 'असम्यक्त्व' 'सम्यक्' जगत्। वे दोनों मेरे ही विचारजगत् हैं। मैं ही परमेश्वर ब्रह्मात्मक हूँ। सम्यक्त्व और असम्यक्त्व को ही सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवनेपर अनुसृत अग्नि कायका योग कार्य है। जगत् और कोशिक। मैं अपने कर्म और जगत्की दृष्टि करनेवाला होनेके कारण 'जगत्' सम्यक्त्व हूँ। सर्वत्र सम्यक्त्वसे विज्ञान और जगत्का होनेसे मैं ही सम्यक्त्व असम्यक् हूँ। सर्वत्र मेरे अनुसृतत्व (असम्यक्त्व या ईश्वरके धर्म) को जगत्-सम्यक्त्व की दृष्टि काय है, मैं जगत् मेरे ही हूँ, मेरे अतीतिगत दूसरे विचारोंके नहीं हैं। सर्वत्र मैं ही सम्यक्त्व ईश्वर हूँ। पहले मेरी सम्यक्त्वका योग

करनेके लिये 'नियमन' विचार प्रकाट हुआ था। फिर अज्ञान ईश्वरत्वका साक्षात्कार करनेके निमित्त मैं साक्षात् जगत्को ही 'सम्यक्' करने काकाय प्रकाट हो गया। अतः 'मनुष्य' को ईश्वरत्व है, उसे ही मेरा सम्यक्त्वका जगत्वा विधिसे बना भी यह मेरा सम्यक्त्व जगत् है, यह मेरे सम्यक्त्वका योग करनेवाला है। यह मेरा ही विचार (विज्ञ) है। तुम दोनों अतीतिगत चर्चा कायका जगत्वा जगत्वा है। यह मेरा ही सम्यक्त्व है और मेरे जगत्वाकी अग्नि करनेवाला है। विचार और विचारोंके लिये अनेक मेरेके कारण मेरे इस विचारका सम्यक्त्व सुझानेको भी सम्यक्त्व करने काय है। मेरे एक विचारकी स्थापना करनेका यह जगत्वा कायका जगत् है कि सम्यक्त्वसे मेरी सम्यक्त्वकी अग्नि हो जाती है। यदि एकके जगत् दूसरे विचारविचारोंकी भी स्थापना कर दी गयी, तब भी सम्यक्त्वको सम्यक्त्वसे मेरे जगत् जगत्वा (असम्यक्त्व) जगत् जगत् जगत् होना है। सम्यक्त्वका विचारविचारोंकी ही सम्यक्त्व करने काय है। धर्मिकी स्थापना सम्यक्त्व अतीतिगत जगत्वा जगत्वा है। विचारविचारोंके असम्यक्त्वसे जगत् ओरकी जगत् (धर्मिकी) होनेपर भी यह स्वयम् जगत् नहीं सम्यक्त्व।

(अध्याय १)

॥

पौष कृत्योक्त प्रतिपादन, प्रणय एवं पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महत्ता,  
ब्रह्म-विष्णुशुक्रा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान

जगत् और विष्णुके पुत्र—अन्ते ! दृष्टि आदि पौष कृत्योक्त लक्ष्य जगत् है, यह हम दोनोंको बताइये।

जगत्विद् विद् बोले—मेरे दर्शनोक्तोंसे सम्यक्त्व असम्यक्त्व जगत् है, सम्यक्त्व मैं

कर्मपूर्वक तुम्हें उनके विचारों काय था है। जगत् और असम्यक्त्व ! 'सृष्टि', 'चलन', 'संसार', 'निराकार' और 'अनुसृत' ये चर्चा ही मेरे जगत्-सम्यक्त्व काय है, जो विचारविचार है। संसारकी स्थापना को















शिवपदकी प्राप्ति होती है।

हरेकमें अपने-अपने कर्मके अनुसार सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदकी प्राप्ति कर लेता है। परन्तु कुल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने स्वकर्मका अतिशय फल पाता है, कारण-पूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको प्राप्ति हो पा लेता है। निष्कलमकर्मसे किया हुआ मात्र कर्म काफल शिवपदकी प्राप्ति करनेवाला होता है।

द्विजके तीन विभाग होते हैं—ब्राह्म, शूद्राद्व और सायाद्व। इन तीनोंमें ब्रह्मणः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। ब्राह्म-कर्मको सदाशिविनि शिवकर्मके अनुष्ठानका समस्त आशय चाहिये। शूद्राद्वका सम्पादन-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायकाल कर्म-कर्मके समुत्तम है, ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार

राजिमें भी समकाल विधावन किया गया है। राजके चार प्रहरमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निजीधकाल कहा गया है। विशेषतः उसी कालमें की हुई धनधान शिवकी पूजा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है—इस जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है। विशेषतः कलिपूर्वमें कर्मसे ही फलकी सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा विधावन करनेवाला पुत्र यदि सदाचारी है और धर्मसे दूरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है।

शिवयनि कहा—सुखी ! पुण्यक्षेत्र कौन-कौन-से हैं, शिवका आशय लेकर लक्ष्मी की-पुत्र शिवपद प्राप्त कर लें यह हमें संबोधने चाहिये। (अध्याय ११)

ॐ

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उक्त फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूतजी बोले—विद्वान् एवं बुद्धिमान् महर्षिओ ! मोक्षदायक निवक्षेत्रोंका वर्णन सुनो। तपश्शाला वी लोकेश्वरके लिये निवक्षेत्रभी भगवत्की वर्णन करीमा। पर्वत, वन और कान्तनीलजिह्व इस बुद्धीका विस्तार पचास करोड़ क्षेत्र है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जलको धारण करने स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर स्थित स्वर्गमेंसे ऊर्ध्व-पार्थिव निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना

कामकाय बसकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये हमें तीर्थक्षेत्र प्रकट हो गया है तथा अन्य काल-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकेश्वरी रक्षाके लिये स्वयं प्रार्थन हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रोंमें जानेवा मनुष्योंको सदा ज्ञान, दान और तप आदि करना चाहिये, अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मृत्यु आदि दुर्घटकोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर मृत्युको प्राप्त होता है, वह अपने पुण्यके फलसे ब्रह्मलोकमें दास करके पुण्यक्षेत्रके पञ्चम पुनः मनुष्य-पौत्रिमें ही जन्म लेता है। (पार्थी मनुष्य पाप करके





[illegible]

पूर्व और पश्चात्ति इस सीमाक्षिपे मिलत हैं,  
 तब पश्चात्तकी पट्टीमें निम्ने गये सामर्थ्य  
 क्षणिकमें प्रत्यक्ष पत्ती है। इस-इस पट्टीमेंसे  
 पूर्वोक्त सीमामें निम्ने भूत तब प्रत्यक्षकी  
 क्षति कारणीयता हीन है। निम्न पुनः  
 भूत प्रत्यक्ष पट्टीकी नदीका प्रत्यक्ष नेत्र  
 सीमाका काम : प्रत्यक्ष काममें प्रत्यक्ष निम्ने  
 इस प्रत्यक्ष निम्न ही प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष है।

काव्यमय उद्गम काव्यमयमेव कथम्-ये होय  
 है। मधुसूदनजी और योगेश्वरी—ये दोनों परमेश्वरी  
 उद्गममयकायी प्रतिमाएँ काल केनेवाली हैं। इन  
 दोनोंके लक्षण विनये ही परमेश्वरका होय है।  
 इन दोनोंके लक्षणमे कथम्-ये कथम्काय होय है।  
 कहीं विनय काव्यमयकाय विनय कथम् कीमे  
 काव्यका भवके होय है। कथम्काय काय कृति  
 मया उद्गममयके लक्षण केनेमे पदार्थका लक्षण  
 इन विनय कथम्की लीलीमे विनय कायका  
 काव्यमे। अथवा कायका काल कहीं विनय।  
 कथम्कायमे विनय कथम् काव्य-का कथम् की  
 अथवा उद्गमकी कृतिमे उद्गम होय है। कथम्  
 कहीं विनय कथम् काव्य का कथम् की कथम् हो  
 काय है। कथम् कथम्कायमे कथम् ही लीली  
 विनयमय विनय हो की उद्गम कथम्कायमे  
 उद्गम कथम्काय काय काय काव्यकाय काय  
 काव्य, कथम्काय कथम्काय कथम्कायकाय काय  
 काय है। काव्यमे ! लीलीकायमेविनय कथम्  
 कथम्काय, कथम्काय और काव्यकाय लीली  
 काव्यकाय काय काय होय है। लीलीमे विनय कथम्  
 काव्यकाय काय कथम्काय हो काय है। काय कथम्  
 काव्यकाय लीली लीली काव्य है।<sup>१</sup> विनय काय

[illegible][illegible][illegible]

देवता कावले ही यह होना है, अन्तरा देवताओंकी पूजा करने और ब्राह्मणोंको नहीं। काविक नाम जसे सब काविक राम हो हूँ, आपसे बचकर ही तीर्थमें पाप करीरको सुलाने-जैसे कठोर मन्त्रों यह विचार करना चाहिये।

होना है; अन्य: तुल्य बचनेवाले पुण्यको

(अध्याय १२)

☆

सदाचार, शौचाचार, स्नान, धर्मधारण, संख्यावन्दन, प्रणव-जप,  
गायत्री-जप, हान, व्यायस, धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी  
विधि एवं महिमाका वर्णन

वर्धमाने कहा: सुनकी। अब अब ही ही होने यह ब्रह्मचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुण्य पुण्यकोषोंपर विजय पाता है। स्वर्ग प्रदत्त करनेवाले कार्यमें अन्धकार बल परकाय काइ देनेवाले अकार्यमें अन्धकारिका भी वर्णन कीजिये।

सुनकी कोले — ब्रह्मचारका मतलब करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही आसीरने 'ब्राह्मण' नाम काय करनेका अधिकारी है। जो देवता केनेक अन्धकारका मतलब करनेवाला एक वेदका अभ्यसी है, उस ब्राह्मणकी 'विष्' मंत्र होती है। ब्रह्मचार, वेदधार तथा विष् — इनमेंसे एक-एक गुणों ही ब्रह्म होकर उसे 'विष्' कहती है। जिसमें ब्रह्मचारका ही आचारका मतलब देना जाता है, जिसमें वेदधरत्व भी बहुत काम किया है तथा जो राजकाय सैन्धव (युरोहिन, मर्जी आदि) है, इसे कविक-ब्राह्मण' कहती है। जो ब्राह्मण कवि क्या कावियत्त कार्य करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोक्ति अन्धकारका भी मतलब करती है, वह 'वैश्य-ब्राह्मण' है तथा जो स्वर्ग ही 'संत ज्योतला (इस काविक) है, उसे 'कुड-ब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके देव देवनेकाय और पराङ्गो है, उसे 'काविक-विष्' कहते

हैं। इसी तरह कवियोंमें भी जो पुण्यका मतलब करता है, वह 'राजा' है। दूसरे लोग मन्त्राधीन कवि माने गये हैं। वैश्वकोले भी जो काव्य इसदि ब्रह्मकोला ज्ञान-विज्ञान करता है, वह 'वैश्य' कहलाता है। दूसरोंकी 'काविक' कहते हैं। जो ब्राह्मणों, कवियों तथा वैश्वकोले सेवाने लग्न रहता है, यही काविकों 'कुड' कहलाता है। जो 'कुड' इस ओरकेका ज्ञान काता है, उसे 'पुण्य' समझना चाहिये। सैन्ध, सैन्ध और कार्यमें विष् कविकों अन्धक सेवाने रह 'बन्धु' कहलाती है। इन सभी वर्गोंके मन्त्रोंको कहिये कि वे ब्राह्मणोंमें सेवान पुर्वधियुक्त हो उठते पाले देवताओंका, [ ] कार्यका अन्धका, इसकी प्रतिको सन्धि उठाने करनेवाले द्वैतीका तथा अन्य और काविकों की विचार करें।

तमके विचारों परको अब-काल अन्धक कहिये। अब अन्धक परका जो आधन या पञ्चकाय है, उसे कवि कहते हैं। जो कविकारणों केकर द्विचको मन्त्र-ब्रह्म आदिज्ञान स्थाप करके कहिये। घरके दूर काकर काइसे अपने करीरको छोड़े रहकर द्विचके उत्तराधियुक्त बैठकर मन्त्र-पुनका स्थाप करें। यदि उत्तराधियुक्त बैठनेमें कार्य

[illegible]

यदि सम्प्रदायिक या सामंजस्य वादीयों काहे होनेवादी व्यक्ति न हों तो पुत्रोत्पत्ति करने का प्रयत्न ही अपने स्वयं स्वतः विकल्पकम मनीषावादात्मक सोच-धारा का प्रयोग करे। विद्वान् पुष्पलाल ने यहीने कि यहाँ तीर्थयात्रासे केवल आर्थिक लाभ-उपार्जन ही हो।

[illegible]

\* आभार—कृपया १००० रुपये का चेक भेजें।

[illegible]

॥३॥ गलाने गलाने ही व धातूंचा या ते गेल्या या ते गलेल्या तिथिः । या ते जीतकृत् । जमिने यथोचितकः  
कर्मिणः प्रकलाने

६५. पञ्चमी अक्षरान्तरं यस्याः तर्हि तदपह्नुते ।

प्रमाणित करणारे कर्मचारी अधिकारी (कार्यालय) यांनी तसेच प्रमाणित करणारे अधिकारी यांनी याप्रमाणे प्रमाणित करणे आवश्यक आहे. (प्रमाणित करणारे अधिकारी यांनी याप्रमाणे प्रमाणित करणे आवश्यक आहे.)

[illegible]

इस लेख में बालेसाहू की-की-साहू का नाम है। इस लेख में बालेसाहू की-की-साहू का नाम है।













सर्वत्राचार्य महादेवजीने अत्यन्त और चमकी बिपुति तथा समस्त लोकसेवा हीन कामेकी इच्छासे लोकप्रियता प्राप्तान् विचार्यार पार प्रयास । इसके बाद उनके समीप भगवान् विष्णुने मुष्टि और तट्टाके निम्ने आधुःकर्ण स्थितेकमहा परमेश्वरी प्रज्ञाकर आधुःकर्णकार पार प्रयास, जिससे समूर्ण जनसंके आधुःकर्णकी विधि हो सके । इसके बाद वीरों लोकसेवाकी बुद्धिके निम्ने काले पुनः-पुनःकी रचना हो जानेपर उनके करनेवाले लोकसेवा सुभासुच प्राप्त होनेके निम्ने भगवान् विष्णुने हुष्ट और कालके कारणसे निर्माण किया । वे वीरों पार समस्त भोग लोकसेवा तथा लोकसेवा समुद्भवसे दूर करनेवाले हैं । इसके बाद पूर्व आदि ज्ञान लोकसेवा से अपने ही विचार्यार तथा कारिकाओंके निम्ने सुख दुःखके सुखक है । भगवान् विष्णुने समूर्ण आन कारिका आनी निश्चित किया । वे सम-के सम सम-कालके लोकसेवा भगवान् प्रणिहित हैं । जिसके कारण सेवाकी वृत्ति है । सन्निवृत्तकी कारणसे उनकी सेवा है । सुभासुचकी निम्ने अतिरिक्त मङ्गल है । विचार्यारके स्वाधी वृत्ति है । प्रज्ञाकीके कारणसे अतिरिक्त मङ्गल है । इन्द्रावरके स्वाधी वृत्ति और कालके स्वाधी सर्वेश्वर है । अपने-अपने कारणे की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने अपने चमकने देनेवाली होती है ।

पूर्व ज्ञानोंके और चमक चमकिके साथ हैं । मङ्गल स्वाधिवीका विचार्यार करते हैं । सुख बुद्धि हो हैं । मङ्गल आधुःकी बुद्धि करते हैं । सुख भोग हो हैं और सर्वेश्वर मनुका निवारण करते हैं । वे ज्ञान कारणके कारणसे कल कलाने गये हैं, जो उन उन

देवताओंकी जिनसे ज्ञान होते हैं । अन्य देवताओंकी भी पूजाका काम देनेवाले चमकन् निम्ने हो हैं । देवताओंकी प्रसन्नताके निम्ने पूजाकी बीच प्रकाशकी ही बहानि ज्ञापी वकी । उन-उन देवताओंके चमकाने उन चमक चमक प्रकार है । उनके निम्ने होच कालके सुख, सम कारण लीला तथा कालके बीच प्रकार है । जिससे वेदीया, अतिरिक्त आदिसे अथवा प्रज्ञाकीके ज्ञानसे अथवा देवताकी भगवान् कारणसे ज्ञानसे प्रकाशसे इन्की पूजा का अथवाकार कारण पवित्र प्रकार है ।

इन्ने पूजाके उत्तरेका आधार हो है । पूर्व-पूर्वके अथवासे उत्तरेका आधारसे अथवाकार कारण काहिये । ऐसे वेसे तथा चमकके भोगों और सुख भोगकी ज्ञानके निम्ने चमकन् सुखकी पूजा करने प्रज्ञाकीके चमक करके । मङ्गलकार एक दिन एक बार, एक वर्ष अथवा तीन वर्षका मङ्गलकार ऐसा कारण करने काहिये । इससे यदि ज्ञान अथवाकार निर्माण हो ज्ञान से रोच एवं ज्ञान आदि भोगोंका साथ हो ज्ञान है । इन्द्रावरके चमकनेका ज्ञान आदि चमककार अतिरिक्त अथवाकार प्राप्त हो है । रसिकानके सुखिकके निम्ने, अन्य देवताओंके निम्ने तथा प्रज्ञाकीके निम्ने निश्चित चमक अतिरिक्त करे । चमक ज्ञान निश्चित ज्ञान देनेवाला होना है तथा इसके द्वारा विशेषकारणसे चमककी ज्ञानि होनी है । ज्ञानकारके विचार्यार पुनः समर्पिककी ज्ञानिके निम्ने स्वामी आदिकी पूजा करे तथा समर्पिक प्रज्ञाकीके सुखकार अथवा भोजन करावे । मङ्गलकारके रोगोंकी ज्ञानिके निम्ने स्वामी आदिकी पूजा करे तथा उष्ट,









घालनेकामे काम चलाओ और एक सुलभ बड़ा-बड़ा कामें करके मनुष्य को-  
होनेवाला भोग प्राप्त है। ईश्वरकी-कृतिसे-  
प्राप्त है। (अध्याय १५)

☆

पृथ्वी आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके स्थले  
वैवेक्षका विचार, पूजनके विभिन्न अवसरोंका काल, विशेष मास,  
वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगसे पूजनका विशेष काल तथा  
लिङ्गके वैज्ञानिक स्वभावका विवेचन

अध्यायी कथं—आध्यात्मिक ! अथ  
अथ पार्थिव अध्यात्मिकी पुनश्च विचार  
कामादये, अध्यात्मिक अथवा अध्यात्मिकी  
अधि कथं है :

[illegible][illegible]

कारण अंगुल चौड़ा, इससे दूध और अन्य अंगुल अधिक अच्छीतरी बसीत अंगुल बसक मशीन में अंगुल चौड़ा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ बाज होता है, उसे विहान् गुल्ल 'विष' कहते हैं। अन्तर्गत आठवली बाज अन्य बाजोंप्रकार है, जो बाज









ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

काम, क्रोध और लाल आदिवादा तक पुन आदि हव-वधवादिवादा और सुकर्म, मोक्ष आदि काजोर बलुओका भी इन केनेने समर्थनकेवादी प्राप्ति होती है। इनकेने समर्थन आदिवादा मान कम-से-काम एक प्रका (हीर) होना कहिये और सुकर्म आदिवादा मान कम-से-काम एक काम।

अपनी संकल्पितसे कुछ चौपचासने हव-वधवादिवादा आदि समर्थन देनाओका पुनन कम-से-समर्थन दिखियेकी प्राप्ति कारयेवाला होता है। इन पुननसे अपकीने कामकासे विचार मिले मने हव-वधवादिवादा केनेने इतना कलाका काम है। चौपचासने नाम इकारके अलगाव केनेने विशेष बलका काम है। कारकीनेवालासे केनेने अलगाव हव कारयेवादिवादाकेनेने ही समर्थन आभीष्ट करनेकी प्राप्ति ही जाती है। कारकीनेवालासे अलगाव हव कारयेवादिवादाकेनेने ही समर्थन आभीष्ट करने की जाती है। यह आभीष्ट-विधि, आरोप, कार्य केनेने केनेने अलगाव अलगावका काम, इकारके और कारयेवादिवादाकेनेने पक्षान् चौप, अपकीने समर्थन चौप (मोक्ष) विचार केनेनेवालाकी विधि प्रका काम होता है। जो चौपकी इकार समर्थनका है। यह समर्थन कारकीनेवालासे अलगाव काम-से-काम ही दिन भी इन-कालसे अलगाव देनाओका पुनन को और चौपचासने पुननसे कामसे न जाने दे। इन-कालसे केनेने समर्थनका-तक ही चौपचासने पुननका विशेष बलका कामका काम है। चौपचासने पूरे यहीनेवा विवेचिय और विचार तककर हीन अलगावकासे यथावकासका केनेनेवाला वाक्यकीका जय करे। अपकीने नामके होनेके समर्थनका पक्षान् और नामके

काम करे। ऐसा कारयेवाला अलगाव प्रका कामकर प्राप्ति केनेने काम मोक्ष प्रका काम होता है। विचार म-आदिवादाके विचार काम और पक्षान् कामके ही विचार जयसे विचार प्रका काम हो जाता है। इकारकीका नाम यह कामकेनेने केनेने-केनेने वाक्यका भी काम हो जाता है।

काम कारयेवाला नाम विचार-वाक्यका है। विचार काकि है और यह विचार। इन नाम यह नाम विचार काकिवाला ही है। यह विचारका और विचार इन नामका आधार है। ये विचार और यह (काम और विचार) नामके अलगावसे अलगावका है। विचार और नामके एक नाम कुछ विचारका है। क्योंकि यही नामका आधार है। अलगावसे ही अलगावका समर्थन अलगाव नाम होता है। यही समर्थनका काम है। इन अलगावकाकी विचारसे ही अलगावका नामका अलगाव होता है, इनसे अलगाव यही है। विचारका विचार नामका है। यह अलगावका अलगाव कामका काम है। विचार केनेने और यह विचार, इन केनेने नामका ही विचारका कामका है। अलगाव नामके अलगावसे केनेने केनेने विचारकाकी पुनन करनी कहिये विचारका केनेने अलगाव है और अलगावका नामका विचार विचार। इन नाम-विचारके विचार केनेने नामकाकी ही प्राप्ति होती है। अलगाव नामका नाम केनेने विचारका विचारका केनेने काम करे। केनेने नाम नामकी नाम है और अलगाव विचार कामके विचार। जो इनकी नाम काम है, इन पुनन इन केनेने नाम-विचारकी पुनन विचार अलगावका







करके मनुष्य जगति हो जाता है। अर्थात्  
दशविध<sup>१</sup> संस्कार, मातृकान्वास तथा  
सहस्रशोभन<sup>२</sup> आदिसे प्राप्त सम्पूर्ण  
स्वास्फल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा  
प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भावबाले कुरुक्षेत्र  
रूपे स्थूल प्रणयका अथ ही अभीष्ट साधन  
होता है।

क्रिया, तप और उनके योगसे सिव-  
योगी तीन प्रकारके होते हैं—जो तपसः  
क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी  
कहालाते हैं। जो धन आदि वैधर्म्यसे पूजा-  
सम्बन्धीकरण संभव करके हस्त आदि अङ्गोंसे  
नग्नपद आदि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी  
पूजासे तृप्त रहता है, वह 'क्रियायोगी'

१. अनेकते दल संस्कार ये है — जन्म, दीपन, शोचन, स्नान, अग्निवेशन, विवाहोत्सव, जीवन, तर्पण, गोपन और मृग्यकरण इत्यादी विधि इस प्रकार है—

[illegible]

संभवतः काभूट कागजों का प्रयोग कागजों के अन्तर्गत 'कोयल' के अन्तर्गत होता है। कागज—ईस.  
एकम तमः सौख्य

ई-सी-ए-सामुदायिक मन्त्रालय पूर्व नाम जय कारको 'सी-ए' नामक विभाग संस्कार होता है। यथा—ई-सामुदायिक मन्त्रालय है।

फद-सम्पुटित सम्पत्ति एक हजार रुपय तकको 'छद्म' सम्पत्ति सम्पत्ति होला । यथा - फद सम्पत्ति सम्पत्ति ।

भूतनकर मल विस्फोट है। इस ओर हमें सबसे पहले अभिमुखित करे और उस अभिमुखित जलसे धीमे-धीमे प्रारम्भ करना अधिक करे। ऐसा करनेपर अधिकतम लाभक पाई जाये।

श्री श्री गुरुदेव ! मैं क्योंकि सम्पूर्णतः निरालस हूँ इसलिए 'विद्यार्थी' नामक छद्म संस्थान में जाता हूँ। यथा—श्री श्री गुरुदेव उपाय मन्त्र चक्षुः शोभते ।

पद्याः स्वार्थं वाच्यं नहि कष्टं स्वयम् ।

दुध, जल एवं मृत्तिका द्वारा मूल्यवान् सौं का वर्णन करने की 'उर्ध्व' प्रवृत्ति है।  
 ही-ही-समष्टि एक प्रकार का वर्णन है 'मोक्ष' नामक वर्णन संकेत होता है। यथा—ही सम्मत्तः

श्री-बीना-सम्बन्धित एक हजार कागजोंमें) अत्यन्त कम मात्रा में दर्ज है। यद्यपि—श्री-सुभाष

नमः श्रीं १०००  
इस प्रश्न से क्या कि यह मन्त्र हीन सिद्धिदायक है।

२ गहम-शोधनका कार्य होनी टीकाक उत्तरक है। उसमें पहले सुधारों या वेदोंक अतिस्थापन होत है। तर्क गहमका शोधन करके हममें ही टीका सम्भन होती है। जिसका-प्रकार अधिक विवरण नहीं दिया









कालासमें प्रातःकालीयका सोझर करकेचले  
 कण्ठेय विराजमान हैं। भुविज्योत्करो डगर  
 अहिमालोकावर्जका कण्ठय भुवनोत्तरी विजयि  
 है। अहिमालोकावर्जका अलङ्कार लेखर जो जल-  
 मैत्राला काकक वनर कृष्णक पाल है, उसमें  
 सार्वभौम भविष्यर मलयको अद्भुत कान्ठे रहने  
 है। अहिमालोकावर्जक अलङ्कार काकककककी  
 विजयि है। यद्गिरिज्य यद्गिरिके विराट्-  
 कण्ठयका कर्णक विजय मल। यद्गिरिक  
 लोकोका विरोधान् अलङ्कार मल होय है।  
 उसमें नीचे कर्णकय भोग है और उसमें उल्ल  
 जालकय भोग। अलङ्कार नीचे कर्णकय है और  
 उसमें उल्ल जालकय।

(अथ यं कार्यमावा और जालकयका  
 सात्यर्थं काल राट्ट है—) 'य' का अर्थ है  
 लक्ष्मी। उसमें कर्णकय मल—जाल होय  
 है। इसलिये यह उल्ल अलङ्कार कर्णकय  
 कालकाली है। इसी लाल क अर्थात् लक्ष्मीमें  
 जालकय मल अर्थात् जाल होय है।  
 इसलिये उसे मल का जालकाली काल मल  
 है। अलङ्कार लोकोका नीचे मल भोग है और  
 उल्ल विजय भोग। उसमें नीचे ही विरोधान्  
 अलङ्कार मल है, उल्ल नहीं। यद्गिरि नीचे ही  
 कर्णकय कासीहाल कलम होय है। उल्ल  
 कलकका मल अलङ्कार है। उसमें नीचे ही  
 नीच उल्लाल कर्णक अलङ्कार काले हृ  
 विजय लोकोका और कर्णकयें काल काले  
 हैं। उसमें उल्लके लोकोका विजय कर्णक  
 ही भोग कलम मल है। विष्णुपुराणमें लाल  
 कालेकाले उल्लाल कर्णके लोकोका ही  
 रहने है। उल्लके उल्ल लो विजयकालके  
 विजयिज्यकी कृष्ण कालेकाले उल्लाल ही  
 जाले है। जो कालक विजयकी ही उल्लालमें  
 मल है, वे उल्लके उल्लके लोकोका जाले है।

यद्गिरि नीचे कर्णकय है और  
 कर्णकय है। नीचे लोकोका नीच रहने है और  
 उल्ल कृष्ण कृष्ण। नीचे कर्णकय है और  
 उल्ल जालकय। उल्ल मल और अलङ्कारका  
 मल कालेकाली मल है, यद्गिरि कलककाली  
 विरोधान् नहीं है। उल्लाल विजय विजय  
 विजय यद्गिरि विजयका उल्लाल कलम नहीं है।  
 उल्ल उल्लाल विरोधान्काल विजय कालके  
 यद्गिरि जालकयका अर्थ ही उल्लाल होय है।  
 अलङ्कारकाल कृष्ण कालेकाले लोकोका उल्ल  
 कर्णके लोकोका ही काल काले है। जो  
 अलङ्कारकाल उल्लाल कालेकाले है, वे ही  
 उल्लके उल्लके जाले है।

जो लाल-अलङ्कार आदि यद्गिरि कृष्ण लो  
 कलकाल विजय कृष्णके लाल रहने है, वे  
 कलकालके लाल लाल जाले है। काल-  
 कलकालकी लोकोका जो विजय यद्गिरिकाल  
 कलम मल है, उसमें उल्ल कृष्णके  
 अलङ्कारके कर्णकी विजय है। यह उल्लालकाल  
 भुविज्य मल है। उल्लके लाल, लोकोका, अलङ्कार  
 और लाल—वे लाल मल है। यह लाल  
 विजयके लाल लाल लाल है। लाल उल्लके  
 लोकोका है, कृष्ण काल है, यह कर्णकयकी  
 कलके विजयिज्य है। अलङ्कारका उल्लके लोकोका  
 लोकोका है। विजय ही उल्लकी लोकोका लाल मल  
 है। विजय अलङ्कार कलकाली जो कृष्ण है, वे  
 कलकाल अलङ्कार विजय है—लाल लाल  
 कलके। उल्ल विजयकाल कृष्णकाल कलके  
 कलकाली लाल अलङ्कार लोकोका है। उल्ल,  
 विजय और यद्गिरिकाल जो लाली-अलङ्कार  
 उल्ल है, लोकोका विजय कलके है। यद्गिरि  
 कर्णकी कृष्णकाली विजय है, उसमें उल्ल न  
 विजय है न लाल। यद्गिरि लाल-लाल आदि लो  
 नहीं है। यद्गिरि कलके कलकलकल लालके















[illegible]

जन्म और मरणका अनुक्रमे मरणान्  
 निश्चयी मानने ही अर्थित विद्या है। जो इस  
 योगोक्तो निश्चयी मरणको ही अर्थित मर  
 नेका है, वह फिर जरीन्दे कर्मको नहीं  
 करता। मरणान् जरीर रहता है, मरणको को  
 निश्चयो ही अर्थित है, वह जरीर मर

[illegible]







इस मन्त्रसे पूरुष चढ़ाये । 'नमः पर्णाय' इस मन्त्रसे विल्वपत्र समर्पण करे । 'नमः कपर्दिने च' इत्यादि मन्त्रसे विविधपूर्वक धूप दे । 'नम आश्वमे' इस मन्त्रसे हाथके विधिके अनुसार दीप निकाल करे । तत्पश्चात् (इस प्रकार) 'ममो ज्येष्ठाय' इस मन्त्रसे उत्तम वैश्व अर्पित करे । फिर पूर्वोक्त प्रत्यक्ष-मन्त्रसे आवाहन कराये । 'इमा रुद्राय' इस मन्त्रसे कमल समर्पण करे । फिर 'ममो ब्रज्याय' इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुसे अपना सब कुछ समर्पित कर दे । अतन्तर 'मा ते महात्मन्' तथा 'मह नस्तमे' इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षरीसे मन्त्र

उद्योग कृत्त करे । फिर 'हिरण्यगर्भः' इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ब्रह्माओंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, दक्षिण चढ़ाये । 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रसे विष्णु पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे । दीपके शिरो बसाये हुए 'नम उग्रसे' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् विश्वकी नीलगन्धा (आसी) छारे । तत्पश्चात् 'इमा रुद्राय' इत्यादि तीन ब्रह्माओंसे भक्तिपूर्वक सम्बोधनसे पुण्याहुति अर्पित करे । 'मा नो महात्मन्' इस मन्त्रसे त्रिंश उग्रसक पूजनीय देवताओंसे परिहृष्टता करे । फिर उत्तम बुद्धि-वाला उग्रसक 'मा नराके' इस मन्त्रसे भगवान्को साक्षात् ब्रणाय करे । 'एव ते'

१. नमः पर्णाय च पर्णराश्याय च नमः सद्रूपराश्याय च विविधे च नमः आश्वमेदे च त्रिकर्षदेवे च नमः इत्युक्तद्वयो भगवत्कृत्तव्यं श्री नमो नमो चः विरहितेभ्यो देव्यः इदमेभ्यो मन्त्रे विरहितेभ्यो मन्त्रो नमः आशिर्हतेभ्यः (यजुः १६।४६)

२. मन्त्रः कपर्दिने च मन्त्रोत्तराय च नमः तत्पश्चात्तय च उत्तरमन्त्रे च नमो विरिदाय च विविधिहाय च ममो यीशुहाय भेषुमते च । (यजुः १६।२९)

३. नम आश्वमे च विष्णवे च नमः नीलरात्रे च त्रिकर्षाय च नम उग्रसे च नम उग्रसे च नमो मृदेभ्य न द्विषाय च । (यजुः १६।३१)

४. ममो ज्येष्ठाय च ममिहाय च नमः पूर्व्याय च नमः च नमो पश्यन्तय च नमो भगवन्तय च नमो जगन्नाय च भुज्याय च । (यजुः १६।३२)

५. इमा रुद्राय त्वसे कपर्दिने कर्कशीण्य त्रमराग्रे मत्ते । यथा भवाम् हिमोः क्षुत्पदे विश्वं पृष्टं त्रये अभिषेकपुत्रम् । (यजुः १६।४८)

६. नमो ब्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तत्पश्चात् च गोष्ठ्याय च नमो इदमन्त्रे च निसेभ्याय च नमः तत्पश्चात् च गङ्गादेहाय च । (यजुः १६।४९)

७. हिरण्यगर्भः समवर्तवग्रे धृतस्य अक्षः परितेव आसीन् । स रुधिरं धृमिर्षीं द्यामुत्तमे कर्षी देवस्य हविषा विधेय ।

८. यह मन्त्र कर्षुर्देवे अन्तर्गत तीन स्वामेने प्रतिष्ठित और तीन मन्त्रोंके रूपमें परिगणित है । यथा— यजुः १३।४ २३।२ तथा २५।१० में ।

९. देवस्य त्वा दक्षिणः प्रत्येष्टिर्भो नोर्देह्यां पूज्ये रुद्रात्मन् । अर्चिर्नर्मन्नेन तेजसे उग्रसर्वस्यपि विश्वम् सरसत्वी रीमन्नेन वीर्यायान्तरायां विष्णवेऽस्तरेऽस्त्रेण वत्सव त्रिषे यशसेऽर्चिर्विष्णुम् ।

(यजुः २०।३)

१०. एव ते रुद्र बागः सत् सस्यविश्वं तं कुर्वन् मन्त्रः । एव ते रुद्र भगः अस्तुते यजुः ॥ (यजुः ३।५७)











कारणें दूसरे कार्यको करने लगता है, उसका मन्दोरव काभी सङ्गत नहीं होता ।\*

इस प्रकार निमित्तपूर्वक कारणान् संकारकान् नैवेद्यान् भुज्य कारकं सम्यगी विभुज्यमयी अस्त धूर्तिबोधा भी नहीं भुज्य करे । पुत्री, जल, अग्नि, वायु, आकाश धूर्त, चञ्चल तथा वज्रकाय—ये भगवान् संकारकरी अस्त धूर्तिवर्त्त करी गयी हैं । इन धूर्तिबोधेक साक-साक धूर्त, चञ्च, वज्र, जल, अग्नि, ईश्वर, अकारण तथा अपूर्वनि इन भावोंकी भी अर्थात् करे । तदनन्तर भगवन्, अक्षय और निमित्तबोध लेकर धूर्त ईश्वर आदिबोधेक अगरी भगवान् निमित्तके संकारकान् इत्यत्र भक्तिभक्तकी दृश्य करे । ईशान, जली, चञ्च, महाकाय, भुङ्गी, वृक्ष, वायु, काशीधर, लोक तथा धूर्त—ये इन निमित्तके परिहार हैं, जो भगवन् ईशान आदि सत्तो विद्याओमें भुजनीय हैं । तत्त्वज्ञान् भगवान् निमित्तके वायु हरिभक्तकी और पीछे कीर्तिभुजक भुज्य करके निमित्तपूर्वक विद्याएँ प्रयोगी भुज्य करे । इसकी बाद महाशय भगवान् अब कारकें प्रत्यक्षीय करेगा, यथा प्रत्यक्षकी लुप्तियेक तथा शिवायज्ञानका पद करे । समग्रतः परीक्षण और भगवन्कार करके निमित्तविद्वत्का विमर्शक करे । इस प्रकार पीछे विद्वत्पुत्रकी सम्पूर्ण विधिके अन्तर्गर्भक वर्णन किया । रत्नकी देवकार्यको महा उत्तमविभुज होकर भी करवा चाहिये । इसी प्रकार निमित्तभुज भी बलिष्ठ भावसे महा उत्तमविभुज होकर ही करवा उचित है । जहाँ निमित्तविद्वत् कार्यका हो,

उससे पूर्व विद्वत्का उत्तमत्व लेकर नहीं बैठना या लक्ष्य होना चाहिये, क्योंकि यह विद्वत् भगवान् निमित्तके आने या जानेसे भङ्गी है (इत्येवमस्तु भगवन् ऐक्यम हीन नहीं) । निमित्तविद्वत्के उत्तम विद्वत्से भी न बैठे, क्योंकि उत्तम भगवान् संकारकान् भावगत है, जिसमें अतिउत्तमता होती अतः विद्वत्भगवान् है । भुज्यको निमित्तविद्वत्के अधिक विद्वत्से भी नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि यह भगवन्कारकान् भुज्यका है (पीछेकी ओरसे पूजा करवा उचित नहीं है) । अतः भगवन्कारकान् विद्वत् ही भगवान् है । इसीप्रकार भगवन् लेकर चाहिये । यद्यपि यह विद्वत् निमित्तविद्वत्के अधिक विद्वत्से उत्तमविद्वत् होकर बैठे और पूजा करे । विद्वत् पूजाको चाहिये कि यह भगवन् विद्वत् भगवान्, महाशयकी भाव लेकर तथा निमित्तभगवान् संकार करके ही भगवन् संकारकी पूजा करे, इसके बिना नहीं । धर्मिकरी । निमित्तभुज अन्तर्गर्भ करके उत्तम करे यथा न विद्वत् ही विद्वत्से भी भगवन्की विद्वत् अन्तर्गर्भ कर लेना चाहिये ।

अर्थ बोध भूय । इससे भगवन्को यह ज्ञान पुत्र रहने है कि भगवान् निमित्तके निमित्त नहीं भगवान् कार्यको पूरा विद्वत्के उत्तमता निमित्तक है, यह समझिये । साथ ही निमित्तका भगवन् भी उत्तम करीजिये ।

भूतकीने कथा—धर्मिकरी । आत्मा निमित्तभगवन्की भगवन् भगवन् करेगाके है । अतः आत्मा भगवन्की उत्तम भगवन् है । ये भगवन्कारकान् इस पुत्र भगवन् है, आत्मा भगवन् होकर भूय । जो भगवन् निमित्तका

\* जो निमित्तभगवान् नहीं उत्तमविद्वत् है । अतः भगवन्कारकान् न भगवन्की निमित्तक























## रुद्रसंहिता, प्रथम (सृष्टि) खण्ड

ऋषियोंके ऋषके उत्तरमें नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा करते हुए सुतजीका उन्हें नारदमोहका प्रसङ्ग सुनाना; कामविजयके गर्वसे युक्त हुए नारदका शिष्य, ब्रह्मा तथा विष्णुके पास जाकर अपने तपका प्रभाव बताना।

विश्वोदयस्मृतित्वयादिम् हेतुमन्

गौरांशो विन्दततात्त्विकमन्त्रवैतिष्णः।

मन्त्राक्षरं विगतभाष्यशिवकथनं

लोपलक्षणपर्यायस्य हि त्रिविधं प्रथमम् ।

जो विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और रूप आदिके एकमात्र कारण हैं, गौरी गिरिराजकुमारी केआके पति हैं, मन्त्रज्ञ हैं, शिवकी वर्णितका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अलग दूर हैं तथा शिवका स्वभाव अभिन्न है, उन विमल बोधजनक भगवान् शिवको ही प्रणाम करता हूँ।

मन्त्रे दिव्ये ते तन्मूनेरनादि

मन्त्रमन्त्रेणं पुरुषोत्तमो हि ।

सामान्यथा कुण्डलिने हि सृष्टम्

तन्मोक्षमर्थमिष्टमिष्टम् ॥ ४ ॥

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, सामान्यतया, एकमात्र पुरुषोत्तम शिवकी कन्दना करता हूँ, जो अपनी स्वभासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके अन्तर्भावकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं।

मन्त्रेऽन्तर्यामिनि जगत्पुरुषे

दिव्यं शक्तमन्त्रमिदं विष्टम् ।

जगन्निमित्तं तन्मन्त्रं पवित्रं प्रथमं

मन्त्रनिधीं चन्द्रकलोलोक्तम् ॥

जैसे लोहा चुम्बकसे आकर्षित होकर उसके पास ही लटकता रहता है, उसी प्रकार

वे हमारे जगत् स्रष्टा सब ओर शिवके आसन्नता ही प्रपन्न करते हैं, शिवोंने अपनेसे ही इस प्रपन्नको रहनेकी विधि बतायी थी, जो उनके भीतर अन्तर्यामि रूपसे विराजमान हैं तथा शिवका अपना स्वभाव अत्यन्त गूढ़ है, वह धारवान् शिवकी ही कक्षर कण्ठका काता हैं।

मन्त्रज्ञकी वक्तो है—जगत्को दिला भगवान् शिव, कात्यायना ब्रह्मपाशमधी बाँधती तब उनके पुत्र गणेशजीको बचकार करके इसे इस पुराणका वर्णन करते हैं। एक संक्षेपकी बात है, वैश्वदेवके निवास करनेवाले शौनक ऋषि इसी मुनिोंने उक्त भक्तिभावके साथ सुतजीसे पूछा—

अथ बोले—ब्रह्मपाश सुतजी, विश्वोदयसंहिताकी जो साधन-साधन-लक्षण कथनानी सूच्य एवं उक्त कथा है, इसे हमलोगोंने सुन लिया। उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिव-भक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-सौह प्रकट करनेवाली है चिह्न ! अब आष भगवान् शिवके धार उक्त स्वभावका वर्णन कीजिये। साथ ही शिव और पार्वतीके शिष्य चरित्रोंकी पूर्णरूपसे अवण कराइये। हम पूछने हैं, निर्गुण मोक्षर लोकमें सगुणकय कैसे धारण करते हैं ? हम सब



और वे इन परिवर्तनोंपरिलक्ष्य करके अपने  
कारो हुए प्रेयस्वरूप भगवान् निम्नलिखित बातों  
भाव करने लगे ।

[illegible]

अपने धर्म रक्षित ही अपनी सारी कलाएँ रख  
 सकते। बलराम ने भी कदम होकर अपना  
 प्रभाव अपने प्रसारण के अन्त में किया।  
 मुनिवरो ! कर्मदेव और बलराम के अन्त  
 प्रभाव करनेवाले भी नास्तिक मुनिके कृतार्थ  
 विचार नहीं करते। ब्रह्मा ! महादेवजीके  
 अनुचरों के योगदान के अन्त में ही गया।

जोन्मक आदि बहुरिपे ! देका छेनेके को कानन बा, उने अरुणपुर्क सुने ।  
महामेवज्जीकी कुम्भासे ही वापसपुर्धियर  
कापदेवका कपड़े प्रभाव नहीं पड़ा । पहले  
उही आकलने कावसपु भगवान् भिखारे  
जाय कबलत छी । और उन्हे  
मुनिपेकी सम्मानका फल करनेवाले  
महामेवज्जीकी जीव ही पकल पकल छलक क ।  
उस समय गमिने कापदेवकसे पुन जीवित  
करनेके लिये देवताओंके आर्चना करी । तब  
देवताओंके सम्मत होबोका कल्पवृक्ष  
कापदेवके भगवान् संकारसे वाचना करी ।  
इन्के वाचना करेपर से बोल—  
‘देवताओ ! कुछ समय जल्दीन छेनेके बाद  
कापदेव जीवित हो छे जावने, वातु यहाँ  
उन्का अर्पु प्रभाव नहीं चल सकेगा ।  
अन्ततः । यही वने छेका लोग चाहें और  
जिनकी दुगतकाकी भूमिकसे वेहसे देका पावे  
है । कालिक कापदेवके जाणोका प्रभाव नहीं  
चल सकेगा, इससे संभाव नहीं है । भगवान्  
संकारकी इस रिकके अनुसार उस समय  
बाई मारदजीके प्रति कापदेवका निजी  
प्रभाव निश्चय निश्चय हुआ । से जीव ही  
जापनेकेके इन्के फल लीव गये कई  
कापदेवने अपन मारा कुलान और मुनिका  
प्रभाव सेव, हुनाक, तत्वज्ञान इन्की  
आजसे से कलकके साथ सम्मन मानके





१२३४५६७८९१०१११२१३१४१५१६१७१८१९२०२१२२२३२४२५२६२७२८२९३०३१३२३३३४३५३६३७३८३९४०४१४२४३४४४५४६४७४८४९५०५१५२५३५४५५५६५७५८५९६०६१६२६३६४६५६६६७६८६९७०७१७२७३७४७५७६७७७८७९८०८१८२८३८४८५८६८७८८८९९०९१९२९३९४९५९६९७९८९९

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रहने का लक्ष्यकी शिक्षा दी—अपने कृतकर्मको गुप्त रखनेके लिये उन्हें समझाया—कृतकर्म। परंतु वे तो शिवकी आज्ञासे मोहित थे। इसलिये उन्होंने उनकी ही हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। कटनन्तर मुनिशिशोमणि नारद ब्रह्मलोकात् गये। वहाँ ब्रह्माजीको बधनीकर करके उन्होंने कहा— 'पिताजी ! मैंने अपने सर्वकर्मोंसे मायादेवको जीत लिया है।' उनकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवको करनारविन्दोक्त शिष्यत्व दिया और जरा काया आनन्द अर्थात् पुत्रको यह सब कहनेसे घना किया। परंतु नारदजी शिवकी भाषासे मोहित थे अतएव उनके कितने प्रदत्ता भूत जन्म गया था। उनकी बुद्धि जाती गयी थी। इसलिये नारदजी अपना सारा कृतान्त भगवान् शिवजीके समक्ष कहनेके लिये ब्रह्मसे शीघ्र ही विष्णुलोकात् गये। नारदमुनिको ज्ञान देता भगवान् शिवजी वहाँ आकर उसे और शीघ्र ही आने कहकर उन्होंने मुनिको इष्टसे भगा दिया। मुनिके आगमनका क्या लेना है, इसका उन्हें पकड़नेसे ही पता था। नारदजीको अपने आसनपर बिठाकर भगवान् शिवको करनारविन्दोक्त चिन्तन करके श्रीहरिने स्वयं पूछा—

भगवान् शिवजी खेले तब ! कहींसे आते हो ? वहाँ किसलिये तुम्हारा आगमन हुआ है ? मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो। तुम्हारे

मुष्कलमनसे मैं परितो हो गया।

भगवान् शिवजीको यह ज्ञान सुनकर कहींसे भी हुए नारदमुनिके लक्ष्यसे मोहित होकर अपना सारा कृतान्त वहाँ अभिमानके साथ कहा सुनाया। नारदमुनिका यह अहंकारपुत्रक भगवत् सुनकर मन-ही-मन भगवान् शिवजीने उनकी आगमनपथके समक्ष कटनन्तको पूर्णरूपसे जन्म लिया।

तत्पश्चात् श्रीशिवजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो, तबसाके तो संसार ही हो। तुम्हारा इष्ट भी काहें उत्तर है। मुझे। जिसके भीतर जीव, ज्ञान और वैराग्य नहीं होने उसीके लक्ष्यसे सबका दुःखोको हेमबाले काय, मोह आदि विकार लीज प्रपन्न होते हैं। तुम तो वैदिक ब्रह्मचारी हो और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हो, फिर तुमने आगमनकार कैसे आ सकता है। तुम तो जन्मसे ही निर्गन्धक तथा शुद्ध बुद्धिवाले हो।

श्रीहरिकी कड़ी हुई वैरी बहून-जी जाने सुनकर मुनिशिशोमणि नारद जोर-जोरसे ईश्वर लगे और मन-ही-मन भगवान्को प्रणम्य करके इस प्रकार बोले—

नारदजीने कहा स्वामिन् ! जब तुम्हारे आज्ञाकी कृपा है, तब मेजरा कायदेव जन्म का प्रसन्न दिग्गज सकता है।

ईश्वर कहकर भगवान्को करणोंमें धमक झुकाकर इष्टानुसार विचारनेवाले नारदमुनि वहाँसे चले गये।

(अध्याय १-२)

मायानिर्मित नगरमें श्रीलनिधिकी कन्याएँ रहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ उन्हें चानरकर-सा घेह देना, कन्याका भगवान्‌को बाण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

मूलजो बहते हैं मूर्खोंके । उस प्रभाव कायका । उस कन्याको देखकर नारदपुनि कन्यारूप लब्धिमें लगे गये, तब भगवान् विष्णुकी कृपासे मायानिर्माण होकरने लम्बातन अपनी कन्या प्रकट की । उनमें मुनिके चारोंके एक निश्चित कन्याकी रचना की । जिसका विचार ही योजना था । वह अद्भुत नगर बड़ा ही कल्पित था । भगवान्‌ने उसे अपने केशवाम्बरोंके भी अधिक रचनीय बनकर था । यन्त्र प्रकाशकी बलपूर्वक इस नगरकी रचना कायकी थी । बाई विष्णु और ब्रह्मसेके रूपों कायकी विचार-रचना के । यह मनु नगर चारों कन्यके लगेगोले था । बाई श्रीलनिधि कन्या देवर्षीरानी तथा राज्य करने के । से अपनी मुनीका सम्पन्न करनेके लिये कृत्य के । अतः उन्होंने भगव् प्रकाशका आदेशन किया था । उनकी कन्याका वरन करनेके लिये उनका ही चारों विचारोंके कृत्य के राजकुमार बहते थे । जो उनके प्रकाशकी वेशभुषा तथा सुन्दर लोभके प्रकाशित हो रहे थे । इन राजकुमारोंसे यह वरन करा-बुरा दिसाकी देन था । ऐसे सुन्दर राजकुमारको देन नारदकी योजना हो गये । वे राजा श्रीलनिधिके द्वारा गये मुनिश्रितोपनि नामको अन्त देन महानग्न श्रीलनिधिके मनु राज्यन सिद्धकन्या विष्णुकर प्रकाश प्रकाश किया । नगरका अपनी सुन्दरी कन्याको, जिसका नाम श्रीकरी था, कन्याका और उनसे कन्याके वरकोंके

कारणका । उस कन्याको देखकर नारदपुनि चकित हो गये और बोले— 'कन्या ? यह देवकन्याके समान सुन्दरी



कन्याकाय कन्या कीम है ?' उनकी यह बात सुनकर राजकी हाथ जोड़कर कहा— 'जुने । यह मेरी पुत्री है । इसका नाम श्रीमती है । उस कन्याके विचारका समय आ गया है । यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त सम्पन्नके जनकानी है । इससे सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं । यहाँ, आज इसका नाम कायक है ।'

राजके इस प्रकार चुननेका जाचसे विष्णु और मुनिकेका वरन उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा करने लिये राजाको





भागमें जा पहुँचे। इधर तब राजकुमार  
 भीमलकी ओरसे विराज हो गये। जगन्मुखि  
 तो भागवेदनसे अतुर हो गये थे। इमलिनके  
 ये अवकाश विद्वान हो गये। तब वे दोनों  
 विद्वत्प्राधारी शास्त्रविद्वान् सनका सन-  
 दियुक्त कदाहीमें उठी इन्हें बोले-

हृदयार्थ ही वाक्यको स्पष्टता हो खे ॥ ३०॥



सौरमण्डलके कल्पने काजकुआरीके धारा जागते हो । अमरा सारके समान सुगिता पैरु भे देस भे ।

सुखी कहते हैं—बाइबिलो । वे  
कामनाओंका एक कल्प सुन्दर नारदजीको  
कहा किन्ना हुआ । वे किन्नाही पापाको  
बोला । उन्होंने सुनकर अपने मुँह देखा ।  
बाबाको कल्प अपने मुँह देखा वे सुन ही  
लेनेको जब उन्होंने पापाको बोला उन्होंने  
कल्प इन दोनों किन्नाओंको कहा पाप कैसे  
हुए बोले—‘ओ । तुम दोनों ही सुन  
कामनाका कल्प किन्ना है । अतः तुम  
कामनाको जीवने कल्प राखो जो बाबा ।  
कामनाकी संभाल लेनेका भी सुन्दर आकाश  
राखनेको कल्प ही होने ।’ इस प्रकार अपने  
मित्रों का सुन्दर वे दोनों इतिहासियोंकी  
किन्नाका सुनिचो बोला बाबाको कुछ नहीं  
बोले । बाबाको । वे कहा कल्प कल्पनाओंको  
कल्पना किन्ना ही कल्प कल्प वे । अतः  
कल्पना कल्पना अपने कल्पको जाने पाप  
और कल्पना किन्ना ही सुनि करे लगे ।

( अथवा ५ )

नारदजीका भगवान् विष्णुको क्लेशपूर्वक जटकारना और शाप देना:  
फिर भाषाके दूर हो जानेपर पञ्चलापूर्वक भगवान्के चरणोंमें  
गिरना और शुद्धिका उपास्य पृच्छन् तथा भगवान् विष्णुका उन्हें  
समझी-मुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके  
पास जानेका अदिश और शिवके भजनका उपदेश देना

सुतजी कहते हैं—कर्मियों ! यहाँ  
हम नास्त्यसूत्रि का योजन किया  
लेकिन आज देखकर भी यहाँ यहाँ  
आपस में झगड़ते जाते हैं। तो













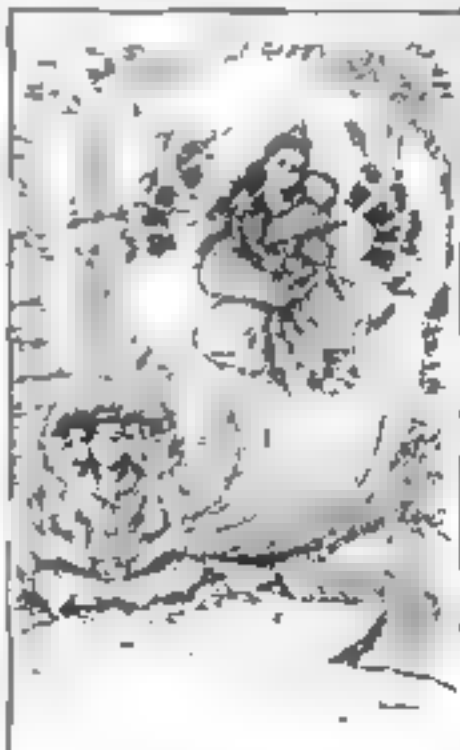
महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निगुण-  
निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव) का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा  
स्वरूपभूता शक्ति (अम्बिका) का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा  
उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन) का प्रदुर्भाव, शिवके  
साम्राज्यसे परम पुरुष (विष्णु) का आविर्भाव तथा उनके  
सकाशासे प्राकृत तत्वोंकी क्रमशः अल्पिका वर्णन

ब्रह्माजीने

कहा— शिवाय !

देवाश्विरोवामे । तुम सदा सत्ताका सारकके  
प्रकाशमें ही रहने रहने हो । तुमने दोनोंके  
द्वाराकी सत्यतासे यह साक्षात् उत्पन्न बात पुरी  
है । जिसके सुननेसे सम्पूर्ण लोकोंनेके समस्त  
पापीके हृदय हो जाता है, उस अनन्त  
विशालताका मैं तुमसे वर्णन करता हूँ ।  
विशालताका सत्य सब ही अनुभूति और  
अनुभव है । जिस विषय समस्त सत्ताका  
साक्षात् यह हो गया था, सर्वत्र केवल  
अनन्तता ही अनन्तता था । मैं पूर्ण  
विशाली होने से मैं बचता । अनन्तता ही  
और महाशक्ति भी प्राप्त नहीं था । मैं दिन  
होता था मैं रात; अग्नि, पृथ्वी, वायु और  
जलकी भी सत्ता नहीं थी । प्रलय तब  
(आध्यात्मिक प्रकृति) से रहित सदा  
अनन्तताका होय था, दूसरे किसी तेजस्वी  
हस्तके नहीं होती थी । अतः आविर्भाव भी  
अस्तित्व नहीं था । प्रलय और सृष्टि भी तब  
छोड़ चुके थे । गन्ध और स्पर्शकी भी  
अविश्वसति नहीं होती थी । समस्त भी  
अस्तित्व हो गया था । विशालताका भी प्राप्त  
नहीं होता था । इस प्रकार सब ओर निरन्तर  
सुखीयेय और अनन्तता केवल सत्य था ।  
इस स्थिति 'तत्सद्ब्रह्म' इस क्षणमें जो 'सत्'   
बुना जाता है, स्वरूप नहीं होय था । तब

'सत्', 'सद्', 'सैव', 'सो' इत्यादि रूपमें  
निर्दिष्ट होनेकायं सत्ताकासाक्षात् जगत नहीं  
था, तब सत्ताका स्वरूप यह 'सत्' ही होय  
था, जिसे दोनोंके अनन्त ब्रह्मात्मिकासे



धीन निरन्तर देखते हैं । यह सत्ताका सत्ताका  
स्थिति नहीं है । कालीकी भी महाशक्ति कभी

[illegible][illegible]

(विष्णु अष्टाध्याय) भगवान् महाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन सिद्धिन् उनकीसे ईश्वर कहते हैं। इस समय एकजोड़ी एकदम होशियार बनकर करकेवाले इस महाशिवसे अपने विष्णुसे सब ही एक समान्यमान होकरकी खुद ही, जो उनके अपने हीअङ्गसे कभी अलग होनेवाली नहीं थी। इस धरातलिकसे प्रमान, प्रकृति, गुणकारी, ज्ञान, बुद्धिमानकी सबकी तथा विष्णुपरमेश्वर मानना गया है। यह ज्ञान अधिपति कही गयी है। उनकीसे प्रकृति, सर्वेश्वरी, विवेकमानवी, विष्णु और भूगणधारण भी कहते हैं। महाशिवेश्वर महा ही गयी इस जलिकसे आठ गुजारी है। इस सुधमज्जला केकेके भूतलकी होना विविध है। यह अकेलही ही अपने भूतलपक्षान्ने सदा एक सदा सदा सदाओकी काशि धारण करती है। यना प्रकारके आधुनिक इसके हीअङ्गोंकी होना कहते हैं। यह सभी सदा प्रकारकी गतिवाले समान है और अनेक प्रकारके अन्त-सम अलग करती है। उनके सने हुए नेत्र रहित हुए मानसके समान मान कहते हैं। यह अधिपति सेवने समानगती है। यह समकी मोति है और महा उद्यमशील रहती है। एकजिन्नी होनेवा भी यह माना ईश्वरमानस अपने ही जाती है।

वे सो समझते हैं, उन्हें वास्तविक, ईमान, विश्वास जगाना और धोखा देना है। वे अपने वास्तविक उद्देश्य-प्राप्ति के लिए काम करते हैं। उनके भावों-कर्मों का प्रभाव होता है। उनके जीवन मुक्त है और प्रत्येक मुक्त जीवन-जीवन में है। उनका विश्वास सत्य प्रमाण प्रमाण है। वे इस मुक्त-जीवन में मुक्त और विश्वास-पूर्ण हैं। उनके जीवन-कर्मों का प्रभाव



भी। उसकी कान्ति इन्द्रजीत यज्ञिके समस्त  
 श्याम थी। उसके अङ्ग-अङ्गसे दिव्य शोभा  
 छिटक रही थी और नेत्र प्रफुल्ल कल्लोलके  
 समान शोभा पा रहे थे। श्रीअङ्गनेपर  
 सुवर्णवर्षी-सी कान्तिवाले से सुन्दर रेखायें  
 पीताम्बर छोड़ा थे रहे थे। किमीसे भी  
 घरायित व होनेवाला वह और पुत्र्य अपने  
 प्रचण्ड चुम्बनकोसे सुशोभित हो रहा था।  
 तदनन्तर उस पुत्र्यने परमेश्वर भिषको प्रणम  
 करके कहा—‘स्वामिन् ! मेरे लक्ष निर्दिष्ट  
 कीजिये और जाय बताइये। उस पुत्र्यकी  
 यह लक्ष सुनकर परेश्वर भगवान् संकर  
 ईशसे हुए घेयके समस्त तन्त्रीय कालीने  
 इतने छोले—

शिवने कहा—‘कनक ! व्यापक होनेके  
 कारण तुम्हारा विष्णु नाम विस्मयता हुआ।  
 इसके सिवा और भी बहुत-से नाम होंगे, जो  
 भक्तोंको सुख देनेवाले होंगे। तुम सुमिह  
 इत्यम तथ करो; क्योंकि अभी तपसा  
 साधोका साधन है।

ऐसा कहकर परमेश्वर शिवने श्वास-  
 मार्गसे श्रीविष्णुको केवोंका इत्यम प्रत्यन  
 किया। तदनन्तर अपनी पहिनासे कभी चला  
 न होनेवाले श्रीहरि भगवान् भिषको प्रणम  
 करके बड़ी भारी तपसा करने लगे और  
 झकिसहित परमेश्वर शिव भी चार्दगणोंके  
 साथ वहाँसे अवृत्त हो गये। परमेश्वर  
 विष्णुने सुदीर्घ कालतक बड़ी कठोर तपसा  
 की। तपसाके परिश्रमसे कुछ समयान्  
 विष्णुके अङ्गोंसे नाना प्रकारकी जलधाराएँ

निकलने लगीं। यह सब भगवान् शिवकी  
 याचसे ही सम्भव हुआ। यद्यपि ! उस  
 जलसे साध सुख जलकाज व्याप्त हो गया।  
 यह ब्रह्मज्य जल अपने स्वर्णमात्रसे सब  
 पापोंका नाश करनेकारण सिद्ध हुआ। उस  
 समय बने हुए परम पुत्र्य विष्णुने स्वयं इस  
 जलसे स्नान किया। ये दीर्घकालतक बड़ी  
 प्रशन्नताके साथ उसमें रहे। बार अर्थात्  
 जलमें डूबकर करनेके कारण ही उसका  
 ‘कलानल’ यह सुनिसम्मत नाम प्रसिद्ध  
 हुआ। उस समय उन परम पुत्र्य नारायणके  
 सिवा दूसरी कोई प्राकृत चक्षु नहीं थी।  
 उसके बाद ही उन महात्मा नारायणकेतसे  
 चत्वारस्रस्र सभी तत्त्व प्रकट हुए। ब्रह्मते।  
 विहन्। ये सब तत्त्वोंकी उपलक्षण प्रकार  
 बता रहा हूँ। सुने, प्रकृतिये महात्म्य प्रकट  
 हुआ और महात्म्यसे तीनों गुण। इन गुणोंके  
 पेटसे ही विविध आकाशकी उपलब्धि हुई।  
 अङ्गकारसे पीत तपसादि हुई और उन  
 तत्त्वताओंसे धीरे धीरे प्रकट हुए। उसी  
 समय ज्ञानैश्वर्य और कर्मेन्द्रियोंका भी  
 प्रादुर्भाव हुआ। पुनिकेह ! इस प्रकार मैंने  
 तुम्हें तत्त्वोंकी संख्या बतायी है। इनमेंसे  
 पुत्र्यने छोड़कर शेष सारे तत्त्व प्रकृतिये  
 प्रकट हुए हैं, इसलिये एक-के-सब जग हैं।  
 तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है। उस समय  
 हस्तकार हुए चौबीस तत्त्वोंके ग्रहण करके  
 ये परम पुत्र्य नारायण भगवान् शिवकी  
 इच्छासे ब्रह्मज्य जलमें हो गये।

(अध्याय ६)

भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलम्बका प्रादुर्भाव, शिवेच्छावश ब्रह्माजीका  
ठससे प्रकट होना, कमलम्बालम्बके उद्गमका फल लगानेमें असमर्थ  
ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-  
विष्णुके बीचमें अग्नि-साम्बका प्रकट होना तथा उसके अंतर-  
छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना

कहालो कहने हैं देखें। जब  
नारायणदेव जलमें स्नान करने लगे, तब  
सम्ब इसकी नाभिसे कमलम्ब काकरके  
इच्छावश ब्रह्मा एक जल कमल प्रकट  
हुआ, जो बहुत बड़ा था। उसमें असीम  
मालम्ब थे। इसकी कर्णिका के नीचेके  
समस्त पीले रंगकी ही तथा उसकी लम्बाई  
और चौड़ाई भी असीम क्षेत्र थी। वह  
कमल करोड़ों सुपुष्पोंके समस्त प्रदर्शित हो  
रहा था, सुन्दर होनेके साथ ही समस्त  
तन्मोले बुलबुल वगैरे असीम असीम, सब  
रसगीत वर्णोंके संगीत तथा उसमें असीम  
वा। तबब्रह्मा कमलालाकारी परलोक  
सम्बलितने बुलबुल प्रकट करने लगे असीम  
दर्शने असीम उपलब्ध किया। बुले ! इस  
बड़ेकारने मुझे तुम ही अपनी माकसे मोहित  
करके नारायणदेवके नाभिकमलमें इस  
विषय और लीलापुष्पके मुझे कहाँसे प्रकट  
किया। इस प्रकार इस कमलसे पुष्पों  
काममें मुझे विरम्यगर्भका जन्म हुआ। मैं  
चार मुख हुए और शरीरकी कर्णिका लाल  
हुई। मेरे मलम्ब विष्णुकी रेश्मासे अङ्गित  
थे। तब ! भगवान् विष्णुकी नाभिकसे मोहित  
होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इसी बुलबुल हो  
रही थी कि मैंने इस कमलके विषय अपने  
किर्सीको अपने शरीरका जन्म था विष्णु  
नहीं जान। मैं सोन हूँ, कहाँसे जान हूँ,

मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर  
जन्म हुआ हूँ और किसने इस समय मेरा  
निर्माण किया है—इस प्रकार संसारे पड़े  
हुए मेरे पदमें यह विचार उत्पन्न हुआ—‘मैं  
किसान्तिने पड़ेने पड़ा हुआ हूँ ? जिसने मुझे  
जन्म दिया है, उसका फल लगाना तो बहुत  
कराव है। इस कमलपुष्पका जो पल्लव  
नाल है, उसकी जड़पत्तन इस जलके  
भीतरी बीचोंबीच और है। जिसने मुझे जन्म  
दिया है, वह पुष्प भी वहीं होगा—इसमें  
संशय नहीं है।’

ऐसा विचार करके मैंने अपनेको  
कमलमें बैठे ज्ञाता। बुले ! मैं इस  
कमलकी एक-एक तन्मोले मल और  
लिकटों कर्णिका काई क्षण भी भूलता रहा,  
किन्तु कहीं भी इस कमलके उद्गमका जन्म  
जन्म मुझे नहीं मिला। तब पुनः इसीप्रकार  
पढ़कर मैं इस कमलपुष्पपर जानेकी इच्छा  
हुआ और तन्मोले कर्णिके इस कमलपर  
कहने लगे। इस तरह बहुत समय जायेगा भी  
मैं इस कमलके कोमलको न पक सका। उस  
वकाल मैं और भी मोहित हो रहा। बुले !  
जब समय भगवान् विष्णुकी इच्छासे परम  
ब्रह्मपदमें असीम असीमरसगीत प्रकट हुईं,  
जो मेरे मोहित दिवस करनेवाली थी। उस  
वकालीने कहा—‘नमः’ (तपस्व करो)। उस  
जन्मकर्मकाजीको सुन्दर मैंने अपने





अईकारिचोका नहीं चुन करकेकाले तब  
 कचके अविनाली प्रभु है। ये इस सेनेपर  
 हवातु हो गये। उस समय नहीं उन  
 सुरभेदुने, 'ओहम्' 'ओहम्' एक समकाल  
 बह प्रकट हुआ, जो समकाले सुनयी के  
 हो। यह नाह इस समय अविनाली हुआ  
 था। कारण प्रकट होकेकाले उस समकाल  
 विनयने 'ओहम्' 'ओहम्' ऐसा सोचो इस समय  
 केवतअनेके आराध्य समकाल विनय को  
 हाथ मंगुलियासे कहे रहे। ये सर्वथा  
 वीरभावसे रहित थे। इनके विनयके  
 दृष्टिकालागै समकाल अविनाली अकारक  
 हाथ विनय। समकालागे समकाल,  
 समकालागे समकाल और अचले 'ओहम्'  
 इस समकाल हाथले हाथ एक अनुकूल  
 विनय। दृष्टिकालागै प्रकट इस अविनाली  
 अकारकली सुनयनकालके समकाल सेनेकाल  
 केवतकाल यह अनेके समकालागे दृष्टिकाल  
 विनय, तब नहीं उकार नहीं अनेके समकाल  
 सीमिकाली विनयकी विनय। धुनिके ! इसी  
 तरह अनेके समकालागै समकालागे  
 समकालकालके समकाल समकाल कालिके  
 प्रकाशमात्र देता। समकाल यह समकाल इस  
 दुष्टि हाथी, तब सुद्ध समकालागै समकाल  
 विनय प्रकटके सुन, सुनिकाली, समकाल,  
 विनयकाल, विनयकाल, विनय, अनेकाली,  
 सुनयकाल, काल और समकालागै केवत  
 रहित, समकालागै सुन, समकाले वीर  
 और वाहुर काल ही विनय। अनेके, काल और  
 अकारके रहित, समकालागे अनेके समकाल काल  
 समकाले काल समकाल, काल, समकाल एवं  
 समकालकाल समकालागै समकालागै विनय।

उस समय भीहरी यह सोचने लगे कि  
 'यह अविनाली नहीं कालासे प्रकट हुआ है ?

इस सेनेके विनय इसकी वीरता करे। ये इस  
 अनुकूल समकालागै वीरता जाहिरा 'देता  
 विनय काले सुन सीमिके केव और समकाल  
 केवके समकालागे सुन विनयका विनयका  
 विनय विनय। तब नहीं एक काल प्रकट  
 सुन, जो काल-समकाले काल समकाल काले  
 लगे है। नहीं कालिके काला वीरता  
 सीमिकाले समकाल विनय इस समकालागै  
 समकालागे वीरता विनयके काले समकाल  
 समकालागै समकालागै ही नहीं प्रकट सुन  
 है। ये विनयकाल (अचले अविनाली) काल  
 है। समकाल समकाल काली लगे समकाल  
 विनय विनय ही लगे अनी है, उस समकाल  
 समकाल विनयका समकाल समकाल (अचले)  
 ही है, ये समकाल समकालागै है। यह समकाल  
 समकाल काल समकाल, समकाल एवं समकालागै  
 समकाल समकाल समकालागै समकाल है।  
 समकाले एक अकार अकारके समकाले  
 वीरतागै समकालागै समकालागै समकालागै  
 होता है। समकाले सुनके एक अकार समकालागे  
 काल समकालागै सीमिकाल वीरता है और  
 सीमिके एक अकार समकालागे समकालागै वीरता  
 लगेकाल विनयकाल समकाल है। अकार  
 कालागै है। समकाल सीमिके समकालागै है  
 और समकाल विनय अनुकूल कालागै है।  
 समकाल-काल समकालागै विनय वीरता  
 (सीमिकालागै समकाल) है और 'अकार'  
 समकाल सुन समकालागे 'सीमिके' काल है।  
 'अकार' समकालागै सीमिके काल है। समकाल  
 और सुनके वीरता काल वीरता है। ये  
 सीमिके, वीरता और वीरता वीरता है। वीरताके  
 'अकार' काल काल है। (उमके वीरता समकाल  
 समकालागै है।) वीरता समकाले सुनकासे ही  
 अचले वीरताके लगेकाल वीरताके विनयकाल कालागै



साथ देवकीर में और श्रीहरि दोनों कुतर्क हो गये। इस तरह कृष्ण-अङ्गण-श्रीरक्षारी महेन्द्र शिवका दर्शन वाकर मेरे साथ श्रीहरिने उन्हें प्रणाम किया और पुनः अङ्गणकी ओर देखा। उस समय उन्हें यौन वाक्यओसे चुन कर आरक्षणिक वाक्यसे सम्बोधन हुआ। साथ-साथ महादेवजीका अंश तत्त्वार्थों वह महावाक्य दुहितेका हुआ, जो वाक्य अन्त में वाक्य है तथा कुछ कठिनाईके समान विरहित है। फिर सम्पूर्ण वर्ष और अर्द्धका प्रारम्भ कर कृष्णवाक्य वाक्यी वाक्य दूसरा बहुत वाक्य लक्षित हुआ, जिसमें चौबीस अक्षर हैं तथा जो चारों पुरुषार्थकी प्राप्त देवेकाला है। तत्पश्चात् कृष्णवाक्य-वाक्य फिर महावाक्य-वाक्य तथा दक्षिणाधुनिकवाक्य विचारार्थ-वाक्यका सम्बोधन हुआ। इस प्रकार वाक्य वाक्यकी उपलब्धि करके वाक्यवाक्य श्रीहरि उनका उप करने लगे।

तत्पश्चात् वाक्य, वाक्य और वाक्य—ये विचारोंके हैं, जो ईश्वरोंके मनुष्याणि ईशान हैं, जो पुराणमें पुनः हैं, विचारोंके अर्थों अर्थों हैं, जो वाक्यके प्रिय वाक्यवाक्यसे सर्वगुण लक्षित हैं, विचारोंके वाक्य वाक्य—वाक्य सुन्दर हैं, जो वाक्य देवता हैं और वाक्य सर्वराज्यसे वाक्यवाक्यके अर्थों वाक्य करते हैं, विचारोंके सभी ओर पैर और पैरोंके ओर पैर हैं, जो वाक्य वाक्यके भी अधिपति, वाक्यवाक्यकारी तथा सुवि, वाक्यवाक्य एवं वाक्य करनेवाले हैं, जो वाक्यवाक्य सम्बोधनवाक्यसे मेरे साथ वाक्यवाक्य विचारोंके विचार वाक्यवाक्यसे सम्बोधनवाक्यसे सम्बोधन किया।

(अध्याय ८)

५

वमासहित भगवान् शिवका प्रकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्मजी करते हैं—भारत। वाक्यवाक्य विचारोंके द्वारा की हुई अपनी कृति सुन्दर कल्पनानिधि महेन्द्र एवं प्रकाश हुए और महादेवजीके साथ सहज वाक्य प्रकट हो गये। उस समय उनके यौन पुनः और उनके चुनने तीन-तीन के प्रारम्भ करते थे। महादेवजीके कल्पवाक्य मनुष्य सुगोपित का। सिरपर ऊपर धारण करने और, विचारोंके नेत्र शिवने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंसे विभूति लम्ब रही थी। उनके यौन चुनने थी। कण्ठमें नील विभूति का। उनके श्रीअङ्ग सम्बोधन आधुनिकोंसे विभूति थे। जो सम्बोधनसुन्दर विचारोंके वाक्य वाक्यवाक्य विभूतिसे लक्षित थे। ऐसे विचारोंसे चुन वाक्यवाक्य

महादेवजीको वाक्यवाक्य के साथ उपलब्ध देवता मेरे और वाक्यवाक्य विचारोंके चुन विचार वाक्यवाक्यसे अङ्गोंके चुन थी। जो वाक्यवाक्य वाक्यवाक्य महेन्द्रने प्रकाशित होकर जो श्रीविचारोंके अङ्गोंके वाक्यवाक्यसे वाक्यवाक्य विचार। चुने। उनके वाक्य शिवने वाक्यवाक्य श्रीहरिके चुन लम्ब प्रकाश किया। फिर जो वाक्यवाक्यसे चुन करके चुनने थी वह चुन दिया। केवल ज्ञान प्राप्त करके कुतर्क हुए वाक्यवाक्य विचारोंके मेरे साथ हाथ मोड़ महेन्द्रवाक्य वाक्यवाक्य करके चुनः उनसे चुनवाक्य विचारोंके चुनने तथा सत्यवाक्य देनेके विचारोंके चुनने की।

ब्रह्मजी करते हैं—चुने। श्रीहरिकी





संविधान विमर्शना ॥

और संसार करनेवाले हउ अदि किमिद मुनो-  
छारा जडा, सिन्धु और लक्ष्मणो अदिदु हो  
सौम कसोमे मुनक-मुनक जडा होत हूँ।  
भाक्षान् सिन्धु मुनोमे सिन्धु हूँ। मे जडासि और  
पुनमे मेरी परे हूँ—अङ्गिनी, सिन्धु, अन्ना,  
पुन पदे विरल्लन कडाका परल्लन हूँ। मेने  
लोकोमेका पालन करनेवाले बीहरी भीतर  
तलोमुन और बाहर जलमुन करन करते हूँ,  
विरोधीकय संसार करनेवाले कालेय भीतर

जलमुन और बाहर तलोमुन करन करते हूँ  
तल विभुवनकी सृष्टि करनेवाले जडाकी  
बाहर और भीतरसे मेरी लोकोमेकी हूँ हूँ। इन  
जलमुन जडा, सिन्धु तल लक्ष्—इन तीन  
देवताओंमे मुन हूँ, करतु सिन्धु गङ्गातीत जाने  
जाने हूँ। सिन्धुमे ! तुम मेरी आशसे इन  
सृष्टिकर्ता विरल्लनकय जलमुनपुनकय पालन  
करो; देवा करनेसे तीनों लोकोमे मुनकीय  
होओगे। (अध्याय ९)

॥

## श्रीहृत्किसे सृष्टिकी रक्षाकर धार एवं भोग-भोक्ष-दानका अधिकार हे भगवान् सिक्कय अन्तर्धान होना

परमेश्वर सिन्धु बोले—जल जलका  
पालन करनेवाले हो। सिन्धुमे ! अब तुम  
मेरी सुनरी अन्न सुनो। जलका पालन  
करनेमे तुम जडा समस्त लोकोमे कानकीय  
और कुनकीय जाने रहोगे। जलकीयके द्वारा  
मेरी जने लोकोमे जल कोई दू-स या संकल  
करन हो, तब तुम जल जलकी दू-लोकोमे जल  
करनमे सिन्धु जल लाना रहत। तुम्हारे  
सामुप्य मुनक करकोमे मेरी सुनारी जलकाय  
करनीगा। तुम्हारे जो दुनेय और अन्नक  
जलक सनु होगे, अब जलको मेरी पार  
गिराकीन। हो ! तुम जल जलकरके अन्नकर  
करन करके लोकोमे अन्नकी जल कीमिद  
बिलार करो और ललके जलकरके सिन्धु  
जल रहो। तुम जलके भोग हो और जल  
तुम्हारे भोग हूँ। तुममे और जलमे कुछ भी  
अन्न नहीं हूँ।\* जो समस्त जलका जल  
होकर तुम्हारी सिन्धु करेगा, जलका जल

मुनक जलकर भोग हो जलकर। मुनोमेकाय  
सिन्धुमे ! तुमसे जल करनेके करन मेरी



आज्ञासे उपासी नरकमें गिरना पड़ेगा। यह बात सत्य है, सत्य है। इसमें संशय नहीं है।<sup>१</sup> तुम इस लोकमें मनुष्योंके लिये विशेषतः भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके प्रिय भक्त भूय होकर प्राणिजैविक विघ्न और अनुग्रह करो।

ऐसा भक्तकर भगवान् लिये वैरा इस प्रकार लिया और श्रीविष्णुको सौम्यकर ज्ञाते कहा—'तुम संसारके समस्त उपा इसकी साहायता करते रहना। इसके अन्तर्गत होकर सभीको योग और मोक्ष प्रदान करना तथा सर्वदा सदात्म साधनाओंको प्रोत्साहन एवं सर्वसुख देने रहना। जो तुम्हारी कृपासे आ गया, वह विघ्न ही मेरी करणसे आ गया। जो मुझसे और तुमसे अन्तर सम्बन्धता है, वह अवश्य नरकमें गिरता है।'<sup>२</sup>

सद्गामी करते हैं—देखें। भक्तान् शिष्यान् यद्वाचनं सुन्दरं ये सदा भक्तान् विष्णुने भक्तोंके बहाने करनेवाले विष्णुभक्तोंके प्रणाम करनेके बलकारसे कहा—

श्रीविष्णु बोले—कलशविष्णु। कलशविष्णु। मेरी वह कल सुनिसे। मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा। आदिम्। जो वैरा भक्त

होकर आपकी विष्णु करे, उसे आप विघ्न ही नरककरत प्रदान करें। वाच ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अनन्त प्रिय है। जो ऐसा जाता है, उसके लिये मोक्ष सुनिसे नहीं है।<sup>३</sup>

सर्वविष्णु यह कथन सुन्दर सुनकारी करने उनकी कलशका अनुपोदन किया और जना प्रकारके धर्मोंका उपदेश देकर इन क्षेत्रोंके जितनी उपासे इन्हें अनेक प्रकारके कर दिये। इसके बाद भक्तवन्तल भगवान् स्वयं कृष्णपूर्वक इतारी और देवकार इन क्षेत्रोंके देखते-देखते सहस्र वर्षों अन्तर्गत हो गये। सभीने इस लोकमें लिङ्ग-युवाका विधान जाना हुआ है। लिङ्गमें उल्लिखित भगवान् शिव योग और मोक्ष देनेवाले हैं। शिवलिङ्गकी जो केली का अर्थ है, वह परमेश्वरीका कलश है और लिङ्ग साक्षात् परमेश्वर। भक्तका अधिष्ठान होनेके कारण भक्तान् शिवकी लिङ्ग कहा गया है; क्योंकि इसीसे विविध भगवत्का रूप होना है। सदायु। जो शिवलिङ्गके अधीन कोई कार्य करता है, उसके पुण्यफलका धर्म करनेकी इति मुझसे नहीं है।

(अध्याय १०)



\* इन्द्रभक्तो नो यक्षु तस्य शिष्यो करिष्यति। तस्य पुत्रो य विष्णुः कृतं नाम परिपालितः।

नरके पतने तस्य सद्गुरुकृतकृत्यः। सद्गुरुः करिष्यति ॥२०॥ सत्यं य संतुष्टः॥

(शि. पु. क. सु. सं. १०।८-९)

+ तस्य य समाप्रितो नूनं धर्मवत् करिष्यति। अन्तरं यद्वाचनं शिष्ये पालितं भूयात्॥

(शि. पु. क. सु. सं. १०।१४)

‡ सदा भक्तान् यः शिवविष्णुं शिरो करिष्यति। ननु यो शिष्यो वस प्रपद्य विघ्नं भूयात्॥

जन्मरते जो भक्तवन्तलभक्त शिष्यो वि. सं. : स्व. यो जो भक्तवन्तल तस्य कृतिर्न दुर्लभः॥

(शि. पु. क. सु. सं. १०।३०-३१)

## शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

श्रुति बोले—आत्मशिवम् शिवम्  
सुनायी ! आपकी नमस्कार है। आज आपने  
भगवान् शिवकी बड़ी अर्चना एवं वरदान  
पावन काज सुनायी है। बरदानों के। आज  
और भारतीकी लक्ष्मीके अनुसार आप इसे  
शिवपूजनकी यह विधि बताइये, जिससे  
बड़ी भगवान् शिव कीर्ति होवे है। अर्चना,  
अभिषेक, वैष्णव और शिव—यही शिवकी  
पूजा करते हैं। यह पूजन कैसे करना  
करिये ? अपने भारतीकीके सुनने इस  
विषयको शिव उपासक सुना लें, यह  
करावें।

माइशिवोका यह अर्चनाकरना एवं  
शुभिकारना वरदान सुनकर सुननीने इन  
शुभिकारके उपासके अनुसार वरदान लाने  
इसकापूर्वक करानी।

सुनायी बोले सुनीकरे ! आपने बहुत  
अच्छी बात सुनी है। वरदान वरदानकी बात  
है। जैसे इस विषयको वरदान सुना है और  
वैष्णव वैष्णव बुद्धि है, उसके अनुसार आज कुछ  
कहा रहा है। जैसे आपलोग पूज रहे हैं, अभी  
तब पूर्वकालमें भारतीकीने नमस्कारकीसे  
कहा था। फिर उसे उपासकीने भी सुना  
था। भारतीकीने शिवपूजन अर्थात् जो भी  
विषय सुना था, उसे सुनकर उन्होंने  
लोकहितकी कामनासे मुझे यह सुना था।  
इसी विषयको भगवान् शिवकीने उपासक  
उपासकीने सुना था। पूर्वकालमें भारतीकीने  
भारतीकीने इस विषयको जो सुना कहा था,  
वही इस समय मैं कहूँगा।

भारतीकीने कहा—आज ! मैं संक्षेपसे  
शिवपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुने। वरदान  
पहले कहा गया है, वरदान जो भगवान्

शिवकी सुलोक्य, निर्मल एवं ज्ञानात्मक रूप  
है, उसका आज शिव शिवकीसे पूजन करें,  
इससे शिवकी वरदानकी फलकी प्राप्ति  
होगी। अर्चना, अभिषेक, वैष्णव तथा शिवकी  
पूजा—ये चार प्रकारके पावन (काज)  
वर्धनका रहस्य है, भगवान् शिवकी  
शिवकी पूजा नहीं करता। भगवान् शिव-  
की पूजा करने की जगह वैष्णव की जगह  
और शिवकी सुलोक्य प्राप्ति हो जाती है।  
भगवान् शिवकी आनेवा भगवान्की मुक्ति  
की होती है। जो भगवान्-शिवकी अर्चना  
शिवकी सुलोक्य वरदान-सुलोक्य काजना  
करता है उसे कहिये कि वह सम्पूर्ण कार्य  
और शिवकीसे शिवकी उपासकीकी पूजा  
करे। अर्चना, अभिषेक, वैष्णव और शिव की  
सम्पूर्ण शिवकीसे तथा उपासकीकी  
विधिसे शिवकी शिवकी विधिसे अनुसार  
भगवान् शिवकी पूजा करें। अर्चनाका  
अर्थ सुनीने उपासक यह तथा शिवकी  
वरदान काज शिवकीसे शिवकी एवं भगवान्  
शिवकीसे करे। फिर वैष्णव, वैष्णवकी  
और शिव अर्चना की वरदान-शिवकी करके  
इसकापूर्वक शिवकीकी विधिपूर्वक वरदान  
से। उसके बाद शिवकी उपासक शिवकी-  
शिवकी दक्षिण शिवकी उपासक वरदान  
करे। सुने ! शिवकीसे वरदानकी करना  
करिये। इससे शिवकी होनेके शिवकी जो विधि  
मैंने सुना रही है, उपासकी आज कहा है।  
भगवान् शिवकी करके सुने।

भगवान् शिवकी बुद्धिके शिवकी उससे  
कोज वरदान शिवकीसे शिवकी लेंगे और बोले।  
अभिषेक वरदान, वैष्णव तीन वरदान और शिव  
वरदान शिवकीसे शिवकी बुद्धिके शिवकी उससे









भावसे विधोर हो इस प्रकार प्रार्थना करे—

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्मेव नमः ।

अथवा शरणं नमिषि स्वयम् हरणे मम ॥

‘प्रत्येक जन्ममें मेरी शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। शिवके सिवा दूसरा कोई मुझे सरल देनेवाला नहीं। महादेव । आप ही मेरे शिवे शरणदाता हैं।’

इस प्रकार प्रार्थना करके सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका परार्थनिकके द्वारा पूजन करे। विशेषतः बलेश्वरी आत्मिकसे भगवान्को संतुष्ट करे। दिन सपरिवार नभस्कार करके अनुपम प्रसन्नताकी अभ्युपगम करके हुए सत्यता लौकिक कार्य सुखपूर्वक करता रहे।

को इस प्रकार शिवभक्तियोगाचल हो

☆

भगवान् शिवकी ओहता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारदजी बोले—ब्रह्मन् । प्रणमते ! आप सत्य हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। शिवे । आप पुनः इसी विषयका सम्यक् प्रकारसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

ब्रह्मजीने कहा—तान ! एक स्मयकी बात है, मैं सब ओरसे ऋषियों तथा देवताओंको बुलाकर उन सबको क्षीरसागरके तटपर ले गया, जहाँ सबका हित-साधन करनेकाले भगवान् विष्णु निवास करते हैं। वहाँ देवताओंके पूजनेपर भगवान् विष्णुने सबके लिये शिवपूजनकी ही ओहता बताकर उन सब को कि ‘एक मुहूर्त या एक क्षण भी जो शिवको पूजन नहीं किया जाता, यही हानि है, यही महान्

प्रतिदिन ध्वन करता है, उसे अवश्य ही पना-यन्त्रपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है। यह उत्तम वस्तु होता है तथा उसे सम्बन्धित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। योग, दुःख, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला खेद, कुटिलता तथा विष आदिके कारणों से-से बहुत उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं। उस कल्याणका कल्याण होता है। भगवान् होकरकी पूजासे उसमें अवश्य सन्तुष्टीकी बुद्धि होती है—ठीक वही तरह, जैसे सुखपूर्वक खड़ा करते हैं। मुनिश्रेष्ठ ब्रह्म ! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान बताया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो ? कौन-सा प्रश्न पूछनेवाले हो ?

(अध्याय ११)









आराधना करने। कनकद्वार तीन बार  
मन्त्रोच्चारणपूर्वक आचमन करने। फिर बाई  
निमग्न हो पुनः करके लिखे अक्ष और जल त्यागकर  
रखे। कुमारी चढ़ई भी उसे बाधु अम्बरशय्या  
को छोड़ करान्तर्गत सुटका अपने पास रखे।  
इस प्रकार पुनः अम्बरशय्या पर लेटकर करके बाई  
दीर्घपूर्वक स्थिर करवाते बैठे। फिर जल,  
चमक और अक्षतले पुनः एक अम्बरशय्या  
लेकर उसे दाहिने करवाते रखे। इससे  
अम्बरशय्या निर्दिष्ट होती है। फिर गुम्फा  
स्नान करके अम्बरी अक्षत लेकर विविध  
संस्कार करके अपनी कामवाचने अक्षत व  
रखते हुए बराचीतले उपरिपर विचरती  
पूजन करे। एक बुरा दिशाका शिबुरा आदि  
उपचारोद्धार निर्दिष्ट-बुद्धिपूर्वक विचरती  
मन्त्रोच्चारण पूजन करे। लक्ष और लक्षरी  
पुनः मन्त्रोच्चारण पूजन करके इनके नामसे  
आदिपति अक्षत तथा अम्बरी पुनः जोड़कर  
तन्त्रके साथ चन्द्रार्ध विधिवत् अक्षत करके  
हृदयस्थित करे। (यथा— ॐ गन्धर्व  
यः अक्षत ॐ लक्ष्म्यधपुलाय  
निर्दिष्टार्धद्वारा लक्ष्म्यधपुलाय यः ) लक्ष्म्यधपुलाय  
इससे अम्बरी अक्षत करके पुनः मन्त्रो  
कर्तव्योद्धारण मन्त्रोच्चारण बराचीतले  
पूजन करके उसे बाँधकर मन्त्रोद्धार करे।  
कनकद्वार तथा द्वारपर रखे रहनेवाले द्वारपाल  
मन्त्रोद्धारण पूजन करके मन्त्री-साक्षी  
निर्दिष्टचन्द्रार्ध अम्बरी पूजा करे। अक्षत,  
कुङ्कुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों  
सह यथा प्रकारके विवेचनोंमें विधिवत् पूजन  
करके मन्त्रोद्धार करके पश्चात् साधक  
विचरतीके समीप जाय। यथास्थान अपने  
बाँधे शिबुरे कोटा, चाँदी, कलु या अन्य पदार्थ  
आदिपति मन्त्र-प्रतिष्ठा बनवाये और उसे







विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम् ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

पश्चात् प्रेमपूर्वक आचमन करण्ये । तदनन्तर साङ्गोपाङ्ग ताबकूल बनाकर त्रिकको समर्पित करे । फिर पीछे बत्तीकी आलसी बनाकर भगवान्‌की दिखाने । उसकी संख्या इस प्रकार है—पैरोमें बार बार, बाधिमन्त्रको सामने दो बार, मुलको समक्ष एक बार तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें सात बार भारती दिखाने । तत्पश्चात् नाना प्रकारके लोभोद्धारा प्रेमपूर्वक भगवान्‌ वृषभध्वजकी स्तुति करे । तदनन्तर धीरे-धीरे त्रिककी परिक्रमा करे । परिक्रमाके बाद एक पुनः सहस्रं घण्टा करे और निष्ठाङ्कित मनसे ध्वनिपूर्वक पुष्पाङ्कुरि है—

### पुष्पाङ्कुरिम्पत्र

शक्तिवन्धि वा ज्ञानावधलूनादिकं गण ।  
कृती तदङ्ग सगल पुष्पस्य तत्र संकर ॥  
तावकसङ्गस्य प्रपन्नस्त्वविताहं सद्य मुद ।  
इति विश्रव गीरीश भूतनाथ प्रणीत ते ॥  
भूमी स्वर्गावापदानी धूमिकवरम्पन्नम् ।  
त्वमि वात्सल्यपाथनी स्वर्गमे भवेत् प्रथमे ॥

(अध्याय १३)

‘शेकर । मैंने अज्ञानसे वह धान-बहुकर जो पुत्रन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो । मुद ! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण सब अल्पमें लगे हुए हैं, येत वित्त सद्य आपकी ही चिन्तन करता

है । हेतु जानकर है शरीर-नाथ । सुतनाथ । आप पुत्रपर प्रसन्न होइये । प्रभो ! धरतीपर जिनके पैर लक्ष्मण जाने हैं, उनके लिये भूमि ही सहारा है, उसी प्रकार जिनोंने आपके प्रति अवरुध किया हैं उनके लिये भी आप ही सहजता है ।’

—इन्वदि लयसे बहुत-बहुत प्रार्थना करके इन्म विधिसे पुष्पाङ्कुरि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्‌को नमस्कार करे । फिर निष्ठाङ्कित मनसे विसर्जन करना कहिये ।

### विसर्जन

लखने गच्छ देवरा परिवारयुतः प्रभो ।  
पूज्यस्ते पुनीथ ज्ञायाऽऽगन्तावगादरात् ॥  
‘देवेवर प्रभो ! अब आप परिवारसहित अपने ल्हावकी पधारें । वाच ! जब ब्रह्मता इममें ही, तब पुनः आप यहाँ साक्षर पदार्थक करे ।’

इस प्रकार भक्तवाचन शंकरकी आरंभार प्रार्थना करके इन्का विसर्जन करे और इस अल्पमें अपने इष्टयमें लगाये तथा पक्षकपर कहाये ।

भक्तिये ! इस तरह मैंने शिवपुत्रकी सारी विधि बना दी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली है । अब और क्या सुनना चाहते हो ? (अध्याय १३)

☆

विभिन्न पुष्पो, अन्नो तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

सहस्रको नाते —वाच ! जो लक्ष्मी-प्राप्तिकी इच्छा करता हो, वह कमल, किल्वपत्र, श्लक्ष्म और सङ्कपुष्पसे भगवान्‌ शिवकी पूजा करे । अहम् ! यदि एक लालकी संख्यामें इन पुष्पोंद्वारा भगवान्‌

विसर्गकी पूजा सम्पन्न हो जाय तो सारे धर्मोक्त्य नष्ट होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है । प्राचीन पुत्रोंने बीस कमलोंका एक प्रस्न जताया है । एक सहस्र किल्वपत्रोंकी भी एक



सत्य और वैयक्तिको होकर ही सत्य सत्य है।  
 भावना ही सत्य है।

[illegible]

विष्णुजी पूजा करे। यह पूजा मात्र प्रकारके सुखों और सम्पत्तियों प्राप्तिको देनेवाली है। मुनिश्रेष्ठ ! अब सुरसेनजी तथा संस्थापक लोक जगन्नाथ आ रहा है। प्रसन्नतापूर्वक सुखे। सुख मात्रका प्रदर्शन करनेवाले महावर्तने एक प्रत्यक्ष अनुभूतिको एक लक्ष जगन्नाथ है। ग्राह्य प्रत्यक्ष करनेकीके सुख ही मे लक्ष एक लक्ष सुखोका नाम कहा गया है। सुखीके एक लक्ष सुखोका ही लक्ष नाम है। राईके एक लक्ष सुखोका नाम लक्ष ही प्रत्यक्ष है। अकारणको कारिणी कि यह विष्णुजी होकर दोहोके लक्ष जगन्नाथ विष्णुजी पूजा करे

परिकल्पनासे विविधपूर्वक विचरती बुद्धि  
कारके जगत्को भीके जालझाल जर्जरित  
करती चाहिये। जगत् को कल्प जगत्  
कारके जगत् है, उन्मत्ति चाहिये किन्तु  
जगत्कारक जगत्कारक कारकी नहीं है। जगत्-  
विचर जगत्, कर्तृके जगत् वादोंसे,  
जगत्कारके जगत्, बुद्धिबुद्धिसे, उ-  
न्मत्तकारके जगत्कारके भगवन्मन्मत्तकारके,  
गणकी-गणकी अन्तर्गत विचरके जगत्कारके  
जगत्कारके अन्तर्गत जगत् और जगत् 'जगत्'  
का जगत्कार जगत् बुद्धिबुद्धि जगत्कार  
अन्तर्गत अन्तर्गत कारकी चाहिये। बुद्धि और  
जगत्कारकी बुद्धिसे जगत्कारकारके पुनः  
जगत् जगत्कारक है। जगत् भगवन् कारके  
कारके जगत्कारकी जगत्पूर्वक जगत् जगत्कारके  
बुद्धि एवं विचर जगत्कारके विचरकी बुद्धि  
कारकी चाहिये और विचरकारके लहज्जाना  
जगत्कारके जगत् जगत्कारकी चाहिये। ऐसा  
कारके जगत्कारके विचरकार है, इससे  
जगत्कारकी है। इसी जगत्कार जगत् जगत्  
जगत्कारके विचरकारकी बुद्धि की जगत् तो जगत्









की। तब मैं अपने किसी भोले-भाले को फेर कर—देख ! अब ऐसे जीवोंकी



सृष्टि कीजिये, जो जन्म और मृत्युके बन्दी

रुक्त हों।' मुनिनेह ! मेरी ऐसी बात सुनकर कलकलभरकर महर्षिजी हँस पड़े और कलकल इस प्रकार बोले ।

महर्षिकेने कहा :—विधातः । मैं जन्म और मृत्युके चपरोके मुक्त अशोभ्य जीवोंकी सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वे कर्मोंके अधीन थे दुःखके चपरोके बूझे रहेंगे । मैं तो दुःखके सागरमें डूबे हुए उन जीवोंका उद्धारभाग करूँगा, मुक्तका उद्धार कारण करके अन्तमें जन्म प्रदानकर उन सबको स्वर्ग-स्नानसे धार करूँगा । उद्धारमें । दुःखमें डूबे हुए सारे जीवोंकी सृष्टि तो तुम्हीं करो । मेरी आज्ञासे उन कर्मोंके जन्म होनेके कारण तुम्हें भाग्य नहीं बाँध सकेंगे ।

मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीलमण्डित महर्षि मेरे देखते-देखते अपने चारोंटोंके साथ चढ़ीसे तत्काल विरेक्षित हो गये । (अध्याय १५)

☆

**स्वाध्याय मनु और शतरूपाकी, श्रुतियोंकी तथा दक्षकन्याओंकी संतानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी पहनाका प्रतिपादन**

महर्षी कहते हैं—अब ! मनुजन्म मेरे शतवत्सराज आदि सुख-दुःखोंके सब ही पञ्चभूत करके अर्थात् उन जीवोंके परस्पर सम्मिश्रण करके उनसे स्त्रुत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीकी सृष्टि की। पर्यन्त, समुद्रों और बड़े आदिको उत्पन्न किया । कल्पमें सेकर भुवःपर्वत जो कल-विभाग हैं, उनकी रचना की । मृते । उत्पत्ति और विनश्वरोंके और भी बहुत-से पदार्थोंका मैंने निर्माण किया । परन्तु इससे मुझे संतोष नहीं हुआ । तब सत्य शिवका ध्यान करके मैंने सत्यवत्सवत्स

पुत्रोंकी सृष्टि की । अपने दोनों भेजोंसे बरिष्मको, हवसे ध्रुवको, सिरमें अक्षिणको, धनन्वायसे मुनिनेह पुलस्तको, ज्ञानवायसे पुलस्तको, समानवायसे ब्रह्मको, अफनसे ब्रह्मको, दोनों कानोंसे अक्षिणसे, ब्रह्मोंसे दक्षको, गोहमें सुयको, हवसे वर्द्धम मुनिनेह तथा संकल्पसे समस्त साधनोंके सात्वत धर्मको उत्पन्न किया । मुनिनेह ! इस तरह इन इतने साधकोंकी सृष्टि करके महर्षिजीकी कृपासे मैंने अपने-अपनको कृतार्थ माना । तब ! उत्पन्न संकल्पसे उत्पन्न हुए धर्म मेरी











ब्रह्माजी कहते हैं—'नारद ! इस प्रकार कर देकर भगवान् शिवने पार्वतीदेवीसे फिर कहा— 'देवेवरी ! इसपर क्या करो ? तपस्विनि ? यह तुम्हारा पुत्र है।' भगवान् संकरका यह कथन सुनकर अतदवस्था पार्वतीने प्रमत्तचित्त हो पतङ्गकुमारसे कहा 'नारद ! भगवान् शिवमें तुम्हारी तथा निर्बल भक्ति कहीं रहे ? तुम्हारी बायीं आँख तो फूट ही गयी। इसलिये एक ही पिङ्गलनेत्रसे सुन लो।' पतङ्गदेवजीने जो

वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। श्रेष्ठ ! घरे रूपके अति दुर्ग्रा करनेके कारण तुम कुबेर जवसे प्रसिद्ध होओगे।' इस प्रकार कुबेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वतीदेवीके साथ अपने विश्वेश्वरधाममें चले गये। इस तरह कुबेरने भगवान् संकरवरी मैत्री प्राप्त की और अमरकपुरीके पास जो कैलास पर्वत है, वहाँ भगवान् संकरका निवास हो गया।

(अध्याय १७-१९)



### भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर

ब्रह्माजी कहते हैं—'नारद ! घने ! कुबेरके तपोवाक्यसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतसङ्घ कैलासपर तुषाणमय हुआ, वह प्रसङ्ग सुनो। कुबेरको वर देनेकाले विश्वेश्वर किंव जन्म कबे विधिपति होनेका वर देकर अपने इत्थम स्थानको चले गये जब उन्होंने सब-ही-घन इस प्रकार विचार किया—'ब्रह्माजीके तत्वादसे शिवका प्रावृत्ताव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य समाली है, वे सब मेरे पूर्ण स्वभाव हैं। अतः उनकी रूपमें मैं गूढ़ान्तोंके निवासस्थान कैलास पर्वतको चार्दंगा। उनकी रूपमें मैं कुबेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर शिलास-पूर्वक रहूँगा और बड़ा भारी तप करूँगा।'।

शिवजी इस इच्छाका चिन्तन करते उन भद्रदेवने कैलास जगन्के लिये उत्सुक इन्द्रक बजाया। इन्द्रकजी यह ध्वनि, जो उत्सह बढ़ानेवाली थी, तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उसका विविध एवं गम्भीर शब्द आश्रानकी गतिसे युक्त था, अर्थात् सुननेवालोंको अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था उस ध्वनिको सुनकर मैं

### गहन तथा सृष्टिसृष्टका उपसंहार

तब श्रीविष्णु आदि सभी देवता, ऋषि, पूर्वमान् आनय, निगम और सिद्ध बर्ही आ पहुँचे। देवता और असुर आदि सब लगे बड़े उत्साहमें सरकर खड़ी आये। भगवान् शिवके समस्त पार्वी तथा सर्वलोकचरित्त यथाभग गन्धपात जहाँ जहाँ भी थे, वहाँसे आ गये।

इतना बढ़कर ब्रह्माजीने बर्ही आये हुए गन्धपातकेतव नाचोल्लेखपूर्वक विस्तृत धीरेधीरे दिखा, फिर इस प्रकार कहना उद्गम्य कि—'वे बोले—'वहाँ असेत्य यथावत् गन्धपात पधारो वे सब-के-सब सहजसे भुजाओंसे युक्त थे और मस्तकपर जटाका ही मुकुट धारण किये हुए थे। सभी चन्द्रचूड़, नीमककट और त्रिलोकन थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदिसे अलंकृत थे। वे मेरे, श्रीविष्णुके तथा इनके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। अजिवा आदि आठों सिद्धिदोसे घिरे थे तथा चारोंछों सुयकि सम्पन्न उद्भस्ति हो रहे थे। उस समय भगवान् शिवने विश्वकर्माको उस पर्वतपर निवास-स्थान बनानेकी आज्ञा दी। अनेक





## रुद्रसंहिता, द्वितीय (सती) खण्ड

नारदजीके प्रश्न और ब्रह्माजीके द्वारा उनका उत्तर, सदाशिवसे त्रिदेवीकी उत्पत्ति तथा ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पश्चात् एक नारी और एक पुरुषका प्राकट्य

नारदजी

बोले—भगवान् !

विष्णुसम्बन्धी कथा कैसे हुई ? पार्वतीने किस प्रकार का रूप प्राप्त की और कैसे उनका विवाह हुआ ? ब्रह्मदेवका नाम करनेवाले भगवान् संकरके आगे शरीरमें से किस प्रकार स्थापित हो सके ? महामते ! इन सब जाननेको आप कितनापूर्वक कहिये । आपके समान दूसरी कोई संतपक्व निवारक करनेवाला न है, न होगा ।

महाप्रभो ! विष्णु ! आपके भूतार्चकमें से भगवत्कारिणी शम्भुकथा सुनने-सुनते येत जी नहीं था रहा है । अतः भगवान् शिवका सारा सुन करिष्ये मुझसे कहिये । सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव ! मैं सतीकी कीर्तिसे भूत शिवका दिव्य करिष्ये सुनना चाहता हूँ । जेम्हासालिनी सती किस प्रकार ब्रह्मकीके गर्भसे उत्पन्न हुई ? महामतेजीने निबन्धका विचार कैसे किया ? पूर्वकालमें रुद्रके प्रति रोष होनेके कारण [ ] [ ] शरीरका स्वरूप कैसे किया ? जेम्हासालिनी प्राप्ति होकर से फिर



ब्रह्मजीने नन्दा—मुने । देवी सती और भगवान् शिवका सुन कर परमपावन, दिव्य तन्त्र गोपनीयसे थी अत्यन्त गोपनीय है । तुम सब सब मुझसे सुनो । पूर्वकालमें भगवान् शिव निगुण, निर्विकल्प,



तुम्हारे ठीक-ठीक नाम क्या होगा, इस बातको मेरे ये पुत्र बतायेगे।

सुरसेह ! ऐसा कहकर अपने पुत्रके

मुखकी ओर दृष्टिपात करके मैं क्षणभरके लिये अपने कमलमय आसनपर सुप्रभाष

बैठ गया। (अध्याय १-२)

☆

कामदेवके नामोंका निर्देश, उसका रतिके साथ विवाह तथा कुमारी संध्याका चरित्र—वसिष्ठ मुनिका चन्द्रभाग पर्यन्तपर उसको तपस्याकी विधि बताना

ब्राह्मजी कहते हैं—मुने ! तदनन्तर मेरे अभिप्रायको माननेवाले श्रीशिव आदि मेरे पुत्र सभी मुखियावि इस पुरुषकी अर्धांग बना सका। वह आदि प्रजापतिजैसे प्रजाका मूल देखले ही परोक्षके भी सारे कलकल सनसकर इसे खनेके लिये ग्यान और पत्नी प्रदान की। मेरे पुत्र श्रीशिव आदि जिसके इस पुरुषके साथ विहित करके उनसे यह सुनिश्चित बात कही।

शिव बोले—भूय क्या लेले ही तुम्हारे प्रपत्नी भी प्रदान करेंगे। इसलिये श्लोकसे



‘काम्यम्’ नामसे विख्यात होओगे। बनेच्छम्। तीनों श्लोकोंसे तुम इच्छामुसार कम करण करनेवाले हो, तुम्हारे अथवा सुन्दर सुभरा कोई नहीं है; अतः काम्यम् होनेके कारण तुम ‘काम्य’ नामसे भी विख्यात होओगे। श्लोकोंको पढ़कर बना देनेके कारण तुम्हारा एक नाम ‘काम्य’ होगा। तुम बड़े सर्वसे उत्तम हूँ हो, इसलिये ‘सर्वक’ अक्षरमाओगे और सर्व होनेके कारण ही काम्यसे ‘सर्वक’ नामसे भी तुम्हारी स्मृति होगी। समयत ऐश्वर्याभावा सन्निहित कम-पराक्रम भी तुम्हारे स्वभाव नहीं होगा। अतः सभी स्थानोंपर तुम्हारा अधिकार होगा और तुम सर्वज्यायी होओगे। जो आदि प्रजापति है, वे ही वे मुन्नोंमें मनु दक्ष तुम्हारी इच्छाके अनुसार सभी सर्व देगे। वह तुम्हारी कामिनी (तुमसे अनुराग रखनेवाली) होगी।

ब्रह्मजीने कहा—मुने ! तदनन्तर मैं वहींसे अदृश्य हो गया। इसके बाद दक्ष मेरी कलकल स्मरण करके ब्रह्मसे बोले—‘काम्यदेव ! मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई मेरी यह कन्या सुन्दर कम और उत्तम गुणोंसे सुशोभित है। इसे तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये ग्रहण करो। यह नृजोकी दृष्टिसे सर्वथा तुम्हारे योग्य है। यहलेखकी मनोभव। यह सब तुम्हारे साथ रहनेवाली और तुम्हारी

[illegible]

इसके अन्तर्गत सम्मिलित होगी। अर्थात्  
बहु सङ्ख्यक सम्पत्ति सम्मिलित होगी।

ऐसा कहकर दृष्टि अपने हीरोके  
पसीनेसे चिपट हुई उस क्षणका नाम 'रति'  
होकर उसे अपने अपने सिरका और  
कंधाको संलग्नपूर्वक रति दिख : पलक !  
बसती वह पुनः रति काही समीप और  
मुनिशोके पलकसे भी जोड़ लेनेवाली थी :  
आपके हाथ विचित्र काया कायचालका थी  
काही समझत हुई । अपनी रति काका सुन्दरी  
काँचो देखाकर उसके हाथ-पाद आदिसे  
अनुरक्ति हो कायचाल मोहित हो गया :  
सात । उस समय काहू चारी कपल होने  
लगत, जो ललके सुकाली कहनेवाला था :  
इसीपरी वह उस कालको लेखका से

आरे दुःख दूर हो गये। इसका अर्थ रसि भी  
आनन्दोत्पत्ति के कारण हुआ प्रतीत हुई। जैसे  
श्रीकृष्णजीने गणेशजीके मिथुन-वर्णन  
करते वैसे ही कहा है, उसी प्रकार रसिकों  
का यह श्रवण कथन श्रवणोत्पत्ति का प्रमाण नहीं  
होना ही नहीं था। इस प्रकार रसिकों की  
आगे जोड़ने कुछ रसिकों का प्रमाण है।  
जो इस प्रकार अपने इसका सिद्धांत  
प्रमाणित करने के लिये कहते हैं। इसी प्रकार  
कुछ रसिकों की रसि भी यह श्रवण प्रमाण  
है। इसी प्रकार कुछ रसिकों की रसि भी यह  
श्रवण प्रमाण है। इसी प्रकार कुछ रसिकों की  
रसि भी यह श्रवण प्रमाण है। इसी प्रकार  
कुछ रसिकों की रसि भी यह श्रवण प्रमाण है।

[illegible]

सम्राज्ञी । राजा—मुने ! ईंधनका यह  
कारा शुभ परिणाम लुने, जिसे भुज्जकर लहरा  
कराजिजिर्वा सम्राज्ञे, निने कली-सम्राज्ञी के  
सम्राज्ञी हैं । यह ईंधन, जो पालने में ही माधव-  
सुखी की, लहरा करके ही ही लहरा



अज्ञान से जिस घेरी पृथ्वी इस विश्वात्मो सुखी  
है । मानसोद्वानो भी भयंकर हृदय विगत । उद्वेग





अध्यापक एवं कल्याणकी शिक्षा होती रहेगी।  
देखि ! इस प्रकार की ज्ञानेच्छा ही मनुष्य  
समाजस्यका सत्य स्नेहात्मक तथा सम्पूर्ण  
अभीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेका ही द्वेषी  
है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं  
है। अपने विमर्शों द्वारा सुख व्यवसाय लेकर  
इष्टानुसार संस्कारधीनता विस्तार करने, ये

प्रत्यक्ष इन्हींके सुखी अवस्था ही अभीष्ट प्राप्त  
करने हैं।

इस तरह संस्कारों से तपस्या करनेकी  
विविधता उपदेशों से मुक्तिवर वसिष्ठ  
महोपाध्यायसे इससे विदा ले ली। अन्तर्धान  
हो गये।

(अध्याय ३—५)

☆

**संध्याकी तपस्या, उसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उससे संतुष्ट  
हुए शिवका उसे अभीष्ट वर से प्रेषणार्थिके यज्ञमें प्रेषण**

ब्रह्माजी कहते हैं—और पुनः मैं बहुत  
प्रशंसा करता हूँ। तपस्याके शिवका उद्देश्य  
है। यह वसिष्ठजी अपने घर चले गये, जब  
तपोंके इस विधाका स्मरण करने पर-  
म-पुनः प्रसन्न हुए। फिर तो यह तपस्या  
प्रमाणों से तपस्विनीके योग्य वेद अथवा  
वृद्धावस्थाके सरोवरोंके तट पर ही तपस्या करने  
होगी। वसिष्ठजीने तपस्याके लिये शिव  
शिवकी साधना प्रारम्भ की, उसीसे प्रथम  
प्राप्तिप्राप्तके प्राप्त यह भगवान् संस्कारकी  
आराधना करने लगी। इसमें भगवान्  
शिवमें अपने विमर्शों की शिक्षा और  
एकाग्र करने यह भली भली तपस्या करने  
लगी। इस तपस्यासे लगे हुए उसके पास पुनः  
कमल हो गये। तब भगवान् शिव उसकी  
तपस्यासे संतुष्ट हो कर प्रसन्न हुए तथा कन-  
धीतर और आकाशमें अपने तपस्याका  
दर्शन कराकर शिव कायको यह विचार  
करती थी, इसी समयसे उसकी अस्ति-  
सामने प्रकट हो गये। इससे पहले विमर्श  
विमर्श किया था, लगी प्रभु संस्कारों अपने  
सामने लक्ष्य देकर यह अवस्था आनन्दमें  
निष्ठा हो गयी। भगवान् का भुक्तारविन्द

यह प्रसन्न शिवकी कृत था। उसके  
कल्याणसे प्राप्त करने लगी थी। यह भगवान्  
कल्याण हो लगे लगे लगे कि 'मे भगवान्  
इसके क्या कहें ? शिव प्रभु इसकी स्तुति  
करें ?' इसी विचारों पर प्रसन्न करने अपने  
लगे लगे लगे लगे लगे। यह लगे लगे लगे लगे  
भगवान् शिवके इसके प्रथम प्रवेश करके







प्रकाशकर्म हैं तथा प्रकृतिले भी पारे हैं, उन  
कारणकार जिनको व्यवसाय है, व्यवसाय है ।  
यह जगत् जिनसे भिन्न नहीं कहा जाता,  
जिनके जगत्तासे पृथक् तथा अन्यत्र अङ्गुली  
सम्पूर्ण दित्तार्थ, सुख, चक्रमा, कर्मयोग एवं  
अन्य देवता प्रकट हुए हैं और जिनकी  
नाभिले अन्तरिक्षकार अन्तरिक्ष हुआ है,  
इसी आप जगत्तात् सम्पूर्ण के योग व्यवसाय  
है । प्रयोग । आप ही सबसे प्रकट व्यवसाय  
है, आप ही तथा प्रकाशकार जिनसे है, आप  
ही हर (सत्ताकर्ता) हैं, आप ही सम्पूर्ण  
तथा परब्रह्म हैं, आप सम्पूर्ण विद्यमान तथा  
महान् हैं । जिनका न अन्तर है, न चक्रमा है और  
न अन्त ही है, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न हुआ  
है तथा जो सब और वास्तविक विद्यमान नहीं है,  
उन महादेवजीकी कृति से कैसे कर  
सकेंगी ? \*

जबकि अर्थात् देवता का स्वरूपके सभी  
 भूमि भी विपके जगत्का कर्त्तन नहीं कर  
 सकते, कहीं परनेकारका कर्त्तन अथवा  
 ज्ञानम भी केने कर सकती है ? बल्कि ! आप  
 निर्गुण है, वे भूष भी आपके गुणको केने  
 आम सकती है ? आकरका कर्त्तन तो ऐसा है,

जिसने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर को  
जलीं जानको है। शिशुधर ! आपको नमस्कार  
है। सखीधर ! आपको नमस्कार है। बनेधर  
काको ! धनुषधर प्रथम शोकुले । आपको  
कारधर होरा नमस्कार है । ।

राजाजी कहते हैं—जराह । मैं व्यास  
 का पुत्रिपुत्र बन कर तुमको अपने कुरा  
 के ही भाई कहलिया हूँ । भगवान् के पास  
 मैंने सब कुछ कहा है । भगवान् का ही  
 नाम है और भगवान् ही सब कुछ जानते हैं ।  
 भगवान् के पास सब कुछ है । भगवान्  
 ही सब कुछ जानते हैं । भगवान् ही सब  
 कुछ जानते हैं । भगवान् ही सब कुछ  
 जानते हैं । भगवान् ही सब कुछ जानते हैं ।

मोक्षार्थे कष्ट—भले । ये तुम्हारी इस  
अपव्यवस्थासे बहुत प्रसन्न हैं । तुम्हें  
मुक्ति-प्राप्तिके हेतु । तुम्हारे इस अवस्थासे भी  
तुम्हें बहुत संतोष प्राप्त हुआ है । अतः इस  
अवस्था अवस्था तुम्हारे अनुसार कोई चर  
कोशे । जिस कारणसे तुम्हें प्रयोजन हो तथा जो  
तुम्हारे कर्मसे हो, उसे ही यहाँ अवस्था पूर्ण  
करोगे । तुम्हारा कल्याण हो । ये तुम्हारे  
अप-विचित्रसे बड़ा प्रसन्न हैं ।

[illegible]

(वि. ५५ ए. म. म. स. ५५ ५५ ५५)

† यत्न आश्रमो रंज मन्त्रं कवेयम् २ विद्वन्मित्र आश्रमि मन्त्रं कवेयम् ३  
विद्वन्मित्र रंज मन्त्रं कवेयम् ४ विद्वन्मित्र मन्त्रं कवेयम् ५  
विद्वन्मित्र मन्त्रं कवेयम् ६ विद्वन्मित्र मन्त्रं कवेयम् ७

(17) १. क. सं. ८३. अ. ६। २५. २५)



विवाहः कर्तुं निश्चयः कर्तव्यः सत्यं विष्णुः ।  
 सन्तानं अथ सत्यं पत्नियोरप्येव तदेव च ।  
 रोहिणीसे प्रेयः करने लगे । इसके अन्तर्गत  
 शोधसे चरे हुए दशने अथ सन्तानको अथ दे  
 शिया, तब समस्त देवता तुम्हारे पास आये ।  
 परंतु संघो ! तुम्हारा सब तो ब्रह्ममें समा  
 हुआ था, अतः तुम्हें ब्रह्माजीके सन्तान अपने  
 हुए उन देवताओंपर दुष्टिपल ही नहीं किया ।  
 तब ब्रह्माजीने शक्त्याशक्ति और देवता  
 और सन्तान धनः अपने सन्तानको प्राप्त करे,  
 यह श्रेष्ठ सन्तान देवताओं को अपने सन्तान  
 तुम्हारे लिये एक नदीकी सुष्टि की, जो  
 सन्तान या सन्तानकी कहीके नामसे विख्यात  
 हुई । सन्तानागके प्रादुर्भावका अर्थ ही यह है

✽

संघातकी आत्माहुति, उसका अरुण्यतीके रूपमें अवतीर्ण होकर मुनिवर  
 वसिष्ठके साथ विवाह करना, ब्रह्माजीका स्वयंके विवाहके लिये  
 प्रयत्न और चिन्ता तथा भगवान् विष्णुका उन्हें 'शिव' की  
 आराधनाके लिये उपदेश देकर चिन्तामुक्त करना

ब्रह्माजी चाहते हैं—पाद १ जब वह  
 शिव भगवान् को अन्तर्धान हो गये, तब  
 संघा भी इसी स्थानपर गयी, जहाँ मुनि  
 सौम्यतिथि कर कर रहे थे । भगवान्  
 शिवकी कृपासे उसे विस्तीर्ण नहीं नहीं  
 देला । उसने इस तेजस्वी ब्रह्माजीका स्वरूप  
 चिन्ता, जिसने उसके लिये तपस्याकी  
 विधिपत्र उपदेश दिया था । पद २ तुम्हें ।  
 पूर्वकालमें जब वसिष्ठने मुक्त परमेश्वरकी  
 आज्ञासे एक तेजस्वी ब्रह्माजीका स्वरूप  
 शरण करके उसे तपस्या करनेके लिये

देखातिथि नहीं उपस्थित हुए थे । तपस्याके  
 द्वारा उनकी सन्तान करनेवाला न तो कोई  
 हुआ है, न है और न होगा ही । उन महर्षिने  
 सन्तान विधि-विधानके साथ दीर्घकालतक  
 सन्तानको जोतिहोम नामक यज्ञका  
 आशय किया है । अपने अतिशय पूर्णरूपसे  
 अन्तर्धान हो रहे हैं । अभी आताही तुम अपने  
 शरीरको खाल हो और परम पवित्र हो  
 जाओ । ऐसा करनेसे इस समय तुम्हारी यह  
 प्रतिज्ञा पूर्ण हो जायगी ।

इस प्रकार संघाको अपने शिवका  
 उपदेश देकर देवता भगवान् शिव नहीं  
 अन्तर्धान हो गये ।

(अध्याय ६)

✽

अन्तर्धानी शिवकी उपदेश दिया था । संघा  
 अन्तर्धानी तपस्याका उपदेश देनेवाले नहीं  
 ब्रह्माजी प्राज्ञान पतिपत्रको पतिपत्रसे  
 धन्य रसकर इस यज्ञका अन्तर्धान  
 अन्तर्धान सन्तान नहीं । इस समय भगवान्  
 शिवकी कृपासे मुनियोंने उसे नहीं देला ।  
 ब्रह्माजीको यह पुत्री यह इसके साथ उस  
 अन्तर्धान अन्तर्धान हो गयी । इसका  
 पुरोडाशमन्त्र शरीर तत्काल दण्ड हो गया ।  
 उस पुरोडाशकी अलक्षित गन्ध सब ओर  
 फैल गयी । अन्तर्धान भगवान् शिवकी



आदि शुभ एवं श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए। मुनिनेत्र ! यह विपत्ति यदि वनित्तुल्य होकर विप्रेय होना पड़े लगे। मुनिनिरोधने ! इस प्रकार मैं तुम्हारे समक्ष संभ्रातृ के वक्षित वरिष्ठका दर्शन किया है, जो स्वयं काव्यनाओंके सम्मुखोंके केनेवाला, वर्य वाच्य और दिव्य है। जो जी का शुभ ज्ञानका आचरण करनेवाला पुत्र इस सम्प्रदायके सुख्या है, यह सम्पूर्ण काव्यनाओंके ज्ञान का लेख है। इसमें ज्ञानका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

अथावसी प्रह्लादीकी यह बात सुनकर नागदीक्षित जब प्रसन्न हो गया और वे इस प्रकार बोले।

भारद्वाजी ने कहा—अहम् ! आपने अक्षयकीकी तथा कुर्वजकी ज्ञानकी सम्भवभूत संभ्रातृ की इस ज्ञान का वाच्य सुनायी है, जो विप्रेयकीकी वृद्धि करनेवाली है। वन्द्य ! अब अब भगवान् विप्रेयके इस वर्य वक्षित वरिष्ठका दर्शन कीजिये, जो दूसरोंके पात्रोक्त विप्रेय करनेवाला, स्वयं एवं यत्नकाव्यक है। अब काव्येय रसिकों विचार करके इन्द्रियक काव्य गया, यह आदि अन्य मुनि की यह अपने-अपने ज्ञानको कथने और जब संभ्रातृ विप्रेय करनेके सिन्धे वाली गयी, जन्मके बाद यहाँ क्या हुआ ?

प्रह्लादने कहा—विप्रेय नाग ! तुम श्रेष्ठ हो, भगवान् विप्रेयके सेवक हो, अतः विप्रेयकी लीलासे कुछ जो ज्ञानका शुभ वरिष्ठ है, उसे कतिपयक सुने। तब ! कुर्वजकीमें मैं एक बार जब मोहने यह क्या और भगवान् संकरने मेरा ज्ञानका विप्रेय, जब

मुझे क्या ओच हुआ था। बलुतः विप्रेयकी ज्ञानने मुझे मोह विप्रेय था, इसलिये मैं भगवान् विप्रेयके प्रति ईर्ष्या करने लगा। किन्तु प्रकृत, से ज्ञानका है, सुने। मैं उस सम्भवका वर्य, यहाँ प्रह्लादकी मुनि उपस्थित थे। यहाँ गतिके वाच्य काव्येय थीं का। काव्य ! इस सम्भव मैं यहाँ प्रसन्नताके साथ एक तथा दूसरे पुत्रोंके सम्बोधित करके कर्तव्यका आचरण किया। इस वार्ताप्रमाणके ज्ञान में विप्रेयकी वाच्यके पूर्णतया मोहित था; अतः मैंने कहा—'पुने ! तुम्हें ऐसा ज्ञान काव्य थाइये, जिससे यहदेवकी विप्रेय काव्यकी काव्यिष्ठकी कीका वरिष्ठकाव्य करे।' इसके बाद मैंने भगवान् विप्रेयके मोहित करनेका काव्य रसिकता काव्येयके लीला : काव्येयके मेरी आज्ञा काव्यका कहा—'प्रभे ! सुनयी की ही मेरा अर्थ है, अब विप्रेयकीकी मोहित करनेके सिन्धे विप्रेय करीकी सुद्धि कीजिये। यह सुनकर मैं विप्रेयमें यह गया और लगी वरिष्ठ कीजिये लग। मेरे इस वि-ज्ञानने राशि-राशि पुत्रोंके विप्रेयित ज्ञानका ज्ञानादुर्ध्व हुआ। काव्य और काव्यविप्रेय—वे दोनों जन्मके सम्भवका हुए। इनके वाच्य काव्य काव्येयके काव्येयके मोहनेकी आरंभ काव्य की, परन्तु सम्भवता न मिली। जब यह विप्रेय होकर लीला ज्ञानका, अब इसकी काव्य सुनकर मुझे क्या दुःख हुआ। अब जन्म के मुनसे जो वि-ज्ञान काव्य वाली, जन्मके काव्यकीकी उपरि हुई। उन्हें काव्यकी सम्भवताके सिन्धे ज्ञानके केकर मैं पुनः उन सम्भवके विप्रेयके वर्य मेरा, परन्तु काव्य प्रकृत काव्यका थी वे भगवान् विप्रेयके मोहने न इस संके। काव्य सम्प्रसार लीला



अन्तः स्वरूप करो। अन्तः इस स्वरूपको  
इष्टकमें रखते हुए देवी शिवका ध्यान करो।  
वे देवदेवी यदि प्रसन्न हो जायें तो जगत् कायें  
निष्ठ कर देंगी। यदि शिवका सगुणस्वरूप  
अवतार प्राप्त करके लोकमें विनीतों की पुत्री  
हो मानव-जाति प्रलय करे तो वे निष्ठान्त ही  
ब्रह्मदेवकी कन्या हो सकती हैं। प्रहन् !  
तुम इष्टकमें आज्ञा से, वे भगवान् शिवके  
निम्ने पत्नीका अवतार करनेके निमित्त जगत्  
शक्तिधाममें प्रत्यक्षपूर्वक उपस्थित करें।  
तब। शिव और शिव दोनोंको समस्त  
अवीन जानने चाहिये। वे निर्गुण  
ब्रह्मदेवका रूप होते हुए भी लोकमें सगुण हो  
जाते हैं।

‘निष्ठे ! भगवान् शिवकी इष्टकमें  
प्रकट हुए इस क्षेत्रमें उक्त करने प्रवृत्त हो  
भी, जब पूर्वकालमें भगवान् ईश्वरके जो  
काग करी थी, उसे बन्द करो। प्रहन् !  
अपनी इच्छासे सुन्दर लीला-विहार  
करनेवाली निर्गुण शिवने लीलाके समस्त  
होकर मुक्तको और सुखमें प्रकट करनेके  
वश्यात तुम्हें तो कृति-कार्य करनेका अवसर  
मिला और अवसरमिल उस अवसरकी  
सुविधाका प्रयुक्त करने उस सुविधके सम्बन्ध  
कार्य लीला। फिर जगत् लीला-विहारके उस  
व्याप्त सत्त्वकी ईश्वर आकाशकी ओर  
देखते हुए बड़े डेरसे कह—निष्ठे ! मेरा  
उक्त कर इस शिवकाके आह्वाने इस  
लोकमें प्रकट होना, निष्ठेका सब कर

होगा। प्रकट सब देना ही होगा, बरस देना  
ही। यह देना पूर्वकाल होगा तुम दोनोंको सब  
जगत्की पुनः करनी करनी। यह तुम दोनोंके  
सम्पूर्ण स्वरूपको ही निष्ठे करनेवाला होगा।  
कहो भगवान् प्रत्यक्ष करनेवाला होगा। यह  
सबका गुणवत्ता प्रहन्, निष्ठेके सब जगत्  
होगाका प्रकट होगा। यदि लीला देवता  
करे ही सब ही, लीला शिवके सब देना  
पूर्वकाल होगा। पुनः ! देवी अवसर की लीला  
जगत् होगी। एक अवसर सब लीला होगा  
जो इस लीलाकी करनी होगी। सुन्दर सब  
प्रकटकी करनी होगी। तीसरा सब लीला  
सबके अवसर होगा। लीला अवसर पूर्वकाल  
होगी। वे ही सब लीला करनी होगी।’

‘देवी प्रकटका सम्बन्ध प्रकट प्रकट  
करा करनेके प्रकट करने सम्बन्ध के गये  
और इस क्षेत्रमें प्रत्यक्ष अवसर-अवसर  
करनीके जगत् गये। प्रहन् ! सबका प्रकट  
और तुम दोनों सम्बन्ध के गये और आकाश  
भगवान् प्रकट प्रकटकाके अवसरकी हुए। वे  
इस सबका प्रकट प्रकटकाके प्रकटकाके हैं।  
प्रकट ! अब शिव की लीला मानने  
अवसरकी प्रकटकाके है। अब तुम्हें अपने  
अवसरके निष्ठे ही सब करना चाहिये।’

देना प्रकटका प्रकटका करनी भारी सब  
करके भगवान् शिव प्रत्यक्ष क्षेत्र में गये और  
पुनः करनी लीला प्रकटका सब अवसर प्राप्त  
हुआ।

(अध्याय ४—१०)

दशकी तपस्या और देवी शिवका उन्हें वरदान देना

‘प्रहन् ! तुम—सुन्दर शिवकी। करनेवाले दशके तपस्या करके देवीसे  
दशकपूर्वक जगत् प्रकटका प्रकटका करनी-सब कर प्राप्त शिवका वे देवी शिव













[illegible]

અસાધ્યપણેના મર્મભંગનું વિષય । આ મર્મભંગનું વિષય દુઃખ-કષોભે વિષયને વિષયનું કારણ બનેલું । આને મર્મભંગનું કહેવાય છે । આમ ! આ અસાધ્યપણે સંસ્કારોના કોણે પણ મળી શકે છે અને આને વિષયને અધિષ્ઠા

[illegible]

जय शम्भुशम्भु जय श्रीगणेशाय नमः  
देवीयार विष्णुयार ब्रह्मा जगन्नाथ श्रीविष्णु  
जगदि गणेश देवनाथाय नमः ॥













[illegible]

येनी चड ताल सुन्यात लोकोत्तर  
सहायेकणीत मुखार मुखारचड कीड गली ।  
हे श्रीशक्ति के माया मेळी ही मजकूर पोले ।

ईश्वरने कहा—'सबका'। हाँ ! तब से ही मुझे सब ही अलग-अलग मिले। तुम दोनोंको एकजगह मुझे सब अलग-अलग मिलता है। तुमसेम तुमसेम केअलग-अलग सेह तुम विद्यार्थीके साथी हो। एकजगहके अलग-अलग

[illegible]

\* ये निःशुल्कसंग्रह्यः सार्वजनिके विस्तृतः । अन्तर्गत-पृष्ठानि स्वच्छा समायोजितः ।

अभिप्रेत) सुखदं च सदा बुद्धिमान् । तदा तदायं मेके अभिप्रेत वि यदायुः ॥

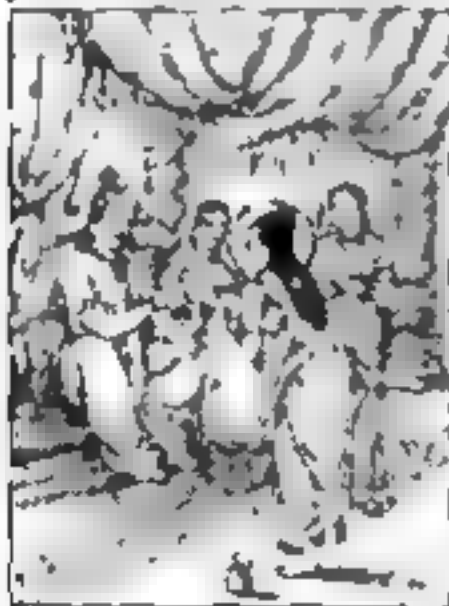






सर्वोच्च न्यायालय अधिलेखनीय है।  
 यह न्यायालय ही अन्तर्गत सेवानिवृत्ति के लिये उच्च  
 न्यायालय के रूप में कार्य करता है।

सम्राज्यीने कृत—सम्राज्यीने शेवट  
सम्राज्य । निष्ठायाः । सम्राज्यीने—सम्राज्यीने  
सम्राज्यीने सम्राज्यीने सम्राज्यीने सम्राज्यीने  
सम्राज्यीने ?

[illegible][illegible][illegible][illegible]

सेवामें लीप हो, इससे तुम कुलकुल हो जाओगे। मैं नारदके साथ जाकर उन्हें तुम्हारे घर ले आऊंगा। फिर तुम उन्हें किन्हे उत्पन्न हुई अपनी यह पुत्री उनके हाथमें दे दो।'

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! मेरी यह बात सुनकर मेरे पुत्र दक्षको कहा इतना हुआ। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'शिराजी !

ऐसा ही होना।' मुने ! तब मैं अत्यन्त हर्षित हो वहींसे उस स्थानको लौटा, जहाँ लोक-कल्याणमें उत्तर रहनेवाले भगवान् शिव बड़ी अनुकूलतासे मेरी प्रतीक्ष कर रहे थे। नारद ! मेरे लौट आनेपर भी और पुत्रीसहित प्रजापति दक्ष भी पूर्णकाम हो गये। वे इनसे संतुष्ट हुए, जन्मे अप्रुत पीकार अघा गये हैं। (अध्याय १७)

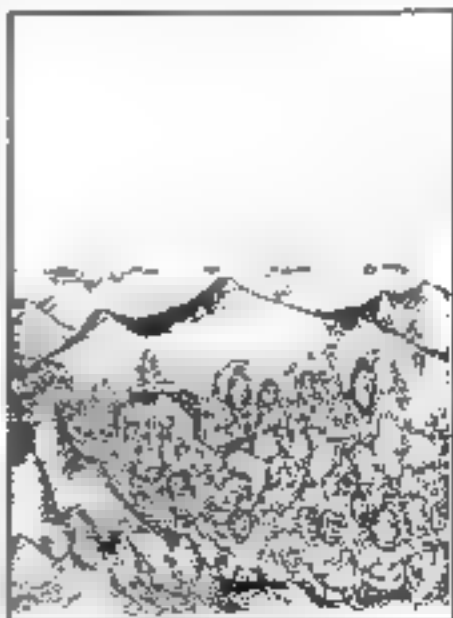
✽

ब्रह्माजीसे दक्षकी अनुमति पाकर देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार तथा सती और शिवका विवाह

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! तदनन्तर मैं हिमालयके मैदान-शिवरत्न रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवको जानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गया और उनसे इस प्रकार बोला—“कुम्भधन्व ! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको वे अपने लिये असाध्य मानते थे, उसे सिद्ध हुआ ही समझिये। दक्षने कहा है कि 'मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके ही हाथमें दूंगा; क्योंकि उन्होंने किन्हे यह उत्पन्न हुई है। शिवके साथ सतीका विवाह हो यह कार्य तो मुझे स्वतः ही अभीष्ट है; फिर आपके भी कहनेसे इसका यहत्व और अधिक बढ़ गया। मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी आराधना की है और इस समय शिवजी भी मुझसे इसीके विषयमें अन्वेष्टन (पूछताछ) कर रहे हैं; इसलिये मुझे अपनी कन्या अवश्य ही भगवान् शिवके हाथमें देने है। विधातः ! वे भगवान् शिवकर शुभ लग्न और शुभ मुहूर्तमें यहाँ पधारे। उस समय मैं उन्हें शिवका तौरपर अपनी यह पुत्री दे दूंगा।'

कुम्भधन्व ! मुझसे दक्षने ऐसी बात कही है। अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर बलिये और समीको ले जाइये।"

मुने ! मेरी यह बात सुनकर भगवान् शिव सह लौकिक बलिक आकाश ले





है। जो हृद मुझसे छोटे—'समस्तजी दुष्टि  
करकेकले लक्ष्मी ! मैं मुझसे और समस्त  
सत्य ही दुष्टि कर काँटूँ । अब समस्त  
करके । अपने करके अति समस्त-  
मुझसे ही मुझ से । हिम्मे । मैं अब समस्त  
सत्य दुष्टि निजसमस्तकर काँटूँ । मेरे  
करके ही मेरे सत्य होने ।'

[illegible]

**NAME** \_\_\_\_\_ **DATE** \_\_\_\_\_

[illegible][illegible]

और ब्रह्मजगत्तंत्रिणि कण्ठान् शिष्यान् प्रवृत्तान्  
किंवा और सबने नाना प्रकारकी सुविधा-  
द्वारा उन्हें संतुष्ट किया। उस समय  
माता-पितृके साथ प्रहस्य उत्पन्न भवत्य  
गत्वा सम्पत्त देवताओं और मुनिगणोंको बड़ा

अभ्यन्त प्रहस्य हुआ। भगवान् शिवके लिये  
कन्वाचन करते ये सब बड़ा कुतार्थ हो  
गये। शिष्य और शिष्य प्रसन्न हुए तथा सारा  
संसार मङ्गलका निवेदन सब गया।

(अध्याय १८)

☆

सती और शिवके द्वारा अग्निवीर्य परिक्रमा, श्रीहरिद्वारा शिष्यत्वका  
वर्णन, शिवका ब्रह्मजीको दिये हुए चरके अनुसार केदीपर सदाके  
लिये अवस्थान तथा शिष्य और सतीका विद्वद् हो कैलासपर जाना

ब्रह्मजी कहते हैं—भार्य ! कन्वाचन  
कारके पहले भगवान् प्रेक्षकको भक्त  
प्रकारकी समुद्रि कोऊन ही। वह सब कहने  
से बड़े प्रसन्न हुए। शिष्य उन्होंने ब्रह्मजगत्तंत्रिणि  
भी कहा प्रकारके सब बलि। तत्पश्चात्  
सम्पत्तदेवता भगवान् शिष्य सन्मुखे पास आ  
हाथ जोड़कर बड़े हुए और जो बोले—  
‘देवदेव प्रहस्येव। ब्रह्मजगत्तंत्रिणि। अपने।  
तत्तत्। आत्मा सम्पूर्ण जगत्तंत्रिणि विद्या है और  
सती देवी सम्पूर्ण माता है। अन्य दोनों  
सन्मुखीके अन्तर्गत तथा सुखेक सम्मुख  
लिये सदा स्वीकारपूर्वक अवतार ग्रहण करते  
हैं—वह सनातन सुविद्यो कहने है। अन्य  
शिष्यने नील अङ्गुलीके शक्त्य कोऊनकली  
सतीके साथ विस प्रकार प्रेक्षा का हो है, मैं  
अपने अपने लक्ष्मीके साथ प्रेक्षा का हो रहा  
हूँ—अर्थात् सती नीलमूर्त्ति जका अन्य  
गौरवर्ण हैं, उससे ऊपर मैं नीलमूर्त्ति तथा  
लक्ष्मी औरवर्णों हैं।

भार्य ! मैं देवी सतीके पास आकर  
गुह्यसूक्त विधिसे विस्तारपूर्वक सदा  
अभिव्यक्ति करने लगा। मुझ आचार्य तथा  
ब्रह्मजगत्तंत्रिणि आज्ञासे शिष्य और शिष्यने बड़े

हर्षके साथ विधिपूर्वक अग्निवीर्य परिक्रमा  
की। उस समय बड़ा बड़ा अद्भुत उत्पन्न  
भगवान् तथा। भगवें, शरीर और मुखके साथ  
कोऊनकली वह उत्पन्न लक्ष्मीको बड़ा सुख  
करा।

तदनन्तर भगवान् शिष्य बोले—  
सम्पत्तदेवता। मैं अवस्थी आज्ञासे बड़ा  
शिष्यत्वका वर्णन करता हूँ। सम्पत्त देवता  
तथा सुखी-सुखी मुनि अपने सम्मुखे स्वागत  
कारके इस शिष्यको सुनें। भगवान् ! आप  
प्रधान और आज्ञादा (ब्रह्मजी और आपसे  
अर्थात्) हैं। आपके अनेक भाग हैं। फिर  
भी अन्य जगत्तंत्रिणि हैं। ज्योतिर्व्यक्त स्वस्व-  
चले अन्य चरकेभारके हैं इन सौने देवता  
अर्थ हैं। अन्य ज्योतिर्व्यक्त और ज्योतिर्व्यक्त  
अर्थ हैं ? अन्य चरकेभारके हैं ये तीव्र अर्थ  
हैं, जो सुखी, कल्याण और सुख चरकेके  
चरके एक-दूसरेसे विद्वद् प्रतीत होते हैं।  
अपने अपने सम्मुख शिष्य कीजिये।  
अपने अपने हैं स्वीकारपूर्वक तरीर कारण  
किन्ना है। अन्य निर्गुण ब्रह्मजगत्तंत्रिणि एक है।  
अपने हैं सन्मुख ब्रह्म हैं और इन ब्रह्म, शिष्य  
तथा वह—सौने आपके अर्थ हैं। जैसे एक



[illegible][illegible][illegible][illegible]

( ४१५५५५ ११-१० )



सतीश्वर प्रसाद तन्ना के अन्तर्गत प्रकाशित शिवपुरा ज्ञान

एवं नवग्रह चक्रिन्दे स्वस्वपञ्च विवेचन

श्रीर. कर्णिक. विधि. विचार. विचार. विचार.

सर्वान् कर्मणोऽपि पापान् कृत्वाऽपि नश्यन्ति ।  
सर्वान् विद्वान् कृत्वा नृणां, देवी सर्वान् कृत्वाऽपि नश्यन्ति ।





भी अपनी कड़ी अनेकाली कानु है, यह सब  
 कर्मवान्मर्षी प्रकाशनाके लिखे अन्तिमके  
 सम्पत्ति कानुके अपने निर्विवाद लिखे भी  
 कुछ कर्मवान्मर्षी व रचना अन्तिम निर्विवाद  
 निष्पत्ति भी रहित हो कानु 'अन्तिमनिर्विवाद'  
 यज्ञकला है। ये सभी कर्मवान्मर्षी भी अन्तिम हैं। वे  
 भी वही और वही कानु कानुके हैं। इनके  
 कानुके अन्तिम होना है कानु वे वही अन्तिम  
 कानु अन्तिम लिख हैं। वे भी अन्तिमके कानु-के  
 कानुके भी कानु कानु है। वे भी अन्तिम अन्तिम  
 कानु अन्तिम। इनके निष्पत्ति कानुके अन्तिम  
 कानुके।

होने । इस प्रकार की आध्यात्मिक  
भक्ति लगने लगती है ; यह आनन्द-संगम-सिद्धि  
सम्पत्ति है और भक्ति इसकी शक्ति है । यह  
सदा सत्य सत्त्वगुणोंसे उत्पन्न विराजमान है ।  
इससे हारा अन्तर्मुख धर्मिक धर्मकी प्राप्ति  
होती है । यह भक्ति मुझे सदा सुन्दर लगती  
ही मिली है । जिसके निम्नलिखित निम्न-निम्न सत्य  
भक्ति विचारों कागरी है, यह अन्तर्मुख मुझे  
अत्यन्त प्यारा है : देवेधरि ! तिमो आनन्दो  
और भारी दुखोमें भक्तिसे सम्पन्न दुखरा कोरुं  
सुखदायक करी नही है । कर्मिदुखमें तो यह  
विरोध सुखद ही सुखदायक है ।  
हेहि । कर्मिदुखमें आनन्द : सम्पन्न और देवगणोंके  
कोरुं आनन्द नही है । इसलिये वे वे-वे दुख,  
अन्तर्मुख और अन्तर्मुखों में सत्य है । कर्म  
भक्ति कर्मिदुखमें सत्य अन्तर्मुख सत्य सुन्दर ही  
इससे सत्य देवेधरि है । कर्मिदुखमें अन्तर्मुख

[illegible]

अपने कहते हैं—कहते हैं कि इस प्रकार  
कल्याण केवल सुखदायक प्रणाली नहीं होती  
बल्कि इसे दुःख । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक  
कल्याण, विचारों में मन-ही-मन प्रवेश  
किया । मुझे । सभी केविने पुनः  
परिचयपूर्वक विचारों में प्रवेशों विचारों  
परिचयपूर्वक पुनः । उन्होंने विचारों की वि  
में प्रवेशों प्रसन्नतापूर्वक तथा जीवोंके  
प्रकारों प्रसन्नतापूर्वक प्रसन्नतापूर्वक है, यह साक्षात्  
कोन-सा है । उन्होंने कल्याण-प्रणाली, अत्यन्त  
प्रसन्नतापूर्वक प्रणाली अत्यन्त जीवोंके प्रसन्नतापूर्वक प्रसन्नतापूर्वक

• कैलाशमे भक्तिसाधनाः यथा यथा सुखम् । कर्तव्यं तेषां सर्वं तु सुविद्यमानम् ॥  
(विष्णु पुराण संस्कृत भाग २३।३८)

• श्री भक्तिसाधनाधिकारोक्तः यथा यथा सुखम् । कर्तव्यं तेषां सर्वं तु सुविद्यमानम् ॥  
(विष्णु पुराण संस्कृत भाग २३।४९)

साधनोंके विषयमें विशेषज्ञतासे जाननेकी इच्छा प्रकट की। सतीके इस प्रसक्तसे सुस्मृत शंकरजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जीवोंके तद्धारके लिये सब साधनोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया। यक्षेश्वरने पौषों अङ्ग्रेयसहित तन्त्रसाध, यन्त्रसाध तथा भिन्न-भिन्न देवदेवताकी दक्षिणाका वर्णन किया मुनीश्वर। इतिहास-कथासहित उन देवताओंके चतुर्कोटी दक्षिणाका, वर्णाश्रमचर्याका तथा राजधर्मोंका भी विवरण किया। पुनः और सोनेके धर्मकी महिमाका, कापी यह न होनेवाले

वर्णनार्थक्यका और जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्रका भी वर्णन किया। यक्षेश्वरने कृपा करके उनका सामुग्रिक ज्ञानका उक्त और भी बहुत-से शास्त्रोंका उत्तर: वर्णन किया। इस प्रकार त्रेकोपकार करनेके लिये सङ्कुचसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, त्रिलोक-सुखदायक और सर्वज्ञ सती-शिव त्रिपालयके कैलसप्रसन्निकारपर तथा अम्बालय स्थानोंमें बना प्रह्वरकी लीलाएँ करते थे। वे दोनों सम्प्रति साक्षात् परब्रह्मात्मक हैं।

(अध्याय २१—२३)

☆

**दण्डकारण्यमें शिवको श्रीरामके प्रति प्रत्येक झुकाते देख सतीका भोग तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा**

नारदजी बोले—ब्रह्मन् ! भिक्षे !

प्रजापति । महापति । क्षामिये । अपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके कर्तृत्वकारी सुवर्णका वर्णन कराया है। अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक उनके ज्ञान कण्ठका वर्णन करीजिये। उन शिव-उपस्थिते बड़ा रुद्धा कौन-सा चरित्र किया था ?

अज्ञानीने कहा—मुने ! तुम मुझसे सती और शिवके कठिनात्म प्रेमसे ज्ञान करो। वे दोनों कल्पित बड़ा लौकिकी गतिमान आश्रम ले नित्य-निरन्तर स्वीकृत किया करते थे। तदनन्तर महादेवी सतीको अपने प्रति शंकरका विषेण प्राप्त हुआ, ऐसा कुछ श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानोंका कथन है। परंतु मुने ! वास्तवमें उन दोनोंका परस्पर विषेण कैसे हो सकता है ? क्योंकि वे दोनों चाभी और अर्थके समान एक-दूसरेसे सदा मिले-जुटे हैं, सक्ति और सक्तिमान् हैं तथा विश्वकाम

हैं। फिर भी उनमें लीला-विषयक लक्ष होनेके कारण यह सब कुछ संघटित हो सकता है। सती और शिव कदापि ईश्वर हैं जो भी लौकिक रीतिरूप अनुसरण करके वे जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सब सम्भव हैं। दण्डकारण्य जमीने सब देखा कि वेरे प्रतिने मुझे ज्ञान दिया है, सब वे अपने पिता दत्तके चरणों गयीं और बड़ी भगवान् सीकरका अनादर देखा उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। वे ही सती पुनः हिमालयके चर कर्कसीके गामसे प्रकट हुई और बड़ी भारी लपक करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः नन्दवान् शिवको प्राप्त कर लिया।

सूतजी कहते हैं—महर्षियो ! ब्रह्मजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विष्णुसूक्तसे शिवा और शिवके पञ्चान् पदको विषयसे इस प्रकार पूछा।

नारदजी बोले—पञ्चभाग विष्णुशिवाय ।



























कभीकाल यह समय सुनकर पूरा  
चुड़चुड़ाते हुए कहते हैं। वे हृ-मे रोकरदर्शन  
करते— भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके  
पुत्र हैं, विष्णुके प्रभावसे सर्व प्रसन्न हुए हैं। तब  
इन्होंने कैसे कहा कि तुम विष्णु हैं तब तुम  
प्रजापतियों तथा सभी हो प्रसन्न हैं ? विष्णुके  
केवल, यज्ञ और सत्य प्रकाशके प्रभावसे सर्व  
प्रसन्न हुए हैं, वे भगवान् विष्णु से कहाँ जा हो  
गये हैं। तुमके विष्णु प्रजापतियोंके लोक-  
विष्णुके प्रकाशसे, अग्निपर्वतों और विविध  
आत्मन्के प्रकाशसे कहाँ गये हैं। प्रजापतियोंके  
सत्य सर्व देवताके प्रकाशसे भी सुप्रसन्न  
हुए हैं तब आप-सीके विष्णुके प्रकाशसे  
कहाँ जा गये हैं। जो-जो प्रकाश प्रसन्न  
होनेके लिये, प्रकाश और सत्य  
हैं, वे और वेदार्थके प्रकाशसे आत्मन्के  
और प्रजापतियोंके प्रकाशसे प्रसन्न  
हैं, वे तब और सर्व सत्य भी तब कहाँ  
चले गये हैं, तब उन्हें कहाँ गये तब प्रसन्न  
हैं ? विष्णु ! वे प्रजापतियोंके प्रकाशसे  
अपनी कथा कहने लगे हैं। वे  
कहाते हैं, इन पुत्रोंके लिये हैं। उनके व माता  
हैं व पिता । वे पुत्रों, प्रेता और विष्णुके  
प्राणी हैं। अनेक गये हैं। उनका  
अप्रीतिप्रकाश प्रकाश सुखके लिये अनेक  
करते हैं। वे आत्मन्के लिये, यज्ञ, सत्य

घानी और ईर्ष्यालु है। इस यज्ञकर्मासे मुझसे जानेपोग्य नहीं है। इतरलिखे मैंने उनको यहाँ नहीं बुलाना है। अतः दक्षिणजी ! आपको फिर कभी ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। मेरी प्रार्थना है कि आप सब स्वर्ग मिलकर मेरे इस यज्ञन पत्रको सफल बनायें।'

दक्षकी यह बात सुनकर दक्षीयने समस्त देवताओं और मुनियोंके सुनते हुए यह सारगर्भित बात कही।

दक्षीय बोले—दक्ष ! अब यज्ञात्मा शिवके बिना यह यज्ञन पत्र अधूरा ही गया—अब यह यज्ञ यज्ञकर्मासेकोश ही नहीं रह गया। शिवोक्त—इस यज्ञमें सुन्दार विवाह हो जायगा।

ऐसा यज्ञकर्मा दक्षीय दक्षकी यज्ञ-शालामें अकेले ही विवाह पड़े और तुरंत अपने आश्रयको चाल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त तथा शिवके पतक अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षकी वेश ही स्वीकार करत तुरंत वहाँसे निकले और अपने आश्रयको चले गये। मुनिवर दक्षीय तथा दूसरे ऋषियोंके उन यज्ञमण्डपसे निकल

जानेपर कुम्भद्वि शिवश्रोत्री दक्षने उन मुनियोंका उपहास करते हुए कहा।

दक्ष बोले—जिन्हें शिव ही प्रिय है, वे यज्ञमण्डपके प्राङ्गण दक्षीय चले गये। उनकी सम्मान जो दूसरे थे, वे भी मेरी यज्ञशालासे निकल गये। यह बड़ी शुभ बात हुई। मुझे लक्ष्य बड़ी अभीष्ट है। ऐतरेय ! देवताओं और मुनियों ! मैं सब कहना है—जिनके शिवकी शिवभक्तिक यह हो गयी है, जो मन्दबुद्धि हैं और शिवभक्त्यसे रूढ़ हुए हैं, ऐसे वेद-बहिष्कृत दुराचारी स्त्रीगीको यज्ञकर्मासे हटाकर देना चाहिये। शिव्य आदि आप सब देवता और ऋष्याय सेवाधी है, अतः मेरे इस यज्ञको जीत ही सफल बनायें।

दक्षानी कहते हैं—दक्षकी यह बात सुनकर शिवकी मायासे बोलित हुए समस्त देवर्षि उस यज्ञमें देवताओंका पूजन और इज्जत करने लगे। मुनीवर तारत ! इस प्रकार उस यज्ञको जो हाथ मिला, उसका सर्वत्र फैला गया। अब यज्ञके विचारलकी चटकको बलका जाता है, आश्वपूरक सुनते। (अध्याय २७)

☆

दक्षयज्ञका समाचार पत्र सतीक शिवसे वहाँ चलनेके लिये अनुरोध,  
दक्षके शिवश्रोत्रको जानकर भगवान् शिवकी आज्ञासे देवी सतीका  
पिताके यज्ञमण्डपकी ओर शिवराजोंके साथ प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—वरद ! अब ऐश्वर्यजन बड़े उत्साह और इतके यज्ञ यज्ञके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्षकाया देवी सती मन्मथमदन चर्चनकर लोकोलोके हुए भारगुहमें सखियोंसे चिरी हुई प्रति-धर्तिकी उत्तम स्त्रीकर्म कर रही थी। प्रसन्नतापूर्वक स्त्रीकामे लगी हुई वेको सर्वत्र

उन समय गेहूँजीके साथ दक्षयज्ञमें जाते हुए यज्ञमण्डपके देखा देखकर वे अपनी शिवशक्ति की अव्यक्तरी नेह सखी शिवयासे बोली—'मेरी सखियोंमें नेह प्राणजिने शिवसे ! जल्दी जाकर पूछ लो आ, ये यज्ञदेव गेहूँजीके साथ कहाँ जा रहे हैं ?'

सतीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर शिवज











● 2019년 12월 10일(수) 14:00 ~ 15:00

एवं नरमुण्डाकी माला धारण करते हैं—इस बातको जानकार भी जो मुनि और वैष्णव इनके चरणोंसे लिये हुए निर्विकल्पको बड़े आनन्दके साथ अपने यशस्वय चरते हैं, इसका क्या कारण है ? चाहे कि वे भगवान् शिव ही साक्षात् परमेश्वर हैं। प्रकृति (मज्ञ-वाग्वि) और निवृत्ति—(तप-व्रम आदि).—ये प्रकारके कार्य बताये गये हैं। मनीषी पुरुषोंको इनका विचार करने चाहिये। वेदों के विवेकानुसार इनके लक्ष्मी और विरागी—ये प्रकारके अलग-अलग अधिकारी बताये गये हैं। परस्परविरोधी होनेके कारण जब दोनों कक्षाओंके कर्मोंका एक साथ एक ही कार्याके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता। भगवान् जेकर से परब्रह्म परमेश्वर हैं, इनके इन दोनों ही प्रकारके कर्मोंका अन्तर नहीं है; उन्हें कोई कार्य प्राप्त नहीं होता, उन्हें किसी भी प्रकारके कार्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। विरागी। हमारा हेतु अन्तर्गत है। प्रकृत बनें लक्षण प्रकृत नहीं है, बल्कि प्रकृतकी महापुरुष ही उसका प्रेरण करते हैं। तुम्हारे पास यह ऐश्वर्य नहीं है। अन्तर्गततासे ही रहकर बाह्यिक अन्तरसे प्राप्त होनेवाले कर्मों

[illegible]

क्याही करते हैं—माह । इस चालीसे  
किस कथा देवताओंसे केवल कहकार करी देखी  
पुनः हो गयी और सब-ही-सब अपने प्राण-  
कल्पक प्रामाण्य करण करने लगी ।

(अध्याय २५)

सतीका योगाग्निमे अपने शरीरको भस्म कर देना, दर्शकोंका हाहाकार, शिवपार्षदोंका प्राणत्याग तथा दक्षपर आक्रमण, ऋषुओंद्वारा देवका भस्माय जाना तथा देवताओंकी चिन्ता

महाराजी कहते हैं—नरक ! यौन दुर्ग  
सतीतिदी अथवा पतिका सादर इतरक कसके  
शान्तिधिल हो सहास कस दिनाये भूमिपर  
सैठ राखी। उन्होने निधिपूर्वक उपकार  
अपमन करके सख ओह निष्ठा और

परमपूज्यकाको जीसैं मृत्युकर बसिमात विपन्न  
कनली हुई से योगदानमें स्थित हो गयी।  
इन्होंने आत्मनको स्थिरकर प्राणाधामप्राप्त  
आप्त और अपन्नको स्वन्तः करके नशि-  
पकमें स्थित किया। फिर अन्तः प्राणको



मये । यह एक अद्भुत-सी बात हुई । वह होनेसे बचे हुए महात्म्य शंकरके से प्रसन्नमन स्तोत्रयुक्त दक्षके घरानेके लिये इतिवृत्त लिखे यह सबे हुए । मुने ! उन आश्रमजकासी पार्वदीका येन देवकर भगवान् भुगुने यज्ञमें विप्र दत्तमेवात्मकेका नाश करनेके लिये विप्रस अकृतत समुद्र-रक्षा-सि संदिपदः' इस वचनकेसे दर्शना-आहुति दी : भुगुके अहंमि केने ही यज्ञकुच्छसे आधु सामक स्वरों मजन् देवता, जो बड़े प्रकट और थे, बाई प्रकट हो गये । मुनीन्द्र । उन सबके हाथमें अकली हुई लम्कहिर्वा थीं । इनके साथ अन्धगजकेका अन्धता विपद युद्ध हुआ, जो सुन्नेकानेके भी रोंगटे लड़े कर देवतात्म का । उन ब्रह्मेजमे लम्पक मज्जीर मधुअकेकी सब ओरसे देवी बार पड़ी, जिससे प्रसन्नमन विना अधिक प्रपासके ही पाग लड़े हुए ।

इस प्रकार उन देवताओंने उन सिवगणोंको मुनेत घर भगवान् । यह अद्भुत-सी कटना भगवान् सिवकी भद्रासक्तिमती इच्छासे ही हुई । यह सब देवकर शक्ति, इन्द्रसि देवता बम्हलन, विरुदेव, अग्निनीकुमार और स्नेहकरन चुप हो रहे । कोई सब ओरसे आ-आकर बाई भगवान् सिवगुने प्रार्थना करते थे कि किसी तरह विप्र टल जाय । ये इन्द्र को बांरकार विप्र-लिये आयसके सतह कराने लगे । प्रसन्नगणोंके नाश होने और भगवत् जानेके जो पक्षी परिमलन होदेवात्म का, उनकर पक्षीभानि विचार करके प्रसन्न ब्रह्मदेवाके भीविष्णु अर्द्ध देवता भगवान् इन्द्र हो गये थे । मुने ! इस प्रकार दुरात्म प्रकार-होई इन्द्रकान् दक्षके यज्ञमें उन प्रसन्न बाई भारी विप्र अभिमत हो गया ।

(अध्याय ६०)

☆

**आकाशवाणीद्वारा दक्षकी भर्त्सना, उनके विनाशकी सूचना तथा समस्त देवताओंको यज्ञमण्डपसे निकल जानेकी प्रेरणा**

बाह्यानी कहते हैं - मुनीन्द्र । इसी क्षणमें बाई दक्ष नाश देवता अदिके सुने हुए आकाशवाणीने यह वधाई कल कड़ी 'ने-रे दुराकारी दक्ष ! ओ दम्भकारनारकन घहाम्पू । वह तुने कैसा अनर्थकारी कर्म कर छल्ल ? ओ धूर्त ! सिवमकरन पक्षीके कबनको भी तुने प्रार्थनिक नहीं माना, जो तेने लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और प्रसन्नकारी जा । ये ब्रह्मण देवता तुझे दुसह सब देकर तेरी यज्ञशस्त्रसे निकल गये तो भी तुझ कड़ने अपने घरमें कुछ भी नहीं सकल । उनके

नाश तेने घरमें अद्भुतमयी सती देवी स्वतः बकरें, जो तेरी अपनी ही पुत्री थीं- किन्तु तुने उनका भी पान आहर नहीं किया । ऐसा क्यों हुआ ? ज्ञानकुर्वल दक्ष ! तुने सती और नन्देकनीकी पूजा नहीं की, यह क्या किया ? 'ने ब्रह्मणीकर केर हूँ' ऐसा समझकर तू बाई ही चर्चमें भरा रहता है और कर्मलिये तुझपर मोह बन गया है । ये सती देवी ही सम्पूर्णकी आराधना देवी हैं अथवा सदा आराधन करनेके योग्य हैं, ये सम्पन्न सुखोका फल देनेवाली, तीनों स्नेहकी बाता, कल्याणस्वका और



॥ श्रीमद्भागवतम् ॥ श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रीकृष्णकृत्योक्तम् ॥ १९८ ॥

मुझे तो ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता। यदि देवता इस ध्वज में तेरी सहायता करेंगे तो जल्दी आग से खेलनेवाले प्राणियों के सम्पन्न नष्ट हो जायेंगे। आज तेरा पैर जल जाय, तेरे यज्ञका नाश हो जाय और जिसने तेरे सहायक हैं वे भी आज जल ही जल बने। इस दुःखता दृष्टि की जो सहायता करनेवाले हैं, उन समस्त देवताओं के लिये आज इच्छा है। वे तेरे अव्यक्त के लिये ही तेरी सहायतासे विरत हो जायें। समस्त देवता आज इस यज्ञमध्यस्थ से निकलकर अपने-

अपने स्थानको चले जायें, अन्यथा सब स्थानों पर सब प्रकारसे नाश हो जायगा। अन्य सब भूमि और नाग आदि भी इस यज्ञसे निकल जायें, अन्यथा आज सब स्थानों पर सर्वथा नाश हो जायगा। जीहरे ! और विष्णु ! आपलोग भी इस यज्ञमध्यस्थ से जल निकल जाइये।”

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! सम्पूर्ण व्यापकता में बैठे हुए स्थानों से देवता कटकर सम्पन्न कल्याण करनेवाली वह आकाश-काली यौन हो गयी। (अध्याय ११)

५

गणों के मुख से और नारद से भी शरीर के दग्ध होने की बात सुनकर दक्ष पर कुपित हुए शिवका अपनी जटा से वीरभद्र और महाकाली को प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करने और विरोधियों को जलम डालने की आज्ञा देना।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद ! सब आकाशवाणी सुनकर सब देवता आदि ध्वजधर तब विविक्त हो गये। उनके मुख से कोई बात नहीं निकली। वे इस तरह का बैठे रह गये, माने उनपर विशेष क्रोध हो गया हो। भृगु के प्रकाशने पर उनमें कारण जो वीर शिवगण थे होनेसे बच गये थे, वे भगवान् शिव की शरणमें गये। उन दृष्टि में अभित तेजस्वी भगवान् यज्ञको घालीभक्ति सादर प्रणाम करके वहाँ बसने जो कुछ हुआ था, वह सारी घटना उनसे प्रकट सुनायी।

गण बोले भगवन् ! यह सब दुरात्मा और घमण्ड है। उसने वहाँ जानेवा शरीरों का अपमान किया और देवताओं में भी उनका आदर नहीं किया। अस्वभाव से भरे हुए उस दृष्टि ने अपने लिये सब

ध्वज नहीं दिए। दूसरे देवताओं के लिये दिए और आपके विषय में वह सबसे दुर्बल है। ज्यों। यज्ञ में आपका भाग न देखकर शरीरों की कुपित हो गयी और भित्त की धारदार निम्न करके उन्होंने सम्पन्न अपने शरीरों को योगविधायी जलकर धूसर कर दिया। यह देख कर ब्रह्मा से अधिक पार्वत लज्जावश ब्रह्मा द्वारा अपने ही अङ्गों को कट-कटकर चर्च कर गये। प्रेम इच्छा से दक्ष पर कुपित हो उठे और सबको भय पहुँचाते हुए वे अभर्तक उस यज्ञ पर विध्वंस करनेको उद्यत हो गये; परंतु विरोधी भृगु ने अपने प्रकाश से इसे तिरस्कृत कर दिया। इस उनके प्रकाशने सामना न कर सके। ज्यों ! विष्णु ! ये ही हमलोग आज अश्वत्थ की शरणमें आये हैं। क्यालो, वहाँ प्राप्त हुए चले जायें वहाँ बचाइये,









वीरघट्टने प्रस्थान किया, एक ठगर दक्ष तथा देवताओंको बहुत-से अनुग्रह लक्ष्मण दिखायी देने लगे। देवोंमें यज्ञ-विध्वंसकी सूचना देनेवाले विविध उष्णत प्रकट होने लगे। दक्षकी बायीं आँख, बायीं भुजा और बायीं जाँघ पड़कने लगी। तब ! तब भद्रोक्त वह पड़कना सर्वथा अनुपसृष्टक था और बाया प्रकारके वह विघ्नेकी सूचना दे रहा था। उस समय दक्षकी यज्ञसमयमें धरती झेलने लगी। दक्षको दोषहरके समय दिनमें ही अमृत लगे दीवाने लगे। दिवादी बलिने हो गयी। सूर्यमण्डल चिल्लाकरा दीवाने लगे। इसपर हमारे को यह गये, जिससे वह धरतीपर आज बहुत ब। बिजली और अग्निके समान वीरिष्णु लगे हट-टुटकर गिरने लगे तथा और भी बहुत-से घघावक अपघातक होने लगे।

इसी बीचमें वहाँ आकाशवाणी प्रकट हुई जो सम्पूर्ण देवताओं और विदेवतः दक्षको अपनी बात सुनाने लगी।

उत्तमदवाणी बोली—ओ दक्ष ! आज तेरे जन्मको चिह्नकार है ! तू महामुह और पण्डिता है। जगवान् इतनी ओरसे आज तुझे महान् दुःख प्राप्त होगा, जो किसी तरह दक्ष नहीं सकता। अब यहाँ तेरा हाथकर भी नहीं सुनवी देगा। जो यह देवता आदि तेरे यज्ञमें स्थित हैं, इनको भी महान् दुःख होगा—इसमें संशय नहीं है।

महजरी कहते हैं—मुने ! आकाश-वाणीकी यह बात सुनकर और पूर्वोक्त अनुपसृष्टक लक्ष्मणको देखकर दक्ष तथा हमारे देवता आदिको भी अत्यन्त घबराव हुआ। उस समय दक्ष घन-ही-मम अत्यन्त व्याकुल हो कीपने लगे और अपने प्रभु लक्ष्मीपति धामवान् विष्णुकी वरणमें गये। वे धनमें अपनी छे वेचुध हो रहे थे। उन्होंने स्वयम्भवात्म्य देवाग्निदेव जगवान् विष्णुको जगाम किया और उनकी स्तुति करके कहा।

(अध्याय ३३ १४)



दक्षकी यज्ञकी रक्षाके लिये जगवान् विष्णुसे प्रार्थना, जगवान्का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रक आगमन

दक्ष बोले—देवदेव ! हरे ! विष्णु ! दीनबन्धो ! कृपाविधे ! आपको मेरी और मेरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। प्रभो ! आप ही यज्ञके रक्षक हैं, यज्ञ ही लक्ष्यका धर्म है और आप यज्ञस्वाम्य हैं। आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये, जिससे यज्ञका विनाश न हो।

महाजी कहते हैं—धुनिधर ! इस तरह

अनेक प्रकारसे स्मर प्रार्थना करके दक्ष जगवान् श्रीहरिके वरणमें गिर पड़े : उसका चित्त चक्करे व्याकुल हो रहा था। तब विष्णुके मनमें प्रबलभट आ गयी थी, उन प्रजापति दक्षको उठकर और उनकी पूर्वोक्त बात सुनकर जगवान् विष्णुने देवाग्निदेव शिवका स्मरण किया। अपने प्रभु एवं महान् देवर्षसे वृक परमेश्वर शिवका स्मरण करके





देवताओंका पराधन, इन आदिकं पूछनेपर बृहस्पतिः स्वदेवकी अजेयता ज्ञाना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये सन्धकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी ज्ञातजीत तथा विष्णु आदिकं अपने लोकमें जाना एवं दक्ष

और यज्ञका विनाश करके वीरभद्रका कैलाशस्थले लौटना

ब्रह्माजी कहते हैं—राक्ष ! इस समय देवताओंके साथ शिवराजकोष धोर कुछ आरम्भ हो गया । उनमें मार देवता करालिङ्ग हुए और चरणे लगे । वे एक-दूसरेका साथ छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये । इस समय केवल महाकाली इन्द्र आदि लोकपाल ही इस हालत कोमाने के लिये कारक करके इसलोकता-पूर्वक खड़े रहे । तदन्तर इन्द्र आदि सब देवता विस्मयकर इस समयतकमें बृहस्पतिजीको विनीतभावसे नमस्कार करके पूछने लगे ।

लोकपाल बोले—सुनकर बृहस्पति ! ताल ! ब्रह्माज ! ल्यामिसे ! श्रीम ब्रह्मदे, हम जानना चाहते हैं कि इसारी विजय कैसे होगी ?

इसकी यह बात सुनकर बृहस्पतिने प्रथमपूर्वक भगवान् ब्रह्मका स्वरूप किन्तु और ज्ञानपूर्वक चले-चले कहा ।

बृहस्पति बोले—इन्द्र ! परमात्मा विष्णुने पहले ही कुछ कहा था, वह सब इस समय प्रमाण हो गया । मैं उसीको सब कर रहा हूँ । सम्प्रधान होकर सुने । समस्त जगत्की कल देवेनात्मा जो कोई ईश्वर है, वह कर्मात्मा ही भगवान् सेवक है—कर्मा करने-वालेको ही उस कर्मकर कल देना है । जो कर्मा करता ही नहीं, उसको कल देनेमें वह भी समर्थ नहीं है (अतः जो ईश्वरको जानकार उसका आग्रह लेकर समर्थ करता है, उसीको उस कर्मका कल निश्चय है, सेवक सेवक पूरा (पौराणिक, ४)

ईश्वरको नहीं) । न भय, न ओषधिर्वा, न समय अर्थमपत्तिर्वा कर्म, न लौकिक पुण्य, न कर्म, न वेद, न पुण्य और उत्तरवीणांस्तु तथा न चाना वेदोंसे युक्त जगत्का ज्ञान ही ईश्वरको जाननेमें समर्थ होने हैं—देवता जगत्की विज्ञातोंका कर्म है । अन्यकारण भक्तोंको छोड़कर दूसरे लोग सम्पूर्ण वेदका इस प्रकार बार-बार ज्ञातका करके भी ईश्वरको समर्थ नहीं जान सकते—यह यज्ञात्मिका कर्म है । अतएव जगत्का विजय अनुचारी ही सर्वथा ज्ञान विनिश्चय एवं ज्ञान ईश्वर सदाविजयके समस्त साधनकार (ज्ञान) को प्रकृत है । सुनकर । क्या कर्मका है और क्या अकर्मात्मा, इसका निवेदन करना अभीष्ट होनेपर ही जो इसमें निश्चिन्त ज्ञान अंश है, उसीका ज्ञानप्रदान करेगा । तुम अपने जिनके लिये उसे जान देकर सुनो । इन । तुम लोकपालोंके साथ और नादान कर्मका दक्ष-वाक्ये आ गये । क्याओ तो, मैं क्या परमात्मा करोगे ? भगवान् यह जिनके सदायक हैं, ऐसे ही चरम छोटी सदायक इस चरणे किन्तु इन्द्रनेके लिये आये हैं और अपना कर्म पूरा करने—इसमें संशय नहीं है । मैं सब-सब कहता हूँ कि इस चरणे किन्तु निवारण करनेके लिये बलुतः सुननेसे किसीके पास भी सर्वथा कोई उपाय नहीं है ।

बृहस्पतिजी यह बात सुनकर ही इन्द्र-



एक लोग उनके सेवक ही हैं। कबालि बीने की बात कही है, वह इस चक्र-विचारके आचरणके अनुकूल ही है। साथ ये भी ध्यान करने आपने उल्टी आदरके आचरण ही कही नहीं समझिये।

महाजी कहते हैं - बीरभद्रका यह बचन सुनकर भगवान् श्रीराम इस कहे और इसके निम्ने विचारन बचन बोले।

श्रीरामने कहा—भद्राक्षर ! तुम मेरे साथ नि राहु होकर बुद्ध करो। तुम्हारे अन्तर्गते शरीरके धर आनेपर ही मैं अपने आचरणको आरम्भ।

महाजी कहते हैं ऐसा कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये और मुन्नेके निम्ने काला कालका कट गये। भद्राक्षरकी बीरभद्र भी अपने शरीरके साथ बुद्धके निम्ने बैसा हो गये।

नारद ! तबतक भगवान् विष्णु और बीरभद्रों को बुद्ध हुआ। अपने बीरभद्रने भगवान् विष्णुके बचनको आत्मित कर दिया तथा वाक्यधनुषके तीन दृष्टि कर दाले। यह मेरे द्वारा ही सारवर्गद्वारा मोहित हुए श्रीरामने तब महान् गजराजका बीरभद्रको अचानक से उसी समय आचरण कहीने अन्तर्यामी होनेका विचार किया। दूसरे बैसा भी यह ज्ञान गये कि कालके उल्टे जो अन्धकार हुआ है, उसका यह सब चाली परिणाम है। दूसरेके निम्ने इस अन्धकार सामना करना अत्यन्त कठिन है। वह आचरण से सब देखत अपने सेवकोंके साथ स्वयम् सर्वेश्वर शिकार स्वयम् करके अपने-अपने लोकको चले गये। मैं भी मुन्नेके दुःखसे पीड़ित हो सारवर्गके काल अन्ध और अत्यन्त दुःखसे असुर हो खेचने लगा

कि अब मुझे बच करना चाहिये। मेरे साथ श्रीरामके चले आनेपर मुनिबोधित सबल मुन्नेके आचरण मुन्नेके देखत शिवगणों-द्वारा प्रेरित हो चाल गये उस अन्धकारके देखकर और उस अन्धकारका विध्वंस निकट आकर यह सब भी अत्यन्त बचनीत हो मुन्नेका सब कारण आने कहीने ध्यान। मुन्नेके अन्धकार आचरणकी और चालने देख बीरभद्रने उसे धक्का दिया और उसका समस्त काल उल्टा। फिर उन्होंने मुनिगणों तथा देवगणोंके आहु-धनुष कर दिये और वस्तुतः सार ज्ञान। महाजी विचारने मुन्नेके आचरण काल दिया और उनकी छातीको पीके अन्धकार तबकाल उनकी बाही-धनुष मोच ली। चक्रने कई बेगारी धनुषके वात अन्धकार निम्ने। क्योंकि धनुषकाचने शिव बचन कालकाचने दृष्टिके द्वारा गतिधर्य ही जा रही थी, उस समय के वनि दिख-दिखाकर दिये थे। उन्होंने भगवान् नेत्रधनुषक धनुषीय है चाल और उनकी दोनों आँखों निकाल लीं, क्योंकि उस दक्ष शिकारीको ज्ञान है यह है, उस समय के आँखोंके संकेतसे अन्धकार अनुकेतर मुनिगण कर रहे थे। चाली चक्र-धनुषकाचने चक्र, चक्र और इक्षिप्त रेखितकी चाली शिकारिया (धनुष) की। चाली जो चक्र-धनुष चक्र दूसरे लोग के अन्धकार की बहुत तिरकार किया। तबतक दक्ष चक्रके बारे अन्धकारके पीतार किया गये। बीरभद्र उसका पता लगाकर उन्हें कालधनुषक धक्का लगे। फिर उनके दोनों चाल धक्काकर उन्होंने उनके बलकापर तबकालने अचानक किया। परन्तु योगके प्रभावसे बलकापर अन्धकार हो गया था, इसलिए वह नहीं सफल। उस बीरभद्रको













संसारमें किसी देवता या ईश्वरों की भूले धम नहीं होता ।

श्रीविष्णु बोले—अब प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष करनेवाले दधीच ! तुम्हारा धम सर्वथा नष्ट ही है; क्योंकि तुम सिद्धकी अवस्थामें तत्पर रहते हो । इसीलिए सर्वज्ञ हो । परंतु मेरे कहनेसे तुम एक बार अपने प्रतिबद्ध रास्ता क्षुब्ध हो जाकर कह दो कि 'राजेन्द्र ! मैं तुमसे डरता हूँ ।'

भगवान् विष्णुका यह कहना सुनकर श्री दधीचिरोमणि महामुनि दधीच निर्भय हो रहे और इसप्रकार बोले ।

दधीचने कहा—श्री देवकीदेव पिताकर्मणि भगवान् जन्मके प्रसन्न होने काही, कभी किसीसे और किंचिप्राप्त भी नहीं करता—सदा ही निर्भय रहता हूँ ।

इसपर श्रीहरिने मुनिजी के मुखकी ओर की देवताओं की भी इसका साथ दिया; किन्तु सबके सभी सदा क्षुब्ध हो गये । तबभगवान् भगवान् श्रीविष्णुने अर्धरात्रि पञ्चमीकी सुविधा की । परंतु यज्ञीने इनको भी प्रत्यक्ष कर दिया । तब भगवान्ने अपनी अत्यन्त विष्णु-धूर्ति प्रकट की । यह सब देखकर कर्कशकुमारने काही जगदीश्वर भगवान् विष्णुसे कहा ।

दधीच बोले—यहवाहो ! जगदीश्वर त्वाण दीजिये । विचार करनेसे यह प्रतिभासमात्र प्रतीत होती है । वास्तव में ऐसी एकही दुर्लभता वास्तुओंको ज्ञान सिद्ध है । अब मुझमें अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को देखिये । निरालम्ब होकर भूमिमें जाकर सब स्वका भी दर्शन कीजिये । मैं आपकी दिव्य दृष्टि देता हूँ ।

ऐसा कहकर भगवान् शिवके तेजसे

धूर्त शरीरवाले जगन्कृष्ण दधीच मुनिने अपनी देखने स्वयं ब्रह्माण्डका दर्शन कराया । तब भगवान् विष्णुने ऊपर पुनः क्रोध करने लगे । इनमें ही मेरे साथ राजा क्षुब्ध काही का पहुँचे । मैंने विशेष रूपसे भगवान् परमेश्वरसे तथा देवताओंको क्रोध करनेसे रोका । मेरी बात सुनकर इन लोगोंने ब्रह्मण दधीचको परास्त नहीं किया । श्रीहरि इनके पास लगे और उन्होंने मुनिकी प्रशंसा किया । तबभगवान् क्षुब्ध अत्यन्त रोष हो इन धूर्तोंके दृष्टिकोने विचल गये और उन्हें प्रत्यक्ष करके प्रार्थना करने लगे ।

शुभ बोले—मुनिमह ! शिवधत्त-शिरोपवी ! मुझका प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! आप दुर्जनोकी दृष्टिसे दूर रहनेजाने है । मुझपर कृपा कीजिये ।

तबभी कहते हैं—नाराय ! राजा क्षुब्धकी यह बात सुनकर तबभगवान् विधि ब्रह्मण दधीचने ऊपर अनुग्रह किया । तबभगवान् श्रीविष्णु आदिको देखकर वे मुनि सबके जगत्कुल हो गये और सब-ही-जगत् शिवका स्वरूप करके शिव्य तथा देवताओंको ज्ञान देने लगे ।

दधीचने कहा—देवराज इन्द्रसहित देवताओं और कुलीश्वरों ! सुपत्नीग सबकी प्रवृत्तिसे श्रीविष्णु तथा अपने गणोंसहित पराजित और पक्ष हो जाओ ।

देवताओंको इस तरह सब दे क्षुब्धकी ओर देखकर देवताओं और राजाओंके ध्वजनीय क्षुब्धेष्ट दधीचने कहा—'राजेन्द्र ! ब्रह्मण ही करी और ब्रह्मावसाही होते है ।' ऐसा स्पष्टरूपसे कहकर ब्रह्मण दधीच अपने अन्तर्मनमें प्रविष्ट हो गये । फिर दधीचको नमस्कारमात्र करके क्षुब्ध अपने





संक्षिप्त शिवसुखम् ४

सम्पत्तिवाला सुन्दरतम धारण करने बैठे थे। भक्त आदिसे उनके अङ्गोष्ठी बड़ी प्रेमसे हो रही थी। भगवान् सित्त अपने पसल स्वभावके कारण सारे संसारके सुख हैं। वारु। इस दिन से एक कुशलतमपन बैठे थे और सब संतोंके सुनते हुए तुम्हारे उक्त कथनेपर तुम्हें उसी ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वे सारा कारण अपनी हाथों जोकर और सारी हाथ बांधे कुटनेपर रले, जन्ममर्त्ये संसारकी मरणा इन्ने मुक्त लक्ष्मण\* के विराजमान थे।

इस समय भगवान् शिवका दर्शन करके इस समय विष्णु आदि सब देवताओंने खेनो हाथ जोड़ मस्तक झुककर पूर्ण उनके चरणोंमें प्रणम्य किया। जो सब

भगवान् विष्णुको आना देख सत्पुरुषोंके अङ्गुष्ठात्ता भगवान् सब ठठकर सब हो गये और उन्होंने सिर झुककर उन्हें प्रणाम की किया। फिर विष्णु आदि सब देवताओंने सब भगवान् शिवको प्रणाम कर लिया, तब उन्होंने पुनः मस्तका किया—ठीक उसी तरह, जैसे लोकोंको उत्तम गति ज्ञान करनेको भगवान् विष्णु प्रवचनसे कर्मकाये प्रणम्य करते हैं। मस्तकात् देवताओं, गैरों, मस्तार्थियों और मानिसोंने मस्तका तथा सब भी (शिवविष्णुको एवं पुनःको) मस्तकात् करनेको भगवान् शिवसे श्रीहरिने आदरपूर्वक मस्तकात् और सब किया।

(अध्याय ४८)

☆

देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति, भगवान् शिवका देवता आदिके अङ्गोके ठीक होने और दक्षके जीवित होनेका वरदान देना, श्रीहरि आदिके साथ यज्ञयज्ज्यमे पधारकर शिवका दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिके द्वारा उनकी स्तुति

देवताओंने भगवान् शिवकीर्ति मस्तका स्तुत्यके साथ स्तुति करते हुए अपने कहा— आप पर (ककुट), वामेश्वर, परात्पर तथा परात्परतर हैं। आप सर्वोच्चाती शिवकीर्ति मस्तेश्वरको नमस्कार है। आप विष्णुजन्म, विष्णुमेव, धानु, और शरणागतजनक, जन्मक तथा सिद्धराजीव हैं। आप मृत्युज्य हैं। जोक भी आजका ही ज्य है। आप विष्णु एवं सुगाता हैं। जन्मक, सुर्व और अग्नि आपके मेव हैं। आप सबके

कारण तथा सर्वोच्चात्ताज्य हैं। आपके मस्तका है। आपने अपने ही तेजसे सम्पूर्ण जन्मको ज्ञान कर रखा है। आप निर्दिष्टार, प्रकृत्यापूर्ण, विद्यामस्तकात्, परात्पर परमात्मा हैं। यज्ञेश्वर। ज्ञान, विष्णु, कुन और चन्द्र आदि सभस्त देवता तथा मुनि आपसे ही जन्म हुए हैं। येनि आप अपने ऊपरको अष्ट नामोंसे विस्तार करके सयता संसारका पोषण करने हैं, इसलिये अङ्गुष्ठी चङ्कलते हैं। आप ही सबके आदिकारण

\* लक्ष्मणको अङ्गुष्ठीमें मस्तका और अन्य अङ्गुष्ठीमें मस्तका मस्तका मस्तका देतेसे वो मस्त सिद्ध होता है, उसे 'लक्ष्मण' कहते हैं। उसके नाम अङ्गुष्ठी में है।







● 2017년 1월 1일부터 2017년 12월 31일까지의 기간에 대한 정보입니다.

हो सम्मुखी सुख मुक्ति कहनेसे प्रलयलीला  
 शरीरमें प्राप्त आ गये और वे महात्म्य होकर  
 चले हुए मुक्तकी भक्ति करके सदैव हो गये ।  
 उनमें ही उन्होंने अपने सामने प्रलयलीला  
 भगवान् चक्रवर्ती देखा । देखते ही सबको  
 हृदयमें प्रेम उत्पन्न भया । उन प्रेम्हो उनके  
 अन्त-कारणको निर्मल रूप प्रकाश कर दिया ।  
 कहते महादेश्वरीसे हो करनेको कारण प्रकाश  
 भया : कारण बलिष्ठ हो गया था । परंतु इस  
 समय दिव्यको दर्शनको वे महात्म्य महा-  
 त्म्यको सम्भवकी भक्ति निर्मल हो गये ।  
 उनके मनमें भगवान् दिव्यकी मुक्ति  
 करनेका विचार उत्पन्न हुआ । परंतु वे  
 अन्यायविषयको कारण तथा अन्यकी गरी  
 हुई मुक्तिको कारण कारणों का प्रकाश हो जानेको  
 कारण सम्भव उत्पन्न उत्पन्न न कर सके ।  
 सोही हो वह उन दिव्य होनेका प्रकाश प्रकाश  
 हो लोकशक्ति दिव्य-प्रकाशको प्रकाश प्रकाश  
 और उत्पत्ती मुक्ति उत्पन्न की । उन्होंने  
 भगवान् चक्रवर्ती भक्ति गयी हुए कारण  
 उन्हें प्रकाश प्रकाश । फिर अपनेको प्रकाश—

‘पारमेस्वर । अपने ही ज्ञान के द्वारा हमारी  
बाह्य आकाशस्थिति का ज्ञान प्राप्त करनेके लिये  
अपने मुखसे बिजु, तप और ज्ञान का प्रकाश  
करनेवाले साधुओंको उपास्य किया जा ।  
जैसे आकाश स्वयं ही प्रकाश होइयेगी रहना  
करता है, वही प्रकार परमात्मा परम  
ज्ञानवाले आत्मा पारमेस्वर प्रकाश का प्रकाश किये  
उन साधु साधनियोंकी सभी विधियोंसे उपास्य  
करते हैं । यदि दुर्लभत्वकी चाहसे आत्मा  
पारमेस्वरको हीन समझ जा । फिर भी अन्त  
मुक्तता अनुभव करनेके लिये नहीं आये ।

[illegible]

मन्त्रकी मदद से है—काम । इस प्रकार  
होने-बहने-कामकारी मन्त्राशु मन्त्र  
मन्त्रकी शक्ति कायों विनीतमन्त्र प्रकाशित  
इस रूप से है : मन्त्रकार श्रीविष्णुने इस  
मन्त्र कायान्त्र मन्त्र-मन्त्रकी प्रकाश कायों  
प्रकाशमन्त्र इस मन्त्र कायान्त्र  
कायान्त्र मन्त्रकी शक्ति कायान्त्र की ।

सदनपर मैं जाय—हेमदेव ।  
 कहलें । यशवन्तसिंह ! प्रभो ! आप  
 समस्त परमात्मा हैं, अतीन्द्रिय एवं अधिनाली  
 कायेश्वर हैं । हेम ! ईश्वर ! आपने मेरे पुत्रका  
 अनुग्रह किया । आपने अवधायनी और सुख  
 की कल्प न देकर पक्षों कायला बहार  
 कीजिये । हेमेश्वर ! आप प्रत्यक्ष होइये और  
 समस्त समस्तों के दूर कर दीजिये । आप  
 सदाय हैं । कतः आप ही मुझे कर्तव्यकी  
 और प्रेरित करकेवाले हैं और आप ही  
 अकर्तव्यसे चेकरीवाले हैं ।

महामुनि । इस प्रकार वाच्य मोक्षार्थकी  
सूक्ति करने की छे छे इस वाच्य मोक्ष  
सुलभकर समझ हो गया । अब सुन्दर विचार  
रक्षितवाले ईन्द्र अग्नि देवता और तपोमन्त्र  
मोक्षार्थकी सूक्ति करने लगे । इस समय  
मोक्षार्थ विचार्य भूतारविन्द प्रसन्नतासे







# रुद्रसंहिता, तृतीय (पार्वती) खण्ड

हिमालयके स्थावर-जंगम विविध स्वरूप एवं दिव्यत्वका वर्णन, मेनाके साथ उनकी विवाह तथा मेना आदिको पूर्वजन्ममें प्राप्त हुए स्मरणवृत्तिके प्राप्त एवं धरदण्डका कथन

तत्पश्चात्तु पृथ—उद्यन् हिमालयके वज्रमे  
अग्ने जरीयका परिचयन करके रुद्रका  
अपत्यका मनी बेसी विराज उद्यन् निर्दिष्ट  
हिमालयकी पुरी हुई ? किन्तु तब उद्यन्  
इस तबका करके उद्यमे पृथः विचारके ही  
परिचयके प्राप्त किया ? यह जरा प्रश्न है,  
आप इसका उत्तरभीति और विरोधका  
प्रकार इच्छते ।

प्रश्नातीने कहा— बुने । काय । तुम  
बहुते पार्वतीकी माताके रूप, विचार और  
अप्य परिचयार्थक कथन करिय तुम्हें ।  
पुरीछे ! उत्तर विजानी कर्तव्यका तब  
विचारान् कायक उद्यन् कथन है, जो  
बहुतेजस्वी और सधुष्टिगामी है । इनके दो  
काय विभिन्न हैं—एक स्थावर और दूसरा  
चंगम । मैं संतोषके इनके बुद्धि (स्थान)  
अप्यका वर्णन करता हूँ । यह रमणीय  
वर्णन मात्र उद्यन्के पक्षका अर्थान्  
(स्थान) है और पूर्व तथा पश्चिम सधुष्टि  
धीतर प्रवेश करके इस तबका है, जो  
सुपुष्टिगामी तबकेके विषये कोई प्रत्यक्ष  
है । यह तबका उद्यन्के बुद्धिमे प्रकाश है और  
अनेक विचारोंके कारण निर्दिष्ट प्रोक्त  
सम्पन्न दिव्यकी देव है । विर, जगत अदि  
यन् मया सुसुप्तका अर्थान् लेखन करते हैं ।  
विचार जो यह प्रकाश ही है, इनके  
अप्य इस बात प्रकाश है । धर्म-धर्मिके  
आकर्षणका बुद्धिमे अपनी विविध शक्ति  
होती है । देवता, धर्म, सिद्ध और धर्म इस  
वर्णनका अर्थान् लेकर रहते हैं । अप्यन्

विचारके यह प्रकाश ही विषय है, तबका  
कथनका प्रकाश है । अप्यमे ही यह अप्य  
वर्णन और प्रकाशार्थको ही प्रकाश  
कारणका है । अप्यमे यह अप्य ही  
विभिन्न प्रकाश करता है । अनेक प्रकारके  
कायार्थको ज्ञान और सुख है । यही विषय  
जरी कायक कायके सर्वाङ्ग सुन्दर रमणीय  
देवताके रूपके ही विचार है । अप्यन्  
विचारका अर्थान् अर्थ है, इनकेके यह  
कथनका काय मेनीके अर्थान् विषय है ।

एक प्रकाश विचार विचारान् अपनी  
कथन प्रकाशकी विचार और वर्णकी बुद्धि  
विषये देवताओं तथा विचारोंके विचारके  
अर्थान् अर्थान् अर्थान् विचार करके विचार  
की । बुद्धि । यह अप्यपर सधुष्टि  
देवता अपने पक्षका विचार करके विचार  
विचारोंके पक्ष अर्थान् अपने प्रकाश-  
पूर्वक प्रोक्त ।

देवताओंका प्रकाश—विचार । आप सब  
जो प्रकाशिक प्रकाश इसी बात सुनें और  
कहि देवताओंका कथन विचार करके आपमें  
ही अर्थान् ही ही प्रकाश प्रकाश ही करे ।  
अप्यकी प्रकाश बुद्धि जो मेरा पक्षके प्रकाश  
है, यह प्रकाशकी है । तबका विचार  
अप्यके अप्य प्रकाशपूर्वक विचार  
कथनके कर है । देवता कथनका अप्य सब  
प्रोक्तके सर्वका प्रकाश प्रकाश प्रोक्त और  
देवताओंके प्रकाश विचार ही का  
प्रकाश प्रोक्त प्रोक्त ।

देवताओंकी यह बात सुन्दर विचारों





अन्तिम भागमें कृष्णम्बु कैलासी कही होगी और उसकी छिन्न कुन्ने 'राज्य' के नामसे विख्यात होगी। योगिनी केन्द्र (येक) पार्वतीजीके सरस्वती अपने धर्मिके साथ इसी शरीरसे कैलाश नामक परमपदको प्राप्त हो जायगी। कच्छ तथा उनके धर्म, सनकाकुलसे उत्पन्न हुए भीमयुक्त महाकायों राजा सीराध्वज, लक्ष्मीनारायण सहितके प्रभावसे कैलाश क्षेत्रमें आर्यने। कृष्णम्बुके साथ वैवाहिक यज्ञमन्त्र सन्तान क्षेत्रके कारण चौधमन्त्र योगिनी केन्द्रवाली भी अपनी काम्य राधाके साथ गोलकेकायमें जायगी—इसमें संशय नहीं है। विपत्तियों के बिना कहीं किन्हीं ब्रह्मण प्रकार होगी है। उत्तम कार्य करनेवाले पुण्यकाय पुण्यकेन्द्र केन्द्र काय इस बात है, तब इसे पूर्ण सुखकी प्राप्ति होगी है। अब सुमयेग

प्रसन्नप्रसन्न केरी सुखी काल भी सुनो, जो सदा सुख देनेवाली है। येनाकी पुत्री कायकाय काशी के अन्त्य कृष्ण तथा कच्छ के पञ्चमन्त्र किन्हीं छिन्न कही बनेगी। कच्छाकी सुखी लीला कण्ठार श्रीरामजीकी कही होगी और लीलाचक्रका आश्रय से लीलाके साथ विहार करेंगी। साक्षात् मोनेके-कायों विहार करनेवाली राजा ही कायकायकी सुखी होगी। वे गुप्त क्षेत्रों केन्द्र लीलाकायों विहारका बनेगी।

प्रसन्न केन्द्र है—कच्छ ! इस प्रकार काम्य केन्द्रों के पूर्ण कण्ठार देकर प्रसन्न केन्द्र प्रसन्न कण्ठार सन्तानका सुनि कायकीलक्षित कहीं अन्त्य केन्द्रों के गये। मात ! विहारकी कच्छाकी पुत्री से लीला बहिन इस प्रकार कच्छाका हो सुख पाकर तुम्हें अपने कच्छा के कही नहीं। (अध्याय १-२)



**देवताओंका हिमालयके पास जाना और उनसे सत्कृत हो उन्हें उभाराधनकी विधि बता खरं भी एक सुन्दर स्थानमें आकर उनकी स्तुति करना**

भारद्वी बोले—कच्छाकी ! आर्यने येनाके पूर्वप्रसन्नकी यह सुख एवं अन्त्य कच्छा कही है। इनके विचारका प्रसन्न भी देने सुन विचार। अन्त्य ज्ञानके उत्तम कार्यका कर्णन कीजिये।

महावीने कहा—कच्छा ! अब केन्द्रों साथ विचार करके विचारान् अपने करकी गये, तब लीला स्नेहकोसे कच्छा भाती कच्छा बनेका गया। विचारका भी अन्त्य प्रसन्न हो येनाके साथ अपने सुखकायक सन्तानों विचार करके लगे। कुन्ने ! इस समय श्रीविष्णु आदि सत्ता देवता और भद्रका सुनि गिरिराजके पास गये। उन सब

देवताओंके आत्मा केस मन्त्र निवर्गिणि केन्द्रकायके कच्छा प्रसन्न किन्हीं और अपने कच्छाकी सत्कृत करके हुए पक्षिधावसे उन कच्छा आश्रय-प्रसन्न किन्हीं हाथ जोड़ पक्षक हुकमकर से कच्छा केन्द्रों स्तुति करनेको प्रसन्न हुए। श्रीरामके शरीरमें मन्त्र सेनाका हो आत्मा ! इनके केन्द्रों केन्द्रों आर्य कच्छा लगे। कुन्ने ! हिमडीलने प्रसन्न कच्छा अन्त्य केन्द्रपूर्ण प्रसन्न किन्हीं और विनीतकायसे सदैव हो श्रीविष्णु आदि देवताओंसे कच्छा।

हिमालय बोलें—आज मेरा कच्छा सत्कृत हो कच्छा, मेरी बड़ी भारी तपस्या



जगत्की शान्ति है। आप ही धारण करने-  
वाली धात्री एवं प्राणोंका पोषण करनेवाली  
शक्ति है। आप ही धाँसे भूतोंके स्वरूपका  
प्रकट करनेवाली तन्त्रालय है। आप ही  
नीमियोंकी नीति तथा व्यवसाय-रूपिणी हैं।  
आप ही सायबेदकी गीति है। आप ही उन्मि  
हैं। आप ही यजुर्वेदकी अमूर्ति हैं।  
श्रुत्येवकी मात्रा तथा अथर्ववेदकी परम गति  
भी आप ही हैं। जो अग्निर्वेदे नाम, वायु,  
वेद, मूल, मजा, यज्ञः, काल और इन्द्र

मृत्तिकापत्रों को विनाश हो गया ही उनके हिन्दू सुलभता निरुपण करती है। जो निहायके अर्थों में संसारके लोकोपयोगी आचार्य सुभग प्रतीत होती हैं, वे देखी क्या जगत्की विविध एवं पादुकाके हिन्दू ही समस्त प्रमाण हो।

इस प्रकार कागजवर्ती सती-मावली  
कोहरी उमावती कृति करके अपने हृदयमें  
विद्युत् प्रेम तिब्बे से इस देवता उनके दर्शनकी  
कामना कहीं लगे हो गये ।

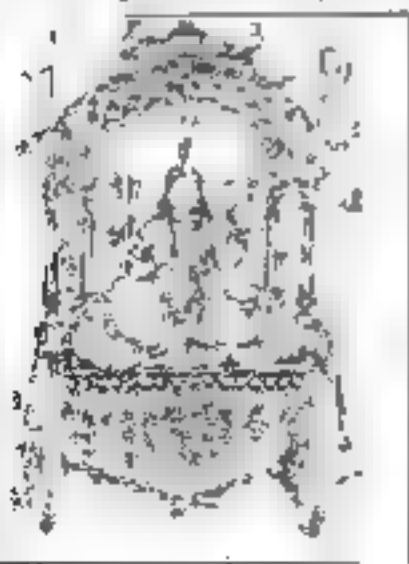
(अध्याय ६)

★

उषा देवीका दिव्यरूपसे देवताओंको दर्शन देना, देवताओंका उनसे अपना अभिप्राय निवेदन करना और देवीका अवतार लेनेकी बात स्वीकार करके देवताओंको भाग्यमन देना

भावासी कहते हैं—भावा : भावाः ॥

इस प्रकार ज्ञानि कर्मकर्म दुर्गा की प्रशंसा  
नाह। करनेवासी जगन्मयी देवी दुर्गा उनके  
साथने प्रकट हों। वे परम भक्त हैं।

[illegible]







भी आया ही है। सम्पूर्ण जगत्परी काज्जल तथा बीहरीली आया भी आया ही है। जो देखी इन्द्रानुसार कम धारण करके लूहि, पालन और संभारवली हो उन कज्जलीका सम्पादन करती है तथा प्रसाद, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुमूल है, वे आया ही है। देखि । आया आया पुनः प्रसाद हो। आयाको पुनः मेरा भगवान् है।

कहायी कहती है—नारद । केन्द्रके इस प्रकार लूहि करकेवर दुर्गा कज्जलीकाये पुनः इस मेनाकेबीजे काज्ज—‘एक जगत्त कनोवाधिका कर बाँग लगे। हिमालयके । तुम मुझे प्राणोंके समान प्यारी हो। तुम्हारी जो इच्छा हो, वह पाँगे। जो वे विज्ञान ही है तुम्हीं। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अर्थ नहीं है।

महेचरी इन्द्रका यह अर्थके समान बहुत कथन सुनकर हिमालीकज्जलीने मेरा बहुत प्रसन्न हुई और इस प्रकार बोली—‘शिवे । आपकी उम्र हो, उम्र ही। उम्रका ज्ञानवली भीवली । जगत्परीके । यदि मैं कर पाकेके योग्य हूँ तो फिर आपसे बहुत कर माँगती हूँ। जगत्परी । कहते तो मुझे भी पूरा हो। उन सबकी काही जानू हो। वे कल-वराहकसे पुनः तथा जहि-सिद्धिसे सम्पन्न हो। उन पुराणके कहान् में एक वृत्ति हो, जो स्वयं और गुणोंसे सुसंभित होनेवाली हो; वह छोटी कुल्लोके अन्तर्गत देनेवाली तथा मीनों लोकोमें पृथिवी हो। जगत्परीके । शिवे । आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी वृत्ति

तथा कज्जलीकी वली होइये और तदनुसार लीला करिये।’

कज्जली कहते हैं—नारद । मेनकाकी बात सुनकर प्रसन्नहुवा देखी उमाने इनके सम्बन्धको पूर्ण करनेके लिये पुनःकाकर कहा।

देवी बोली—कहते तुम्हें मैं कल्पान् पुनः प्राप्त होने। इनके भी एक सबसे अधिक कल्पान् और प्रसाद होगा, जो सबको प्यारे प्रसन्न होगा। तुम्हारी वसिसे प्रसन्न हो वे लगे तुम्हारे वहाँ वृत्तिके करके अवसीर्ण होइये और प्रसन्न देवताओंसे संभित हो इनका कार्य सिद्ध करेगी।

देसा कज्जली पद्मवली परवेचरी कज्जलीका शिव मेनकाके हेलाते-हेलाते वहाँ अद्भुत हो गयी। तब । महेचरीसे अभीष्ट कर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ। इनका सम्पत्त-जमित सारी शिव बहुत हो गया। मुने । फिर कालकावसे मेनाके गर्भ रहा और वह प्रसिद्धि करने लगा। सम्पत्तानुसार इनके एक उत्तम पुत्रको देवता शिव, शिवका नाम मेनका का। इसने सम्पत्तके साथ उत्तम मैत्री बाँधी। वह अद्भुत वर्षों वागवधुओंके सम्बन्धका स्थल बना हुआ है। उसके समान आज लेता है। हिमालयके भी पुराणों वह लगे अद्भुत और कल-वराहकसे सम्पन्न है। अपनेसे या अपने बाद प्रसन्न हुए समान वर्षोंमें एकमात्र विनाश ही वर्षतरावके पक्ष पर प्रसिद्धि है।

(अध्याय ५)





मेनाने कहा—जगदम्बे ! ग्नेहवि ! आपने बड़ी कृपा की, जो मेरे सामने प्रकट हुईं। अभिषेक। आपकी बड़ी श्रेष्ठा हो रही है। शिवे ! आप सम्पूर्ण जगत्को मेरे आद्यादिह तथा सीनें लोकोन्मुखी जन्मी हैं। देवि ! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे प्रशंसित पराशरित हैं। ग्नेहवि ! आप कृपा करें और इसी अर्थसे मेरे अन्तर्गत स्थित हो जायें। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुकूल प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

महाजी कहते हैं—नारद ! पूर्वत-पक्षी मेनाकी यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई शिवदेवीने इस गिरिशिखरको इस प्रकार स्तार दिया।

देवी बोली—मेन ! तुम्हें पहले तत्परमपूर्वक मेरी बड़ी सेवा करी थी। इस समय तुम्हारी यत्नसे प्रसन्न हो मैं कर देनेके लिये तुम्हारे निकट आयी। 'हर चण्डे' मेरी इस बाणीको सुनकर तुम्हें जो कर मांगा, वह इस प्रकार है—'महादेवि ! आप मेरी

पुत्री हो जायें और देवताओंको हित-साधन करें।' तथा मैंने 'तथास्तु' कहकर तुम्हें सादर यह वर दे दिया और मैं अपने धायको चली गयी। गिरिकापिनि। इस वरके अनुसार भयम बाकर आज मैं तुम्हारी पुत्री हुई हूँ। अतः मैंने जो विषय स्वयंका दर्शन कराया है इसका ज्ञेय ज्ञान ही है कि तुम्हें मेरे स्वयंका स्वरूप हो जाय; अथवा यन्त्र-कर्मसे प्रकट होनेपर मेरे विचयरे गुण अनन्त ही बनी रहतीं। अथ तुम दोनों इच्छा पुत्रीभावसे अथवा दिव्यभावसे मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मुझमें बसे रहो। इससे मेरी काम गति प्राप्त होगी। मैं पुष्पीपर अमृत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी। धनदाम् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और राजानोंका संकटसे उद्धार करूँगी।

ऐसा कहकर जगन्माता शिवा चुप हो गयीं और इसी क्षण पातके देवता-देवता प्रसन्नतापूर्वक भक्त्या पुत्रीके अर्थसे कीर्तित हो गयीं।

(अध्याय ६)

५

**पार्वतीका नामकरण और विद्याध्ययन, नारदका हिमवान्के यहाँ जाना, पार्वतीका हाथ देखकर धात्री फल कताना, चिन्तित हुए हिमवान्को अम्बासन दे पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करनेको कहना और उनके संदेहकर निवारण करना**

महाजी कहते हैं—नारद ! मेनके सामने महादेविनी कन्या होकर लौकिक भक्तिका आश्रय ले वह रोने लगी। अम्बा यमोदर स्वन सुनकर धरती तथा क्षीरार्ध हर्षसे खिल उठीं और बड़े वेगसे प्रसन्नतापूर्वक आईं आ पहुँचीं। नील कमल-दलके मध्य

स्थान कान्तिचक्षुः उस धरम तेजस्विनी और अनेक कन्याको देखकर गिरिराज हिमालय अतिशय अत्यन्तमें विमग्न हो गये। तदनन्तर सुन्दर चूर्तमें मुनियोंके साथ हिमवान्ने अपनी पुत्रीके काली आदि सुलदायक नाम रखे। देवी शिवा गिरिराजके भवनमें







प्रसन्नतापूर्वक शर्माने-कहने वाले गये और आनन्दसे मुक्त हो अपने धर्मन्यासिनाली गिरिगङ्गा हिमवान् की कम-ही-कम मनेहुन भवनमें प्रविष्ट हो गये । (अध्याय ४-८)

✽

## मेना और हिमालयकी बातचीत, पार्वती तथा हिमवान्के स्वप्न तथा भगवान् शिवसे 'मंगल' ब्रह्मकी उन्पत्तिका प्रसंग

प्राज्ञानी कहते हैं—नाश ! क्या कुछ शर्माने-कहने वाले गये, तबसे कुछ काम और कमील हो गयेपर एक दिन मेनाके हिमवान्के निवास भाग्यर उन्हें प्रसन्न किया । फिर कही हो वे निगिहानिमें मेना अपने पीछे विनम्रपूर्वक खेरी ।

मेनाने कहा—प्रसन्नता ! इस दिन नाश बुद्धिने जो बात कही थी, आपको खी-लभावके कारण की अचानक मनु नहीं समझा; मेरी तो यह प्रतीति है कि आप कम्यकी निवास निमी मनुष्य आपके पास गए छोड़िये । यह निवास शर्माता अतुल्य सुख देनेवाला होगा । निगिहाना का रूप लक्षणोसे सम्पन्न और सुन्दर होकर चलेगा । मेरी छोटी बूढ़ी प्रभासे भी अधिक दिन है । यह उत्तम घर बाका जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, मेला कीजिये । आपको मेरा मनमकर है ।

ऐसा प्रसन्न मेना अपने पीछे वरधोधर निर चड़ी । उस समय उनके मुखपर अस्तुजोषी काम यह रही थी । प्राज्ञशिरोमणि हिमवान्ने उन्हें बताया और भक्तान् प्रसन्नता आनन्द किया ।

हिमालय बोले—देवि मेनके ! वे भक्तार्थ और तपस्वी भक्त कलक हैं बुद्धे ! प्रब छोड़ो । बुद्धिकी बात वाली झुठी नहीं हो सकती । यदि मेरीपर तुम्हें संशय है तो उसे स्पष्ट निश्चय हो कि यह धर्मन्यूनक सुन्दर गिरि शिव ५० ( कोटा बाइक ) ५—



जिसके सम्पन्न होकारके निम्ने तब की । मेनके । यदि भगवान् शिव प्रसन्न होकर कलकीका पालिकाका घर लेने हैं तो सब सुख ही होगा । कलकीका कलाका सुभा सम्पन्न का अनुभूत यह हो जाना । जिसके समीप तबे अवज्ञाका लक्ष्यमका हो कले है । इसीसे सुख सुखीकी निवर्ती प्राप्तिके निम्ने तबका करकेकी प्राप्ति निवा हो ।

प्राज्ञानी कहते हैं—नाश ! हिमवान्की यह बात सुनकर मेनाकी बड़ी प्रसन्नता हुई । वे तबकालसे तबि उत्तम करकेके निम्ने पूर्वीकी उन्पत्ति देनेके निमित्त उनके पास चली । परंतु मेनके सुकुमार अक्षर दृष्टिमा करके मेनके मने बड़ी आका हुई । उनके लगे मेनके सुख आदि घर आये । फिर तो

[illegible]









[illegible]

☆

हिमवान्कः पार्वतीको शिवको मेवामे रहनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना और शिवका कारण बनाने हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

[illegible][illegible]

१. **संस्कृत भाषा** : यह भाषा भारत की सबसे प्राचीन भाषा है। यह हिन्द आर्य भाषा परिवार की एक भाषा है। यह भारत में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। यह भारत की संस्कृति और इतिहास का प्रतीक है।

[illegible]

अपनी यह बात सुनकर कैप्टेन  
फोर्बसे आगे बढ़े और कहा कि  
आप इस प्रश्न-विचारक हैं।

आम्हाला खेले—मिरिराज ! मृत्यु आणवी  
हम कुमारी आम्हालाही खेले रसकर ही भिन्न  
येर दुर्गमको हम खडले हो, आम्हाला घेरा  
दुर्गम खडी हो मरणा ।

संक्षयकी ऐसी बात सुनकर शिवाजी  
जिन शिवालय परमेश्वर प्रकाशक अतः भगवान्  
दिगम्बर बोले— 'अब ! यह तो बसाले,  
जिन अराधकों ने यह अराधकों का अराधकों



$\frac{0.6}{\text{m}} \quad \frac{0.8}{\text{m}} \quad \frac{0.7}{\text{m}} \quad \frac{0.9}{\text{m}} \quad \frac{0.5}{\text{m}}$





समोचरने कथा—११ अंकसु समोचरने

नाम / उक्त करने वाले व्यक्ति का नाम है

ਸੇਵਾ : ਅਸਲੇ ਦੇ ਸਾਥ ਸਾਥੀ ਦੇ ਸਾਥ ਸਾਥੀ

... ..

1000

समृद्ध और आकाश मध्ये गले हैं। मेरे किताबों से आप निराश हैं। कुछ भी नहीं कर सकते हैं। ज्ञान विशेषज्ञों के बीच भी प्रकृति के अधीन हो इस नाम प्रकार के कार्य करते रहते हैं। फिर निर्विघ्न कैसे हैं ? और सुझावों किताब कैसे नहीं ? संकल्प ! यदि आप प्रकृति के दो हैं और यदि आपका वह काल हम है तो आपकी मेरे इच्छित सुझाव भी करके नहीं चाहिये।

सम्राज्ञी कहती हैं—वर्तमानकाल का  
सांख्य-शास्त्रके अनुसार बहुत कुछ समझ  
सुनकर ध्यात्वात् निज चेष्टा-प्रकारके विषय ही  
उपशे हो जाते ।

सौभाग्यवश कला—सुन्दर भावना  
करनेवाली मिलने । यदि तुम माया-भक्त  
भाव करके ऐसी कला बजाओ तो  
प्रतिदिन जैसी सेवा करो पशु बन्ध सेवा  
साधनविधि नही दीनी जायिगे ।

गिरिजासे ऐसा अकामना करनेवा  
अनुराधा और उषासे घनोद्वेग करनेवाले  
मगधसे विश्व विजयवादी वाले ।

दिखाने लडा— गिरिराज । मैं नहीं  
 तुम्हारे अलसता रमणीय क्षेत्र निवासियों  
 कुम्भार अलसता लडा अपने अलसता  
 परमार्थसम्पन्नता निवार करत हूँ  
 निवारण । परमार्थ ! अलसता  
 अलसता करनेकी अलसता है । अलसता  
 अनुशासक निवार कोई लडा नहीं निवार जा  
 लडा ।

देवाधिपति शूलपाणी भगवान् विचक्षन्  
 यज्ञं यजन्तं भुज्यन्तं त्रिमयान्ते ब्रह्मे ब्रह्मण  
 वरिषे वसतः—‘यज्ञयेत ! देवराज, अमर  
 और मनुष्योपस्थित सम्पूर्ण जगत् को अमरकर  
 ही है । ये तुज होकर आपसे क्या करें ?’

ब्रह्मजी कहते हैं—जगत् ! भिरिराज  
विष्णुआत्मे ऐसा कहनेपर लोकोत्कण्ठवाप्यकारी  
चमत्कार होकर मैं यह और आदरपूर्वक  
उत्तर देते— 'अब तुम जानो ।' ईश्वरजी  
अपना चमत्कार विष्णुआत्मा अपने घर लौट गये ।  
वे भिरिराजके साथ प्रतिदिन अपने दर्शनके  
दिने आते थे । जगन्नी अपने दितात्मके बिना  
भी होने लक्ष्मणोंके साथ निज ईश्वरजीके  
पास जाती और चतुर्वर्णक उनकी सेवामें  
लगी रहती । बन्दीधर आदि कोई भी गण  
उन्में सेवकता नहीं कर । तात् । यहधरके  
अभ्यन्तरे ही ऐसा होता था । अत्येक गण  
चतुर्वर्णकपूर्वक रहकर उनकी आज्ञाका  
पालन करता था । जो विचार धरमके  
पाथपर अधिकार किया होता है, उन्हीं दिवस  
और दिवसे लक्षण और वेदमन्त्र-वताये दिवस  
के जो चमत्कारवाप्यकार संवाद किया, वह  
सर्वदा सुख देवकाम है । यह ईश्वर जी उन्हीं  
यह सुभाव । इन्द्रियमन्त्र वाग्वान् संकारके  
भिरिराजके लोकोत्कण्ठ इन्द्रिय गौरव चमत्कार  
उनकी पुत्रीके अपने घर रहकर सेवा  
करकेके दिवसे लोकोत्कण्ठ कर दिया ।

येानी अपनी दो पहिचोके हाथ  
 चम्बोका पहरेवाजीकी सेवाके लिये  
 प्रतिदिन अली-बली खुली थीं। वे भगवान्  
 प्रकरके चम्बु छोकर उस चरणामृतका पान  
 करती थीं। आगसे पचाकर शुद्ध किरी मुए  
 पकसे (अथवा गरम बालसे थोड़े मुए  
 बालके छत्र) उनके करीबका बाँधी करती,  
 इसे बालकी-घोलनी थीं। फिर साफ़  
 उपचारसे निषिक्त इरकी भूजी करके  
 काँस्कर उनके चरणोंमें प्रपात्र करनेके  
 चक्षुस् प्रतिदिन चित्तके घर लौट जाते रहतीं।  
 मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार ध्यानपरायण

शेकरकी सेवामें लगी हुई विद्यार्थ्या यशदा  
सम्बन्ध व्यतीत हो गया, तो भी वे अपनी  
इम्तिहानोंके सम्बन्धमें रसकर कुर्बानियाँ उन्हींकी  
सेवा करती रहीं। यशदेकीने जब फिर उन्हें  
अपनी सेवामें विद्यार्थ्या देकर उन्हें दायरे  
व्यति हो ठीक और इस प्रकार विचार करने  
लगे—‘जब यशदा जब सम्बन्धपूर्ण करनेकी  
और इसमें सर्वथा जीव नहीं रहे यशदा,  
तभी मैं इसका पाणिपुत्रा करीग।’

ऐसा विचार करके महात्मनस करने-  
वाले महायोगीश्वर भगवान् भुगबान् सम्पूर्ण  
भवानमें स्थित हो गये । मुने । परमात्मन् प्रिय  
जब भवानमें स्थित गये, तब उनके हृदयमें  
सूखी कोई चिन्ता नहीं रह गयी । कल्पों  
अनितित महाविश्व शिवके सम्पूर्ण विस्तार  
विस्तार करती हुई उनमें परिक्रमणसे उनकी  
सैवायें लगी रही । अथाथवाचन भगवान् हर  
सूक्ष्म भावसे सभी सभी हुई कल्पितसे स्थित  
देखते थे । फिर भी पूर्व चिन्ताओंसे भुगबान्  
उन्हीं देखते हुए भी नहीं देखते थे ।

इसमें बीजकर्म कुछ आदि देवताओं तथा मुनियोंके प्रसादकी ओरसे कामदेवको बहुत अस्त्रपूर्वक सेवा । ये कथकली प्रेरणासे कामदेव स्वयंके साथ सौमित्र कराना चाहते थे । उनके ऐसा करनेमें कारण यह था कि महाप्रपञ्चकी सारकासुरसे वे बहुत पीड़ित थे (और इसकाजीसे किसी भवान् बलवान् पुत्रको उत्पन्न चाहते थे) । कामदेवने वहीं पहुँचकर अपने सब उपायोंका प्रयोग किया, परंतु महादेवजीके समक्ष अनिष्ट भी औंध नहीं हुआ । अन्ते उन्होंने कामदेवको कर्मकार भनक कर दिया । धुँसे । सब सती चर्चनीके भी नर्चरहित थे इसकी ओरसे बहुत बड़ी [ ] कारके किंवदंती पतिकल्पमें प्राप्त किया । फिर वे पार्वती और परमेश्वर परस्पर असम्यक्त प्रेमसे और प्रसन्नता-पूर्वक रहने लगे । इस दोनोके शरोधकारमें माया रहकर देवताओंका बहुत कार्य मिल गया ।

( अध्याय २३ )

☆

तारकासुरके बताये हुए देवताओंका ब्रह्माजीको अपनी कसूरकथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन्हें पार्वतीके साथ शिवके विवाहके लिये उद्योग करनेका आदेश देना, ब्रह्माजीके समझानेसे तारकासुरका स्वर्गको छोड़ना और देवताओंका वहाँ रहकर लक्ष्यमिष्ट्रिके लिये यत्नशील होना

सूतजी कहते हैं—सदस्सन्तर मारुद्गीके  
पूछनेपर पाण्डीके विवाहके विस्तृत  
वर्णनको उपस्थित करते हुए, कश्यपजीने  
तारकासुरकी उत्पत्ति, उसके उग्र तप,  
मनोवाञ्छित वरप्राप्ति तथा देवता और  
अशुर—सबको जीताकर स्वयं इन्द्रकूपपर  
प्रतिष्ठित हो जानेकी कथा सुनायी ।

सम्पत्तयः ब्रह्माग्नेः कदा—तदाकासुर  
गिन्ने अनेकोको अग्ने वगने करके जल लब्ध  
हुन हो यज, तब उसको प्रधान दूसरा कोई  
स्वाम्य नहीं रह गरा । वह विनेन्द्रिय असुर  
विपुवनका एकमात्र स्वामी होकर अज्ञात  
देगसे राज्यका संततकन करने लगत । उसने  
सम्पत् देवताओंको निकालकर उसकी जगह













સાનનાથી જીવ લખા વૃક્ષ આદિ સ્થાનિય પ્રાણી  
થી વાળા દુઃખી હો ગયો : ફરતી લોકલો  
ફલ આદિ સમૃદ્ધ દેશના પાંચેપાંચીના  
સ્થાન કરાશે મુર રાજ્યો આજ્ઞાવિત દે ફલ  
પ્રવાસ બોલો :

देवताओंने कहा—तुम अत्यन्त हीरकका छोटा-सा जन्म लेकर उसे चालपूर्वक रखो और छोड़ो । इस समय काशी महादेवजी काकोकनासे पुनः प्रस्थित कर रहे और तुम फिर अपने प्रियजनको प्राप्त कर लोगी । जोहूँ भिक्षुको न ले तुम देवताका है और न जोहूँ दुःख ही देवताका है । सब लोग अपनी-अपनी कारकीर्दी काम चलाते हैं । तूम देवताओंको छोड़ देकर सबकी ही सोच कारकीर्दी ।

‘‘ହେଉ ପ୍ରଭାତ ଗଳିକ୍ଷେ ଆଶ୍ଚର୍ଯ୍ୟର ହେ ଗପ  
ଦେଖା ମନଦାନ୍ ଲିଖିଲେ କାଳ ଅକ୍ଷେ ଓଠ ଅକ୍ଷେ  
ସମିତମାଧବେ ଗପାଳ କରକେ ଗୁ କୋଳେ ।

देवता-भक्ति      कथा — कालदास ।  
 शारदागंगा-कालदास महेश्वर ! अनेक दुःख  
 कायेके हुवाये हूय शुभ चकनमले सुईये-  
 शीकर । आब कायदेकरी करमुनकर  
 भारी-भरिनि प्रसन्नभूपर्णक विचार कीरिये ।  
 मोहार ! कायने जो यह कार्य भिया है,  
 हूयने हूयकर कोई शार्च नहीं क । पुन  
 तात्कामुरी कीरि हूय हूय मय देवताभने  
 निरुकर कयरी यह कय कराय है । माय !  
 शीकर ! हूये आब सम्यक न समझे । यह  
 मुन देवताले देव ! गिरिज ! लगे-सगली  
 रनि अकोली अली हू श्री हूयक विचार क  
 रही है । आब जने सत्यक प्रपन कने ।  
 शीकर । यदि हूय हूयके हूय अरुने  
 कायदेकयने मार कयरी तो हूय कही समझेने  
 कि आब देवताभोरिनि सत्यक प्रपिनीक

અગતી સંક્રમ વચ્ચે જાણના વાળો છે । રમિયા  
મુખ દેવલન દેવલ નદીના છે રહે  
દેવલ દેવલ દેવલ રમિયા જોવા દુર ના  
દેવલ દેવલ ।

आपको कहते हैं—बल्ल ! अम्बर  
केवलओका यह काल सुन्दर वातावरण  
विश्व प्रकाश को इसी रूप प्रकाश कोले ।

[illegible]

ભાગ્યવી ચરતો હું—જગદ ? બળવાળ  
મિત્રભરી આ બાળ પ્રત્યક્ષ દેખતાઓએ મિત્રાપે











जीशिवजी अमरावनाके लिये पार्वतीजीकी दुष्कर लयल्या

समाधी करने हैं। देखें ! तुम्हारे चले जानेपर प्रपञ्चमित्रता हुई। चालीने मन्त्रदेवकीको नपस्याले ही सत्य सत्य और सत्यसत्य के लिये ही करने निश्चय किया। तब उन्होंने अपनी सरली जगत् और निश्चयको हरा बिना हियाचल और बाता सेनाले अछा मनी। निम्न ले जोकर कर लिया; वस्तु मात्रा निम्न कोचकल अनेक प्रकाशने निश्चयक और करके हरा करने जगत् सत्य करनेसे मुनीको सत्य। वेनाले सत्यसत्य के लिये सत्य जानेको सेकने हूँ 'ह', 'अ' (काकर व जाओ) ऐसा करके इसलिये इस समय विधाचल सत्य हुआ हो गया। हूँ ! ईश्वरसमीची करी कहीं सेनाले सेकनेसे विधाचले हूँ की हुई जगत् अत्यन्त विचार बहुत दिना और पार्श्वको मन्त्रको लिये जानेकी अछा है की। मुनिसेह ! कथानी कि आज चालने जगत् जगत् सत्य करकेवाली करकीने अत्यन्त ईश्वरसत्ता करके करके अत्यन्त सत्य है हूँ सुखका अनुभव किया। कल-निम्नको अत्यन्त-मुक्त जगत् करके निम्नको अत्यन्त-मुक्त सेनी सचिकोके सत्य से सत्य करके लिये करने गयीं। अनेक प्रकारके सत्य सचिको परिमाण करके चालीने अति-अनेकाने सुन्दर सचिकी सेनाले सचिकी ही सचिकी करके कर लिये। करके परिमाण करके जगत् मुनिसेहको सचिकी सचिकी। सत्यसत्य से सत्यसत्य के लिये सचिकीकरण (गुणकारी) लियेकी ओर चली।

[illegible]



होई तो धगधगन् ईंकार सुनकर अचानक प्रसन्न हो ।

इस तरह निरव चिन्तन करती हुई अन्त-कालव्यापीय विविधकरा चर्चनीय युद्ध नीचे लिखे सुदीर्घकाल-प्रत्यक्ष प्रभावों से लसी पड़ी । उन्होंने ऐसी तपस्या की जो सुनिश्चित ही उनके पुत्रों की थी । बड़ा इस तपस्याका स्वरूप बताने के लक्ष्मणों ने बड़ा विस्मय हुआ । यह ! पार्वतीकी तपस्याका जो दूसरा प्रभाव बड़ा था उसे भी इस तपस्य सुने । अन्तर्गत पार्वतीका वह ब्रह्मान् तप परम आश्चर्यजनक था । जो स्वभावतः एक-दूसरे के विरोधी थे, ऐसे प्राणी भी जो अन्तर्गत काल जाकर उनकी तपस्याके प्रभावसे मिले-जुलते हो

जाने थे । ईश्वर और श्री आदि महा एतादि होशों से संतुष्ट रहनेवाले पशु भी पार्वतीके अन्तर्गत मन्त्रियों के बर्णन पर आश्चर्य नहीं प्रकट करते थे । सुनिश्चित ! इनके अतिरिक्त जो तपस्याका एक-दूसरे के वैरी हैं, वे चुपे-चिल्लाते आदि दुमरे-दुमरे जीव भी इस अन्तर्गत प्रभाव की रोचक आदि विचारों से भुल नहीं होते थे । चाहे सच्ची वृद्धों से यह फल लगे रहते थे । बलि-बलि के पुत्र और विविध पुत्र इस धमकी को भी बड़ाते थे । ब्रह्मण्ड विराट् कालका वैराग्य के प्रभाव से तप । पार्वतीके अन्तर्गत विविधता जाकार उस काव गया ।

(अध्याय २२)

☆

पार्वतीकी तपस्याविषयक दुःखना, उनका पहले से भी बड़ा तप, अरसे त्रिलोकीका संनम्र होना तथा समस्त देवताओं के साथ ब्रह्मा और विष्णुका भगवान् शिव के स्थान पर जाना

ब्रह्मजी कहते हैं — पुरीछर । शिवजी प्राणिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीके बहुत बर्णन कीज गये, तो भी भगवान् ईंकार प्रत्यक्ष नहीं हुए । तब शिवालय, वैरा, देव और मन्त्रालय आदिने जाकर पार्वतीकी तपस्याका और शिवकी प्राणिके अन्तर्गत दुःखना बताने के बड़े अनुरोध किया कि तब तपस्या छोड़कर घरको लौट जाते ।

तब उन सबकी अंत सुनकर पार्वतीने कहा — शिवाजी । माताजी ! तब से मैं नहीं बोलती । मैं पहले से जान रही थी, उसे क्या आश्चर्यगोने भूला दिया है ? अतः, इस समय भी मेरी जो प्रीति है, उसे आश्चर्यगोने सुन लें । जिन्होंने मेरी अन्तर्गत अन्तर्गत

तपस्य कर दिया है वे महादेवजी कापि विराट् हैं, तो भी मैं अपनी तपस्यासे अब भक्तवत्सल भगवान् ईंकारको अचानक संनम्र करौंगी । अतः तब तब प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरको जावे । महादेवजी संनम्र होंगे ही इससे अन्तर्गत विचारों से अन्तर्गत नहीं है । जिन्होंने महादेवको जलता है, जिन्होंने इस पार्वतीके अन्तर्गत भी अन्तर्गत जाव कर दिया है, उन भगवान् ईंकारको वे केवल तपस्यासे नहीं बुलवाऊंगी । ब्रह्मजीभक्त । अतः यह जान लें कि ब्रह्मन् तपस्यासे ही भगवान् ईश्वरजी सेवक सुलभ हो सकती है । यह है अन्तर्गत सेवक, अन्य कहती हैं ।

सुप्रसन्न भक्त्य करकेवाली पर्वतराज-कुमारी शिव माता सेवका, भाई सेनाक,

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीशिवाय नमः ॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीरामाय नमः ॥ श्रीसूर्याय नमः ॥ श्रीचन्द्राय नमः ॥ श्रीवसुदेवाय नमः ॥ श्रीदेवताओं के

विता। विद्यालय और कपड़ाकार आदिसे उपर्युक्त बात कहकर शीघ्र ही चुप हो चलीं। विद्यालये ऐसा कहनेपर वे कपूर-बालक पर्वत, गिरिजास सुपेय अग्नि गिरिजाश्री बादरपर प्रहारा करते हुए अत्यन्त विस्मित हो जैसे आगे बढ़े, जैसे ही लौट गये। उन सबके काने कानेपर सज्जिवोंसे थिरी हुई चारोंती चपले पचावर्ष विद्वान् कराके कहधरे भी अधिका उन सबका करने नहीं। कुम्भिक। देवताओं, असुरों, घनक्यों और चरचर प्राणिमोसहित समस्त विश्वोंकी उन यज्ञी सपकासे संलग्न हो गयीं। उन समस्त समस्त देवता, असुर, यक्ष किन्नर, चरचर, सिद्ध, साधक, भुवि, विद्याधर, बड़े-बड़े नाच, प्रतापनि, गुरुज सब अन्य लोग यज्ञान्-से-मत्तान् कह्ये पड़ गये। वरन् इतनाका कोई कारण उनकी समझमें नहीं आया। सब इस आदि सब देवता मिलकर गुप्त वृत्तमितिसे कल्पित हो यज्ञी विद्वान्काके सब सृष्टि पर्वतपर गुप्त विधातकी कारणसे आये। उन सबका उनके लो अङ्ग संलग्न हो रहे थे। यहाँ उन यज्ञी प्रतापकर उन सबकी एककृप और कानिप्रीय देवताओंसे वेरी क्षुति करके एक साथ ही मुझसे मुझ—'प्रभो ! जगत्के लोग प्रेनेकर क्या कारण है ?'

उनका यह सब सुनकर उन-ही-सम क्षिप्तका स्वरण करके विद्यासम्युक्त मैंने सब कुछ जान लिया। इस समय विद्याने जो दण्ड उत्पन्न हो गया है, वह गिरिजाश्री सपकाका फल है—वह जानकर मैं उन सबके सब शीघ्र ही क्षीरसागरको गया। यहाँ जानेका उद्देश्य भगवान् विष्णुसे सब कुछ कहकर था। यहाँ पहुँचकर देखा, भगवान् शीघ्रि सुखद् भगवन्पर विराजमान हैं। देवताओंके

सब मैंने दृष्ट होकर प्रतापपूर्वक उनकी क्षुति की और कहा—'बहुविद्यते ! उनकासे सभी हुई चारोंतीके परम उन तपसे संलग्न हो इस सब लोग अपनी सपकासे आये हैं। आज इसे कहकहे, कहाहये।' इस सब देवताओंकी यह बात सुनकर भगवन्पर कौन हुए भगवान् लक्ष्मीपति हमसे बोले।

सौम्यपुत्रे कहा—देवताओं। मैंने अन्य पावनीकीकी सपकाका सारी कारण जान लिया है। उन सपकाओंके साथ अब परमेश्वर विद्याके लोचन चलता है। इस सब लोग विद्याकर यह लक्ष्मी करीये कि वे गिरिजाश्री के कहकहे अपने यहाँ से आये। अथवा। इस समय समस्त संसारके कल्पकाके लिये भगवान्से विद्याके चरित्रकल्पने लिये अनुरोध करना है। विद्यालिये विद्याकपारी भगवान् फिर विद्याको वर देनेके लिये जैसे भी यज्ञी उनके अकल्पपर पावे, इस समय इस देवता ही उत्पन्न करेये। अतः परम भगवन्सब महाप्रभु सब यहाँ उन तपकासे लगे हुए हैं, यज्ञी सब सब लोग करते।

भगवान् विष्णुकी यह बात सुनकर समस्त देवता आदि हरी, प्रदेवी और कल्पकाके लिये इस सपकाके प्रत्येकका सब अत्यन्त चरचरित हो बोले।

देवताओंने कहा—भगवान् ! जो पक्षधरकर, कल्पाधिके सपका हीक्षिप्त और भगवन्के नेत्रोंसे मुक्त है, उन रोचधरे महाप्रभु काके सब इत्यादि यज्ञी आ सबके; क्योंकि जैसे पहले उन्होंने क्षुति हो मुर्ख कल्पको भी उत्पन्न किया था, उसी प्रकार वे इसे भी दण्ड कर हलेंगे—इससे संलग्न नहीं है।











पुनोत्पन्नको विषये निर्दिष्टको समय विचार  
करेना। तुम सब वेदना अब निर्भीक होकर  
अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य  
निष्ठ कार्यरत। इस विषयको अब कार्य  
विचार नहीं करना चाहिये।’

अपनी कहानी है—साहब ! ऐसा  
मजदूर मजदूर भेजकर और जो समाधिमें  
मिलान को गले और विष्णु आदि सभी देवता  
भरने अपने समर्थकों को गले ।

( अष्टावक्राचार्य )

धर्मज्ञान शिक्षकी भाषासे सप्रविष्टांका पार्वतीके अस्त्रमय आ  
 कृते शिष्यविषयक अनुरागकी परिक्षा करना और  
 धर्मज्ञानको सब पलायन बताकर स्वर्गको जाना

ब्रह्मजी कहते हैं—देखनाओनेक अपने  
आत्मजमें कले बालेकन चालेकीके ब्रह्मजी  
बरीकले निवे बलकन चालेके बलकनके  
मने । के बलके अपने-आपमें, अपने ही  
बालेका, बालक, बालककेकन बलके बलकनके  
बलकनके बलकन बालेके बलके । बलके बलके  
बलके बलके बलके बलकनके बलकेके ही  
बलकनके है । ब्रह्मजी बलकनके बलकनके  
बलके बलके । के बलकनके बलकनके ही  
बलके बलके—बलकेके है ।

[illegible][illegible]

समस्याएँ संकटकारी का अर्थ पालन के  
 करने की क्षमता है उस संकटकारी का बर्तन,  
 जहाँ टैपिंगकी सम्पत्ति का बर्तनी विराजमान  
 है। सम्पत्ति के बर्तन विराजमान सम्पत्ति  
 बर्तनी की क्षमता सिद्धि के सम्पत्ति है।  
 सम्पत्ति के सम्पत्ति का। वे सम्पत्ति सम्पत्ति  
 सम्पत्ति के सम्पत्ति है। वे सम्पत्ति सम्पत्ति  
 सम्पत्ति के सम्पत्ति है। वे सम्पत्ति सम्पत्ति

















जानेवाले बरोमें जो नारीकोको सुन देनेवाले गुना बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुन नहीं मिलेवाले लक्ष्य नहीं है। तुम्हारे परम पिता कात्मको भी इन हर देवताने हथ कर दिया और तुम्हारे प्रति उनका अनादर तो तभी देस लिया गया, जब से तुम्हें लोढ़कर अन्ध बन गये। उनकी कोई प्रार्थना नहीं देली जाती। इनमें विद्या तथा ज्ञानका भी पता नहीं चलता। विद्यावा ही उनके लक्ष्यका है और विद्व तो उनके कण्ठमें ही दिव्यकी देता है। वे महा अकेले गलेवाले और विशेषणको बिरात हैं। इसलिये तुम्हें हरके सत्य अपने मनको नहीं जोड़ना चाहिये। क्यों तुम्हारे कण्ठमें सुन्दर हार और कई अन्य गन्ध

नसुन्दरकी माला ? देख। तुम्हारे और हरके हाथ अग्नि सब एक-दूसरेके विरुद्ध है। अतः तुम्हें तो यह सम्मन्य नहीं छूटना। फिर तुम्हारी जेम्मे इच्छा हो, पैसा करो। संसारमें जो कुछ भी असम्भव है, वह सब तुम स्वयं चाहते होगी हो। मत मैं कहता हूँ कि तुम इस असम्भवी ओरसे अपने मनको लान लीं। अन्धका तो बाहो, यह करो; मुझे कुछ नहीं कहना है।

बराबरी कहते हैं—नारद ! यह बात सुनकर पर्वती शिवकी विद्या करनेवाले ब्राह्मणका मन-ही-मन कुपित हो उठीं और उनको एक प्रस्तर बोलीं।

(अध्याय १५)

॥

पार्वतीजीका परमेश्वर शिवकी महताका प्रतिपादन करना, रोषपूर्वक जटिल ब्राह्मणको फटकारना, सखीद्वारा उन्हें फिर बोलनेसे रोकना तथा भगवान् शिवका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दे अपने साथ चलनेके लिये कहना

पार्वती बोलीं—बालाही ! जलानक तो मैंने यह समझा था कि काई दूसरे जन्मी बहरीया आ गये हैं। परंतु अब सब ज्ञान हो गया—आपकी कलाई खुल गयी। आपने क्या कहा—विशेषतः इस वृत्तमें, जब आप अवश्य ब्राह्मण हैं ? ब्राह्मण-देवता। आपने जो कुछ कहा है, वह सब भूते ज्ञान है। परंतु वह सब झूठा ही है, सत्य कुछ नहीं है। आपने कहा था कि मैं शिवको जानता हूँ। यदि आपकी यह बात ठीक होती तो आप ऐसी युक्ति एवं बुद्धिके विरुद्ध बात नहीं बोलते। यह ठीक है कि कभी-कभी मोक्षरक्षणी रीत्यशास्त्रोंसे प्रेरित हो तत्वाकित अज्ञान वेद धारण कर लिखा करते हैं। परंतु वास्तवमें वे साक्षात् परब्रह्म परिभाषा हैं।

उन्होंने स्नेहामि ही प्रारंभ किया है। भक्त ब्राह्मणकी स्वल्प मात्रा पर मुझे करनेके लिये उदात्त हो चढ़ी आये हैं और अनुचित एवं असंगत धुत्तियोंका सहारा ले कर-कण्ठसे कुछ बोलने बोल रहे हैं। मैं भगवान् लोकरके स्वल्पको पानीभाँति जानती हूँ। इसलिये बराहयोग विचार करके उनके मनका दर्शन करती हूँ। वास्तवमें शिव निर्गुण सत्य है, कारणवश सगुण हो गये हैं। जो निर्गुण है, सबस गुण विनये स्वल्पभूत है, उनकी भाँति कैसे हो सकती है ? वे भगवान् सदाशिव सत्यतः विद्याओंके ज्ञाता हैं। फिर उन पूर्ण परमात्माको किसी लिखने क्या काम ? पूर्वकालमें कल्पके आरम्भमें भगवान् समुने श्रीविष्णुने





करो । सुखिन् विवाधान्त्री पार्वती । मैंने जना प्रकारसे तुम्हारी चरित्र-वर्णना करी है । लोक-कर्म-विशेषकर अनुसरण करनेवाले भूत स्वर्ग-लोक-अपराध-को क्षमा कर दे । प्रिये ! तीनों लोकोंमें तुम्हारी-जैसी अनुरागिणी मुझे दूसरी कहीं नहीं दिलायी देती । मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ । तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो । प्रिये ! मेरे पास आओ । तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा घर हूँ । तुम्हारे साथ मैं शीघ्र ही अपने निवासस्थान आया करूँ ।

केतवसन्को बलैग्न ।

महाश्वी करते हैं—देवाभिदेव महादेवकीके ऐल कइनेपर पार्वती देवी आनन्द-प्राप्त हो उठीं । उनका लपट्याजनिता पहलेका प्रयास कइ भिट गया । मुनिभेष्ट । सन्त-साध्वी पार्वतीकी सारी बचकट दूर हो गयी, क्योंकि परिकल्प-कल प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पहलेवाला प्रयास भय नष्ट हो जाता है ।

(अध्याय २६)



**शिव और पार्वतीकी बातचीत, शिवका पार्वतीके अनुरोधको स्वीकार करना**

महाश्वी करते हैं—भारत । परमात्मक इश्वरी यह बात सुनकर और उनके आनन्द-शायी रूपका दर्शन पाकर पार्वतीको बड़ा हर्ष हुआ । उनका भूल प्रसन्नतासे शिव रहा । वे बहुत सुखका अनुभव करने लगीं । फिर इस महासाध्वी शिवाने अपने पास ही खड़े हुए पण्डित शिवसे कहा ।

पार्वती बोली—देवभूत ! आप मेरे स्वामी हैं । प्रभो ! पूर्वकालमें आपने जिसके लिये हर्षपूर्णक हृदयके बलका विनाश किया था, उसे क्यों भुला दिया था ! वे ही आप हैं और यही मैं हूँ । देवदेवेश्वर । इस समय मैं शारङ्गामुरसे दुःख करनेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये रात्री मेनके गर्भसे उत्पन्न हुई हूँ । देवेन ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि पुत्रपर कृपा करने हैं तो मेरे प्रति हो जाइये । ईशान ! प्रभो ! मेरी यह बात मान लीजिये, आपकी आज्ञा लेकर मैं पिताके घर जाती हूँ । उस समय अपने विवाहकाल परम उत्तम विशुद्ध वस्त्रको धारण विरह्यात कीजिये । नाक । प्रभो ! आप मे

स्वीकृत करनेमें कुशल हैं । अतः मेरे पिता शिवानेके पास शशिदे और शक्तिक कनका अपने मेरी वाचना कीजिये । लोकमें मेरे पिताके चरित्रके फैलाने हुए आपको ऐल हो करना चाहिये । इस तरह आप मेरे सम्पूर्ण गृहस्थाश्रमको सफल बनाइये । जब आप प्रसन्नपूर्वक भविष्यसे मेरे पिताके सब बातोंकी जानकारी करायेगी, तब मेरे पिता अपने चाई-कामुओंके साथ आपकी आज्ञाकर पालन करेंगे—इसमें संदेह नहीं है । जब मैं पहले प्रजापति महाश्वी कथा थी और मेरे पिताने आपके हाथमें मेरा हाथ दिया, उस समय अपने इसकोल विधिसे विवाहकाल कर्म पूरा नहीं किया । मेरे पिता कइने बड़ोकी पूजा नहीं की । अतः उस विवाहमें सम्पूर्णनियमक कड़ी भारी भुटि रह गयी । इसलिये प्रभो ! महादेव ! आपकी घर देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये आप आज्ञाके विधिसे विवाहकर्मका सम्पादन करें । विवाहकी जैसी रीति है, उसका पालन आपको अवश्य करना

साहित्ये । मेरे पिता विष्णुदासजी यह अच्छी तरह ज्ञात हो जाना चाहिये कि मेरी कुलीने शुभकारक लगना रही है ।

पारसीजीकी देखी क्या सुन्दर लगनाय लदासिब को प्रसन्न हुए और उन्होने ईश्वरी रूपसे प्रेमपूर्वक बोले ।

देखो कान—देखि । चोकरि । देखी यह आनन्द प्राप्त सुने, यह प्रियतम, प्रसन्नकारक और मिठी है । इसे सुन्दर कैसा हो कहे । बरगदो ! प्रसन्न आदि मिलने भी आती है, वे सब अस्मिता है । अस्मिता । यह सब को कुछ विचलनी होता है, इसे अन्तर समझो । वे निर्गुण वाचकता को गुणोके कुछ हो एकदम अन्तर हो गया है । जो अपने प्रकाशकी प्रकाशित होता है, यही वाचकता में सुन्दरके प्रकाशके प्रकाशित होनेवाला हो गया । देखि । मैं जानता हूँ, यही सुन्दर मुझे प्राप्त हो रहा है । समस्त वाचकोके कारणवाली प्रकृति एवं लक्षणका मुझी हो । यह समूर्ण अन्तर वाचकता हो रहा गया है । मुझ लक्षणात्मक वाचकताके अन्तरी अन्तर बुद्धिसे इसा इसे वाचकताका कर गया है । सर्वत्र वाचकतात्मक वाचकताके वाचकता सुन्दरतामें इसे अपने भीतर सींचा है तथा यह सींचे गुणोके अन्तर्हित है । देखि । बरगदो ! यही सुन्दर यह है ? अन्तरे-से प्रसन्न-साधु है ? अन्तरे अन्तरे सुन्दर-सुन्दर अन्तरे है ? इस लक्षण सुन्दर विचलने अपने क्या क्या है—विचल कारकवाला विचलन किया है ? गुण और वाचकके लेखने इस लेखने इस वाचकके अन्तर्गतवाला वाचक वाचकोके सुन्दर केनेके हेतु अन्तर्गत प्रसन्न किया है । सुन्दर रसःकाम-समोपकी (निगुणान्वित) सुन्दर प्रकृति हो, लक्ष

वाचकवाचकता लक्षण और निर्गुणता भी हो । सुन्दरको ! मैं यहाँ समूर्ण वाचकता आनन्द, निर्मलता एवं निरीह हूँ । अन्तरी प्रकाशके भी अन्तर वाचक किया है । ईश्वरी ! मैं सुन्दरके विचल विचलताके वाच यहाँ का अन्तर्गत वाच विचलने केकर किया है तथा सुन्दरता अन्तरे वाचकता को यही कर लक्षण । निराल-निरीह ! वाच गुणोके अन्तर्गत नीरवाचकताके वाचकता सुन्दर भी अन्तरे सुन्दर 'देहि' (दे) यह वाच विचलताके लक्षण लक्षण लक्षणको प्राप्त हो गया है । वाचकता । हेतु वाचकता इससे अपने वाचकता को ? अन्तरे । सुन्दरता अन्तरे मुझे सब कुछ करण है । अन्तरे अन्तरी सुन्दरता प्रकाश हो, कैसा करो ।

वाचकताके हेतु वाचकता भी अन्तरे-लक्षणी वाचकताके वाचकताके विचलने इस वाचकता वाचकताके वाचकता वाचक-वाचकताके प्रकाश करके यहाँ ।

वाचकता केने—वाच । अन्तरे अन्तरे है और मैं प्रकृति । इस विचलने विचलन कारककी यहाँ वाच यहाँ है । इस लेखी लक्षण और निर्गुण होत हुए भी वाचकता अन्तरे लेखनेके कारण लक्षण हो जाले है । वाचको । अन्तरी ! अन्तरी प्रकाशपूर्वक मेरी वाचकताके अन्तर्गत कार्य करण वाचकता । वाच । अन्तरे मेरे लक्षणे वाचकता करे और विचलताके लक्षण वाचकता लक्षण अन्तरे करो । वाचकता । मैं लक्षण अन्तरी वाचक है, अन्तरे मुन्दर काच कीजिये । वाच । लक्षण अन्तरे मैं ही अन्तरी वाचक लेखी लेखी रही हूँ । अन्तरे वाचकता है, निर्गुण है, प्रकृतिसे करे है, निर्मलता, निरीह एवं अन्तरे वाचकता है ; वाचकोके अन्तर्गत अन्तरे लेखने यहाँ समूर्ण भी हो जाले है । अन्तर्गत वाचकता भी









अधरी मायासे झटकर अपने सङ्गको लगे जति करानेवाली, किन्तु जहाँ सम्पूर्ण भले ' यह विचारकर उन योगेकी मज्जा ज्ञान-प्रदान करनेवाली है।  
निन्दने पराजित हुई, जो ध्यान योगकी (अध्याय १०)



देवताओंके अनुरोधसे तैत्तिरीय ब्राह्मणके बीचमें दिव्यजीका हिमवान्के घर जाना और शिष्यकी निन्द्य करके पार्वतीका विवाह

उनके साधन व करनेको कहना

ब्रह्माजी कहते हैं—कण्व । देवता और हिमवानकी मज्जा, निन्दने जति करकेकीकी अन्त्य करके देवता हुए आदि सब देवता परकर निन्दन करने लगे। तब-तब गुरु कृतार्थ और ब्रह्माजीकी सच्यतिके अनुसार सभी गुरु देवताओंने शिष्यजीके पास जाकर इनको प्रणम किया और वे ज्ञान योगकर इनकी शक्ति करने लगे।

देवता लोग—देवदेव । ब्रह्मदेव । ब्रह्मात्मक । शक्ति । इन अनेकी अणुओं आये हैं, कृपा कीजिये। आपकी मज्जाकर है। तब-तब । अन्त करकेतब प्रेमके कारण जहाँ भक्तोंके कार्य सिद्ध करने हैं। शीघ्रकर इष्ट करानेवाले और कृपाके सिद्ध हैं तथा कर्माको निन्दनियोंके कृपाकरने हैं।

इस प्रकार बड़े-बड़ेकी शक्ति करके इष्टसक्ति सम्पूर्ण देवताओंने देवता और हिमवानकी अन्त्य शिष्यजीके निन्दनमें जारी करने आदरपूर्वक भक्तों । देवताजीकी यह ज्ञान सुन्दर बड़े-बड़े देवता प्रार्थन करीकर कर ली और इससे हुए उन्हें आश्वासन देकर निन्द किया । यह सब देवता अपना कार्य सिद्ध हुआ मानकर भक्तान् सदाशिवकी प्रार्थना करने हुए शीघ्र अपने घरको लौटकर प्रार्थनाकर अनुभव करने

लगे। तब-तब भक्तजनता बड़े-बड़े भक्तान् कान्, जो भक्तोंके लगी है, निन्दितार शिष्यने तैत्तिरीयके बड़ी लगे। उन समय निन्दितार हिमवान् भक्तजनतामें समुत्कर्षने गिरे हुए पार्वतीशक्ति प्रकटापूर्वक बैठे थे। इसी अवसरपर बड़ी सदाशिवने कान्ति किया । वे इसमें कण्व, धन, इतीरपर दिव्य कण्व, तब-तब प्रणमन निन्दन, एक कृपाके सदाशिवकी भाव और गलेमें साधनता के साथ निन्दने पार्वतीका शक्तिजनता जय कर रहे थे और देवतामें साधुनेवकारी आत्मता जय करी थी। उन्हें आका देवता सदाशिव हिमवान् जन्मकर लगे हो लगे। उन्होंने उन अर्द्ध अतीतिदेवताको धृतपर कण्वके सम्मान पढ़कर शक्तिभक्तोंने सदाशिव प्रार्थना किया । देवी पार्वती आत्मताजनकारी प्रणमन निन्दने पार्वता मकी थीं। ज्ञान-इष्टोंने भी इनको सम्मान कृतार्थ और कण्व-ही-मन्त्र बड़ी प्रणमनके साथ इनकी शक्ति की ब्रह्मजनकारी शिष्यने उन लक्ष्मीके प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया । किन्तु निन्दनोंके सम्मान अधिक मनोवाञ्छित सुप्रसन्नार्थक प्रदान किया । शीघ्रप्रणम हिमवान्ने लगे आदरमें उन्हें समुत्कर्ष आदि प्रदान-सत्ताकी घेद की और ब्रह्मजने बड़ी प्रणमनके साथ यह सब प्रदान किया।

मत्स्यशाला निरिभेद विमलकलमे उल्लास कुसुम-  
समाधार पूज्य । सुने ! अत्यन्त उल्लिख्यतेक उर  
विमलशाला विमलकल पूजा कलमे कलकलमे



पूज्य—आज क्यों है ?' तथा उर उल्लास-  
विरोधकलमे निरिराजमे शीतल ही अत्यन्तपूर्वक  
काज ।

ये श्रेष्ठ साधन बोले—निरिभेद । ये  
काल विहान् केवल साधन है और  
ज्योतिषीकी बुद्धि अत्यन्त लेखक कुलकल  
प्रमत्त करता राजा है । कलमे कलमे केने गति  
है । ये सर्वत्र जलमे समर्थ और गुणकी ही बुद्धि  
प्रसिद्धे सर्वत्र, सर्वप्रकारी, सुखलता, उल्ला-  
सिन्धु और विमलकलक है । यहाँ उर उल्लास  
है कि तुम अपनी इस लक्ष्मी भरीली सुन्दर  
कलकलकी दिव्य सुलक्षण उल्लासी कुलीको एक  
आलम्बन, असङ्ग कुसुम और गुणकीय  
कर—कलकलकी दिव्य कलमे देन चाहते हो । ये  
कर देन परमार्थ काज करने । शरीरमे शरीर  
लक्ष्मी रहते और योग साधने निरते हैं । उनके

कलकलके दिव्य एक काज भी नहीं है । वेने  
ही चर-चरमे सुने हैं । अत्यन्तकी अगल  
अर्थ काज करने हैं । उनके कुलकल नाम  
आलम्बन किरीको उल्लास नहीं हुआ । ये कुलकल  
और कुलीक है । कलकल विहाने नुर रहते  
हैं । उर शरीरमे परम रहते हैं । शरीर और  
अल्लिखेकी हैं । उल्लासी अत्यन्त किरीकी है, यह  
किरीको उल्लास नहीं । ये अत्यन्त कुलकल  
कलकल कोज कल निरतर आरम किने रहते  
हैं । ये जल-कुल कलको आलम्बन देनेवाले,  
कलकल, कलकलकारी, निरिभेद कुली-  
कलकल तथा इत्यन्तकी वैदिककलकल उल्लास  
करिकलमे हैं । ऐसे अत्यन्त करको आज  
अल्लिखे की कलकल काजने है ? अत्यन्त ।  
अत्यन्त ही अत्यन्त यह विहान साधनकलकल  
नहीं है । कलकलकलमे अत्यन्त । शान्तिधोमे  
श्रेष्ठ निरिराज । ये कलकलका उल्लास कलकल ।  
तुमने दिव्य कलकल कोज कल है । यह कल योग्य  
नहीं है कि उनके कलमे कलकलका उल्लास दिव्य  
आज । कलकल । कुली केने, उनके एक भी  
कल-कल नहीं है । तुम तो जल-कुल कलकी  
कल हो । किन्तु उनके कलमे कुली कल भी नहीं  
है—ये सर्वत्र विरति है । निरिराज । तुम  
कल ही अत्यन्त कल-कलको मेनकलीकी,  
कली केने और कलकलको की कलकलकल  
कुल लो । किन्तु कलकली मे कुली-कलकल  
उल्लास दिव्य कल-कलकी काज नहीं है ।

कलकल कहते हैं—कल । कल कलकल  
ये कलकल कलकल, जो कल कलकली लीला  
कलकलमे कलकलकल दिव्य ही वे, उल्लास  
कल-कलकल कलकलकल कलकल केने कलकल  
कल दिने ।

(अध्याय ३१)





साक्षात्कारके विनाशके सिन्धे एक जीवपुत्र  
उपज करनेके जोरपासे मेहनत भगवान्  
विष्णुने यह प्रार्थना की है कि वे विष्णु बन  
ले । भगवान् संकर तो जोरपासे विनाशके  
हैं । वे विष्णुके सिन्धे उत्पन्न नहीं हैं । केवल  
ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे ब्रह्मके पुत्रकी  
कल्पना प्रमाणित करीये । पुत्रकी पुत्री  
का लयना भी की, का समय उसके समय  
उन्होंने उसने विष्णुकी प्रशिक्षण कर ली की ।  
इसी से कारणसे वे योगिराज किन्धे विष्णु  
करीये ।

प्राचिनकी यह बात सुनकर विष्णु  
हीर पद और कुछ उपनिषद् से विनम्रपुत्र  
बोले ।

विष्णुकी कथा : वे विष्णुके पास कोई  
राजपति समझी नहीं देखा है । उनका न  
कोई घर है, न केवल है और न कोई स्वयं  
या कल्प-कल्प है । वे अत्यन्त निर्धन  
योगीन्धे अपनी कोटी केन नहीं ब्रह्मणः ।  
आपत्तौ केविधायक ब्रह्माजीके पुत्र है ।  
अतः अपना निर्धन विष्णु करीये । जो  
दिल कागसे, जोहसे, भयसे अत्यन्त मोचने  
किन्धे अत्यन्त करके हाकने अपनी कल्प दे  
देना है, यह करनेके बाद ब्रह्मके पास  
है । अतः वे सेवकासे भगवान्  
सुप्रभातिकासे अपनी कल्प नहीं देना ।  
इसलिये प्राचिनकी ! जो उचित विधान से,  
उसे अपाधरा कीजिये ।

पुत्रीकर मार । विष्णुकीके इस  
कल्पके सुनकर ब्रह्म-जीव करनेसे विष्णु  
प्राचिन कीजिये उसने जो कथा ।

प्राचिन बोले—हीरेश्वर । चेरी ब्रह्म  
सुने । यह सर्वथा सुनारे सिन्धे विष्णुकारक,  
अर्थात् अनुपपन्न, कल्प तथा ब्रह्मके और  
कल्पकेसे सुप्रभात है । प्रीतराज । अतः  
कल्प केदने हीन प्रकारके कल्प अत्यन्त होत  
हैं । ब्रह्माजी पुत्र अपनी निर्धन अनुपपत्तिसे  
उप सत्त प्रकारके कल्पकेसे जानता है । एक  
को यह कल्प है, जो कल्पके सुप्रभात  
सुप्रभा (विष्णु) समझा है, परन्तु पीछे यह  
अत्यन्त कल्प अर्थात्कारक विद्वत् होता है ।  
हेना कल्प पुत्रिमान् कल्प ही ब्रह्मा है इससे  
कभी विष्णु नहीं होता । सुप्रभा यह है, जो  
अत्यन्त अत्यन्त कल्प समझा, उसे सुप्रभा  
अत्यन्त ही बोली है । परन्तु परिभाषासे यह  
[कल्प] होता है । इस तरहका कल्प  
कल्पकर कल्पके अर्थात्कारक कल्पकल्प ही  
कल्पकेसे बोध कराना है । पीछे कीजिये  
कल्प यह है जो सुप्रभा ही अत्यन्त प्रमाण  
पीछे समझा है और कल्प कल्पके सुप्रभा  
देनेवाला होता है । कल्प ही अत्यन्त सत्त होता  
है । इसलिये यह विष्णुकारक कल्प कराना है ।  
हेना कल्प कल्पके होता और कल्पके सिन्धे  
अभीष्ट है । प्रीतराज । इस तरह पीछे  
अत्यन्त हीन प्रकारके कल्प कल्प गये हैं । इन  
पीछेकेसे सुने कल्प-सत्त कल्प अभीष्ट है ?  
कल्पके, वे सुप्रभा सिन्धे वेना ही कल्प  
कल्प । भगवान् संकर कल्पके देनाओके  
समझी है । उनके पास कल्प समझी नहीं है,  
इसका कारण यह है कि उनका कल्प  
एकपक्ष प्रान्तके ब्रह्मसमझने का नहीं है ।  
जो प्रान्तकल्पकेसे और कल्पके प्रीतराज है, उन्हें





भगवान् शिवका स्तन करके चुप हो गये। वसिष्ठजीकी बात सुनकर शिवको और पत्नीसहित गिरिराज हिमालय चढ़े विरिज झुए और दूसरे-दूसरे पर्वतोंसे बोले।

हिमालयने कहा—गिरिराज मेह, रण्ड, गन्धमादन, मन्दराजस, मैनाक और त्रिकपाशाल आदि पर्वतचरो ! आप सब लोग मेरी बात सुने। वसिष्ठजी ऐसी बात कहा रहे हैं। अब मुझे क्या करना चाहिये, इस बातका विचार करके है। अन्धधर्म अचने धनसे सब बातोंका निर्णय करके वैसे हीक प्रसन्न होकर करे।

शिवाचरकी यह बात सुनकर सुमेक आदि पर्वत भस्मीभूति निर्णय करके इनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले :

पर्वताने कहा—वसिष्ठभाग ! इस समय शिवाचरकरके क्या लाभ ? कैयत शक्तिसेन कहते हैं, इसके अनुसार ही कार्य करना चाहिये। शालग्रामसे यह कन्क हेतुओंकी कार्य सिद्ध करकेके लिये ही उद्योग हुई है। इसने शिवके लिये ही अवतार लिया है, इसलिये यह शिवको ही ही जानी चाहिये। यदि इसने शिवकी आराधना की है और करने आकर इसके साथ वागविक्रम किया है तो इसका शिवाचर उन्हींके साथ होना चाहिये।

वसिष्ठजी कहते हैं—नारद ! इन मेह आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर शिवका सब प्रसन्न हुए और गिरिजा भी बन-ही-बन होकर लगीं। अरुन्धतीने भी अनेक कारण बनाकर, बाना प्रकारकी बातें सुनकर और विविध प्रकारके दुर्निहासोंके चर्चन करने

के-केवीको समझाया। तब शैलपत्नी येनका सब कुछ समझ गयीं और प्रसन्नचित्त हो उन्होंने भुविचोको, अरुन्धतीको और शिवकाचरको भी भोजन कराकर सब भोजन किया। अन्तररानी गिरिजेतु शिवाचरने इन भुविचोकी भलीभांति सेवा की। उनका मन प्रसन्न और सारा प्रसन्न हो हो गया था। उन्होंने सब चन्द्र प्रसन्नतापूर्वक उन पर्वतोंकोसे कहा।

शिवाचर बोले—वसिष्ठभाग सप्तर्षियों ! आपलोग मेरी बात सुने। मेरा साथ सदैव दूर हो गया। मेरे शिव-चर्करीके चरित्र सुन लिये; अब मेरा करीर, मेरी पत्नी मेवा, मेरे पुत्र-पुत्री, चन्द्रि-चन्द्रि तथा अन्य सारी वस्तुएं भगवान् शिवकी ही हैं, दूसरे किसीकी नहीं।

वसिष्ठजी कहते हैं—नारद ! ऐसा कहकर शिवाचरने अपनी पत्नीकी ओर आलम्बपूर्वक हेरा और उसे ब्रह्माभुषणोंसे विभूषित करके शक्तिचोकी गीतों किता दिया। अन्धधर्म से शैलपति पुनः प्रसन्न हो उन शक्तिचोकोसे बोले—‘यह भगवान् उरका बात है। इसे मैं उन्हींको दूंगा, ऐसा निश्चय कर लिया है।

शक्ति चोने—गिरिराज ! भगवान् संकर तुम्हारे चरक हैं, तुम स्वयं उनके दाता हो और चर्करीको शिक्षा है। इससे उन्म और क्या हो सकता है ? शिवाचर ! तुम समस्त चर्करीके राजा, सबसे श्रेष्ठ और धन्य हो। अब तुम्हारे शिखरोंकी सामान्य गति है—तुम्हारे सभी शिखर स्वयन्तकसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हैं।







1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

જાણવાને કરશે વિગતગત તો તારીફ-ખાતે-  
 ચહે, પ્રવાસ ફર ઝીંઝી અવધે નિગરિયા  
 ચ-પુચનોડે આગ-અગતી ચ-પુચનોડે  
 તારીફ કરશે તમે .

[illegible]

કોઈ પણ : સર્વિય-ચર્ચિયો પોલી, પોલી  
 આદિ કયા કયા પુણ્યો પુણ્ય કહાલી કી ।  
 કિયલખને પી કાડી કલકલકલ કાલ અપને  
 કાલે કાલો કાલ કાલી કી-પુણ્યોના કાલાને  
 કાલ-કાલના કિયા કી કાલો કાલ-  
 કાલના પુણ્ય કાલને કાલ । અપને  
 કાલના કાલની કાલ કાલને પુણ્ય કાલ  
 કિયા ।

[illegible]







අනෙක් අතට, මෙම ප්‍රතිඵලයන් සිදු වන්නේ ප්‍රතිචාරයක් ලෙසටය. එනම්, ප්‍රතිචාරයක් ලෙසට ප්‍රතිඵලයන් සිදු වන්නේ ප්‍රතිචාරයක් ලෙසටය.

[illegible]

अपराधविह्वल वेले था, चली उमड़ी इधरसे उमड़े जिसे आनन्दमयी सायाही बन गया ।  
 'तब' लखन खड्गल लगे ऊपरें कुकुरले  
 निजमगर जो चिराये ; उमरल जो सुन्दर  
 ललकलकली लीलार नेत्र का, चली हुआ मिलाव  
 बन गया ; भुले ! कलमेंके आनन्दमयीके  
 कलमे जो हो लखें कलमे लगे हैं, ये जान  
 उमरलके लगेले [ ] हो [ ] बन गये ।  
 अन्धकारे अङ्गुली पिला लखें उम-उम अङ्गुलीके  
 अली लखलीन लखें लखल आनन्दमयी हो  
 गये ; उमके चरितमें जो लखें लखें हुआ था,  
 चली लखल अन्धकारे अङ्गुलीन बन गली और  
 उमके जो लखलकी अन्धि चरितमय थे, ये  
 सुन्दर लखें कुकुरले बन गये ।

[illegible][illegible]

गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीके साथ अपने विवाहस्य कार्य चलाइये । हर ! आपके द्वारा विवाहकी विधिका सम्पादन होनेवा कही लोकमें सर्वत्र विख्यात हो जायगी, अतः नाच । आप कुलधर्मके अनुसार प्रेम्पूर्ण पण्डितव्यापन और गायत्रीमन्त्र मन्त्र चलाइये तथा लोकमें अपने मन्त्रके विस्तार करिजिये ।

प्रज्ञान काते है—वास्त ! भक्तान्  
विष्णुके ऐसा कहनेपर तोकाकारत्वात्माका  
घरमेकर धाम्ने विविधपूर्वक रूप काते  
लिया। उन्होने सारा आच्युतविष्णु कार्य  
कारनेके लिये मृगको ही अधिकार दे दिया  
हा। अतः बाई धुनिषोको साथ ही वेने  
आर्द्र और प्रसक्तके साथ सब मम कार्य  
सम्पन्न किया। मृगको। इस समय  
कश्यप, अग्नि, तमिह, गीतम आधुरि, मुल,  
कान्त, कृदस्पति, शैल, कपराजि, वराहर,  
मार्जमेव, शिरकपराज, अश्वमेध,  
अकृतसम अगस्त्य, कान्त, गर्ग, शिखर,  
दधीवि, उपमन्द, धगुज, अकृतसम,  
पिचरस, कुशिक, कोत्त तथा विष्णो-  
सहित आत्म—ये और दूसरे बहुत से ऋषि  
को धगुजान् शिखरके समीप आये थे, मेरी

प्रेरणासे विरहितपूर्वक सर्व आभ्युदयिक कार्य करने लगे । ये सब के-सब के लिये पारंगत विद्वान् थे । अतः वेदोक्त विधिसे वैवाहिक सम्बन्धनकार करके ब्रह्मचर्य, धनुर्वेद और ज्योतिषादि विविध ज्ञान सुतोषारा भण्डारकी रक्षा करने लगे । इन सब अभियोगों से बड़ी प्रसन्नताके साथ बहुत-से सम्बन्धकार्य करते, बेटों और सम्भुक्तों प्रेरणासे उन्होंने विज्ञोक्तो धार्मिक लिये प्रीतिपूर्वक प्रवर्तन और सबसम सम्बन्धवर्ती वैष्णवार्थाका पूजन किया । यह सब र्त्ताधिक, वैदिक कार्य बधोभित रीतिसे करने बगवान् निश्च बहून संतुष्ट हुए और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोक्तो प्रणाम किया । लहन्कार से सर्वेश्वर ब्रह्मचर्य देवताओं और ब्राह्मणोक्तो आगे करके इन विरिंहण वैष्णवार्थो हर्षपूर्वक स्थिते । वैष्णवार्थो ब्रह्मचर्य देवताओं और ब्राह्मणोक्तो साथ सम्बन्धन जन्म, जो नया प्रकारकी तरिचण करेवाले हैं, लहन्कार लगे हो गये । इन सबस सर्व भण्डारके प्रीतिवर्ते लिये देवता अर्पिते मिलकर बहुत बड़ा उत्सव मनाया । लगे लगे तथा भान और नृत्य हुए ।

(अध्याय १९)

☆

भगवान् शिवका चारत्त लेक्कर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने ! तत्त्वज्ञानर  
मग्नकान् शब्दमुने नवी आदि सप्त गणोंको  
अपने साज दिमाकालपुरीको अपनेकी  
प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हुए कहा  
'तुमलोग जोड़े-सँ गणोंको खर्च रखकर देव  
सभी लोग घेरे ताब चढ़े ठलठड़ और  
आनन्दसे घुल झे गिरिराज तिमिचान्के

मन्त्रको कालो : ' फिर तो जगज्ज्ञानी आता  
वाकर मनेतर भक्तजन, कोकिलाक्ष, विपुल,  
विशाल, वारिजाल, विकृतनर, दुन्दुभ,  
कपाल, सेंदूरक, कन्दुक, कुम्भक, धिष्टण,  
निष्यल, रत्नसक, आवेशक, कृष्ण, पर्वतक,  
चक्रासन, काल, कालक, महाकाल,  
अग्नि, अभिशेख, आदिबर्मा, घनावह,











जो ही अद्भुत तत्व करनेवाले भगवान् का सामने आ गये। तब ! उनके सभी गत्व अद्भुत तथा वेगके अङ्कुरणको पूर्ण करनेवाले थे। भगवान् सिध अपने-आपको साधारण निर्दिष्ट एवं निर्दिष्ट दिखाने हुए चर्च आये। मुने। उन्हें आया कन तुमने वेगको निम्नके पतित्य दर्शन कराते हुए उनसे इस प्रकार कहा—‘सुधार। देखो, वे माझल् भगवान् प्रकार हैं, निम्नकी आधिक्य रिने सिवाये करके बाकी गारी किराय की थी।’

सुधार ऐस कहनेपर केहने बाकी प्रसक्तके सब अद्भुत आचरणवाले भगवान् पक्षधरकी ओर देखा। वे सब तो अद्भुत थे ही, उनके अन्तर की बाई अद्भुत थे। इनमें ही कलेशकी परम अद्भुत ऐस थी आ पहुँची, जो धूल-मल आदिसे संकट तथा भावा गलीसे सम्बन्ध थी। इनसे किराने ही सबदाका सब करण करके आये थे। किराने ही कलाकरी उत्तरवाधिक्य सवाय कष्ट करती थे। किन्हींके पैर देहे थे तो कोई अलग कृष्ण दिखती थे। कुछ बाई किराने थे। किन्हींका पैर दाही पैरसे भरा हुआ था कोई रिंगे थे तो कोई अंगे। कोई कष्ट और पल धरक किसे हुए थे तो किन्हींके हाथोंमें मुदर थे। किराने ही अपने बाह्य-नीके अन्दर चल रहे थे। कोई सींग, कोई कपल और कोई गोमुख बनाते थे, सबमेंसे किन्हींके तो पैर ही नहीं थे। किरानोंके मुख पीछकी ओर लगे थे और बाह्योके कर्तने मुख थे। इसी तरह कोई बिना हाथके थे। किन्हींके हाथ

अन्दर सब रहे थे और किरानोंके कर्त-से हाथ थे। किराने ही नेमहीन थे, किन्हींके कर्त-से नेम थे। किन्हींके पैर ही नहीं थे और किन्हींके कर्त लक्षण पैर थे, किन्हींके हाथ ही नहीं थे और किन्हींके कर्त-से कान थे। इस तरह सभी गत्व गयी प्रकारकी वेग-धरा काज किसे हुए थे। तब ! वे निम्न आचरणवाले अनेक प्रकार गत्व बाई हीन और भवेकर थे। इनकी कोई सीखा नहीं थी। मुने। तुमने शिगुनीका चरमनीको दिखाने हुए वेगसे कहा

‘कराने ! तुम बाइने भगवान् हाके सेवकोको देखो, फिर उम्मा भी दर्शन कराने।’ इन अनेक भुल-डोल आदि गलीको देखकर सिध लज्जाल भयसे काकुल हो गयीं। उन्हींके बीचमें भगवान् फेर की थे जो निर्गुन होने हुए भी परम गुणवान् थे। वे सुकलपर सवार थे। इनके बीच कुछ थे और उम्मा मुखसे लीन-लीन नेम। इनके अन्दर अज्ञाने विभूति लगी हुई थी, जो उनके रिने भुवजका कथ्य देती थी। बलकपर कटावट और कलमाका मुकट, दल हाथ और इनमेंसे एकमें कयाल रिने। इरीरधर काकधरका सुपुत्र और हाथमें विनायक एवं सिवाल, आँखें भयानक, अकृति किराल और हाथीकी रालका कल। यह सब देखकर सिवाकी मला बहुत डर गयी, किरान हो गयी, काकुल होकर कर्तने लगी और उनकी बुद्धि चकरा गयी। इन अनेकाने तुमने शिगुनीसे किराने हुए उनसे कहा—‘वे ही हैं भगवान् सिध।’ सुधारी यह कल सुनकर सती मेना बुःससे



भर नहीं और इसके छोटे बालक मिले हुए  
ललाटे समान तीन धुमिल निर पड़ी। 'यह  
कैसा विपदा दुःख है ? मैं दुःखाने पड़कर  
उगी नहीं।' वो बालक मेरा छोटा बाल  
होकरे अपनी। (अध्याय ४९-५१)



मेनाका विलाप, शिखरे साथ कन्याका विवाह व करनेका इष्ट, देवताओं  
तथा धीविष्णुका उन्हें समझना तथा उनका सुन्दर रूप धारण  
करनेपर ही शिखरों कन्या देनेका विचार प्रकट करना

महाश्री कहते हैं -अम्ह ! यह  
विचारमयिष्य सभी देवताओं का हुआ। नव  
वें अथवा श्रुत होकर विचारण एवं निरन्तर  
करने लगी। कहते तो उन्होंने अपने पुत्रीकी  
विपदा की इसके बाद वे तुम्हें और अन्तरी  
पुत्रीको दुर्लभ सुनाते लगीं।

मेरा योर्नो—तुम्हें। कहते तो तुम्हें यह  
कहा कि 'विपदा विपदा धारण करनेगी',  
पीछे मेरे पीछे विपदाका दर्शन कालका  
हुँ औराकन-पुत्रको लगाना। चहुँ इसका  
वकार्य भल का होता क्या ? विपदाका उक्त  
अनर्थकारी। धुमिल केने। तुम्हें कुछ  
अर्थ करीकी सब लगने लग गिया। फिर  
मेरी भेटने केस सब किया, जो धुमिलोंके  
मिलने की दुःख है, अपनी उस लवकाका सब  
फल किया, जो देखनेकान्तिसे भी दू लगे  
इसका है। हाय ! मैं क्या करूँ, कहाँ करूँ,  
कैसे मेरे दुःखको दूर करूँ ? मेरा दुःख  
आदि यह मेरा मेरे जीवनका भी काह हो  
गया। कहाँ गये वे दिव्य अग्नि ? पानी तो मैं  
अपनी काही में सब ले। अतिरुचि का  
सपिनी पीनी भी नहीं बर्त है, यह सब इस  
विवाहके लिये अम्ह कन्या आनी थी।  
व जलें विपदा-विपदा अन्तर्गत हो लगे  
मेरा सब कुछ लुप्त गया।

धुमिल हो गयीं। अथवा सविषयोने सब  
कन्या प्रकटके अन्तर्गत कन्या प्रकट  
लेना थी, नव निरन्तरमयिष्य मेरा योर्नो-पीरी  
होकरे अपनी। (अध्याय ४९-५१)

मेरा बालक मेरा अपनी पुत्री विपदाकी  
और देखकर उन्हें कटुवचन सुनाते लगीं  
'अरी तुम लक्ष्मी ! तुम सब योर्नो-आ काह  
किया, जो मेरे लिये दुःखान्ति सिद्ध  
हुआ ? तुम तुम्हें सब ही लोका केस करीब  
करीब है, अन्तर्गत होकर अपने आर्तोंमें  
जीवनका केस कर दिया। हाय ! हाय !  
इसके प्रकट तुम्हें विपदाके जोआ काह  
किया। अन्तर्गतके दूर केसकर करीब  
काह कीया। प्रकट धारणी इसकी सुर्लभ  
होकरे कापुर्लभ धुमिलोंके भक्त। काल  
होकरे धुमिल सब ली। पी केसकर योर्नोके  
लेसका अन्तर्गतके योर्नो लगाना। विपदा  
अन्तर्गत होकर विपदाका लेसका किया।  
महाशक्ति होकर धुमिल पावना सब  
किया। कंटी ! तुम्हें धारणी लकी हुई बालकी  
कटुवचन विपदाके दूर होकर विपदाकी  
अन्तर्गतकी लल अपने कहने करीब ली,  
कालिक लगाना होहु विपदाओं और विपदा  
आदि विपदाके होकर अपनी धुमिलोंके  
कारण विपदाके धारणीके लिये देस सब  
किया ? तुम्हें, मेरी धुमिलों ही लगाने  
और मेरे धुमिलों की धारकर विपदा है।  
तुम्हें लगाना उन्हे देनेकाले नाटकके तथा  
मेरी लगाना करनेकाली होयी अतिरुचि







साधने अथवा पुत्री है देने तो मैं निश्चय ही अपना करीर त्याग दूँगी।

मेराने जब इसपूर्वक ऐसी बात कही, तब पासेली स्वयं आकर वह रमणीय वस्त्र खोलती : 'हाँ। तुम्हारी पृथ्वी तो बड़ी शुभकारक है। इस समय विदेशों के लोगें को राखी ? सर्वथा आवश्यक करनेवाली वस्त्रों की तुम कार्यवाही करने कोहूँ नहीं हो ? वे सबसे सस्ती कीमतों पर कारखानों से आता है, इससे बहुत दूरा कोहूँ नहीं है। सामान्य क्षुण्णियों को यह समझ है कि कपड़ा बनाने तुम्हें बहुत कष्टवाले बात सुनाई है। कपड़ाबनानेवाली कोहूँ बहुत समय केबादसे के बाकी गन्ध कार्यवाही है। इसके कप और कप आवश्यक है। सस्ती। खींचने और बहुत अधिक भी इसकी सेवा करते हैं। वे इसके अधिष्ठान हैं। कप, कप और कप हैं। विदेशोंकी इसका पड़ने नहीं है। वे तीनों देवताओं के आनी, अधिकारी एक सन्तान है। इसके लिये ही सब देवता विदेशों लिये तुम्हारे इसका वस्त्र है और सस्ती कप रहे हैं। इससे बहुत सुखकी बात और कप हो सस्ती है। अतः कपपूर्वक छोटी और जीवन्त सस्ती करो। मुझे विदेशों के इससे लीन हो और अपने गृहस्थान्त्यको सस्ती करो। हाँ। मुझे बरमेरु प्रकाशकी देवता दे दे। मैं सब तुमसे वह बात कहती हूँ। तुम मेरी इच्छा की ही विदेशी कप रहे। यदि तुम इसके इससे मुझे नहीं छोटी हो मैं तुम्हें किसी वस्त्र धारण नहीं करूँगी; क्योंकि जो विदेशों का है, उसे दूसरोंको उल्लेखित लिये करने का शक्य है ? हाँ। मैंने सब, कप और विदेशोंका सब इसका धारण किया है, इसका

ही वस्त्र किया है। अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वह करो।'

साधने कहते हैं—बाद। कर्मीकी यह सब सुनकर ईश्वरविद्या में बहुत ही उत्तेजित हो गयी और कर्मीकीको छोटी हुई पूर्वक कपड़ा होने का विचार करने लगी। कपड़ा कप लिये सब कपकादि विदेशों की मेराने बहुत समयका। वस्तु के विदेशों की कप न बनकर कपको छोटी रही। इसी लिये इसके बहुत सब मेराने इसकी बात सुनकर विदेशों का कप विदेश की सुन गई अब पड़ने और कप प्रकाश करते।

विदेशोंका कप। देव। तुम विदेशोंकी कपकी पुत्री एवं कप कप ही जारी हो। सब ही विदेशों विदेशोंकी 'गुणकी' नहीं हो। इस प्रकार तुम्हारे कपका प्रकाश प्रकाशोंके प्रकाश कहते हैं। मेराने तुम्हारे कपका की देने ही है। तुम कप हो। मैं तुमसे कप कहूँ ? तुम को कपकी आवश्यकता हो, फिर कपका सब करने करती हो ? तुम्हीं अपनी मरु लोको तो सही। सन्तान देवता कप, कपकी और मैं—अभी सब विदेशों का ही नहीं कहते ? तुम विदेशों नहीं बनती। वे विदेश की है और सन्तान की है। कपकी की है और सन्तान की। सबके लिये सब सन्तानोंके आशय है। इसीसे कपकाकीकता की ईश्वरीय विदेशों का और कपके कपकी पुनर्गन्तव्य विदेशों कपके विदेशों। कपकी लोकोसे सन्तान-कपके मेरी सब कपकी प्रकाश हुई। फिर लोकोके विदेशों कपके लिये वे कप की कप-कपके प्रकाश हुए। सन्तान के, देवता सब कपका-कपकाके लो कप विदेशों की है, सब सन्तान की कपका केकरसे ही





मोहित हो गयीं। सिपायों के वर्तमानों द्वारा की गई प्रशंसा को बेधपूर्ण सहायता देते-जारी रखीं। अंग्रेजों की इस भूमिकाओं अपने मनोबल को सिद्ध करने के लिए प्रकाश बोली।

पर्यासिनिये

का - आदि ।

हिमालयके नगरमें विद्यालय करनेवाले लोगोंके बीच आजका समय हो गये। जिस-जिस व्यक्तिने इस विद्यालयका स्वीकार किया है, विद्यालय ही उसका जन्म साधन हो गया है। उसीका जन्म भरण है और उसीकी पूर्ण शिक्षा ही भरण है, जिसने सचमुच पापोंका नाश करनेवाले महात्मा विद्यालय स्वीकार किया है। धार्मिकोंने विद्याके सिन्धे को नष्ट किया है, उनके द्वारा कर्मोंमें अन्धरा घड़ोरक बिड़ल बन गया। विद्याकी पत्तिके समयमें पाठशाला में विद्या जन्म और फलफूल हो गयी। यदि विद्यालय विद्या और विद्याकी इस [ ] जोड़ीको सत्यदृष्टि-दृष्टीसे धिक्क व देखें तो उनका जन्म परिणाम

विष्णुदेव हो जाता। इस उगम जोड़ीको निरुपकार प्रह्लादजीने बहुत अच्छा कार्य किया है। इनसे सबके सभी कार्य शार्ङ्ग हो गये। ब्रह्मादेवके विना मनुष्योंके निम्ने भ्रमणका दर्शन दुर्लभ है। जगन्मान् होकरके दर्शनभावसे ही सब लोग कृतार्थ हो गये। ओ-ओ सबेश्वर निरुपकारि प्रह्लादका दर्शन करते हैं, वे सारे बुद्ध ब्रह्म हैं और हम सारी निर्धर्म भी बन रहे हैं।

[illegible]

☆

प्रेमाहार द्वारा पर भगवान् शिक्षका परित्यक्त, उनके रूपको देखकर संतोषका अनुभव, अन्तर्गम्य प्रवृत्तियों द्वारा धरती प्रशंसा, पार्वतीकर्म अभिव्यक्ति।

पूजनके लिये बाहर निकलना तथा देवताओं और भगवान्  
शिवका उनके सुन्दर रूपको देखकर प्रसन्न होना

कलमाजी कहते हैं—बरस ! हिमालय  
कलमाजी हिम प्रसन्नचित्त हो अपने चमके,  
हाथों सेनाओं तथा अन्य श्रेणियोंके साथ  
सौभाग्यपूर्वक गिरिगण हिमालयके पार्श्वमें  
गढ़े। हिमालयकी बहुत बड़ी सेना भी उन  
शिखरोंके साथ घाटके नीचे गड़ी और  
शम्भुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें  
दीपकोंमें सजी हुई बाली लेकर सभी

सन्निविष्टानि च यथा अन्य विघ्नोक्तं साध  
आनन्दपूर्वकं हृत्परं जायते । यद्यं आनन्द  
येनाये सम्पूर्णं देवताओंसे लेकित गिरिआपति  
मोहक भोजनस्थले, जो हृत्पर उपस्थित थे, बड़े  
प्यारसे देखा : उनकी अङ्गकायि मनोहर  
समस्तके सम्पन्न थीं । उनके एक मुख और  
दोन नेत्र थे । प्रमत्त भुस्वारविन्दपर मन्द  
मूलकअन्की हृत् हृत् कर रही थीं । वे राज और















शिवके विचारका क्रमद्वारा, उनके द्वारा दक्षिण-विनाय, घर-बधूका कोद्वारा और वास्तविकता में जाना, जहाँ स्थितियों का क्रम से लोकाचारका धारण कराना, रमिकरी प्रार्थनासे शिवद्वारा कामको जीवनदान एवं घर-प्रदान, घर-बधूका एक-दूसरेको मित्राण भोजन कराना और शिवका जनतासे लोकाचार

कालाग्नी काली है चारु । तब-तब  
 मेरी आज्ञा पालन प्रवेष्टाये प्रामाण्यपूर्ण  
 अतिथि सत्कथा प्रवचनी और चर्चा-विषये  
 अपने अपने विद्वान्तर सब सन्धि, कर्तव्य  
 सब सन्धि-विषये सन्धि-विषये अतिथि आर्त-नर्त  
 ही । तब ! तब सन्धि सन्धि-विषये, आर्त-विषये  
 सन्धि-विषये अतिथि ही और सन्धि-विषये  
 सन्धि-विषये अतिथि सन्धि-विषये सन्धि-विषये  
 सन्धि-विषये अतिथि सन्धि-विषये सन्धि-विषये

[illegible][illegible]

\* अधिकारी को भी आहूति देना चाहते हैं। अतः इससे संबंधित कार्य में सुधार करने की आवश्यकता है। यह भी ध्यान रखना है कि अधिकारियों के बीच एक-दूसरे से सम्बन्ध बनाने की आवश्यकता है।



जीवित होनेवा हो अपनी जिंदा कर्मात्मिक सत्य  
असत्यता सुनकर विचार करियुक्त होगा। इससे  
संशय नहीं है। तबेष्टर ! अन्य सत्य कुछ  
करनेसे सम्भव है; क्योंकि अन्य ही सत्येश्वर है।  
कहाँ अधिक करनेसे क्या लाभ ? तबेष्टर !  
आप सीता से कहिये जीवित करेयिजे।

ऐसा कहकर रीति के चौराहे से एक दूसरा  
कामदेवके शरीरका धाम समझते है दिया  
और उनके सामने 'हा नमः' 'हा नमः'।  
कहकर चले गये। रीति का सत्य सुनकर  
हरमन्त्री आदि सभी देवियाँ रोने लगीं और  
आत्मका हीन वाणीसे बोली—'बन्धो ! आत्मका  
धाम समझकर है। अन्य हीनत्वानु और शत्रुके  
संगत है। अन्य कामदेवके जीवितमान हीनके  
और रीतिके शत्रुद्वारा जीवित। आत्मको  
बचकर है।

प्रजाको यन्त्रे है—काम ! इन सबकी  
का नाम सुनकर बड़ेतर प्रसन्न हो गये। उन  
कामकासागर बंधुने लक्ष्मण ही रीति का कृपा  
की मन्त्रान् ध्यानस्थितकी अभ्युत्थकी बुद्धि  
पड़ते ही पाली-जैसे अन्य को और विद्वत्ते कुछ  
अज्ञान बुद्धिधारी सुनकर कामदेव उन चमकते  
प्रसन्न हो गया। अपने कर्मको सेने ही अन्य  
आत्मिक, सत्य ब्रह्मन् और कर्म-कामदेव कुछ  
हैल रीति के बड़ेतरके प्रजाय किया। वह  
कुतार्थ हो गयी। अपने प्रजाकायकी प्रति  
करनेवाले मन्त्रान् सिक्कत अपने जीवित  
पतिके साथ साथ जोड़कर चारों तरफ  
किया। यहीमन्त्र कामदेव की बुद्धि ब्रह्मिके  
सुनकर दयार्थप्रद धनवान् संकाम अत्यन्त  
प्रसन्न हुए और इस प्रकार चले।

संभवे काम-कामदेव । यहीमन्त्र  
सुनते जो बुद्धि की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ।  
कर्म प्रसन्न होनेवाले काम ! तुम बर मांगो। मैं  
तुम्हें कर्मप्रसन्न कर दूँगा।

कर्मप्रसन्न वह मन्त्र सुनकर कामदेव  
पहले अन्तराले मन्त्र को गया और हाथ जोड़  
कामका ब्रह्मकार मन्त्र ब्रह्मिके बोला।

कर्मप्रसन्न काम—कामदेव ब्रह्मिके !  
कर्मप्रसन्नका प्रसन्न ! यदि आप ब्रह्मिके प्रसन्न  
हैं तो मैं रीति आत्मप्रसन्न होऊँ। प्रसन्न  
धर्मप्रसन्नके सेने जो अन्तराल किया कर, उसे  
अन्य करिये। अन्तरालके प्रति बरस देम और  
अन्य बरसकी धर्म दीजिये।

कामदेवकी वह कर्म सुनकर परदेष्टर  
कर्म प्रसन्न हो बोले—'कर्म अन्तर ! इसके  
कर उन कर्मप्रसन्निके हीनकर ब्रह्म—'मन्त्रको  
कामदेव ! मैं तुम्हारा प्रसन्न हूँ। तुम अपने कर्मके  
धर्मके निकलने से। कामका विष्णुके पास  
जाओ और उन बरसे बाहर हो गये।'

मन्त्रका काम निष्कर्मिके प्रजाय कामके  
कर्म को गया। विष्णु आदि कर्मकाभीने उसे  
आधीर्धर्म दिया। इसके बाद मन्त्रान् रीतिके  
उन कामप्रसन्नके कर्मकीसे कावे विराकर  
मन्त्रान् कर्मका करार और चारों तरफ  
प्रसन्नप्रसन्नक अन्तरा में ही चौरा  
मन्त्रका कई लोकप्रसन्नका चालन करते हुए  
अन्तरालक काम करके गया और विष्णुकायकी  
अन्तर से मन्त्रान् विष्णु ब्रह्मिकेसे चले गये।  
सुने ! अब लक्ष्मण ब्रह्मन् प्रसन्न हुए और  
कर्मप्रसन्नकी धर्म होने लगी। लोग चारी  
प्रकारके' कर्म ब्रह्मन् लक्ष्मण ब्रह्मिकेसे अपने

स्वस्त्यपर पूर्वोक्तकर सिद्धने लोकप्रसारण  
मुनियोंको प्रणम्य किया। श्रीहरिको और  
मुझे भी सलत्क प्रकृत्या। फिर तब वेदाङ्ग  
आदिने उत्तरी सन्तना की। उस समय चर्चा  
जय-जयकार, कमलधर तथा समस्त  
विश्वोत्तर विनाश करनेवाली सुष्मदिविनी  
सेद्वधनि भी होने लगी। इसके बाद मैत्रे,  
भगवान् विष्णुने तथा इन्द्र, ब्रह्मा और  
सिद्ध आदिने भी शिखरकी स्तुति की।

निश्चिन्तनकक पक्षधरकी स्तुति करके वे  
विष्णु आदि देवता प्रसन्नतापूर्वक उनकी  
पञ्चोक्ति सेवार्थे लग गये। तत्पश्चात्  
स्त्रीलभपूर्वक शरीर धारण करनेवाले पक्षधर  
इष्टमुने उन सत्त्वको सम्मान दिया। फिर उन  
वरपक्षधरकी आज्ञा पाकर वे विष्णु आदि  
देवता अत्यन्त प्रसन्न हो अपने-अपने  
विश्वमयस्थानको गये।

(अध्याय ४९—५१)



## रातको परम सुन्दर सजे हुए वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल भगवान् शिवका जनबासेमें आगमन

महाजी कहते हैं काल। मदनकर  
भाव्यकालमें स्रेष्ठ और कलुर निर्गिरास  
हिमवापने वारासियोंको भोजन करनेके  
लिये अपने अतिथिको सुन्दर रंगले सज्जता  
तथा अपने पुत्रों एवं अन्यत्र कार्यको  
धेजकर शिवसहित सब देवताओंको  
भोजनके लिये बुलाया। उस सब लोग आ  
गये, तब अन्तमें बड़े आदरके साथ  
इष्टाभेतय भोज्य पञ्चोक्ति भोजन करता।  
भोजनके पश्चात् राघ-पूज को, वृत्तमं  
करके विष्णु आदि सब देवता सिद्धाभेत  
लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने द्वारेमें  
गये। येनाकी आज्ञासे शक्ती शिवने  
भगवान् शिवसे भक्तिपूर्वक प्रार्थन करके  
उन्हें महान् उत्सवसे परिपूर्ण सुन्दर  
वासभवनमें रहारा। येसके दिये हुए  
मनोहर राज-सिंहासनपर बैठकर आनन्दित

हुए। तबने उस वासमन्दिरका विरीक्षण  
किया। वह वस्त्र प्रचलित हुए सैकड़ों  
रत्नमय प्रदीपोंके कारण अद्भुत प्रभावे  
उद्गमित हो रहा था। वहाँ रत्नमय धातु  
तथा रत्नोंके ही काफ़ी रत्ने थे। मोती  
और पत्थरोंके द्वारा रत्नमय जगमगा रहा  
था। रत्नमय दर्पणकी शोभासे सम्पूर्ण तथा  
केत केवलेसे आलङ्कृत था। मुक्तापथियोंकी  
सुन्दर धारवाओं (केतुवारों) से आलेखित  
हुआ वह वासभवन बड़ा समृद्धिनाली  
विशाली देव था। इसकी कहीं समा नहीं  
थी। वह महारिषि, अतिथिविशिष्ट, परध  
मनेहर तथा मनके आङ्गार प्रधान  
करनेकाल का। इसके फलपर जाना  
प्रकारकी रचनाएँ की गयी थीं—केल-  
कुटे निकलने गये थे। शिवजीके लिये  
हुए करका ही महान् एवं अनुमय प्रभाव

तत्पश्चात् विस्तार हो—जैसे खीला, सिद्ध आदि ९ लिये पक्षधर वसता गया हो। वह 'आनन्द' वसतागता  
है—जैसे तोल, मूर्ति, नगर आदि। जिसमें केत हो और उसमें इन्द्र भान्तर रत्न निकलता जाता हो। उसे  
'मूर्ति' कहते हैं—जैसे वंशी, लङ्का, विष्णु, हारमोईनका आदि। कसिक जहाँ उदित हो 'धन' कहते हैं।



चतुर्थीकर्म, बारातक कई दिनोंतक ठहरना, सप्तविंशोके समझानेसे हिमालयक बारातको विदा करनेके लिये राजी होना, मैनाका शिवको अपनी कन्या सौपना तथा बारातक पुगीके बाहर जाकर ठहरना

बारातजी काते दे—तबजना विष्णु आदि देवता तथा उग्रि कैलास लोटनेक विचार करके लगे । तब हिमालयके ऊपरमेसे आकर राजाके भोजनके लिये निर्मलजल दिया । तबहुता खेचर शिवको अलगअलग करके हिमालय अपने घरका गले और जना प्रकारके विधानके खोजखोजकरकी पैकारी करने लगे । उन्होंने प्रसन्नता और प्रसन्नताके साथ खोजवक लिये परिकारसहित बगवान् शिवकी सम्पत्ति लीले अपने घर बगवान् । हाथके, विष्णुके ये अन्य सब देवताओंके, शिवकोके तथा कई अन्य देव अन्य सब लोगोके भी घरकोके बड़े आदरके साथ दोकर उन सबको गिरिराजके मण्डपके भीतर सुन्दर आसनकेर बैठारवा । फिर अपने भाई-बन्धुओंको साथ लेकर उनके सङ्गोसंगे उन सब अतिथिकोके साथ प्रकाशके तरंग कटाईद्वारा कुर्सीका सुप्र किया । धीरे, विष्णुके तक सभके साथ सब लोगोंने अच्छी तरह भोजन किया । जगद ! विधिकान् भोजन और अचभन उनके धुन और प्रसन्न हुए सब लोग विधानकेसे आजा ले अपने-अपने होकर गये । चुने ! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजके विधिकान् राज, मन और आदर आदिके द्वारा उन सबका सन्मान किया । चौथा दिन आनेपर शुद्धतापूर्वक सविधि चतुर्थीकर्म हुआ, जिसके बिना विवाह-व्रत अधूरा ही रह जाता है । इस समय सारा प्रकारका उदम हुआ । माधुकर और जग-उदकागकी सवि हुई ।

कह-उ सुन्दर राज दिने गये । धर्मि-धर्मिके सुन्दर मन और रूप हुए । चौथे दिन सब देवताओंके बड़े हर्ष और आनन्द केके साथ शिवराजको मुक्ति दिया कि 'अब बगवान् काते मेरा बारात है । अब आज्ञा प्रदान करें । उनके का का सुन गिरिराज विधान् सब ओकर कोरे—'देवता । अत्यन्तेश कुछ दिन और इधरे तथा बगुन कृपा करें ।' वो बगुन इधरे कोरेके साथ उन देवताओंको भगवान् शिवको, विष्णुको, ब्रह्मको तथा अन्य लोगोको बहुत दिनोंतक ठहरना और प्रसन्नित चित्तके आदर-सन्कार किया ।

इस प्रकार देवताओंके बड़ी रहने हुए कृपा दिन बीत गये, तब उन सबके गिरिराजके पास सप्तविंशोके भेज । सप्तविंशोके विधान् और वेनासे सम्पत्ति साथ कटकर उन्हें सज्जता, परस विधानकेर करीब किया तथा प्रसन्नतापूर्वक उनके लै-बगुनकी सज्जता की । चुने ! इसके समयमेंसे गिरिराजके शासनको विदा करना सन्कार का किया । तबहुता बगवान् सन्धु बारातके लिये आज्ञा हो देवता आदिके साथ शिवराजके पास आये । खेचर शिव देवताओंकेर कैलासकी बारातके लिये अब आज्ञा हुए, उन समय वेना उधरसे रोये लगी और उन कृपाविधानसे बोली ।

मेरने कटा—बुझनिधे । कृपा करके मेरी विधाका पानीपति लगान-वाला करजिनेक । अब आपुतोच है । पानीके



सहस्रों अपराधोंको भी क्षमा करिजियेगा । मेरी 'बड़ी' कृपा-जगत्में आपके करणारविन्दोंकी चमक रही है और रहेगी । उसे सोते और जागते समय भी अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरी किसी बातकी सुच नहीं रहती । मृत्युक्षण । आपके प्रति भक्ति-भावकी बातें सुनते ही वह हर्षके आँसु बहाती हुई मुलजिता हो उठते हैं और आपकी निष्ठा सुनकर ऐसा पौरव साथ लेखी है, मानो घर ही गली हो ।

तथाजी कहते हैं—जगद ! ऐसा कहकर येनकासे अपनी बेटी शिवको लेण ही और उस दोनोंके साथसे ही उल्लसते मेरी हुई वह प्रार्थना ही गयी । तब वहदेवकीने

येनाको समझकर सचेत किया और ठनसे छिद्र ले देवताओंके साथ भगन् उत्सवपूर्वक काज की । वे सब देवता अपने स्वामी शिव की सेवाकरणोंके साथ सुधन्य कैलास पर्यंतकी ओर प्रस्थित हुए । वे मन-ही-मन शिवका शिवन कर रहे थे । हिमाचलपुरीके ऊहरी बगीचेमें आकर शिवसहित सब देवता इव और अष्टाशुके साथ रुहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे । भूनीहार ! इस प्रकार देवताओंसहित शिवकी श्रेष्ठ वातावरण वर्णन किया गया । जब शिवाकी वातावरण वर्णन सुनो, जो विरहमय और आनन्द दोनोंसे प्रयुक्त है ।

(अध्याय ५३)

५४

## येनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मण-पत्नीका पार्वतीको पतिव्रतधर्मका उपदेश देना

तथाजी कहते हैं—जगद ! तदनन्तर सप्तविंशमे द्विचक्रमसे कहा—'गिरिराज ! अब आप अपनी पुत्री पार्वतीदेवीकी पतिव्रत धर्म प्रवचन करें ।' भूनीहार । यह सुनकर पार्वतीके माँगी विरहमय अनुभव करके गिरिराज कुछ कालसक अधिक प्रेमके कारण शिवासे पूरे रह गये । कुछ देर बाद सचेत हो ईश्वरजीने 'नवास्तु' कहकर येनाको भेदित दिया । मुने ! द्विचक्रमका संदेश धातुर् हर्ष और शोकके लक्षणोंका हुआ येना पार्वतीको शिक्षा करनेके लिये उठन हुई । ईश्वरजीकी प्यारी पत्नी येनाने विधिपूर्वक वैदिक एवं श्रेष्ठिक कुरणकसक खसक किया और उस समय नाना प्रकारके उत्सव बनाये । फिर उन्होंने नाना प्रकारके सजावट सुन्दर वस्त्रों और सारह आभूषणोंका

सज्जित भूझ करके पार्वतीको विभूषित किया । तबब्रह्मा येनाके मनोभावको जानकर एक बली-सखी ब्राह्मणपत्नीने गिरिराजकी उमम पतिव्रतकी शिक्षा दी ।

वास्तव-पत्नी नोली—गिरिराज-भित्तोरी ! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुने । यह धर्मसे ब्रह्मदेवाला, इहलोक और परलोकमें भी आनन्द देनेवाला तथा ओकओंको भी सुखकी प्राप्ति करानेवाला है । संसारमें पतिव्रता बारी ही अन्य है, दूसरी नहीं । बड़ी विश्वेश्वरसे पूजनीय है । पतिव्रता सब लोगोंने पवित्र करनेवाली और समस्त कपराधिको गृह कर देनेवाली है । शिवे जो पतिव्रते परमेश्वरके समान मानकर प्रेमसे उपासी सेवा करती है, वह इस श्रेष्ठमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें











ඉන්දියානු සංගීතයේ ප්‍රධාන ලක්ෂණ

कुछ यह समझना था ? इसी समय अपने  
 समस्त भुजों, भविष्यों और उनमें प्रादुर्भावके  
 साथ विनाशका सीमा नहीं जान सकते और  
 मोहमात्र अपनी सर्वोच्च बुद्धिसे समझना  
 सैने लगे । 'केटी ! तुम क्यों सोचकर नहीं  
 जाती कि तुम ही हो ?' ऐसा कहकर उसके  
 बगलको घुमा मारने हुए वे कंधेदार विनाश  
 करार लगे । यह जानिकोने देत प्रकाशको  
 अपने प्रादुर्भावके समझनेके समझनेके  
 अन्तर्भावविनाशके अन्तर्भाव के हुए समझने  
 सुवाद रीतिसे समझना । सर्वोच्च भवि-  
 धावके साथ विनाश तथा मृत्युके अन्तर्भाव  
 विना । के समझना होकर भी अन्तर्भावका  
 बार-बार से उत्पत्ति थी । सर्वोच्च सैनेके ही  
 साथ विनाश के अन्तर्भाव थी । समझने के  
 बहुत रोनी । अन्तर्भाव ही सैने मारी । यह  
 वला अन्तर्भाव ही । विनाश ही अन्तर्भाव  
 तथा अन्तर्भाव अन्तर्भाव बार-बार सैने  
 लगी । यह और विनाश ही अन्तर्भाव और  
 अन्तर्भावके रोने विनाश 'यह सैने' । यह समझने  
 प्रादुर्भावके विनाशके अन्तर्भाव अन्तर्भावके  
 समझना और यह भुजिका विनाश ही अन्तर्भाव  
 निम्ने की वला अन्तर्भाव तथा सुवाद तथा है ।

[illegible]

पुनर्गठित और छात्रमोक्षोत्तम चर्चासत्रों और क्लबों विचारोंको प्रकाश करके जाता है। पुनर्गठित युद्धमन्त्र विचारमन्त्र भी चर्चाके कलाभूत हो गये-बीजे गये और उस प्रकाशन मध्ये, कहीं ऐलनमोक्षमित्र प्रकाशन विचार प्रकाशनापूर्वक प्रतीक का रहे थे। वहाँ प्रकाश मध्ये प्रकाश और प्रकाशको प्रकाश विचार। इस प्रकाश प्रकाशको प्रकाश विचार और प्रकाश प्रकाश करते हुए वे पुनर्गठित प्रतीक गये।

[illegible][illegible]

[illegible]

सात ! इस प्रकार की वस्तु बहुमूल्य  
हिल-बिलाहिल चर्चित हिन्दा । यह  
सोचनावला, अन्तर्भावला तथा यह और  
आधारी वृद्धि करनेवाला है । जो वस्तु

[illegible]

(संलग्नक ५५)



॥ सत्यसंदिग्धपत्तः पार्थिवीस्यस्य सम्पूर्णः ॥





## रुद्रसंहिता, चतुर्थ (कुमार) खण्ड

देवताओं द्वारा स्कन्दका शिशु-पार्वतीके पास लपटा जाना, उनका लड़-  
प्यार, देवोंके माँगनेपर शिवजीका उन्हें तारक-बधके लिये स्वामी  
कार्तिकको देना, कुमारकी अश्वभूतामें देवसेनाका प्रस्थान,  
महीमागर-संगमपर तारकासुरका आना और दोनों  
सेनाओंमें घुठपेड़, वीरघट्टका तारकके साथ घोर  
संग्राम, पुनः जीहरी और तारकमें भयानक युद्ध

यहो कन्दर्पकृतमन्त्रविशेषः केन्द्र  
पूर्व पुराणं तन्मन्त्रोत्पत्तिश्चैव विदुः ।  
सर्वं ज्ञानाय विनाशाय च सर्वत्र यथा

विष्णुसंहिता ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

कन्दर्प कर्मके विन्यास का प्रसंग हो  
जाता है, लिये वेच अत्यन्त सारा है, जो वेच  
ब्रह्म करनेवाले पूर्णमन्त्रक, भगवन्की  
अभिलषा पूर्ण करनेवाले, सम्पूर्ण देवताओंके  
एकमात्र आकाशकाल और समस्तकाल  
हैं, सब विन्यास शिविष्ट है, जो अत्यन्त है,  
विन्यास शेष है विन्यासकालिप्त है, जो  
सामग्रिक रूप सत्य-प्रधान है, ज्ञान और  
विष्णु विन्यास शक्ति करते हैं, लोक-जगत्  
हारी भारत करनेवाले उन भारत  
लोककी ये अन्तःकरण हैं ।

श्रीनारदजीने पूछा—देवताओंका बहुत  
करनेवाले देव ! परमेश्वर लिये तो  
सर्वत्रार्थ है । आत्माराज होकर भी उन्होंने  
लिये कुतकी कल्पितके लिये शरीरके लिये  
विद्या किन्तु वह, उनके लिये पुन किन्तु  
जगत् उत्पत्ति हुआ ? तब तारकासुरका  
बध कैसे हुआ ? जगत् ! कुतकर कृपा  
करके वह अन्तःकरण पूर्णमन्त्रके वर्णन  
कीजिये ।

इसके उत्तरमें जगत्जीने कन्दर्पसुर  
सुनाकर कुमारके लक्षणोंके अन्तःकरण होने तथा

कुतिका आदि छः शिवोंके द्वारा उनके पाले  
जाने, उन छहोंकी संतुष्टिके लिये उनके छः  
सुर आत्म शरीर और कुतिकाओंके द्वारा  
जाने जानेके कारण उनका 'कर्मविशेष' नाम  
लेनेकी बात कही । कर्मपर उनके शक्ति-  
विशेषकी लेखमें लगे जानेकी बात  
सुनली । फिर जगत्जीने कहा—यगन्त  
जगत्के कुमारको मोदने शीघ्रकर आत्मन्  
को विन्यास देवताओंके उन्हें सारा जगत्के  
कर्म, विद्या, शक्ति और अन्तःकरण  
जगत् लिये । पार्वतीके जगत्में वेच अत्यन्त  
की वह, उन्होंने पूर्णमन्त्र कृपाकरकर  
कुतिकाके वाधेलय शेष जगत् विन्यास,  
सब ही शिवजीकी भी सारा विन्यास लक्ष्मीने  
विन्यास कर्म एक विन्यास एवं मनोहर  
द्वारा अर्थित किया । शिवजीने उत्तर होकर  
लगी सिद्धिवादी जगत् की । कुतिका !  
इत तबकर नहीं लोत्तय सारा सारा ।  
लक्ष्मीके सत्य प्रसन्न हो । विदोषतः शिव और  
पार्वतीके अत्यन्त पार नहीं था । इसी  
वीच देवताओंके जगत् जगत् जगत्—  
जगत् ! वह तारकासुर कुमारके द्वारा ही  
जगत् जानेका है, इसीलिये ही वह  
(पार्वती-वीरगात्र तथा कुमारोत्पत्ति आदि)  
अन्तःकरण शक्ति शक्ति हुआ है । अन्तः  
जगत्जगत्के सुखार्थ उत्पत्ति काय तथा

करनेके हेतु कुमारको अज्ञा होसके।  
इसलिये अन्ध ही अन्ध-पारको सुसज्जित  
होकर तारकको पारनेके लिये रज खाता  
करेगे।

साहसी करने है—कृपे ! यह सुनकर  
भागवान् संकरका इतना डरवाँ हो गया।  
इन्होंने इनकी आशंका कोकरा करने की  
बहुत तारकाला यह करनेके लिये अपने पुत्र  
कुमारको देखाओंको रज दिया। फिर तो  
विचारीकी अज्ञा मिल जानेवा लला विष्णु  
आदि सभी देवता एकत्र होकर गङ्गाके अपने  
करके नृप ही उन परीक्षा को कर दिये। उस  
समय श्रीहरी आदि देवताओंके करके पुत्र  
विचारक का (कि वे अन्धम तारकाला रज  
कर दानेगे), वे भागवान् संकरके बंधने  
वाला हो कुमारके सेवकसिवाये भागवान्  
शेखर करनेके लिये (सज्जनके) आगे।  
उस ब्रह्मकी तारकाने उस देवताओंके पुत्र  
पुत्रकोलोकले पुत्र, यह सब भी एक विचारक  
देवाके साथ देवाले पुत्र करनेके लिये  
सज्जन ही कर रहा। इसकी उस विचारक  
वाहिनीको आनी देव देवताओंको कर  
विचारक हुआ। फिर तो वे सज्जनके करकार  
सिंहवा करने लगे। उसी समय नृप ही  
भागवान् संकरकी प्रेरणाले विष्णु आदि  
सज्जन देवताओंके प्रति आकाशवाणी हुई।

आकाशवाणीके उक्त—देवता ।  
सुखलोक को कुमारके अधिकारवाणी पुत्र  
करनेके लिये उक्त हुए हैं। इससे पुत्र  
संकराने देवताओं को जंगल विहारी होओगे।

साहसी करने है—कृपे ! उस  
आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंका  
उत्साह बढ़ गया। इसका यह जगता यह और  
वे बीरोलिन रात्री का करने लगे। इसकी पुत्र-

कायक करवाणी हो उठी और वे  
सब-के-सब कुमारको आनी करकर बड़ी  
अच्छातीके साथ लीलागा-संगमको  
गये। उस ब्रह्मलोक असुरोले विरा हुआ  
यह लाल भी बहुत बड़ी सज्जन के साथ सीध  
ही बड़ी आ लाल, लड़ी वे सभी देवता  
लगे थे। उस समयके आगमन-कायको  
अच्छावाणीके मेरुके सज्जन करीना  
करनेवाली लालीकी मल अन्धम करीना  
सज्ज करनेवाले लालका यह रहे थे। उस  
समय अन्धमपुरके साथ आनेवाले देव  
सब इनको पुत्र करीना कर रहे थे। इनके  
करवाणीके पुत्री करीना उनी ही। उस  
अन्धम करकर कोलालाकरके सुनकर भी  
सभी देवता विचार ही लगे रहे। वे एक साथ  
विचारक भागवान्पुरके लोहा लोहा लिये  
उत्तरी लगे हो लगे। उस समय देवराज इन  
कुमारको गजराजका कीडका लाले आने  
उत्त हुए। वे लोहावाणीके लिये पुत्र वे और  
इनके साथ देवताओंकी लाली लाल थी।  
गजराज कुमारके उस गजराजको तो  
लालकी ही दे दिया और वे लाल एक देवे  
विचारकर आकाश हुए, वे लाललालका  
लाल लाल उक्तकाके लाले सुसोधि लाल।  
उस समय उस विचारक लाल होनेसे  
सज्जनलालका लालवाणी होकर-पुत्र कुमार  
उत्तरी लाले लालका होकर लालोधि हो  
रहे थे। इसका लाल उक्तलाल लाल लाले  
लाल रहे थे। इसी लाल करवाणीकी लाल  
लालीके लाल और देव लालके लालका  
होकर लालका पुत्र करने लगे। उस समय  
देवताओं और देवताके लाल लालका पुत्र  
हुआ। अन्धमको ही लाली लाली लाल-  
लालीके लाल हो लाली।







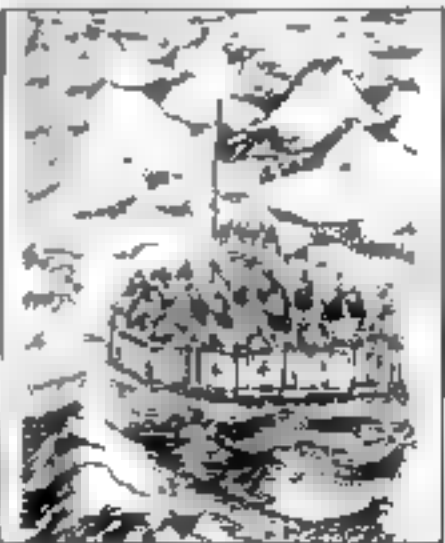
आनन्दमय हो गये। जो कुमारको विजयी देखकर एक साथ ही सम्पूर्ण देवताओं तथा त्रिलोकीके समस्त प्राणियोंको प्यार अलसद् प्राप्त हुआ। उस समय कनकान् होकर भी कार्तिकेयकी विजयका समझकर प्यार प्रसन्नतासे बर गये और पार्वतीजीके साथ गणोसे भिरे हुए बड़ी बजारे। तब विजयके इशारे सोह मरकत नहीं था, वे पार्वतीजी पास उपस्थित दुर्गके सख्य सेवकी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदसे लेकर लह-प्यार करने लगीं। इसी अवसरपर अपने पुत्रोसे भिरे हुए विजयको कन्ध-बागको तथा अनुपादियोंके साथ आकर कन्ध, पार्वती और गुरुका स्नान किया। तबहुन सम्पूर्ण देवता, भूमि, विद्व और पारगोमे शिखण्डक कुमार, कन्ध और वरम प्रसन्न हुई पार्वतीजी स्तुति की। उस समय उपदेवोंने बहुत बड़ी पुष्प-वर्षा की। सभी प्रकारके बाले बजने लगे। विरोधकको उलकाय और नमस्कारके साथ धोकर उलकासे गिराये लगे। उस समय बड़ी एक मङ्गल विजयकेरव मवाया गया, जिसमें कीर्तकी विजेकाय की और तब स्वयं गने-कजनेके साथ तथा अधिकप्राधिक उलपोषसे प्यार था। भूने। तबका देवताओंमे प्रसन्नतापूर्वक वा-कजकन तथा हाथ जोड़कर भगवान् जगन्नाथकी स्तुति की। तबहुन स्वसे प्रसन्नित तथा अपने गणोसे भिरे हुए कनकान् वह जगज्जन्नी भक्तनीके साथ अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतको चले गये।

इसके तारकाको पता गया देवकार सभी देवताओं तथा अन्य समस्त प्राणियोंके पेड़ोपर ईंसी बोलने लगी। वे पञ्चिन्द्रीक होकरसुवन कुमारकी स्तुति करने लगे

‘वेम ! गुप्त कनकमेह तारकाका कनक करनेवाले हो, तुम्हें नमस्कार है। होकरकनक ! तुम पाण्डुराके प्राणोका उपहार करनेवाले तथा प्रसन्नतासुरके नि-कनक हो। तुम्हारा स्वयं वरम पवित्र है, तुम्हें स्वागत अधिकार है।’

इसानी कहते हैं। भूने ! जब विजय आदि देवताओने इस प्रकार कुपारका स्वयं किया, जब उन तबुने सभी देवोंको कनकः तथा-नया कर प्रदाय किया। तबहुन पर्वतोको स्तुति करते देखकर वे होकर-तबक वरम प्रसन्न हुए और उन्हें बर ईंसी बुर बोले।

कन्दन कहा—भूचरो ! तुम सभी पर्वत कर्तव्योद्गता कुम्भीक तथा कर्तव्य और प्राणियोंके लिये सेवनीय होओगे। वे जो भी पर्वतक (भवा) पर्वतकोह विजय है, वे प्यार-वाप आगले तपस्वियोंके लिये प्यारुता होगे।



जब देवता बोले कुमार ! जो

अमुरराज तारकको मारकर तथा देवीको कर प्रदान करके तुमने इस समयको राजा बराबर जगत्को सुखी कर दिया। अब तुम्हें परम प्रसन्नतापूर्वक अपने पिता-पिता पार्श्वी और शंकरका दर्शन करनेके लिये शिवके निवासभूत कैलासपर चलना चाहिये।

महाशिव कहते हैं—सुने ! तदनन्तर सब देवताओंके साथ विमानपर बैठकर कुमार स्वयं शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये। उस समय शिव-शिवाने सब आनन्द प्रकाश। देवताओंने शिवजीकी लुम्बि की। शिवजीने उन्हें बरदान तथा अभयदान देकर

विदा किया। सुने ! उस अवसरपर देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे शिव, पार्श्वी तथा शंकरनन्दन कुमारके स्पर्णीय चरणों पर चलान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इस परमेश्वर शिव भी शिवा, कुमार तथा गणोंके साथ अन्तर्धर्मिक इस चरितपर निवास करने लगे। सुने ! इस प्रकार जो शिव-भक्तिसे ओतप्रोत, सुखदायक एवं शिव है, कुमारका वह सारा चरित्र मैंने तुमसे वर्णन कर दिया; अब और क्या सुनना चाहते हो ?  
(अध्याय ९—१९)

☆

शिवका अपनी मूलसे गणेशको उत्पन्न करके द्वारपाल-पदपर नियुक्त करना, गणेशद्वारा शिवजीके रोके जानेपर उनका शिवगणोंके साथ धर्मकर संग्राम, शिवजीद्वारा गणेशका शिरच्छेदन, कुपित हुई शिवका शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मत्ताय जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्श्वीको प्रसन्न करना, उनके द्वारा पुत्रको जिलाये जानेकी बात कही जानेपर शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लगया जाना और उसे गणेशके बड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

सूतजी कहते हैं—नारकादि कुमारके उत्पन्न एवं अद्भुत वृत्तान्तको सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पुनः प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीसे पूछा।

नारदजी बोले—देवदेव, ज्ञान तो शिव-सम्बन्धी ज्ञानके असाह सागर हैं। प्रबानाथ। मैंने स्वर्गी कर्मिकोंके सद्युत्तान्तको जो अप्रतमे भी उत्पन्न है, सुन लिया। अब गणेशका उत्पन्न चरित्र सुनना चाहता हूँ। आप उसका उत्पन्न-वृत्तान्त तथा

शिव चरित्र, जो सम्पूर्ण मन्त्रालोकके लिये भी महत्त्वपूर्ण है, वर्णन कीजिये।

सूतजी कहते हैं—महामुनि नारदका ऐसा धर्म सुनकर ब्रह्माजीका मन हर्षसे गन्द हो गया। वे शिवजीका स्मरण करने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—नारद ! पाँचों जो मैंने विधिपूर्वक गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन किया था कि प्रसिद्धी दृष्टि पड़नेसे गणेशका मतलब कट गया था, तब उसपर हाथीका

मुख लगा दिया गया था, वह कामवासना की प्रेरणा है। अब क्षेत्रज्ञत्वपणे प्रतिष्ठित हुई गणेशकी जय-कथाका वर्णन करता है, जिसमें कुवास्तु संकारने ही उनका मस्तक काट लिया था। मुने। इस विषयमें तुम्हें संदेह नहीं करना चाहिये, क्योंकि कल्याणराज्य कल्याणकारी, सुखिकर्त और सबको स्वामी है। वे ही सगुण और निर्गुण भी हैं। इन्हींकी हीनत्वसे होते विषयकी सृष्टि, रक्षा और विनाश होता है। मुनिभेद ! अब प्रलम्ब विषयको आदर्शपूर्णक अवकाश करो।

एक समय पार्वतीजीकी सदा-विजयनामावाली सलिली उनके कमर आकर विचार करने लगी—‘सखी ! अभी क्या खोजे हो ? नहीं, धुँड़ीं अति जो दुमारे हैं, वे भी बिचके ही आज्ञापालनसे तत्पर रहने हैं। जो अखण्ड प्रपञ्चगण है, उनमें भी हथारा कोई नहीं है। वे सारी विनाश-परायण होकर हारपर लड़े रहने हैं। क्योंकि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि हमसे हथारा बन नहीं मिलता; अतः पराजिते, आपकी भी हमारे लिये एक गवाही रचना करनी चाहिये।’

सहाजी कहते हैं मुने ! सब सलिलीयोंमें पार्वतीजीमें ऐसा सुन्दर चकन कहा, सब ऊँहोंने उसे दिनकारक ध्वनि और सेवा करनेका विचार भी किया। तदनन्तर किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, तब सहाशिक नदीका डरा-बधककाकर बरके पीछर चले आये। संकरबीक्रे आले देखकर स्नान करती हुई जगज्जननी पार्वती ठठकर खड़ी हो गयी। उस समय उनकी बड़ी लज्जा आयी, वे आश्चर्यचकित हो गयीं। उस अवसरपर उन्होंने सलिलीको

जबनको दिनकारक तथा सुखप्रद माना। उस समय हमो कटना धटित होनेपर परमायी परमेवरी लिखवली पार्वतीने धनमें ऐसा विचार किया कि वेग कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो वरम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञासे तत्पर रहनेवाला हो, उससे तबका भी विचारित होनेवाला न हो। जो विनाशकर पार्वतीदेवीने अपने शरीरकी देहसे एक ऐसे क्षेत्र पुरुषका निर्माण किया, जो सम्पूर्ण सुखलक्षणोंसे संपुक्त था। उसके अभी अज्ञ सुन्दर एवं शोचरहित थे। उसका वह शरीर विनाश, परम क्षेत्रज्ञप्राप्त और बहादु कल-पराक्रमसे सज्जत था। देवीने उसे अनेक प्रकारके कल, कमल प्रकारके आपूर्ण और सत्त्व-सज्जत अशीर्वाद देकर कहा—‘तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे सभाय धारा मेरा बर्षा कोई दूसरा नहीं है।’ पार्वतीके ऐसा करनेपर वह पुत्रने उन्हें भवस्वर करके खोला

मनेजने कहा—‘हाँ ! अब आपकी कौन-सा कार्य अब कहा है ? मैं आपके कहना-नुसार उसे पूर्ण करूँगा।’ गणेशके जो पूछनेपर पार्वतीजी अपने पुत्रको कतर देते हुए बोलीं।

श्रियने कहा—‘माता ! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो। अतः तुम मेरी बात सुने। उससे तुम मेरे हारपाल हो जानो : सत्पुत्र ! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी हलपूर्वक मेरे ध्यानके भीतर प्रवेश न करने पाये जाये वह कहीसे भी अन्धे, कोई भी हो। वेदा ! यह मैंने तुमसे बिलकुल सत्य बात कही है।

सहाजी कहते हैं—मुने ! यों कहकर पार्वतीने मनेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे



ही। उस समय उनके सुनने लगने



निहारकर बर्बादी इर्ष्या हो गयी। उन्होंने बाग क्षेत्रपूर्वक अपने मुकाम दूर दूर और कुवापरक हो जानेके लगे निष्क। फिर संकटकारी गहरावको अपने हृदय काटिका कर दिख। केह बान्ध ! लखनर पर्वती-मन्दन ब्याधीर लगेह बाईनीकी हित-कारणकी श्रवने कड़ी निहार मुह-हृदयर धारा से लगे उतर निहार अपने मुह गलेकको अपने दरसारेण निष्क करके लगे लखिबोके लगे खान करने लगी। मुनिमंड। इसी समय जन्मक निष्क, जो बाग कीमती लगे बाल जन्मककी लीपकी श्रवनेमें निष्क है, हृदयर आ बड़ीये। लगेह उन पर्वतीपत्तिको पड़कको ले ले गयी, अब बोले उते 'हेह ! जन्मकी जन्मके निष्क तुम अभी नीतर न उठको। जन्म उठन करने बैठ गयी है। तुम कहीं जन्म काढने हो ? इस समय बर्बादे हो जाओ।' जो

जन्मक गलेकने उन्हें सेकनेको निष्क कड़ी श्रवने ले ली। उते देह करले देह निष्ककी बोले—'मुनि ! तु कितने रोह रहा है ? कुनि ! क्या तु मुने नहीं जानता ? मैं निष्कक अर्धनिष्क और कहीं नहीं हूँ।'

फिर पड़कको गले उते समझाकर हृदयके निष्क कहीं श्रवने और गणेहको बोले—'मुने, इस मुकाम निष्कक ही जन्मक है और पर्वतीकी बागक जन्मककी अज्ञाने मुने हृदयके निष्क कहीं श्रवने है। मुने जो गले समझकर हृदयकोगोने करत नहीं है, जन्मक मुह करके बोले लगे। अब कृपक कुनिमे है कि तुम जन्म की दूर हो जाओ। जन्म कहीं अर्धनी मुने दूर रहे हो ?

जन्मकी कठने है मुने। जो लगे जन्मक की निष्कककक लगेह निष्क की कने लगे। उन्होंने निष्ककको कठककक और कककको कहीं कंक। क्या उन गली निष्ककको निष्ककीके लगे जन्मक लगे मुकक उते लगेह। मुने। उते लगे बर्बादे मुकक जन्मककी गतिजन्मक अर्धनी नीतर निष्ककी लगेह। अपने उन गलीको औरकर कठने लगे।

भीकने कठ—'गली। यह नीतर है, जो जन्म उठककक ककक उठकी गति कक रहा है ? इस नीतर जन्मकको दूर भाग ले। मुककके लगेहककी तरह लगे होकर जन्मक मुकक मुने कहीं लगे रहे हो।' निष्कक नीतर लगेहकने अपने लगी जन्मकको जो कठनेकर ले गले पुनः कहीं लगेह जाओ। लखनर जन्मककक पुनः रोके कनेकर निष्ककीने गलीको आज्ञा दी कि 'तुम कठ लगेहो यह नीतर है और कने



चरणोंमें घसका झुकाते हैं :

ब्राह्मजी कहते हैं—जगह ! यह तुम सभी ऋषियोंद्वारा स्तुति मिले जानेपर यह परदेवी पार्वतीने अपनी ओर प्रवेष्टा की हुई है। किन्तु कुछ कहा नहीं। तब उन ऋषियोंने पुनः उनके चरणकमलोंमें फिर झुकाया और ऋषिपूर्वक हाथ जोड़कर पार्वतीजीके विवेक मिलवा ।

ऋषियोंने कहा—देवि ! अभी संसार होना चाहता है; अतः क्षमा करो, क्षमा करो ! ऋषिके । तुम्हारे जगदीश्वर की तो चली स्थिति है, गरिष्ठ प्रकृति और तो सृष्टिपाल करो। इत्यन्तेन, ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा सारी प्रजा—एक तुम्हारे ही हैं और अनाद्यतन होकर अक्षय्य होते तुम्हारे सामने खड़े हैं। परमेश्वर ! इन सबका अधीन होना करो। विभी ! अब उन्हें क्षमा करना करो ।

ब्राह्मजी कहते हैं—भूमे ! सभी देवताओं को जोड़कर अत्यन्त हीनपात्रसे समकृत्य हो हाथ जोड़कर ऋषिकमलोंमें समर्पण कर दे गये। इनका ऐसा कर्म सुनकर ऋषिद्वारा प्रसन्न हो गयीं। उनके हृदयमें कल्याणक प्रसार हो आकाश। तब वे ऋषियोंसे बोलीं :

देवीने कहा—ऋषिके ! यदि पेरु कुछ बीजिल ही जाय और यह सुभक्तोंके साथ भूजनीय जाय किन्वा जाय तो संसार नहीं होगा। जब सुभक्तों ने 'मन्त्रात्मक' का यह प्रमाण कर देगे तभी लोकमें सन्तति हो सकती है, अन्यथा तुम्हें सुख नहीं प्राप्त हो सकता ।

ब्राह्मजी कहते हैं—भूमे ! पार्वतीके यह कहनेपर तब सभी ऋषियोंने इन देवताओंके पास आकर सात वृत्तक करे सुनवाये। जो

सुनकर इन ऋषि सभी देवताओंके चेहरेपर उदासी बन गयी। वे झुंकरजीके पास गये और हाथ जोड़कर इनके चरणोंमें नमस्कार करके सात सप्ताचार मिलेदन कर दिये। देवताओंका कर्म सुनकर शिवजीने कहा—'ठीक है, मिल प्रकार सारी मिलेकीकी सुख मिल इसके चली करवा चाहिये। अतः अब उत्तर दिशाकी ओर चला चालिये और जो बीच चलते मिले, उनका भी काटकर इस वास्तवके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

ब्राह्मजी कहते हैं—भूमे ! पश्यन्तः शिवजीकी आज्ञाकी पालन करनेवाले तब देवताओंने यह सारा कार्य सम्यक् किया। उन्होंने उस किन्तु-शरीरको धो-धोकर निर्धन्य इसकी पूजा की। फिर वे उत्तर दिशाकी ओर गये। चली उन्हें पहाड़-पहाड़ एक शिखरान्न एक क्षापी भिन्ना। उन्होंने उनका भी मरका उन शरीरपर जोड़ दिया। हाथोंके उस शिखरी समुद्र कर देनेके पश्चात् सभी देवताओंने भगवान् शिव आदिको प्रणाम करके कहा कि इत्यन्तेगोने अपना कर्म पूरा कर दिया। अब जो करना होय है, उसे अत्यन्त पूर्ण करें।

ब्राह्मजी कहते हैं—तब शिवाज्ञा-पालन-प्रार्थनाकी देवताओंकी चला सुनकर सभी देवी और ऋषियोंने महान् आनन्द हुआ। कर्मकर्म ब्रह्म, विष्णु आदि सभी देवता अपने जगदीश्वर निर्गुणस्वरूप समकृत्य जोड़कर प्रणाम करके बोले—'स्वामिन् ! अब महाराजके मिल सेवसे इन सभी उत्पन्न हुए हैं, अतः चली तेज वेदपत्रके अधिपतिसे हम कर्मकर्म प्रवेष्ट करे।' इस प्रमाण सभी देवताओंने मिलकर वेदपत्रद्वारा



कही करता रहेगा। चूँकि इस समय मेरे मुसकरा बिन्दु दीप्त रहा है। इसलिये मनुष्योंको तथा विन्दुको मेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुनः, समान, सुन्दर गन्ध, तेजोवत् स्पर्श आसी, समुद्र और समुद्र समान परिकल्पना और समुद्र समान के विभिन्न-पूर्वक मेरी पूजा करेगा, उसे सभी निरिच्छाई इन्द्राणा हो जायगी और उसके सभी प्रकारके विद्वत् मनु हो जायेंगे—इसमें ऐश्वर्यवात् भी संशय नहीं है।

कहाती कहती है—बुधे। जोहरिणीके अन्धे पुन गलेजले भी कष्टकर उसे कष्ट प्रकारकी बलादि प्रदान करते पुनः अन्ध आधिमपुन किया। विद्वत्। जो निरिच्छाई पुनको उसे पुन देखाजली और निरिच्छाईवत् पुन विरोधकायले पुन हो गया। समान पुन आदि देखाजली पुनविरोधको निरिच्छाई सुनि गी और उसे प्रदान करते वे बलिबलिबलि विद्वत् गलेजलेके लेखा निरिच्छाई सनीय कने। बड़ी जीवकाय उन्होंने निरिच्छाईकी कायकाय-कायकायले सनीयके उस कायकायले निरिच्छाईकी भेदके देखा विद्वत्। जो निरिच्छाई भी उस कायकायले कायकायले अन्धकाय-कायकाय केले पूर देखाजलीके कोले—'यह मेरा सुन्दर पुन है।' समुद्राण् गलेजले की अन्धकाय निरिच्छाईके कायकायले अधिकाय किया। निरिच्छाईकीको, मनुष्यों विद्वत्को और गान्ध आदि सभी बलिबलिबलि प्रदान करते आगे लगे होकर उन्होंने कहा—'जो अधिमाय अन्ध मनुष्योंका स्पर्शवात् ही है, अतः अन्धकाय मेरा अपराध कन करे।' तब भी, होकर और विद्वत्—इस कीने देखाजलीके एक एक ही प्रेमपूर्वक उन्हें

आय कर प्रदान करते पूर कहा—'सुन्दरने। जो निरिच्छाईके पुन तीनों देखाजली पुन होनी है, इसी वस्तु पुन कनको पुन गलेजका भी पुन कन कन कन। मनुष्योंको बलिबलि विद्वत् देखाजली पुन करते समुद्राण् इन्द्राणोकाय पुन करे। ऐसा करनेसे इन्द्राणोकाय पुन कनको हो जायगी। देखाजली। बड़ी बड़ी पुनकी पुन कने न करते अन्ध देखाजली पुन किया कन तो उस पुनकाय कन न हो जायगा—कने अन्धकाय निरिच्छाई कायकी आयकायकाय नहीं है।'

कहाती कहती है—बुधे। तदन्तरा प्रदा, विद्वत् और होकर आदि सभी देखाजलीके निरिच्छाई कायकीको प्रदान करनेके लिये लगी गलेजको 'सनीयकाय' कोविता कर विद्वत्। इसी वस्तु निरिच्छाई काय प्रदान विद्वत् पुन गलेजकी लोकाय



සමස්ත ප්‍රතිඵලය වන්නේ 2015 වසරේ මුළු වැටුප් මුදල 1,000,000,000 රුපියල් වන බවයි.

सर्वोपर्य सुख देनेवाले अनेकदा खर पतन करावे  
हए बोले—

सिद्धदेवे कथा—निर्मिथानन्द !  
 निम्नोक्त ये तुल्यपर मरुत प्रसन्न हैं, ये प्रसन्न  
 हो जानेपर अब तु लारे जगत्कर्मों को प्रसन्न  
 हुआ समझ । अब कोई भी तेरा निर्गन्ध नहीं  
 कर सकता । तु जन्मिन्मरुत मृत है, अतः  
 अज्ञान तेजस्वी है । कल्पना छोड़कर भी तुने  
 महान् पराक्रम प्रकाश किया है, इतिमन्त्रे तु  
 सदा सुखी रहना । निम्न-कर्मों के कारणों  
 तेरा पाप प्रसन्न होकर होगा । तु जन्म  
 पुनः है, अतः अब ये समूर्ण मनोभक्त  
 अर्थात् हो कर

[illegible][illegible]

‘हेरा ! तू जल धारण-धारण जल जल  
 पुन हो जल, तब तूने अनुभवको धारिने कि  
 तब जलको पूर्तिके निम्ने जलधारणका काव  
 भी सम्यक करे । इसमें मेरे अज्ञान-धूमर धारण  
 जलधारणको धारण कराना धारिने । जलको  
 धारिने कि तब एक कालक स्थापित धारण  
 जलधारी तेरी धारिने पुन करे । सम्यक  
 जलधारणके अनुसर जलधारण धारण करके  
 जलधारी जलधारण कराना धारिने, किन जलधारण  
 जलधारी अनुसर जलधारण धारण करे । पुनः  
 धारिने जलधारी हो धारिने और हो धारणको  
 धारणधारी धारिने जलधारण धारण करे और  
 जलधारी धारिने धारण कराने । जलधारी जलधारण



(अध्याय १६)



निय कल्पन जाता था और वे दोनों कुमार  
प्रीतिपूर्वक आत्मनके साथ तरङ-तरङकी  
लीलाएँ करते थे। सुनील ? वे होना  
वास्तवक व्याधिकारिण और गणेश भक्ति-  
पूरित चित्तसे सदा नाना-विनाकी परिचय  
करते थे। इससे माता-पिताका सहानु-  
बोध कम्युक्त और गणेशपर श्रद्धावश-  
कटवशकी भक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही  
गया। एक समय शिव और शिवा दोनों  
प्रेमपूर्वक एकान्तमें बैठकर जो चिन्ता करने  
लगे कि 'हमारे ये दोनों पुत्र विवाहके योग्य  
हो गये, अब इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे  
सम्पन्न हो। हमें तो जैसे चढावन प्यारा है,  
वैसे ही गणेश भी है।' ऐसी चिन्तामें धडक  
के दोनों स्त्रीव्यय आनन्दमग्न हो गये।



मुने । जलता-मिलाले विचारको ॥

सोनों पुत्रोंके बचने भी विचारकी इच्छा जग उठी। वे दोनों 'पहले मैं विचार करूँगा, पहले मैं विचार करूँगा' को बारम्बार कहते हुए परस्पर विचार करने लगे। तब अन्तर्गत अचानक वे दोनों एकद्वि पुत्रोंकी बात सुनकर स्वेच्छिक अन्धकार आत्मन से पाप विचलनको प्राप्त हुए। कुछ समय बाद उन्होंने अपने दोनों पुत्रोंको सुखदा और इनसे इस प्रकार कहा।

पिता-कर्मजी बेटे—सुखदे । हमलोगोंने पहलेमे ही एक ऐसा विचार बना रखा है, जो तुम दोनोंके लिये सुखदायक होगा। अब इस बचार्थकणको समझा करके बताते हैं, तुमलोग प्रेमपूर्वक सुने। पहले कहेंगे। इसे तो तुम दोनों कुछ समझ ही पारे हो; किन्तीपर विरोध प्रेम हो — ऐसी बात नहीं है; अतः हमने तुमलोगोंके विचारको विचलने एका हेतु जग बनायी है, जो दोनोंके लिये कल्याणकारीणी है, (यह कर्म यह है कि) जो सारी बुद्धीकी परिकल्प करके पहले लौट आयेगा, अनन्तर तुम विचार पहले किया अन्तर्गत।

ममाजी बजते हैं—बुधे ! जलता-मिलाली यह बात सुनकर समझना महाबली कर्मिकेय तुरन्त ही अपने स्वामनो बुद्धीकी परिकल्प करनेके लिये चल गये। परन्तु अगाध-बुद्धि-सम्पन्न मनेक लड़ी लड़े रह गये। वे अपनी हाल बुद्धिमान अन्तर्गत से बारम्बार मनमें विचार करते लगे कि 'अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? यत्किन्तु तो मुझसे जो नहीं सकेगी; क्योंकि कोसलकर चलनेके बाद आगे मुझसे चलना जायना नहीं। फिर सारी बुद्धीकी परिकल्प करके मैं

कैसे सुख प्राप्त कर सकूँगा ?' ऐसा विचारकर मनलने जो कुछ किया, उसे सुने। उन्होंने अपने मन लौटकर विविधपूर्वक चाल किया और जलता-मिलाले इस प्रकार कहा।

मनेरजी बेटे—मिलाली एवं मलाली ! मैंने आत्मलोगोंकी बुद्धा करकेके लिये कहाँ से अन्तर्गत स्थापित किया है। आप दोनों इसके उपर विचारलिये और घेरा यन्त्रोत्थ धूर्त करलिये।

मलाली कहते हैं—बुधे । मनेरजी बात सुनकर बार्थनी और परमेष्ठन इनकी बुद्धा प्रकट करनेकेके लिये आत्मनकर विगलनचाल हो गये। तब मनेरने इनकी विविधपूर्वक बुद्धा की और बारम्बार प्रगतन करती हुए इनकी हाल कर आशुचित्य की। केतु मार्ग । मनेर तो बुद्धिमाना से ही, वे मनेर कोसलकर प्रेमपत्र जलता-मिलाली काल









## रुद्रसंहिता, पञ्चम (युद्ध) खण्ड

तारकपुत्र तारकव्रज, विदुष्मन्त्री और कमलप्रह्वकी तपस्व, ब्रह्महारा  
उन्हें वर-प्रदान, यद्यहारा इनके लिये तीन पुरोंका निर्माण  
और इनकी सजावट-सोचाका वर्णन

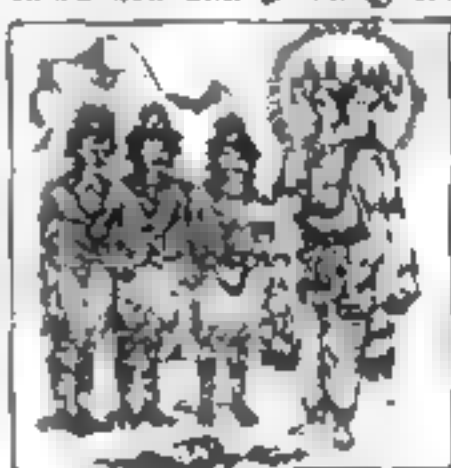
सादरोंने कहा—विदुषी ! जो पुरोंका  
और सजावटनिर्माणका उपाय जाननाहोवे  
अंतर्जालो भवा आनन्द प्रदुम कारयेवात्य है,  
कामप्रद संकारके गुणान्-अवधानी उस काम  
कारिणीको इनके पुन विना । अतः उपाय पुन  
कारके उस कारयेवात्य कारिणीका वर्णन  
कीजिये, जिससे कामके फल-ही पानकी  
सुलोकता यह विना न । यद्यन् कीर्तनाली  
कामप्रद संकारके देव-हृदयिकेके जीवी  
भरतीको एक ही काम एक ही कारने विना  
करना एक हीने काम उपाय न ।  
कामप्रद ! जिसके पानकी कारयेवात्य  
सुलोकता है अतः जो उपाय कारकी काम  
विना कारयेवात्य है, उन कामप्रद संकारकी  
कारिणी से केवर्तिकाके अन्तर प्रदुम  
कारयेवात्य है । अतः यह उपाय कारिणी  
विसारपूर्वक वर्णन कीजिये ।

सादरोंने बोले—कारिणी । पहले  
जिसी सधवा कामकी सम्पत्कृताली देना ही  
उपाय विना न । उन सधवा सम्पत्कृताली को  
पुन उपाय विना न, यही मे वर्णन करता हूँ ।

उसी समय धन-कृताली कहा न  
महामुद्रियन् कामकी । विदुषा उपाय  
कारनेवाली सम्पत्कृति विना विना उपाय  
एक ही पानकी विदुषाके पान विना न,  
यह कारिणी कहा है, पुन । पुरीक । यह  
विदुषाकीर उपायके कारकामुपायों का  
उपाय, यह उपाय कीनी सुलोकता यद्यन् उपाय  
हृदा । उपाय तारकप्रद पानके फल का,  
विदुषाकी यद्यन् न और उपायका यह

कामप्रद न । उन कीनीने कामका यह न ।  
मे विदुषाका, यह कारकीने लिये उपाय,  
संकार, कामकी, युधिय, यद्यन् और और  
केनेने उपाय कारनेके न । उन कीनीने लकी  
कामप्रद यह कामका कीनीने पानका  
कारके केवर्तिकाकी एक कामकी कारका  
यद्यन् उपाय उपाय कारका की । यही  
उपाय उपाय कीनीने पानका उपायकीनी  
कामप्रदके लिये उपायका यह पान विना ।  
यह पान और उपायके गुण यद्यन्कीनी  
उपायकी उपाय कारकाकी उपायका उपाय  
उपाय उपाय का केनेके लिये उपाय पुर ।

सादरोंने कहा—कारिणी । मे पुन-  
कीनीने लकी उपाय के पान है, अतः



सुलकी कामकी अन्तरा पुन लकी का  
उपाय कारीन । केवर्तिका ! मे लकीनी  
कामप्रद कामप्रद और लकीने यह पुन  
कारनेके वर्णन है, अतः उपाय, सुलकीनीने

इसका और तब किसलिखे किता है ?

मनसुमारजी कहते हैं—मुझे !  
 ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर उन लम्बे  
 भ्रमरिणी काँपकर मितलगाये चरणोंमें  
 प्रणिपत्य किता और फिर धीरे-धीरे अपने  
 बगली बाग बाहुन आरम्भ किया ।

दोस्रो योत्ता—देवता ! यदि आज इसका  
 प्रसन्न है और इसे हर देवता चाहते हैं तो यह  
 घर हीथिये कि कलकत्ता प्राकियामें इन लम्बे  
 लिखे आशय हो जायें । जगन्नाथ ! आज इसे  
 फिर कर दे और इसमें अरु, सेग आदि  
 सभी सब यह हो जायें तथा सबकी भी कृष्ण  
 हमारे प्रसीध न फलके । इसकाप्रसन्न ऐसा  
 विचार है कि ब्रह्माधरा अजर-अमर हो गये  
 और त्रिलोकामें अन्य सभी प्राणिकोंमें  
 भीलके प्रादु रताते हैं, क्योंकि ब्रह्मा !  
 यदि यदि ही त्रिलोकमें ब्रह्मके कलमें कल  
 जान विहित ही है तो अतुल लक्ष्मी,  
 अलोकन नगर, अलोक्य धर्म-अलक्ष्मी,  
 अकृष्ट धर्म और ईश्वरके कल प्रकटन  
 है । मेरे विचारमें तो इन प्राणिकोंमें लिखे से  
 सभी प्रसन्न है ।

मनसुमारजी कहते हैं—बहाने ! इन  
 लक्ष्मी वैश्याकी यह बात सुनकर ब्रह्मा अपने  
 लक्ष्मी गिरिगाथी धनकाय संकरके अलक्ष  
 करके बोले ।

ब्रह्माजीने कहा—असुरों ! अमरक  
 लक्ष्मीको नहीं प्राप्त लक्षण, अतः तुममें  
 अपना यह विचार छोड़ दो । इसके अतिरिक्त  
 अन्य अनेक घर में तुम्हें लक्षण हो जायेंगे ।  
 क्योंकि देखो ! इस भूमिपर कई कई भी  
 जो प्राणी जन्म है अथवा जन्म लेता यह  
 जगत्में अजर-अमर नहीं हो सकता ।  
 इसलिखे पावरहित असुरों ! तुममें

अपनी बुद्धिमें विचारकर कृष्णकी लक्षण  
 कलें इस कई देवता दुर्लभ एवं कुमाय कर  
 जायेंगे, जो देवता और असुरोंमें लिखे  
 अलक्ष्य हो । इन लक्षणमें तुममें अपने  
 कलका आकाय लेकर पुनः-पुनः अपने  
 मरनेमें किसी केनसे भी नहीं हो, जिससे  
 कृष्णरी रता हो जायें और कृष्ण तुम्हें बरान न  
 कर सके ।

मनसुमारजी कहते हैं—बहाने !  
 ब्रह्माजीके ऐसे कल सुनकर वे ही बड़ीतक  
 अलक्ष्य हो गये, किन्तु कुछ जेब-विचारकर  
 कलमेंकरपिताय ब्रह्माजीके बोले ।

दोसरी योत्ता—भगवन् ! कदापि  
 इसमें अलक्ष्य वराककी है लक्ष्मी हमारे  
 पास कोई देवता घर नहीं है, क्योंकि इस  
 लक्ष्मीके सुखित लक्ष्मी सुखपूर्वक विचार  
 कर सके अतः आज हमारे लिखे ऐसे तीन  
 जगत्में विचारक का हीथिये, जो अलक्ष्य  
 अतुल और लक्ष्मी लक्ष्मीमेंसे लक्ष्मी हो  
 तथा देवता विचारक प्रकटन न कर सके ।  
 देखो ! आज तो जगत्प्रसन्न है । इसमें  
 अलक्ष्मी कुमाते ऐसे तीनों पुरोवें अतिरिक्त  
 जेबों इस लक्ष्मीपर विचारक करेंगे । इसी  
 कील कायकायने कि विचारकमें मेरे  
 लिखे विचार नगरक विचारक करें, यह  
 लक्ष्मीय हो और देवता भी लक्ष्मी भेदक न  
 कर सके । लक्ष्मीय लक्ष्मीयके हीथिये कने  
 इस अलक्ष्य विचारक जगत्की लक्षण की  
 और विचारककी लक्षण होकर लक्ष्मी सदाय  
 कलमें लक्ष्मीय कल हुआ कल नगर जायें ।  
 ब्रह्मा ! वे तीनों पुर लक्ष्मीयके लक्ष्मी  
 अतिरिक्त लक्ष्मीयें लक्ष्मीयके लक्ष्मी लक्ष्मीयपर  
 विचार होकर एक लक्ष्मीय विचार करें और  
 लक्ष्मीयमें कीले लक्ष्मीय विचार होकर वे



पुण्यशील मङ्गलमा ही देख सकते थे । धर्म-सेवापरम्परा तथा कुधर्मों से विपुल उद्बोधनीय प्रतिज्ञा-भरिपोने इन नवरोके उगम स्थलमें ही सम्पन्न परिवर्तन कर रहा था । उनमें मङ्गलमा सुखीर कैय और सुनि-भूमिमें अर्थके तत्परा एवं स्वधर्मपरम्परा प्रसारण अपनी विषयी प्रकाश-पुत्रोंके साथ निवास करते थे । अन्य मङ्गलमा सुखीर ऐसे सुदृढ़ बराहजमी और भरे हुए थे, जिनके केवल नील कागलके सप्तम नीले और सुपराते थे । वे सभी सुनिधित्व थे जिनसे अन्य सदा बहुवर्ती सम्पन्नता पूरी रहती थी । वे बाड़े-बाड़े स्मरणों से प्रेरित करनेवाले थे, प्रकाश और विपुलता एवम् करनेसे उनके बराहजमी विस्तृत

ये: ये सुख, सम्पत्ति और महान्दके समान सभी के और देश-प्रांशोंके बचन करनेवाले थे। वेले, प्रान्तों और पुरानोंमें दिन-दिन धनीका वर्धन किया गया है, ये सभी धन और निधियोंके जेबी देखना चाहें और जानें थे। उन आरोंमें बनेका करते थे देश का निधननिधित्त होकर सभी निधियोंकीसे अधिक करके निधित्त राज्यका उपयोग करने लगे। बुने! इस प्रकार सभी निधियों करनेवाले उन युवाओंकोके धन एवं प्रीतिपूर्णता ज्ञान राज्यका पालन करी हुए राज्य मेंका काम आनीत हो गया।

( अष्टाध्याय १ )

20

सारक-पुत्रोंके प्रभावसे संतप्त हुए देवोंकी ब्रह्माके पास करुण पुकार,  
ब्रह्माका उन्हें शिवके पास भेजना, शिवकी आज्ञासे देवोंका  
विष्णुकी शरणमें जाना और विष्णुका इन दैत्योको  
मोहित करके उन्हें आचार-भ्रष्ट करना

मनसुखवाणी कहते हैं—पृष्ठ १

सहकार सागर-पुर्वोक्त प्रभावसे दण्ड इष्ट इत्यादि सभी देखा। सुःखी हो चारद्वार समाप्त करके प्रजाजीवी प्राप्तये गये। यहाँ सम्पूर्ण देवताओंने दीन होकर प्रेमपूर्वक विनम्रभावसे प्रभाम किष्का और अच्युत देवकाय इनसे अपना दुःखज्ञा समाप्त हय किया।

देवता कोले : काश : १ विपुलेके काशी  
लखन-प्रधाने नवी मयासुरने मया  
काशीवासियोकी भेतास काश दिका है । विपु !  
हसीलिके हयलेगेन दुरही लेकर आकासी  
सरणसे आये हैं । आस उपके मयाका  
कोई उपमा कीलिके, विपुले हयलेगेन सुखसे  
हयले ।

ब्रह्मजीने कहा : देवगणों ! तुम सब  
 अपने-अपने विधेय सब नहीं करके जाइये । मैं  
 अपने सबके सब इष्टों के लक्ष्मी हूँ । भगवान्  
 भिन्न तुम्हारा काम-काज करोगे । मैंने ही सब  
 देवोंको बनाया है, अब मेरे हाथों इनका बंध  
 होना इच्छित नहीं । सब ही त्रिपुरमें इनका  
 वृक्ष भी वृद्धिगत होता रहेगा । अतः  
 ब्रह्मजीने सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना  
 की : ये सर्वांगीण यदि प्रसन्न हो जायेंगे तो वे  
 ही भगवन्-गौतम का ही पुत्र करोगे ।

સનિત્કર્મજીએ કહ્યો છે - બેઠાસજી !  
જગ્યાનીકોઈ બધ વાળી સુવર્ણ હન્ડસેલિંગ સંધી  
કેરતક દુઃખી હો તમા સ્થાનવર પડે, જ્યાં  
સવસવજી ત્રિવ આમીન છે । તમા આ સમયે





॥१॥ ॥२॥ ॥३॥ ॥४॥ ॥५॥ ॥६॥ ॥७॥ ॥८॥ ॥९॥ ॥१०॥ ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥ ॥१५॥ ॥१६॥ ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥२०॥ ॥२१॥ ॥२२॥ ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥ ॥२८॥ ॥२९॥ ॥३०॥ ॥३१॥ ॥३२॥ ॥३३॥ ॥३४॥ ॥३५॥ ॥३६॥ ॥३७॥ ॥३८॥ ॥३९॥ ॥४०॥ ॥४१॥ ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ ॥४५॥ ॥४६॥ ॥४७॥ ॥४८॥ ॥४९॥ ॥५०॥ ॥५१॥ ॥५२॥ ॥५३॥ ॥५४॥ ॥५५॥ ॥५६॥ ॥५७॥ ॥५८॥ ॥५९॥ ॥६०॥ ॥६१॥ ॥६२॥ ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥ ॥६७॥ ॥६८॥ ॥६९॥ ॥७०॥ ॥७१॥ ॥७२॥ ॥७३॥ ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥ ॥७८॥ ॥७९॥ ॥८०॥ ॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥ ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

स्त्री-पुंस्य सभी दुराचारी हो गये। देवराधन, ब्रह्मा, यम, इतर, सौर्ष, शिव-विष्णु-सूर्य-चन्द्र आदिकय पुंस्य, स्त्री, स्त्री अर्थात् सभी शुभ आचार्य यह हो गये। तब भक्त तथा आराधनी उन पुरोमें जा पहुँची। जयसे

अब लक्ष्मी यहाँसे जाती नहीं। इस प्रकार कई अर्थवत्त विस्तार हो गया। मुने ! तब शिवेश्वरसे चाह्योर्वाह्य उस दिवाराधनी तथा बचनी भी शक्ति कुण्डल हो गयी।

(अध्याय १—५)

•

देवीका शिक्कीके पास आकर उनका सम्बन्ध करना, शिक्कीके त्रिपुर-बन्धके लिये उद्यत न होनेपर ब्रह्मा और विष्णुका उन्हें समझाना, विष्णुके बतलाये हुए शिव-मन्त्रका देवीद्वारा तथा विष्णुद्वारा जप, शिक्कीकी प्रसन्नता और इनके लिये विश्वकर्माद्वारा सर्वदिवस्य रथका निर्माण

समाप्त होने पर—सप्तकथाकी। तब भाइयो तथा पुरोहितोंसहित उस दिवाराधनी शक्ति शिवेश्वरसे कोटारुद्र हो गयी, तब [ ] यम स्त्री-पुंसी पद-पदी ? शिवी। यह उभार सुलभ करके ब्रह्मिणे।

सप्तकथाकी कथा—कथें। तब तीनों पुरोहिती पुर्वोक्त वस्तु हो गयी, इसने शिवाच्यका परिज्ञान कर शिव, अर्थात् स्त्री-पुंसी यह हो गया और शरीर और दुराचार पैदा गया, [ ] मन्त्रान् शिव और ब्रह्मके साथ सब देवता पैदाकर पर्वतपर गये और सुन्दर कान्ठोंसे शिक्कीकी सुनि करने लगे—'यहोहर देव। अन्य परमेश्वर आत्मकायसे सम्बन्ध है; अन्य ही शक्तिके कार्य ब्रह्मा, परमेश्वर विष्णु और शक्ति का है; परब्रह्मपरम आत्मको सम्बन्ध है।' ये भाइयोंकीसा सम्बन्ध करने केने उन्हें सहज प्रसाद शिव। फिर भगवान् विष्णुने जयसे लड़े होकर अपने स्वामी परमेश्वर शिवका मन-ही-मन स्मरण करनेके समय हो दक्षिणामूर्तिके द्वारा प्रदर्शित

सप्तकथा की करोड़ोंसे सम्बन्धक उप शिव। इसका सभी देवता उन योद्धासे कर सम्बन्ध को उनकी सुनि करने रहे।

देवीने कथा—जयसे ! अन्य समाप्त शक्तिसेके आत्मकाय, सप्तकथाकी और पर्वतोंकी बीजा इत्येकाने है। अन्यके गलेमें बीजा शिव है, शिवसे अन्य बीजाकाय ब्रह्मका है। अन्य शिव यह प्रवेना है, अन्य शक्ति द्वारा प्रगाथ है। अर्थात् शिवान्। अन्य ही इसी शरीर अर्थात् शिवसेके विस्तार करनेका है, अतः यद्यपि अन्य ही इसी गयी है और अन्य ही सर्वत इत्येकानेके सम्बन्ध हैं। अन्य स्वयं शक्ति है और अन्य ही अन्य ही है। अन्य ही अर्थात् शिव, अर्थात्, प्रभु, प्रकृति-पुंसके भी सम्बन्ध ब्रह्मा और जगदीश्वर हैं। अन्य ही रजोगुण, सत्वगुण और मदीगुणके आत्मकाय ब्रह्मा, विष्णु और यह होकर जयसेके कार्य, शरीर और योद्धाक बनने हैं। अन्य ही इस सम्बन्धसे तारनेका है। अन्य समाप्त शक्तिसेके शक्ति, अविनाश, सत्ता, सद्भावकाय, कोटारुद्र और

[illegible]

संस्कृतभाषा की भाषा है — मणिषा । इस  
भाषा में अनेकानेक अक्षरों का प्रयोग होता है, जो  
हीन भाषाओं में अनेकानेक अक्षरों का प्रयोग होता  
है । इस भाषा में अनेक अक्षरों का प्रयोग होता है ।







है, यह रक्षा ग्रीष्म ही तैयार करते। निम्नोत्था विरोध। निम्नोत्था ही तुम दोनों विरोधोत्था अधिपति हो; इसलिये तुम्हें चाहिये कि ये रक्षिते प्रत्यक्षपूर्वक समझदारी के योग्य समस्त उपकरण प्रस्तुत कर दो। तुम दोनों सुष्ठुके सुजन और पालन-कार्यमें निपुण हो, अतः निपुणों ने यह हुआ समझकर वेदताओकी सहायताके लिये यह कार्य अवश्य करो। यह सुष्ठु मन्त्र (निम्नोत्था सुष्ठुमन्त्रोंमें जय मन्त्र है) महान् पुण्यकार्य तथा सुष्ठु प्रत्यक्ष कार्यवाही है। यह भुक्ति-मुक्तिका राज, समस्त ज्ञातव्य-ओका पुराण और विश्व धर्मोत्था लिये आवश्यक है। यह सर्वकारकी पुण्योत्था लिये जन, यथा और अत्युत्थी सुष्ठु

करनेवाला है। यह निष्कारणके लिये मोक्ष  
रक्षा साधन करनेवाले पुरुषोंके लिये भुक्ति-  
मुक्तिका साधन है। जो मनुष्य पवित्र होकर  
महा इन्द्र मन्त्रका कीर्तन करता है, सुख है  
अथवा दुःखको सुनाता है, उसकी भारी  
अभिप्रायसे कर्म हो जाती है।

सकलकुलार्थी कहते हैं—मुने ।  
 परमात्मक शिष्यही वह ज्ञात सुन्दर सभी  
 वेदका धारण प्रसन्न हुए और ज्ञान तथा  
 विष्णुको जो विशेष आनन्द प्राप्त हुआ । उस  
 समय विष्णुकायने शिष्यके आज्ञानुसार  
 विष्णुके शिष्यके शिष्ये एक सपथिवर्य्य तथा  
 परम शोभन शिष्य रत्नका निर्माण किया ।

(अध्याय ३-८)

सर्वदेवमय रथका वर्णन, शिवजीका उस रथपर चढ़कर घुड़के लिये प्रस्थान, उनका पशुपति नाम पहनेका कारण, शिवजीद्वारा गणेशका पूजन और त्रिपुर-दाह, मयदानवका त्रिपुरसे जीवित बाह निकालना

अवासजीने कहा—दीवानखान  
सनतकुमारजी । आपकी बुद्धि बड़ी काम है,  
आप सर्वज्ञ हैं। ज्ञाता । आपने परमेश्वर  
विषयी जो बात सुनली है, वह अत्यन्त  
अद्भुत है। अब बुद्धिमान् विद्वान्मन  
मित्रजीके लिये जिस देवमन्त्र एवं वाचोक्त  
द्वारा रचना निर्माण किया जा, उसका  
वर्णन कीजिये ।

सुतजी कहते हैं—मैंने ! तबस्यजीकी  
 पाह बात सुनकर मनीश्वर तनमकुमार  
 शिखरीके शिरपादमर्ममय स्पर्श करके  
 बोले ।

सन्तकुमारजीने कस—आत्मनिष्ठता  
मुनिवार स्वासजी । वे विद्यार्थी  
पाठ्यपठका समाप्त करके अपनी शिक्षे

अनुसार रचकार निर्वाण-कथाका वर्णन करता है, सुनो ! तत्पश्चात् विप्रकर्मणि सङ्कोचके स्थिते बड़े बड़ा आहारपूर्वक भर्त्सनेकथन दिव्य रचकार रचना करे । वह सर्वसम्पन्न महा सर्वभूतमय एवं सुवर्णका बन हुआ था । उसके कर्मिने चक्रमें सुख और आनन्दकायें बनाए बिनामान थे । कर्मिने चक्रमें बारह अंग लगे हुए थे जिनमें बायाँ सुख प्रसिद्धि के और बायीं पहिया छेल्ने आंगसे मुक्त था, जिनमें बनमाफ़ी छेल्ने ब्रह्माणि विराजमान थी । उस ब्रह्मा के रूप करनेवाले विप्रेन्द्र ! अकिनी आदि सभी सत्त्वैश्वर्यो नष्ट भी उस चक्रकर्मकरी की श्रेष्ठा बड़ा रहे थे । विप्रेन्द्र ! कर्मों ब्रह्माणि उस छेनों पहिचोली देखि धनी । अन्तरिक्ष











[illegible]

सायकान बोला—‘अब ! आप हमसे  
क्या है, यह हमें ज्ञात हो गया है : इस  
सत्यके प्रकाशसे आप फिर कुछ अनुभूति-  
सहित हमको स्पर्श करेंगे : अतएव ! जो  
हेतुता और अनुसंधान निम्ने अग्रगण्य है, वह  
(आपके हाथसे प्रकट) दुर्लभ तथा हमें  
ज्ञात हो गया : अब जिस-जिस चीजसे हम  
काय प्राप्त करें, वही हमारी बुद्धि आत्मिकी  
धर्मसे प्रकट हो :’ मुने को के हेतु  
विचार कर ही रहे थे कि विचारकी  
आज्ञासे वह अचानक उन्हें अद्भुत विचारों  
प्राप्तकर आत्मिकी ही प्रकट किया :  
व्यासजी ! और ही जो आत्मिक और बुद्धि  
हमसे है, वे विचारप्रसूतता का अविच्छेद

हीन ही चरमकाय बना हो गये । पञ्चांगिक कि-  
स्र त्रिपुरोदये कितनी भिन्न और पुनः वे, वे  
सब-के-सब उस अस्मिसे इसी प्रकार बना हो  
गये जैसे सत्यकायमें सगद् भस्म हो जाता है ।  
उस समय उस जीवका अस्मिसे कोई भी  
सकार-योग्य भिन्न करने नहीं था, किन्तु  
अधुरोक्त निष्कर्ष अविनाशी रूप सब  
मनः, कर्मेकिक यह देवोक्त अविरोधी,  
काम्यके वेदमें सुरक्षित और सद्भक्त वा ।  
विपरीतके अकारण भी यह मोक्षका  
कारणक बना रहता था । जिस देवी तथा  
अन्य अस्मिसेका भय-अभाव अन्तः  
कृत-अकृतके प्राप्त क्षेत्रपर वास्तविक भय  
नहीं होता, वे विचारकने बने रहते हैं ।  
प्राचीन सत्यवादीकी अन्तर्गत सम्भावित—  
उस कार्यके सिद्ध ही प्रकाश करना चाहिये;  
कर्मेकिक निरीक्ष्य कार्य करके ही प्राचीन  
विचार हो जाता है । अतः निर्दिष्ट कार्यका  
अकारण भूतकार भी वही है \* । उस समय  
भी जो देव वायु-वायव्योत्पत्ति विद्यमान  
पूजामें सदा वे, वे सब-के-सब शिव-  
पूजाके उपासके (दूसरे अर्थमें) गणोंके  
अस्मिसे हो गये । (अध्याय १-१०)

गति हुई ? यदि वह कुलम्ब समुद्रकी क्षमतासे बलवन्त रहनेवाला हो तो वह उस बिलारपूर्वक मुक्तसे वर्णन कीजिये ।

सूतजी कहते हैं—मुने ! व्यासजीका यह सुनकर बुद्धिकर्तृ ब्रह्माके कुछ भागवान् समस्तकुमार विश्वजीके कुलम्ब चारोंपक्ष इराज करके बोले ।

समस्तकुमारोंने कहा—वन्द्यविष्णुसहस्रनामी । अब ब्रह्माके देवोंसे काकासहस्र परे हुए समुद्रन विपुलको भय कर दिया, वह सभी देवताओंको ब्रह्मन् आकाश ही था । उस समय इंद्रजीके समुद्र भयंकर रीति करके, जो करोड़ों बुद्धिमान् समस्त प्रजापतिवर्ग और अत्यन्तकीर्तिमान् अतिशक्ति धर्मि देवकी यह तथा जिसके देवोंसे बने बने बिसाई अत्यन्त-ही होकर रही थी, देवका साथ ही विनाशक-पुत्री कालीदेवीकी और बुद्धिपति करके समुद्रन देवता चरकीत हो गये । वह मुख्य-मुख्य देवता किन्तु होकर सातमे जाड़े हो गये । अब अत्यन्तपर बड़े-बड़े ऋषि भी देवताओंकी कर्तव्यको भयभीत देवका परे ही रह गये, कुछ लोग न गये । वे चारों ओरसे संकटको प्रभाव करने लगे । तत्पश्चात् ब्रह्म भी विश्वजीके उस कष्टको देवका भयंकर हो गये । वह उन्होंने इसे हुए विष्णु तथा देवतासेके लक्ष प्रलय करने साधकानीपूर्वक उन विविधसक्ति ब्रह्माका, जो देवोंके भी देव, वह लक्ष हरिवासे प्रसिद्ध, धर्मोंके अर्थात् रहनेवाले और विपुलन्त है, लक्षण किया । तत्पश्चात् सभी समुद्र देवताओंने भयंकर विचकी कृति की । वो भूमि किन्ते जानेपर लोकोके

अत्यन्तकीर्ति इंद्र प्रलय होकर बोले ।

इन्द्रजीने कहा—ब्रह्म, विष्णु तथा देवता । वे मुक्तसेपक्ष विज्ञानवासे प्रलय है, अबः अब कुछ सभी बिलार करके अत्यन्त बलवन्तकर कर चींग लगे ।

समस्तकुमारोंने कहने हैं—पुनिर्मेष्ट ! विष्णुसहस्रनामी हुए समयको सुनकर सभी देवताओंका मन प्रलयवासी बिलार ब्रह्म । फिर वो वे बोले लगे ।

देवताओंने कहा—भगवन् ! देवोंके । यदि अब हमका प्रलय है और इस देवतासेके अत्यन्त लक्ष समस्तकी पर केन कहते हैं तो देवसत्ता । वह-उस देवताओंपर दुःखी समस्तका हो, वह-लक्ष अत्यन्त ब्रह्म होकर लक्ष उनके दुःखीकर विचार करते रहे ।

समस्तकुमारोंने कहने हैं—ब्रह्म ! वह ब्रह्म, विष्णु और देवताओंने भगवान् कहते ऐसी प्रार्थना की, वह वे साथ तथा प्रलय होकर एक साथ ही रहने बोले 'अच्छा, महा देव ही होकर ।' देव संकट इंद्रजीने, जो महा देवोंके दुःख इराज करनेवाले हैं, प्रलयपूर्वक देवोंको जो कुछ अभीष्ट था, वह साथ-साथ-सत्ता उन्हे प्रलय कर दिया । इसी समय वह कर्मा, जो विश्वजीकी मुक्तके कर्मा अत्यन्त लक्ष भय था, कर्माके प्रलय देवका दुर्भित मनने कहा अत्यन्त । उन्हे विनीत चरके लक्ष जोड़कर विपुलक हर तथा अत्यन्त देवोंको भी प्रलय किया । फिर वह विश्वजीके चरकोमें लोट गया । तत्पश्चात् अत्यन्त लक्षने लक्ष विचकीकी ओर देवता । उस समय त्रैमके





आदि देवताओंके समानको सुनकर  
 शरणागतसम्बन्ध भगवान् विष्णु बुद्धिमान्  
 और श्रेष्ठपूर्वक बोले ।

विष्णुने कहा—अपरो ! भगवां रणे,  
 सत्पराओ मत, भवभीत न होओ । कोई  
 डर-पड नही होगा; क्योंकि अभी  
 प्रलयका समय नहीं आया है । ( वह मेरा  
 से ) इस समयक समयका है, जो मेरा बच  
 है और पुनर्जीव कराने का कर रहा है । मैं  
 इसे वादना देकर ज्ञान कर दूँगा ।

महाकृष्णजी कहते हैं—युने ।  
 भगवान् विष्णुके जो कहनेपर बहुत आदि  
 देवताओंकी कबला जाती रही, ये सभी देव  
 धारण करके अपने-अपने भागको लौट  
 गये । इस समयक अत्यन्त भी वह प्रलय  
 कारणके लिये बुद्धिमान् कर रहे, नहीं वह  
 दण्ड सभक ज्ञान का कर रहा था । नहीं  
 यहैकार कीर्तिने अपने भागका भव  
 करनेवाले का समयक समयक देते हुए  
 मधुर वाणीमें कहा—‘वा वायि !’ का  
 विष्णुका अर्पणक भवन सुनकर और उसे  
 आगे प्रार्थना देकर वह सभी जीवोंके  
 साथ इसके कारणोंमें लड़-पड़ हो गया और  
 कार्यकार लड़ करके हुए लोग ।

तबने कहा—देवताओंके !  
 समस्तजन । अत्यन्त समयक है ।  
 राजाका । सुनकर कुछ कीर्तिने ।  
 विष्णुकेका । युने एक ऐसा और दण्ड कीर्तिने,  
 जो आपका भक्त सत्परा कर-पराकाको  
 समयक है । वह विष्णुकीको जीत ले, परन्तु  
 देवता उसे पराजित न कर सके ।

महाकृष्णजी कहते हैं—युने ।  
 समस्तजन दण्डके जो कहनेपर कीर्तिने इसे  
 वह कर दे दिया और उस पोर तबने इसे

विष्णु करके सब अत्यन्त हो गये ।  
 समस्त दण्डकी लयका सिद्ध हो चुकी थी,  
 जिससे अत्यन्त मनोरम पूर्ण हो गया था;  
 अतः वह भी कीर्तिने के जाने आनेपर उस  
 विष्णुको नयनका करके अपने घरको लौट  
 गया । तबने ही समयके अत्यन्त समयकी  
 समयकी कीर्तिने कीर्तिने हो गयी । वह अपने  
 देवने घरके पीछरी धारणके अत्यन्त  
 करने हुए सोचा जाने लगे । युने ।  
 अत्यन्तके कार्यकोका अत्यन्त जो सुनकर  
 समय सोच का, जिसे राजाजीने काय दे  
 दिया का, नहीं इसके कार्यके प्रविष्ट हुआ  
 था । तबने समय अत्यन्त सत्परा दण्ड-  
 पण्डके एक देवकी समयकाको अत्यन्त दिया ।  
 का विष्णुके लड़-ले चुकीनेको सुनकर  
 अत्यन्त विविष्टक समयका आदि समयकर  
 समय विष्णु । विष्णुकेका । इस धुनके समय  
 केनेपर लड़ लड़ अत्यन्त भवाका गया । विष्णु  
 सुन विष्णु अत्यन्त विष्णुके इस समयकाका  
 ‘सत्परा’ देव समयकाका विष्णु । वह  
 अपने विष्णुके कार्य सुनकरके अत्यन्तकी  
 कीर्तिने लड़ने लगा । वह अत्यन्त देवकी जो,  
 अतः अपने समयकाको ही सारी विष्णुकी थीका  
 ली । वह विष्णु समयकीका कार्यके अपने  
 समय-विष्णुके लड़ लड़ने लगा और अत्यन्त  
 समय सुन्दरिणीके लड़ लड़ विष्णुकेकाको  
 देव-समय हो गया ।

तबने समय सत्परा लड़ हुआ का  
 का कीर्तिने युनेके अत्यन्तके बुद्धिमान्  
 समय अत्यन्तकीको समय करनेके लिये  
 अत्यन्तक समयका करने लगा । उस समय  
 का समयकाको अत्यन्त इतिहासके समयमें  
 करने समयकी अत्यन्तका काय काका  
 रहा । जो बुद्धिमान् समय करने हुए का-समय

राजकुमारको यह देखते निम्ने लोकगुरु एवं  
ऐश्वर्याशाली ज्ञान गीष्म ही नहीं पधारे और  
उस दान्तेजसे बोले—'अर यौन !'  
ज्ञानगीष्मों देखकर अपने अन्तर उलझते  
उन्हें अभिवादन किया और फिर अन्तर  
बाणीसे उनकी सुनि की। तबजान् अपने  
ज्ञानसे वह बाँगे हुए कहा—'अन्तर ! मैं  
देखाओंके निम्ने अन्तर हो जाऊँ।' यह  
ज्ञानगीष्म वरम अन्तर होकर बोले—  
'सन्तान—ऐसा ही होना।' फिर उन्होंने  
राजकुमारको यह निम्न औपचारिकतया ज्ञान  
किया, जो राजकुमार सम्पूर्ण राजनीति में  
बहुत और सर्वोत्तम ज्ञान करनेकर  
है। तबजान् ज्ञानगीष्मों को अन्तर ही कि  
'हम कदरीजन्ते का जो। यही सर्वोत्तम  
काम्य सुनि की ज्ञानगीष्मोंसे अन्तर कर रही  
है। तुम उसके भाव निम्न कर जो।' जो  
कहकर ज्ञानगीष्मों अन्तर अन्तर राजकुमार ही  
सुनि अन्तर हो गये। यह ज्ञान निम्न  
राजकुमारों की, निम्नसे ज्ञान अन्तर  
सर्वोत्तमसे सुनि हो जाने हो और मुन्तर

अन्तर जोर रही थी, मुन्तरों ही उस  
जान्ते राजकुमारों की मुन्तरात्म  
जान्ते ज्ञानसे ज्ञान निम्न और ज्ञानोंके  
अन्तरजान् वह ज्ञान ही ज्ञानगीष्मोंसे  
करा पाक। यही ज्ञान राजकुमार वरम उस  
ज्ञानजान् वह मुन्तर ज्ञान अन्तरजान् मुनी  
सुनि की यह कर रही थी। मुन्तरों ज्ञानगीष्मों  
जान् अन्तर ज्ञानगीष्म और ज्ञानजान् वह। यह  
जान् ज्ञानगीष्म ज्ञानजान् ही। उस ज्ञानगीष्मों  
देखकर राजकुमार अन्तर सन्तर ही ज्ञान गये  
और ज्ञान ज्ञानगीष्मों अन्तर बोला।

अन्तरजान् ज्ञान सुनि की। तुम ज्ञान  
हो ? निम्नसे मुनी हो ? तुम यही ज्ञानजान्  
कदर कर ज्ञान कर रही हो ? यह ज्ञान ज्ञान  
मुने ज्ञानजान् हो।

जान्जान्जान् ज्ञानों है—मुने।  
राजकुमारों के ज्ञानजान् ज्ञान सुनि ज्ञानगीष्मों  
जान् ज्ञान।

सुनि की ज्ञान—जान् ज्ञानगीष्मों  
जान्जान्जान् ज्ञान ही और ज्ञान ज्ञानजान् ज्ञान  
कर रही है। अन्तर ज्ञान है ? सुनिजान्  
अन्तर अधीन ज्ञानजान् ज्ञान ज्ञानजान्, ज्ञानजान्  
जान्जान् ज्ञान ज्ञानजान् भी ज्ञानजान् ज्ञान  
देखान्ते ज्ञान ही। यह ज्ञानजान्, निम्नजान्,  
जान् अन्तर ज्ञानजान्, ज्ञानजान्जान् तथा  
ज्ञानजान्जान्जान् भी ज्ञानजान् ज्ञानजान्  
जान्जान् ज्ञान ही।

जान्जान्जान् ज्ञानों है—जान् ! सुनि  
जान् इस ज्ञानजान् ज्ञानजान् ज्ञान ज्ञानजान् ज्ञान  
जान्, ज्ञान ज्ञानजान्जान् देखकर राजकुमारों  
की ज्ञानजान् ज्ञानजान् ज्ञान।

राजकुमार ज्ञान—देख। सुनि जो ज्ञान  
जान् है, यह ज्ञान—जान्—जान् ज्ञानजान् हो, ऐसी  
जान् नहीं है। ज्ञानजान् ज्ञान है और ज्ञान





\*\*\*\*\*

असत्य थी। इसका विचार मुझे सुने।  
 सोचने। जगत्में जिसकी परिणतता जरूरी  
 है, अपने रूप अपनी हो। वेग को ऐसा  
 विचार है कि जैसे मैं पलकबुद्धि करती नहीं हूँ,  
 उसी प्रकार तुम भी कदा-वासीना नहीं हो।  
 फिर भी इस समय मैं ज्ञानयोगीकी आश्रमों  
 मुझसे संबंध आया है और गणपति  
 विद्यालयों विधितो तुम्हें भवन करीगा।  
 बड़े ! क्या तुम मुझे नहीं जानती हो अथवा  
 हमारे कभी वेरा नाम भी नहीं सुन है ?  
 अरे ! हेतुओंमें कदापि अज्ञानेक्षण  
 ज्ञानपुत्र मैं ही हूँ। मैं हनुमान वंशज तथा राम  
 नामका राजकुमार हूँ। पूर्वजन्ममें मैं  
 श्रीहरिकृष्ण नामक था। वेग नाम तुम्हारा नाम  
 था। इस समय मैं शक्तिशालीके रूपमें  
 रामनाम शक्तिपुत्र केरार रूपमें हुआ है। ये  
 सारी बातें मुझे ज्ञान है, क्योंकि अंकुशनाम  
 प्रधानमें मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना  
 हुआ है।

मनःकुमारकी चमत्ते हैं। बड़े !  
 तुमकीके समझ की समझ ज्ञानपुत्र रूप में  
 गया। अब रामनामके अक्षरपुष्पक तुमकीसे  
 ऐसा सब प्रथम बना, सब सब प्रथम प्रथम  
 हुई और पुष्पकराकार कइसे लगी।

तुमकी बोली—अरे क्या ! आज  
 आने अने अने जन्मिक विचारोंसे मुझे  
 पराजित कर दिया है। जो पुष्प कीदारा  
 पराजित मैं हो लके, वह अक्षरोंमें कनककरा  
 बना है; क्योंकि जिसे जी जीन लेते हैं, वह  
 पुष्प सदाशरी होता हुए भी तथा अक्षरमय  
 बन रहता है। वेकल, विचार और समस्त  
 मानव अशक्त विचार करते हैं। जनजन्मके  
 तथा परमात्मिकमें ज्ञानमय दत्त दिनोंमें,  
 क्षणिक क्षण दिनोंमें और बीच बीच दिनोंमें

सुख को जाना है तथा सुखी शक्ति एक  
 करके हो जाती है—ऐसा केवल अनुमान  
 है, परंतु जिनमें पराजित हुए पुष्पकी बुद्धि  
 विचारोंमें अक्षरमय अन्य किसी प्रकारसे  
 जन्म हो नहीं है। इसी कारण उसके विचार  
 अपने द्वारा दिये गये विचार-सर्वण आदिमें  
 प्रथमपुष्पक सुख नहीं करते तथा वेकल भी  
 अपने द्वारा अक्षरमय विचारों गये पुष्प-परा  
 आदिमें क्षीकार नहीं करते। जिसका मन  
 विचारोंका अक्षर हो जाता है, उसके ज्ञान,  
 ज्ञान सब, सब, ज्ञान, पुष्प, विचार और  
 ज्ञानमें क्या लय ? अर्थात् इसके ये सभी  
 निष्कर्ष हो करते हैं। जैसे आपके विचार,  
 ज्ञान और ज्ञानकी अक्षरमय विचारों की  
 अक्षरमय वरीक्षा ली है, क्योंकि क्षणिकमें  
 विचारों में वह अपने चरमोत्तम क्षणकी  
 वरीक्षा करके ही उसे विचारोंमें बना करे।

मनःकुमारकी चमत्ते हैं—आजकी !  
 जिस समय सुखी की अक्षरमय कर रही  
 थी, उसे अथवा सुविचारों ज्ञान नहीं आ  
 लीं और इस प्रकार बनने लगे।

आजकीके कदा- ज्ञानपुत्र ! तुम इसके  
 ज्ञान तथा चरमोत्तम विचार-विचार कर रहे  
 हो ? तुम गणपति विचारोंकी विधितो  
 ज्ञानमें पराजित बनो; क्योंकि विचार ही  
 तुम पुष्पका हो और वह सभी-माथी  
 क्षीकारमें अक्षरमय है। ऐसी दृष्टिमें  
 विचारोंकी विचारोंमें सब सदागम गुणकारी  
 ही होना। ( फिर तुमकीकी ओर लक्ष्य  
 करने को— ) सभी-सभी सुखी। तु  
 ऐसे गुणमय सदाशरी तथा परेशा ले रही  
 है ? वह तो हेतुओंमें, असुरों तथा  
 सुखोंका नाम सर्व करनेवाला है।  
 सुखी ! तु इसके साथ संपूर्ण स्वेकोमें







विष्णुने ज्ञानसे कहा ।

विष्णु जाले- ज्ञान ! यह वैकुण्ठ योगियोंके लिये भी दुर्लभ है । तुम यहाँ किस लिये आये हो ? तुम्हारे धर्म-आ कहा आ कहा है ? यह सत्कार्यकार्यसे मेरे सामने वर्णन करो ।

सन्तकुमारजी कहते हैं—बुने ! श्रीहरिकृष्ण कबन तुम्हारे ज्ञानार्थीके विष्णु-भावसे फिर भ्रुकुण्डल उन्हें कर्मकार ज्ञानसे विद्या और अनुक्ति बंधनकार करवाया विष्णुने समस्त विद्या हो केकराओके लक्ष्यसे भरी हुई जङ्गलपुष्पकी सारी करबुन बड़ा सुवाची । तब प्रबल अंगियोंके चालोंके ज्ञाना धनवान् श्रीहरी तब कालमें सुखी है। इस पक्ष और ज्ञानसे इस दुःखका अन्तर्गत करते हुए बोले ।

श्रीभक्तान्ते कहा—कर्मकर्मणि । वे जङ्गलपुष्पका सारा फलान्न कायना है । पूर्वजन्मसे वह महादेवकी गीत का जो धारा धारा का । वे उसमें फलान्नसे लब्धका लब्धकेलने इस पुराणमें इतिहासका वर्णन करता है । तुम्हें । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिये । जगन्नाथ हीकर सब कल्याण करोगे । जेनेकेलने मेरे ही सब श्रीकृष्ण रहते हैं । उनकी जो श्रीराधा नामसे विख्यात है । वह सगज्जननी तथा प्रकृतिवती धर्मोत्कृष्ट पौनर्दी भूमि है । कहीं कहीं सुन्दरकायसे विहाय करनेवाली है । उनके अङ्गसे उद्भूत बह्म-से मेघ और चोरेण भी कई निवास करती है । वे विष्णु राज-कुलका अनुकूलन करते हुए उद्यम-जगत् श्रीप्राप्तसे सब रहते हैं । कहीं मेघ इस समय धाम्युकी इस लीलासे भक्ति होकर शायकल अपनेको दुःख देनेवाली सन्धी

चोरेणसे जगत् हो गया है । श्रीकृष्णने पहलेसे ही उनके विष्णुने उसकी धृष्ट निर्धारित कर दी है । इस प्रकार वह शायक-वेदका परित्याग करके पुनः कुल-कर्म हो जायगा । केवल । ऐसा जगन्नाथ तुम्हें सब नहीं कराना चाहिये । काले, इस क्षेत्रों हीकरकी शायकलें काले, वे श्रीज ही कल्याणकार विद्या करोगे । अब बुने, तुम्हें सदा कल्याण देनेको विधि हो करन चाहिये ।

सन्तकुमारजी कहते हैं—बुने । जो कर्मकार ज्ञानार्थीके विष्णु विद्यालोकाको काले । कर्मसे वे का-ही-सब कल्याणका सर्वोपर शायकली करन करते का रहे थे । कालजी । इस प्रकार वे शायकल विष्णु ज्ञानसे साथ श्री जगत् इस विद्यालोकाके का चर्चते, जो काल विष्णु, विद्याका सदा श्रीकृष्णने रहित है । कई पुरुषकार अङ्गोंसे विद्याकीर्ष लब्धका दर्शन विद्या । वह श्रीजी एवं उक्त जगत्कायकी सदा प्रकाशपूर्ण धर्मोत्कृष्ट विष्णु-कर्मोंके विरी होके काल विद्याकर्मसे लोभित हो रही थी । उन धर्मोत्कृष्ट सब सुन्दर कालिसे बृक्ष यक्षके काले लक्ष्म का । उनके सब भुजाएँ थी । काल भुज और लीन थे थे । काले लीन विष्णु तथा श्रीराधा वर्ज अन्तर्गत गीत था । वे सभी सेह माले बृक्ष उद्यम और भावके अन्तर्गत विष्णुनि थे । वह धर्मोत्कृष्ट सब श्रीज कर्मकायकी प्रधान आकारवाली और श्रीराधा थी । जगत्-सब पक्षियों तथा हीरके इगोंसे वह सदाकी गयी थी । अन्तर्गत स्वयंके धने हुए काल-पक्षोंसे सुशोभित थी । उसने पक्षियोंकी कालिसेसे बृक्ष गज्जल बने थे, विष्णुने वह विष्णु-विष्णु हीर रही थी । ईश्वरकी इच्छासे उसने पक्षरागमणि बड़ी

हुई थी, जिससे वह अज्ञान-सी लग रही थी। वह स्वयम्भूतमणिकी कनी हुई लैंकडों सीढ़ियोंसे युक्त थी। उसमें कारों और इन्जनोन्मेषणिके संबंधे लगे थे, किन्तु स्वर्णसुत्रसे इक्षित कन्दर्बके सुन्दर कल्पक लटक रहे थे, जिससे वह घनको थोड़े लंबी थी। वह बलीभारि संस्कृत तथा सुगम्यित साधुसे सुवासित थी। एक महान् योजना विस्तारवाली वह लम्बा बाहु—से किङ्करोसे राजासूच्य घरी थी। उसके मध्यभागमें सम्पूर्ण राजाद्वारा निर्मित एक विविध सिंहासन था, उसीपर इमसारहत जैकार विराजमान थे। उन्हें सुरेश्वर विष्णुने देखा। वे तारकाओंसे घिरे हुए कञ्जमाके अगल लगा रहे थे वे किरीट, कुण्डल और लोकोटी मालाओंसे विभूषित थे। उनके सारे अङ्गोंमें भक्त रमायी हुई थी और वे लीला-कथन प्रारण किये हुए थे। यज्ञन् कलभसे बड़े हुए उपाधोक्तिका मन शान तथा प्रसन्न था। देवी पार्वतीने उन्हें स्थापित ताम्बूल इक्षान किया था, जिससे वे खरा रहे थे। विचक्षण

इसमें बंल पैर लेकर चरचरालिके साथ कनकी लेक कर रहे थे और सिद्ध भक्तिवश विरा प्रवृत्तकर उनके सचनमें लगे थे। वे मुक्करीत, शेरसन, निवेदोंके जनक, सर्वज्ञपी, निर्विचक्षण, निराकार, स्वेच्छानुसार साकार, कल्पाजलकथ, बाबाहित, अजयनी, अण्ड, घापाके असीधर, प्रकृति और युक्तसे भी पराधर, सर्वज्ञार्थ पत्न्युर्जतय और समतायुक्त हैं ऐसे विविध मुणोंसे युक्त शिखरों देलकर लक्ष और विष्णुने इस जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर वे सुनि करने लगे। विविध प्रकारसे सुनि कारके अन्तमें वे बोले—‘धामन् ! भाव दीनी और अवाधोंके मध्यक, दीनोंके प्रसिपालक, दीनकथ, शिलोकीके असीधर और शरभजनकक है। गौरीक ! तुमारा कटार कर्तव्य है। परमेश्वर ! तुमपर कृपा कीजिये। खब ! तुम अत्यन्त ही अधीन हैं; अब आपकी कौसी इच्छा हो, वीसा करें।

(अध्याय १९-३०)

५

देवताओंका रुद्रके पास जाकर अपना दुःख निवेदन करना, रुद्रद्वारा उन्हें आश्वासन और चित्ररश्मको शङ्खचूड़के पास भेजना, चित्ररश्मके लौटनेपर रुद्रका गणों, पुत्रों और चक्रकालीमहित युद्धके लिये प्रस्थान, उधर शङ्खचूड़का सेनासहित पुष्पमद्वाके तटपर पड़ाव डालना तथा दानवराजके दूत और शिवकी बातचीत

सनत्कुमारजी कहते हैं मुने ! शिवजीने कहा है इसे। हे ब्रह्मन् ! महान्तर जो अत्यन्त दीनताको प्रकाश हो कहे थे इन ब्रह्मा और शिवकुल जन्मे सुन्दर शिवजी मुक्तकारण और मेधागवीनके सज्जन गम्भीर वाणीमें बोले।

शिवजीने कहा है इसे। हे ब्रह्मन् ! मुष्प्रेण शङ्खचूड़का उपग्रह हुए शयको सर्वज्ञ ज्ञान दी। निःसंदेह तुम्हारा कल्पावा बोधा। मैं शङ्खचूड़का सारा वृत्तान्त वचार्थ कथसे जानता हूँ; यह पूर्वजन्ममें एक गोप















[illegible]

महान्या. कुलधर जना और कुलु अमला प्रमत्त  
 मही हलक महीने ।' अन्तः जगदीश्वर होकर ।  
 जगज्जेठ कुल मन्मथो हलक महीने ।'

जब आपसुन्दरिने आशयसमय  
 तिमरडीने उस आन्धकारमानीको धुनकर  
 'महाशय' कादम्बर उरी सीतार कर भिन्ना  
 और विष्णुको एक सारथिक सिन्धे त्रैल  
 भिन्ना । तिमर को तिमरडीकी कुम्हारको विष्णु  
 सारथिके बना पड़े । वे गो सारथिकीको भी श्रेष्ठ  
 मान्यगी द्यो । जगः उन्धोने एक भुन  
 कुम्हारमन्ना येन क्षरण भिन्ना और सङ्ग-सुन्दर  
 भिन्ना सारथर उन्धो को सङ्ग ।

[illegible]



विष्णुद्वारा तुलसीके शील-हरणका वर्णन, कुपित हुई तुलसीद्वारा विष्णुको शाप, शम्भुद्वारा तुलसी और शालग्राम-शिलाके पाहात्म्यका वर्णन

फिर जगन्नाथजीके पूजनपर सकलकुलमें बड़ा—पड़ने ! सबधूमिलमें आकाश-वाणीको सुनकर सब देवदेव शम्भुने श्रीहरिसे उचित किया, तब वे तुलसी की अपनी वात्सले ब्राह्मणका येन करण करने शम्भुद्वारा सब आ पड़े और उन्होंने अपने परमात्मका कर्मों धर्म किया ; फिर शम्भुद्वारा सब शम्भुकर से तुलसीके चरबी और बने । कई कदमकर उन्होंने तुलसीके मङ्गलके द्वारके निकट गतारा बसना और सब-अवधारसे सुदरी तुलसीको अपने आगवधकी सुधना दी । उसे तुलसी की-साधी तुलसीने कई अक्षरके साथ बुरोकेके शाले राजकाजीकी और इतिहा और अपने बलिभक्त आया हुआ जगन्नाथ सब परमात्मने निवास हो गयी । अपने गवधन ही ब्राह्मणकोके कम-दाल करके अपने यज्ञमन्त्राण कावका और फिर अपना गङ्गा करवा । फिर देवताओंका कार्य फिर करनेके निचे बापासे शम्भुद्वारा सब करण करनेकाये भगवान् विष्णु रक्ते अक्षरके देवी तुलसीके बसने गये । तुलसीने बलिभक्तने आने हुए भगवान्का पूजन किया, बाल-नी बनी बनी, गहनतर उनके साथ गवध किया ; सब इस सन्धीने हुए शम्भुकी और अगवधने बलिभक्त देवदेव सब विचार किया और (संदेश जगन्नाथ सेनेन) सब 'तु कौन है ? को इतिहास हुई बोली ।

तुलसीने कहा—तु । तुझे ज्ञान बसता कि पाहाद्वारा वेरा अवधेन करनेवाला तू कौन है ? तुने येन इतिहास गत

कर दिया है, अब मैं अभी तुझे शाप देती हूँ ।

सन्तकम्पनसे कहती है—जगन्नाथ ! तुलसीका सब तुलसी कीद्वारे कीला-बुद्धि अपनी परम पददेव बलि बावण कर गयी । तब इस समयके देवदेव तुलसीने मङ्गलोंसे बहवध विचार कि वे साक्षात् विष्णु हैं । परन्तु इसका पाणिभक्त वह हो चुका था, इसलिये वह कुपित होकर विष्णुसे कहने लगी ।

तुलसीने कहा—हे विष्णु ! तुम्हारा सब पावलेके लक्षण कम्पन है । तुलसी इसका लेखनसे भी नहीं है । मेरे बलिभक्तोंका वह हो जानेसे विष्णु ही मेरे बसने पार गये । बलिभक्त तुल परमात्म-सब कर्ण, दक्षारहित और हुए हो, इसलिये अब तुल मेरे स्वयसे पावका-सकल ही हो जाये ।

सन्तकम्पनसे कहती है—तुने । जो जगन्नाथ शम्भुद्वारा सब लगी-साधी पानी तुलसी पूट-कुटकर रोने लगी और जोकरों होकर जगन्नाथ गङ्गासे निवास करने लगी । इनसे कई भगवत्वाण भगवान् होकर जगन्नाथ हो गये और उन्होंने समझकर कहा—'देवि । अब तुल तुलसे हुए करनेवाली मेरी बात सुने और श्रीश्री भी सब करने उसे अवध करे, क्योंकि तुल सेनेके निचे जो तुलकावका होगा, बड़ी मैं कहूँगा । जगन्नाथ ! तुलने (जिस कर्णसे बने होकर) सब निवास था, वह इसी लक्षणाका पाल है । कर्म, वह अवध केसे हो सकता है ? इसलिये तुलने उसके अनुसंधान ही कर गत हुआ है । अब तुल इस करणको



उपाधारा शम्भुक नेत्र मूट लिये जानेपर अन्धकारमें शम्भुके वर्धनेस अन्धकासुरकी उत्पत्ति, हिरण्याक्षकी पुनर्जन्म तपस्स और शिवका उसे पुनर्जन्ममें अन्धकको देना, हिरण्याक्षका त्रिलोकीको जीनकर पृथ्वीको रसातलमें ले जाना और बगइकम्पधारी विष्णुद्वारा उम्भका बच

बचानुभावी कहते हैं—कहानी ! किन्तु चरित्रहीनके साथ रहने हुए वे अन्ध विषय प्रकार अन्धकासुराने चरित्रहीन शम्भुके चरित्रहीन-कहाने जान किन्ना था, मोक्षधारे उस मङ्गलमय चरित्रहीन अन्धक को ? चरित्रहीन ! अन्धकासुराने पहले शिवजीके साथ बहुत घोर संघर्ष किया था, परन्तु पीछे क्षमाचार हासिलक भक्तके शक्तिसे उसने शम्भुको प्रसन्न कर लिया; क्षमाहीनता अन्धकाकी लक्षणाई करनेवाले शम्भु हिरण्यगर्भरक्षक बच परम भक्तकहाते हैं । अन्धका काहात्म्य चरित्र अङ्गुल है ।

कथा (१०) ३ २५३ — ऐश्वर्यहीनकी बुनियाद ! वह अन्धक क्यों था और भुनाकर किन चीजोंवाले कृष्णके उम्भ हुआ था ? ईश्वरीय प्रभाव मेका भक्तानकी उस बलवान् अन्धकात्म्य अन्धक केका था और वह किन्नाके पुनर्जन्म ? हमने परम मेसमी शम्भुकी गलतप्रवृत्तियों केने प्रकाश किया ? यदि अन्धका भक्तका हो गया था तो वह परम भक्तकाहका प्रकाश है ।

समन्तगुणरहीन बच — भूरी ! पूर्वकालकी कहानी है, एक समय भक्तोंके कृपा करनेवाले भक्त देवताओंके भक्तकी सहाय्य धातवान् शक्तिको विहाय करनेकी इच्छा हुई । तब वे पारंगत और गलतकी तरह से अपने विनायकपुन केतकम बर्तनके समान काशीपूर्वमे आये । कई जगहोंमे उस पुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्म शायक बीरको उसका रक्षक नियुक्त किया ।

किन्तु चरित्रहीनके साथ रहने हुए वे भक्तानको भुन देनेवाली अन्धकासुरकी उत्पत्ति करने लगे । एक समय वे अन्धक भक्तानके प्रकाशकम अन्धका बीरकात्म्य गलतकी और शिवानके साथ मन्दरावरपर गये और यहाँ पर राह-गलतकी लीछाई करने लगे । एक दिन वह प्रकाश पाशानी कंधों किन मन्दरावरकी पूर्व दिशासे बैठे थे, तभी समय विरिञ्चने चरित्रहीनका उनको नेत्र बंद कर दिये । इस प्रकार वह चरित्रहीने भूने, सुकर्ष और क्षमककी प्रभावार्थ अपने चरित्रहीनके द्वारा नेत्र बंद कर दिये, तब उनके नेत्रोंके मूट जानेके कारण कई क्षणधरे ही चोर अन्धका फैल गया । पारंगतकी इच्छाका मोक्षका क्षीरसे चरित्र हीनके कारण शम्भुक भक्तानने शिव अर्चने सन्तुष्ट होकर पर-जन्म अन्धक हो गया और भक्तकी बहुत-सी सुधि खराब भड़ी । तदनुसार उन मूटाने एक भक्तका रूप धारण कर लिया । हमने एक ऐसा जीव प्रकाश हुआ, शिवका भुन शिवका था । वह अन्धक भक्तका छोटी, कुतन्त्र, अधा, कुलम्ब, जलकाटी काये रंगका, भुनधारे धार, खेटीम और सुन्दर कर्णोवाला था उसके कर्णसे जोर-जोर-जोर साथ निकल रहा था । वह करीब गला, खाली हैमता और खाली मेने लगता था तथा जलको काटने हुए साथ रहा था । उस अङ्गुल पुनर्जन्माने जीवके प्रकाश होनेपर शिवकी



पुनःपुनः पाठ्यविधिसे होते ।

प्रश्नोत्तराने कहा— 'प्रिये । मेरे यंत्रोंको देखकर तुमने ही मेरा यह कार्य किया है, फिर तुम इससे क्या क्यों कर रही हो ?' इंकारहीन उस बचनको सुनकर गौरी इस बात और इसके यंत्रोंपर उड़ने अपने हाथ डाल लिये । फिर तो कई प्रकार का गया, परंतु उस प्राणीका एक पर्यंकार ही बस रहा और अन्तकारने उत्पन्न होनेके कारण इसके बीच भी अंधे से । तब जैसे प्राणीको उत्पन्न हुआ देखकर गौरीने चौंकरने कहा ।

गौरीने कहा— 'बगवान् । तुमने एक-एक कलाइयें कि इन्होंनेके प्रत्येक प्रकट हुआ यह यंत्राल प्रणी कीव है । यह मेरे अन्तर्गत पर्यंकार है । किन्तु निमित्तको लेकर किन्तुने इसकी धृष्टि की है और यह किन्तुका पुन है ?

मनःकुमारजी कहते हैं— 'बहुते । उस तमिल राजावासी राजा नीलो लोन्हीकी अपनी गौरीने मुक्तिप्राप्ति की उस अंधीमुक्ति के निमित्तने ही उस किया, तब तमिल-विद्यारी बगवान् इंकार अपनी प्रियके उस बचनको सुनकर कुछ मुनकारने और इस प्रकार बोले ।

मोहरने कहा— 'अद्भुत करिष्य रचनेवाली अम्बिके । सुन्दे । अब तुमने मेरे नेत्र मूढ लिये थे अभी अब यह अद्भुत एवं प्रचण्ड बगवान् प्रणी मेरे परीनेके प्रकट हुआ । इसका क्या सम्भव है । तुमने इसको उत्पन्न करनेवाली हो, अतः अभिषेकपूर्वक तुमने कल्याणपूर्वक इसकी गजोंसे बचनका रक्षा करती रहना चाहिये । अर्थात् । इस प्रकार मुक्तिपूर्वक विचार करके ही तुमने सब कार्य करना चाहिये ।

मनःकुमारजी कहते हैं— 'बुने । अपने कलाओंके ऐसे बचन सुनकर गौरीका हृदय कम्पनमें हो गया । वे अपनी ललितयोगिनी अन्धकारजी अपने पुत्रकी भाँति भाव प्रकाशके प्रकाशोद्गार रक्षित करने लगीं । तदनन्तर विचार-मग्न अनेक दिग्दर्शन पुत्रकी कर्मकांडे इसी बचने आपा कर्त्तव्य इसकी पत्नीने इसके जोड़ सम्पुत्री संतान-बन्धनवाले देखकर उसे संतानार्थ लक्ष्मीर्वाके लिये प्रेरित किया था । कई यह कल्याणकर दिग्दर्शन बचन आकाश से पुन-प्राप्तिके लिये होर तब करते लक्ष । इसके समान मोहरनेकी प्रतीति हुआ की, अब यह प्रिय आदि बोधोन्ने अपने कल्याण करके पुत्रकी भाँति निश्चय प्रकाश सकारिष्य हो गया । हिन्दु । तब विमली कल्याण कल्याण विद्वा कल्याण है तब जो विचार कारण करनेवाले हैं, वे यंत्र इसकी कल्याणके प्रतीति प्रकट होकर उसे सब प्रकट करनेके लिये बले और उस प्रकाश पर्यंकार देखकर दिग्दर्शनको बोले ।

प्रश्नोत्तराने कहा— 'इसका अब तुम अपनी मुक्तियोग्य विचार सब कर । किन्तु लिये तुने इस प्रकाश आकाश लिया है ? तुम अपना मोहरने से प्रकट कर । मैं बगवान् इंकार हूँ, अतः मेरी जो अभिषेकवा होगी, यह सब मैं तुमने प्रतीति करोगे ।

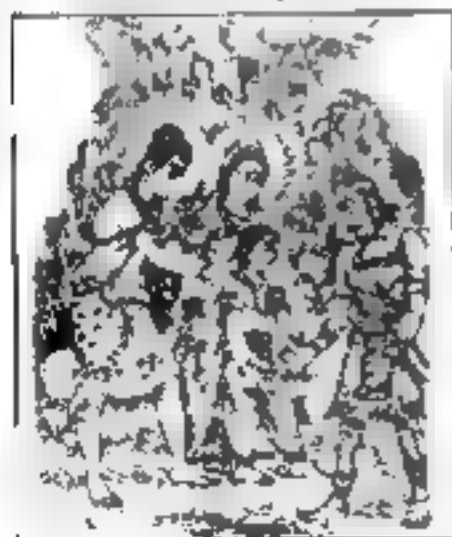
मनःकुमारजी कहते हैं— 'बुने । मोहरनेके इस मार बचनको सुनकर दिग्दर्शन दिग्दर्शन परम प्रकट हुआ । उसने विरिष्ठाके कारणोंने मनःकुमार करके अनेक प्रकारने इसकी लक्ष्मी की, फिर वह अज्ञानि बाँधे फिर लक्ष्मीकर करने लगा ।

निष्कर्षार्थाने कहा— 'बगवान् ! मेरे

जाना पाकराजसम्पन्न तथा वैजयन्तके अनुसन्ध कोई पुत्र नहीं है, इसीलिये मैंने इस प्रसन्न अनुसन्ध विवाह है। देवेन्द्र ! भूले घरम चलसाली पुत्र सीजिये।

सैनकुमारजी कहते हैं पुने। देवराजके इस सम्पन्नके सुन्धार सुम्पनु प्रकार प्रसन्न हो गये और उससे बोले - 'सैयाधिय ! मेरे सम्पन्न मेरे सीयसे प्रसन्न होनेवाला पुत्र तो नहीं मिलता है, किन्तु मैं तुझे एक पुत्र देता हूँ। मेरा एक पुत्र है, जिसका नाम अशोक है। यह मेरे ही सम्पन्न पराक्रमी और अशोक है। तु सम्पूर्ण सुम्पन्नके आश्रय करीको सुम्पन्नके घरम कर ले और इस प्रकार पुत्र प्राप्त कर ले।'

सैनकुमारजी कहते हैं महर्षे ! उससे भी कहकर भीजिये प्रसन्न विराजमान इस सम्पन्न पुत्रवाला विद्वारि संसारके प्रसन्न होकर विराजमानकी यह पुत्र दे दिया। इस



प्रकार विजयजीसे पुत्र प्राप्त करने के

सम्पन्नकी दैव पात्र प्रसन्न हुआ। उसने अनेकों सौतेलुवा सखी पुत्रा करके प्रदक्षिणा की और फिर वह अपने सम्पन्नके चलन गया। गिरौडसे पुत्र प्राप्त कर लेनेके बाद वह प्रसन्न पराक्रमी दैव सम्पूर्ण देवराजकीसे सीजकर इस भूमिकी अपने देव सम्पन्नके असा से गया। तब देवराजजी, मुनिकों और सिद्धोंने अशोक पराक्रमी विजयजी अशोक की। फिर तो चण्डीच विजय सम्पन्नके सम्पन्न विचाराल पात्र-कारि करणकर सुम्पन्नके अनेकों प्रद्वारोंसे भूमिकी विद्विर्भ करके चालाल-लोकमें जा चुके। **॥ ॥** कभी व दृष्टेवाले अपनी अशोकी कंधोंसे तब भूमिकी सीकड़ों देवराज सम्पन्न विचारालकर अपने सम्पन्न कंधोर कर-प्रद्वारोंसे विचारालकी लेनकी वच प्राप्त। सम्पन्न अशोक दैव प्रसन्न तेजस्वी विजयके कंधोंसे सुप्रीति सम्पन्न प्रसन्नमान सुदर्शन-सकसे विचारालके प्रसन्नविचार विचारके कट लिफा और पुत्र देवराजकी अशोककर भजन कर दिया। यह देवराज देवराज इज्जती कड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने इस अशु-रामचर अशोककी अशोकिक कर दिया। फिर सम्पन्न इस विजयके अपनी दावेंद्वार चालाललेकसे भूमिकी अपने हृ देवराज पात्र प्रसन्न हुए और अपने सम्पन्न अशोक पुत्रका स्वर्ग और चालालकी उजा करने लगे। इस पराक्रमी अशोक करके अशोक कार्य करनेवाले सम्पन्नकी सीद्धी प्रसन्नविचार हुए सम्पन्न केने, मुनिकों और पशुपति सम्पन्नका प्रसन्निका होकर अपने लोकमें

काले गये। इस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत के अन्तर्गत समस्त देव, मुनि तथा अत्याचार करने वाले विष्णुधारा असुरोंका हिरण्यकशिपुने मारे जीव सुखी हो गये। (अध्याय ४२)



## हिरण्यकशिपुकी तपस्या और ब्रह्मासे घरदान पाकर उसका अत्याचार, नृसिंहद्वारा उसका बध और प्रह्लादकी राज्यप्राप्ति

सनत्कुमारजी कहते हैं—आकाशी !  
इधर ब्रह्मचर्यव्रत के औचित्यके द्वारा इस प्रकार बाईके बारे जानेका हिरण्यकशिपु जोष और जोषके संसार हो गया। औचित्यके साथ ही करना तो उसे करना ही थी, अतः अपने संसारके ही और असुरोंके प्रत्यक्ष विनाश करनेके लिये उत्पन्न हो ही। तब वे प्रकाशित असुर स्वर्गकी ओर प्रत्यागमन करके देवताओं और उग्रताओंका हितकर करने लगे। इस प्रकार जब यह दुष्ट विनाशवाले असुरोंद्वारा साथ देवके एक भक्त-मनुष्य कर दिया गया, तब देवता बाईके छोड़कर गुरुत्वसे भूतत्वपर विचरने लगे। उधर बाईकी मुसुके दुःखी दुष्ट हिरण्यकशिपुने बाईकी कलत्रभूमि देकर उसकी ओर आदिमके समस्त संसार। तत्पश्चात् उस देवताउत्तरे अपने लिये विचार किया कि 'मैं अक्षय, अन्न और अन्न हो जाऊँ। मेरा ही स्वभाव साक्षात् यह और मेरा प्रतिपक्षी कोई न हो जाय।' तो वहका बलकर वह ब्रह्मचर्यव्रत गता और बाई एक मुकाबले अन्तर्गत होर प्रत्यक्ष करने लगा। उस समय यह धैर्यके औचित्यके साथ था। उसकी भुजाएँ ऊपरकी ओर थीं और दृष्टि आकाशकी ओर लगी थी। उसकी तपस्यासे संसार होकर देवताओंका

मुख निकल हो गया। वे स्वर्गकी छोड़कर ब्रह्मचर्यके लिये ही चले और उन्होंने ब्रह्मासे अपना दुःख कह सुनाया। आकाशी ! उन देवताओंके इस प्रकार ब्रह्मचर्य स्वयम्भू प्रकाश भूत, दक्ष आदिके साथ उस देवताके आकाशपर गये। तब विनाश अपने लिये लक्ष्मी स्वेच्छाके संग्रह कर दिया था, उस हिरण्यकशिपुने घर देनेके लिये आगे हुए कष्टकोषी ब्रह्मचर्य अपने साथे उपस्थित देवता। उधर विनाशकी ही उत्तरे काट—  
'जो चीज।' तब विनाशकी बुद्धि चीलिन नहीं हुई थी उस असुरने विनाशकी इस बंधु कार्याकी सुनकर इस प्रकार कहा।

हिरण्यकशिपु कहता—देवताप्राप्ति प्रकाशित। विनाश। मैं चाहता हूँ कि स्वर्गमें, भूतत्वपर, दिनमें, रातमें, ऊपर अक्षय नीचे—कहीं भी लक्ष, अक्ष, पाक, कष्ट, सुख दुःख, फल, अन्न, अन्निके लिये लक्षके प्रसारने देवता, देव, मुनि, सिद्ध विष्णुका अग्रद्वारा गये हुए जीवोंके हाथों भूते कभी भी भूतत्व पर न हो।

सनत्कुमारजी कहते हैं—मुने !  
हिरण्यकशिपुके लिये स्वर्ग सुनकर पशुकोषी ब्रह्मचर्यके लिये स्वर्गका भाव आगम हो गया। उन्होंने मन-हो-मन विष्णुको प्रणाम करते करते कहा—'देवता ! मैं तुझसे प्रणाम हूँ,



अन्न, अन्न, शक्ति, शक्ति, फल, अन्न  
और पातक आदिसे उन भूगोत्रके साथ स्नेह  
लेता ही रहा। इस प्रकार बहुत कमलरसक  
भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें उन नृसिंहने  
कनके समान कड़ोर अपनी अनेकों  
भुजाओंसे उस दैत्यको पकड़ लिया और उसे  
अपने जानुओंपर लिट्यकर दानवोंके चारों  
दिशि फैलानेवाले नलकुण्डोंसे उसकी उमरी  
चौर डाली तथा खुदसे लक्ष्मण हुए उसके  
हृदय-कमलको निकाल लिया। फिर तो  
इसी क्षण उसके प्राणक्षेपक हो गये। तब  
भगवान् नृसिंहने कान्तारके आधालसे  
जिसके सारे अङ्ग धूर-धूर हो गये थे, उस  
काहुभूत दैत्यको छोड़ दिया। इस समय उस  
देवराजके घोर जालेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता  
हुई। इसी अवसरपर प्रह्लादने आकर उनके  
चरणोंमें सिर झुकाया। तब अद्भुत पराक्रमी

विष्णुने प्रह्लादको कुलाकर उन्हें दैत्योंके  
राज्यपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं  
अतर्कित बभिको प्राप्त हो गये अर्थात्  
अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर विनायक आदि  
समस्त सुरेश्वर परम प्रभु हो अपना कार्य  
सिद्ध करनेवाले भूजनीय भगवान् विष्णुको  
उसी दिशामें प्रणमन करके अपने-अपने  
घामको चले गये। विप्रवर ! प्रसन्नकरा देने  
वाले अन्धककी इत्यसि, बराहसे  
हिरण्यवधकी मृत्यु, नृसिंहके हाथों इसके  
पकड़कर विनाश और प्रह्लादकी राज्य-  
प्राप्तिकी वर्णन कर दिया। द्विजश्रेष्ठ ! अब  
यै शिवकी कृपासे प्राप्त हुए अन्धकके  
प्रचलनका संकरजीके साथ उसके युद्धका  
और पीछे जिस प्रकार उसे पक्षेवाके  
नन्दाश्वत्थ-पटकी प्राप्ति हुई, उस कथाका  
वर्णन करता हूँ, सुनो। (अध्याय ४३)

१

भाइयोंके उधालधमसे अन्धकका तप करना और घर पाकर त्रिलोकीको  
जीतकर स्वेच्छाचार्यमें प्रवृत्त होना, उसके मन्त्रियोंद्वारा शिव-परिवारका  
घर्षण, पार्वतीके सौन्दर्यपर मोहित होकर अन्धकका वहाँ जाना और  
नन्दीश्वरके साथ युद्ध, अन्धकके प्रहारसे नन्दीश्वरकी मूर्च्छा, पार्वतीके  
आवाहनसे देवियोंका प्रकट होकर युद्ध करना, शिवका आगमन  
और युद्ध, शिवद्वारा शुकाचार्यका निगला जाना, शिवकी  
प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारण करके दानवोंके  
रक्तका पान करना, शिवका अन्धकको अपने  
त्रिशूलमें पिरोना और युद्धकी समाप्ति  
सन्तुष्टाएवी कहते हैं। पुनिर ! एक समय हिरण्यवधका पुत्र अन्धक अपने



प्राप्त कर और सदा सीरोके साथ युद्ध करता रहा। भुवीश ! हिरण्यकशपुष अन्धकारके शरीरमें नसे और इन्द्रियों ही सेवक रह गयी थीं। वह ब्रह्माके ऐसे पञ्चनको सुन्दर हीन ही भक्तिपूर्वक उस स्त्रोकेधुरके चरणोंमें लोट गया और इस प्रकार बोला।

अन्धकारने कहा—बिम्बो ! तब मेरे शरीरमें नसे और इन्द्रियोंका ही सेवक रह गयी है, तब तब इस देखते समझनेमें प्रवेश करने में कैसे युद्ध कर सकूंगा। अन्ध ! अन्ध आप अपने पवित्र हाथमें मेरा स्पर्श करके इस शरीरको प्रोत्साहन बना लीजिये।

संगल्पभारती कहते हैं—यहमें। अन्धकारकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्मजीने अपने हाथमें उसके शरीरका स्पर्श किया और फिर वे मुनिगणों तथा विद्वत्समुहोंसे धर्मीयोंति पूजित हो देवताओंके साथ अपने भगवत्की चले गये। ब्रह्माके स्पर्श करने ही उस ईश्वरसत्ताका शरीर धरा-पूरा हो गया, जिससे उसमें कलकला संसार हो आया तथा वेदोंके प्राप्त हो जानेसे वह सुन्दर दीप्त हो गया। तब हमने प्रसन्नतापूर्वक अन्धों जगत्में प्रवेश किया। इस समय प्रह्लाद आदि श्रेष्ठ राजाओंने जब उसे बाटान प्राप्त करके आकाश हुआ जाना, तब वे सारा राज्य उसे समर्पित करके उसके वंशवर्ती भूत हो गये। तदनन्तर अन्धकार सेना और भूतदलियोंके साथ ही स्वर्गमें जीतनेके लिये गया। वहाँ संसारमें सम्पन्न देवताओंको पराजित करने के लिये धनुषधारी इन्द्रको अपना शत्रु बना

लिया। उसने राज-मन्त्र बहुत-सी लक्ष्मणों लक्ष्मणों, सुकर्षों, श्रेष्ठ राजाओं, गन्धर्वों, यक्षों, यमुज्यों, वज्र-वज्र पर्वतों, वृक्षों और सिंह अश्वि अश्विन चौपायोंको भी जीत लिया। यहैतक कि उसमें चराचर मिलेकीको अपने चरणों पर लिखा। तदनन्तर वह राजासमर्थ, भूतसमर्थ तथा स्वर्गमें मिली सुन्दर अन्धकारकी नागियाँ थीं, उन्मत्तोंके इमारतोंके, जो आकाश दर्शनीय तथा अपने अनुकूल थीं, साथ लंकार विभिन्न वर्तमान तथा नदियोंके समशील सरोवर विहार करने लगा। ईश्वरसत्ता अन्धकार से ही युद्धमें ही लड़ कर रहा था। उसकी बुद्धि मरने लगी हो गयी थी, जिससे उस युद्धमें इसका कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया कि चरणोंके अन्धकारको सुरक्षित देनेवाला भी कोई कार्य करना चाहिये। इस प्रकार वह बहुमलकी हीन अन्धकार हो और अपने सारे प्रधान-प्रधान पुत्रोंको हनुमत्कादसे पराजित करके कैलेशीन सम्पूर्ण वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ विचारण करने लगा। वह अन्धकार कहने अभिभूत हो वेद, देवता, ब्रह्मण्य और पुत्र आदि किसीको भी नहीं मानता था। प्रारब्धकर्म उसकी आधु समाप्त हो चुकी थी, इसीसे वह लोकलोकामें प्रभुत हो पर्वतों में अपनी आपुर्ण श्रेष्ठ दिन गौरव हुआ समझ कर रहा था। इस समयमें उसके तीन यन्त्री थे, जिनका नाम था—दुर्धौघन, वैधस और हस्ती। एक समय उस तीनोंने उस धर्मोंके किसी समशील





कुर, कुलध और मद्रा ही पञ्चकर्मा करनेवाला है। क्या उसे सूर्यपुत्र बचका पता नहीं है ? कहाँ तो ये, येरे वामन भुक्त और मृत्युको भी संजस्त कर देनेवाला युद्ध और कहाँ वह बानरका-स मृत्युवास्तव इरफोक निराकार, जिसके सारे अङ्ग बुद्धिसे जर्जर हो गये हैं ! कहाँ वेरा वह स्वल्प और कहाँ सेरी बन्धुभाव्यता ! सेरी सेना भी तो वहींके बराबर ही है फिर भी यही मुझने कुछ समझी हो तो युद्धके लिए तैयार हो जा और आकर कुछ अपनी बरातल दिखा । येरे पास तुझ-जैसे पाण्डिपोक विनाश करनेवाला बन्ध-मरीता भयंकर लक्ष है और तेरा जरीर तो कमलके समान कोमल है। ऐसी दशाके विचार करके तुझे जो तनिकार जलित हो यह कर :

सन्तुष्टाजी करते हैं—मुनिवा !  
पाण्डिपोक की जल सूनकर (बला) पाण्डिपोक सोलित हुआ वह कायाय रक्षण विनाश सेना लेकर जाय दिया और वहाँ पहुँचकर मदीधरसे युद्ध करने लगा । बड़ा ममानक युद्ध हुआ । उस प्रथम युद्धत्वस्थके कहीं, मज्जा, मोस और रत्नकी कोश मल गयी । वहाँ सिर कटे हुए वह रात्र रात्र हो और कल मोस लालेधाले जानकर बाने और व्याप्त हो गये थे, जिससे वह बड़ा मचंकर लग रहा था । बोड़ी तो तेरे दैत्य भाग लड़े हुए । तब विनाशकारी बगलान् जंकर दक्ष-कनक सलीको धलीभौति धीरव चौधाले हुए बोले— 'प्रिये ' मैंने जो पहले अत्यन्त धर्मकर मझन् पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया था, उससे रात-दिन तुम्हारे प्रसंगवत्त आ इधारी सेनाका

विनाश हुआ है, यह विप्र-सा आ पड़ा है । देवि ! बराधर्मा पाण्डिपोक जो अमरोपर अमज्जल हुआ है यह माने पुण्यका विनाश करनेवाला कोई वह ब्रकट हो गया है । अतः अब ये पुनः किसी निर्जन वनमें जाकर उस पास अद्भुत विषय व्रतकी दीक्षा लेंत और उस कठिन व्रतका अनुष्ठान करके । सुन्दरी ! मुफारा शोक और भय दूर हो जाना चाहिये ।

सन्तुष्टाजी कहते हैं—मुने । इनका कड़वाता उस प्रभावकारी महाका संकर धीरेसे अपना सिंगल ज्ञातकर एक अत्यन्त धर्मकर वाक्य बनने वाले गये । वहाँ ये एक हजार वर्षोंके लिए पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानमें मग्न हो गये । इस व्रतका विधान देवी और अमरोपकी अधिकके बाहर है । इधर हीनगुणसे सम्पन्न पतिव्रता देवी पार्थवी कन्दगायतया ही रहकर शिवजीके आगमनकी इरीहा करती रहती थीं । वहापि पुनःपार्थीव वीरकगल उनकी सुरक्षासे मगर थे, तबपि उस गुहाके भीतर अकेली रहनेके कारण वे मद्रा भवभीत रात्री की जिससे उन्हें बड़ा दुःख होता था । इसी बीच कन्दानके प्रभावसे उत्पन्न हुआ वह दैत्य अत्यन्त, जिसका दीर्घ कामदेवके बाणोंसे क्षिप्र-धिर हो गया था, अपने मुख्य-मुख्य कोशओंको साथ में पुनः उस गुफापर वह आया । वहाँ सैनिकोंसहित उसने वीरकगलके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया । उस समय सभी वीरोंने अत्र, जल और नीटकर पस्तियाग कर दिया था । इस प्रकार वह युद्ध लगातार पाँच से पाँच



मेघोंने धृतराष्ट्रकार जल करसाकर उसे पीला कर दिया। विष्मलकण्ठो समान होनासे राजमायाको किरावोने उसे विहीन कर दिया। फिर भी उस वैश्रावणे अपने प्रणवोंका परिधान नहीं किया। उसने विश्वेश्वरसे शिवजीका सन्ध करवा दिया। उस करवाले अगाध स्नान सन्ध प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे प्रेमपूर्वक गंगाध्वजकी यह प्रणय कर दिया। मन्त्रज्ञान् बुद्धको सचरा हो जानेसे स्नेहादासेमि नाथ प्रणयको स्वरगीर्षव कोनेप्राप्त विमिषकीक शिवजीकी अर्चना की

अबेर इतिहास दूर जाया, किन्तु आदि देवोंने गर्वन  
भुवनेश्वर का योगेनम सुनिर्णयद्वारा उनका सायन  
निर्णय । फिर यह-कथनकार कहते हुए ये आनन्द  
कल्पने लगे । ब्रह्मन्तर किशोरी उन सबको साथ  
लेकर अत्यन्तपूर्वक गिरिराजकी गुफाको लैट  
आये । वहाँ उन्होंने अपने ही अंगभूत  
कुञ्जीव देवताओंको साथ प्रवेशावली में  
सम्पन्न करते उन्हें किशु किशक और सब  
प्रसन्न हुईं गिरिराजकुमारोंके साथ उत्तमोत्तम  
जीवन व्यतीत करने लगे ।

(अध्याय ५५-५६)



नन्दीश्वरद्वारा शुक्राचार्यका अपहरण और शिवद्वारा इनका निगलन जाना, सौ  
अर्धके बाद शुक्रका शिवस्त्रिभुके रास्ते बाहर निकलना, शिवद्वारा इनका

‘शुक्र’ नाम रखा जाना, शुक्रद्वारा जपे गये मृत्युञ्जय-मन्त्र और शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रका कर्पण, शिवद्वारा अन्यकको घर-प्रदान

कर्मसंकीर्णने पुनः—महाबुद्धिमान्  
 इन्द्रकुमारजी । ज्ञान का महान् चक्रेपर एक  
 रीमसंज्ञकारी संज्ञक चल रहा था, उस  
 समय त्रिपुरारि शंकरने देवगुरु विष्णु  
 बुद्धिवाच्यको विगलन किया था—जो पदार्थ  
 मैंने सोचेयने ही सुनी थी । अब आप उसे  
 विस्तारपूर्वक वर्णन करीजिये । विनाशकारी  
 शिवको उदरमें जाकर उन महायोगी  
 सुकामचर्याने क्या किया था ? शम्भुकी  
 कठराशिने उन्हें बलवान् क्यों नहीं ?  
 भृगुनन्दन बुद्धिमान् सुक भी तो  
 ब्रह्मपाशकालीन अश्विके समयमें उस तेजस्वी  
 थे । वे शम्भुके ऊपर-पट्टनमें कैसे निबटने ?  
 उन्होंने कैसे और किसने ब्रह्मपाश ऊतारकर-  
 धरि थी ? तात ! उन्हें जो भृगुकी कृपण  
 करनेवाली पराजिता प्राप्त हुई थी, वह विगत

मरीच-सी है, जिससे कुसुमा विचारण हो  
 जाता है ? कुसु ॥ लीलाविहारी देवाभिलेख  
 कल्याण संस्कारके विस्तारसे इसे रूप  
 अन्वयकासे गंगाधरदासजी प्राप्ति कैसे  
 हुई ? रत्न ॥ कुसुं शिवमरीचकृत शब्द  
 चरनेकी विशेष व्याख्या है, अतः आद्य  
 मुद्रापर कुसुं शब्दके भाव सदा सुनाया  
 गयाकासे वर्णन कीजिये ।

महाशय महाराज हैं—अभिलेखकारी  
महाशयोंके इन वचनोंको सुनकर रामकुमार  
हिनयोंके शरणाग्रहीताएँ स्वरों काके  
कानों लगे ।

संस्कृतभाषा में कहा—मुनिवर ।  
मगधान् ईश्वरके अवधौकी जब अवधस  
मिचल होने लगी, [REDACTED]  
मुनिवरकी सरणीय गया और उसने





तान्त्रिकोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए, टीका करने तरह जैसे जगन्मा येशोकी घटामें प्रवेश करते हैं। व्यासजी ! इस प्रकार तन्त्रसूत्रमें संस्कारों विस तरह शुद्धको निगल लिया था, वह वृत्तान्त तो तुम्हें सुना दिया : अब साम्प्रतिके ज्ञानमें शुद्धि करने जिस व्यवस्था कर किया था, उसका वर्णन सुनो।

यहमें ! यह क्या किस प्रकार है—

‘ॐ नमस्तो दत्तेनाथ सुरासुरनमस्कृत्य धूम्रभाष्यमहादेवाय हरितीर्थप्रसन्नप्रोक्त्या बलाय बुद्धिःपिणे गणपतारानन्दप्रदायकशाय श्रीलोकप्रभवे ईश्वराय हराय हरिनिम्बाय पुष्पाक्षरकणायानाथाय गणेशाय लम्बकप्रभय महाभाय महाहस्ताय सुहृदिने महादृष्टिने कालाय म्लेच्छराय अध्ययाय वराःपिणे नीलश्रीनाथ यशोहराय गणाध्यकाय सन्तोषने सर्वभावनाय सर्वगमे मुक्तिको पञ्चिकर-सुवताम ब्रह्मचारिणे नैदानत्राय तपोऽसम्पन्न पशुपतये भद्राय जगन्नाथये कृष्णजये हरेये जटिने त्रि-लुपिने लक्ष्मिने महायशसे भूये

सुराय मुक्तार्थभने नीलपञ्चवत्सल्यते अमराय दानैराय अलसुर्येनाथय इमशान्वासिना मन्त्रते उत्तपन्ने अतिमाय भगव्याक्षि-पतिने पुष्पे दत्तमनाशमाय कृत्-कर्तकाय चन्द्रहस्ताय चन्द्रवकरलाय अलकामुखायमि-कन्तये गुनये दीप्ताय विशांपतये उत्तपये जनकाय चतुर्धराय लोकसत्तमाय वामनेकाय मण्डलिकप्रय वामतो भिक्षानं भिक्षुकीणां पतिने स्वयं जटित्वाय दत्तहस्तप्रतिपत्तमकाय वसुंभं साम्प्रकाय कृतानं कर्तुकदाय कर्त्तव्य मध्याग्ने गधुकराय अत्राय वानरप्रस्थाय शङ्करानंतराणाधमपुत्रिताय जगद्भूते जगत्पते पुनराय द्रव्यताय सुवाय धर्माध्यक्षाय त्रिकर्मिने भूतल्लभनाय विनयाय चक्रकाय धूर्वायूत-सम्प्रदाय देवाय सर्वतुर्पन्नादिने सर्वप्रधा-धिवाचनाय बन्धनाय सर्वभारिणे चर्मलभ्याय पुष्पलक्ष्मिचक्रिभगाय गुन्याय सर्वहराय त्रिपञ्चकृतये हृदिने श्रीपाय भीमपराजन्त्राय ॐ नमो ॥’

इसी मंत्र व्यवस्था जब करके शुद्ध

॥ ॐ जो दैवतज्ञोक्तें ज्ञानी सुर-मलप्रदाय कर्त्तार, भूत और अधिपतिके भक्त देवाय, हरे और पीले नेत्रोंमें युक्त, मलयग्री, बुद्धिलक्षण, कर्कश चरण करनेवाले, अर्धभक्त, त्रिलोकीके उत्पत्तिप्रदान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलम्बकरी, अग्रिमकर, गणेश, नैऋत्यक चक्राय, महाहस्त विश्रुत चरण करनेवाले बाड़ी बाड़ी मुकुटभने, पालककर, महेधर अक्षीनशरी, कर्त्तव्य, वीरकर, महोदर गणाध्यक्ष, सत्ताय सबकी उत्पत्ति करनेवाले, सर्वप्रदाते, सुगुनये दृष्टनेवाले, परिवार पूर्वतन ज्ञान ज्ञान भरण करनेवाले ब्रह्मचर्ये, नैदानप्रतिपन्न, तपस्वी तन्त्रिध जीवाकाय पञ्चनेवाले पशुपति, विविष्ट अक्षीवाले शुलभाणि, वृषभज, भाषावाहरी, जटावाही, दिग्गच्छ धारण करनेवाले, दम्बवाही, महायशस्वी, कृष्ण, मुहूर्तमें निष्कम करनेवाले, श्रीणा और पञ्चपत्र चक्र लम्बनेवाले, उत्तर, दक्षिण, उत्तरपूर्व-भूतोंके रूपवाले इमशान्मासी, ऐश्वर्यहराई, तमकी, सुकुटमा मन्त्रके नेत्रोंमें यह कर देनेवाले, पुष्पके दर्शने विनयाय, जगत्पते संपन्न करनेवाले, पाशाधारी प्रलम्बकलक्षण, अलकामुखी अक्षीनेत्र, वानरहीन प्रव्रजमान, ब्रजापति, उत्तर उत्प्रेषण, वांछों-को उत्पत्ति करनेवाले, सुविस्तारक, लोकमें सर्वज्ञ, कामदेव, कर्कशी पशुकरूप चर्मभारिणि भिक्षुरूप, भिक्षुक, अग्रचारी, जटिल दुरवध, द्रव्यके रूपमें सर्वज्ञ करनेवाले, जगत्पते विजडित कर देनेवाले,



















● 本表係根據「中華民國七十二年全國人口及家庭訪問調查」資料編製，資料來源為「中華民國七十二年全國人口及家庭訪問調查報告」。

[illegible][illegible]

मुने । शशिभक्त्यस्य सहादेव्यः कालः  
विश्वभक्त्येव भेदः और सारके मुद्रित्यात् भव ।  
उत्तरे सारकेव सारकेव उत्तरे सारके उत्तरे  
सारी सारी (और भवति) ।

सायबाम्बु सोरल—अन्धो ! अन्ध के  
रक्षक हो जाइये और मुझे सदा गणगोलहित  
के चरणरक्षक अन्धकृष्ण सायबाम्बु सर्वथा प्रीतिपद  
निर्लज्ज कह्यो हूँ केने पास ही विद्यालय  
बसोइये :

[illegible]

आत्मसमर्पण कदा—देवार्पणेन कदायेव !  
 अथ स्वयं देवताभ्योक्तं विस्तरेण हि ।  
 आत्मयत्नीं कृत्वा येन येन दृष्टातु । अथ  
 अथ येन स्वयं स्वयं सुखेन । येन . आत्मने





प्राप्त हो गयी। तब वेही पार्वतीजी की सन्तानों  
उन्हाको सन्तानों श्रीकृष्णको पौत्र अम्बिकाका  
सिन्धु प्राप्त हुआ। अम्बिकाका नाम अम्बिका  
गयी और उन्हाके अम्बिका कन्या सिन्धुलाती  
सन्तानों मिले हुए उन पुत्राका नाम देवेन्द्र  
होया।

राज निपटारेकाने कथा: 'देखि ! तुमने  
पत्तनमें निज पत्न्याको देखा है, जने पत्न्य ही  
कैतने लज पावतली है, पत्न्य कि में ओले मायाकी  
ही बनीं।' ऊपरके पों मायावेकर कैवल्यन्या कथा  
प्रेमान्ध्र होकर आयेकर उताव हो गयी, तब  
उस दिन हमकी इस सारीने इसे कथाका ।  
मुनिभेद । कुन्त्याकाकी बुकी निजलेका  
कही बुद्धिपत्नी की, यह मायाकाका कथाने  
घर: पोली ।

चित्रलेखकने कहा—सचही । जिस मुलकमें लुचारे समझी अन्धकार का चित्र है उसे कानाओ ली सही । अब यदि चित्रलेखकने कहीं भी होगा तो वे इसे लखेंगी और लुचारा भइ हर लखेंगी ।

सबलकुम्हारजी कहते हैं :—पहले ! जो  
कड़वा मित्रलेहाने चकले चमके  
देनामसी, देना वाचने, चकले, मिष्टो,  
नामों और चक आदिने मित्र अधिक मित्र ।  
मित्र यह चकलेना मित्र बनने लगे । इनने  
बुधियावशिष्योक्त इकरण आरम्भ होनेपर  
इनने दूर, चकलेन, चक, चकल और चकले  
इकरणने मित्र बनने । फिर जब इनने  
इकरणनचन अनिकइकरण मित्र लीक, जब  
इने देलकर इनने इकरणने हो गयी । इनकर  
मुक्त भवना हो गयी और इकरणने इकरणने  
परिणत हो गया ।

तैयारी कर—'महर्षि ! रातमें जो मेरे पास आया वह उसी विषयमें ही मेरे

जिनलगी अन्धको धुन रिझा है, यह सोर  
 मुल्य यही है।' तबनजर हवाके अनुरोध  
 करनेपर शिखरेला जेहू कुन्ना चार्दनीको  
 सीमरे पहर झाकानुरी परीखकर क्षणमात्रमे  
 ही कलेगवर सेते हुए आनन्दको महलमेमे  
 हल लगी। यह दिव्य कोमल थी। उवा  
 अपने शिखरको पकर जलज ही गयी।  
 फिर अन्ध-पुत्रके झरगी रक्त करनेवाले  
 केवली यहूदारीमे सेहूअली तवा  
 उन्मत्तमे हल कोलको लहल कर रिधा।  
 जहाँन एक दिव्य शरीरकारी, दर्शनीय,  
 लहली तवा अपाश्रित प्रथमकको  
 कन्नाके ललह दुःखिमतका अन्धरन करी  
 हूय देव भी रिधा। उरी ऐलकर कन्नाके  
 अन्ध-पुत्रकी रक्षा करनेवाले इन महलकी  
 पुनमेमे शनिपुत्र कोलासुरके ठल आकार  
 उरी लली निन्दन करी हल लल।

इसका मत होता है—**देह**। यही नहीं, अपितु अन्तःपुर में कल्पवृक्ष प्रवेश करके वही पुनः विद्या हुआ है। यह वृक्ष तो नहीं है, जो वीर महामुख अन्तर्मुखी कल्पवृक्ष उद्भासित कर रहा है ? महामातृ दामोदरान ! उसे यहाँ देखिये देखिये और जैसा इच्छित समझिये विया कीजिये। कृष्ण महामोक्षा कर्ता योग नहीं है।

यस्यन्तु-भारती बजाते है :- मुन्निहोह !  
 अरुणालोक्य यह बसत तब कन्याके मुखि-  
 होनेका कंधर सुनकर यहकाही यमनराज  
 मान्य अवलोक्यकहिनी ही गय । तबन्तर यह  
 कुपित होकर अना-पुनर्कै का पतुंवा यही  
 जाने प्रकय अकम्पाये कर्तव्य सिद्ध  
 करीरकरी कर्मिन्नाको देला इसे यहन  
 अवलोक्य हुआ । फिर उसने उभयय बल  
 देहकेके निम्ने इस इन्तर सैनिकोको भेजकर









श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रो लोकां विभक्त्य और विजयप्राप्तिसे सुसोपान हो से काण्वसुराके अन्तःपुरमें पकड़े । वहाँ उन्होंने अन्तर्मुखी अनिरुद्धको आश्वत्थाम दिया और काण्वद्वारा दिये भये अनेक प्रकारके लज्जामुद्राको ग्रहण किया । अन्तर्मुखी जल्दी करय योगिनी विजयलक्ष्मीसे जाकर तो श्रीकृष्णको चाम्पू दर्श हुआ । इस प्रकार विजयके अक्षयानुमान जब अन्तका सारा कार्य पूर्ण हो गया, तब से हीही हृदयसे संकल्पसे प्रभाव सब और बलिष्ठयुव बाणसुराकी आज्ञा से बरिचरसमेत अपनी पुरीको लौट गये । द्वारकामें पहुँचकर उन्होंने यमराजको विजय वार दिया । विजय वरपुर्वक मिथिलेसे मिले और लोकानुमान आश्चर्य करने लगे ।

इधर नयीनारनै बाबासुरजी सचमुचकी  
 यह कहत—'महाशयूना ! तुम आनेकर  
 सिखजीका सरण करो । ते मलमेर  
 अनुकम्पा करनेवाले हैं, अतः उन आदिपुरुष  
 श्रीकारनै मन स्थापित करनेके निम्न उपाय  
 महोत्सव करो।' तब देवदत्तनै हृत्त  
 ग्यामनाकी बाब नदीके किनारेमें धीरे धामन  
 करके तुरत ही सिखजनको गवा । यहाँ  
 शूनाकर अपने मना प्रसारके लोभोद्धा  
 सिखजीकी शक्ति की और उन् प्रत्यक्ष  
 किया । फिर यह बादमें सुनकी लगने हुए  
 और हथोप्ये सुनाते हुए मना प्रसारके  
 अस्तीति और प्रयापनीति अर्थात् प्रमुख  
 स्थानकोद्धारा सुनोचित कुनोमें प्रत्यक्ष  
 लक्ष्यवन्त करमे लगा । इस समय यह  
 हजारों प्रकारसे मुलुद्धा काज मना यह न  
 और बीच-बीचमें पीछेको घटकाकर मना

निराश्रितों की भाँति प्रकट करके धर्म भी प्रकट करता है। इस प्रकार मृत्यु के बाद ही मनुष्य का सत्य स्वरूप प्रकट होता है। मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य ही प्रकट होता है। मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य ही प्रकट होता है। मनुष्य के जीवन का अन्तिम लक्ष्य ही प्रकट होता है।

सूत्रे वक्ता—वर्तमान्युक्तं पदार्थं ज्ञानं । तेन  
नृपणो नैव संशयः हो गन्ता ह्ये, अतः ईदृशः ।  
तेन ज्ञानेन नो अधिपत्यं हो, अतः अनुपपन्नं  
यत् ज्ञानं हो ।

सन्तुष्टिभारभी करते हैं—युने !  
 शम्भुकी कल सुन्दर हैकाम बाजने इस  
 प्रकार कर धीमा—'मेरे पास नर नहीं,  
 साहसुद्धकी कमान नहीं रहे, मुझे अक्षय  
 गन्तव्यकाच भरी है, सोमिलपुरमें जवापुत्र  
 अर्थात् मेरे सौदामन नाम है, देवताओंसे  
 उक्त विशेष करके विष्णुसे मेरा वीरभाव  
 निश्चय, मुझमें रजोगुण और लोभोगुणसे  
 कुछ दूषित हैकामकाच युने; उक्त व ही,  
 मुझमें मनु निर्विकल शम्भु-पति नहीं रहे  
 और विश्व-कर्मोंका मेरा बोझ और समस्त  
 प्रणियोंपर दबाव है।' श्री शम्भुसे  
 अश्वत्थ भीष्मकर कलिकुल ग्यासुर राजा  
 अश्वत्थ बोले स्वकी स्तुति करने लगा। इस  
 समय उनके नेत्रोंमें प्रभुके आँसु सरसक आये  
 थे। स्वयंका जिसके सारे अङ्ग प्रेमसे  
 प्रकुम्भित हो उठे थे, वह कलिकुल  
 ग्यासुर गौडराजसे प्रभाव करके वीर हो  
 गया। अपने घर बाजकी प्रार्थना सुनकर  
 गन्धर्व जंकर 'मुझे सब कुछ प्राप्त हो  
 जायका' श्री शम्भुकर यही अभ्यर्थना हो गये ।



काशीमें मेरे मित्रको सबसे स्थान हो जाना !  
इसका नाम कुतिलप्रवेश्वर होगा ! यह सबका  
प्राप्तिबोधके लिये बुद्धिबल, मध्यम  
पातकीका विनाशक, सम्पूर्ण विप्लवके  
परिणामपर और बोधप्रद होगा । जो कष्टकर  
देवदेव दिगम्बर विप्लव के चक्रावृत्त  
का विनाश करने के लिये ओह होगा ।

પુનોહા ! કલ દિન ચહન કલ કરસન પચાવ  
 ગયા । કલકીર્તિનામી જાગે ચન્દા તલ  
 પ્રવચનન હાંચન હો નયે । શિષ્યુ ઓર તથા  
 જાદિ દેશજાઓના જન હૃદયે પતિપૂર્ણ હો  
 નય । જે કલ ઓગર પોશરવસે પચાવ  
 કરસે કલકીર્તિ કરને લયે ।

(अध्याय ५०)

★

हुन्दुभिनिर्हाद नायक दैत्यका व्याघ्ररूपसे शिवधनुषपर आक्रमण  
करनेका विचार और शिवद्वारा उसका बध

सत्यवादीजी कहते हैं—अच्छी !  
अब मैं चन्द्रगीर्णिके तब परिचित होकर  
कहींगा, जिसमें चन्द्रगीर्णिके दुर्गुण-विशेष  
नामक लेखको पारा था। तब सत्यवादी  
होकर अचानक बोले : निमित्त यह सत्यवादी  
विशेषाधिकार विष्णुदास भारे अनेक  
दिनोंको बहुत दुःख हुआ : तब वेचन  
दुर्गुण-विशेषिके इसको आश्चर्य होकर यह  
विशेष किताब कि 'देवता-अधिकार' का नाम  
है। सत्यवादी यह बो जायेंगे तो यह नहीं होगा,  
यह न होवेपर देवता अधिकार न पानेसे निमित्त  
हो जायेंगे। तब मैं उनपर बहुत ही विचार का  
लैगा। 'बो विचारकर यह सत्यवादीको पाने  
लगा। सत्यवादीका प्रत्यक्ष अर्थन कारणात्मी  
है, यह भेदकर यह पाने लैगा और अपने  
अधिकार कावकर समिति लेते हुए, अपने  
सत्यवादी कावकर जान करते हुए और अपने  
अधिकार कावकर सोने हुए सत्यवादीको  
पाने लैगा।

एक बार विद्यार्थिकों अवसरपर एक  
भात अपनी पर्याप्तताओं केअधिन  
प्रकारका पूजन करने केअवसरपर बैठा था।  
कलाधियायी देवताएं वन्द्यमूर्तियाँ

[illegible]



\*\*\*\*\*

स्थानपर आ पहुँचे। वहाँ परमेश्वर दिव्यरथसे  
आगत्य उस पार्थीको दृष्टाये हुए देखकर सब  
लोग उनके चरणोंमें पड़ गये और नम-  
जयकर करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

तत्पश्चात् महेश्वरने कहा—‘जो धनुष्य  
यहाँ आकर अष्टाध्यायके धरे हुए कण्ठपर  
दर्शन करेगा, निःसंदिग्ध है उसके लगे  
हृदयबोझो नष्ट कर दूँगा। जो वाक्य धरे हुए  
चरित्रको सुनकर और हृदयमें धरे हुए  
त्वक्का स्मरण करके संतापमें प्रवेष्ट  
करेगा, उसे अत्यन्त निजम्बकी प्राप्ति होगी।

मुने ! जो धनुष्य व्यासेश्वरके प्राकट्यमें  
सम्बन्ध रखनेवाले इस चरित्रोत्तम चरित्रको  
सुनेगा अथवा दूसरेको सुनावेगा, पक्षेण वा  
पक्षवेगेन, वह अत्यन्त सचकल मनोवर्जित  
कन्दुओको प्राप्त कर लेगा और अन्तमें  
सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित होकर मोक्षका भागी  
होगा। निम्नलीलासम्बन्धी अमृतमय  
अक्षरोंमें धर्मपूर्ण यह अनुपम आख्याय  
स्वर्ग, स्वर्ग और आमुक्त देवेन्द्राणा तथा पुत्र-  
पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय ५८)



## विदाल और उपल नामक दैत्योंका पार्वतीपर मोहित होना और पार्वतीका कन्दुक-प्रहारद्वारा उनका क्रम तपाम करना, कन्दुकेसुरकी स्थापना और उनकी महिमा

मनलुभायी करते हैं—आत्मजी !  
जिस प्रकार परमेश्वर शिवने संवेद्यसे देवकी  
लक्ष्य करके अपनी शिवाग्र आकाश का  
कण्ठ था, उनके उस चरित्रको तुम वरम  
प्रेमपूर्वक अवलोक करो। विदाल और उपल  
नामक दो महर्षि हैं। उन्होंने अष्टाशीसे  
किसी पुरुषके हाथसे न बरकेछत्र वर प्राप्त  
करके सब देवताओंको जीत लिया था। तब  
देवताओंने अष्टाशीके पास आकर अपना  
दुःख सुनाया। उनकी कह-कहानी सुनकर  
अष्टाशने उनसे कहा—‘तुमलोग शिवसहिज  
शिवका आदरपूर्वक स्मरण करके धर्म  
धारण करो। ये दोनों दैत्य निश्चय ही देवीके  
हाथों में मारे जायेंगे। शिवसहिज शिव  
परमेश्वर, कल्पशाकल और भक्तवत्सल है।  
ये स्त्री ही तुमलोगोंका कल्याण करनेवाली है।’  
मनलुभायी करते हैं—मुने ! देवोंसे

जो कहकर अष्टाशी शिवका स्मरण करते हुए  
मौन हो गये। तब देवता भी आनन्दित  
होकर अपने-अपने वासमें लौट गये। एक  
कल्प तपस्वीके द्वारा पार्वतीके सौन्दर्यकी  
प्रतीक सुनकर वे दोनों दैत्य उनका अपहरण  
करनेकी बात सोचने लगे और पार्वतीजी  
आर्ष गेट आगत नहीं थीं, वहीं वे जाकर  
अन्तर्गहमें विचारने लगे। वे दोनों घोर  
दुरात्मा हैं। उनका मन अत्यन्त चञ्चल हो  
रहा था। वे गन्धर्वक रूप धारण करके  
अश्विकाके निकट आये। तब दुर्योका सेहर  
करनेवाले शिवने अश्विनापूर्वक उनकी  
ओर देखकर उनके नेत्रोंसे प्रकट हुई  
चञ्चलशक्त के कारण तुरंत उन्हें पहचान लिया।  
किन्तु तब सर्वशक्तिशील महादेवने दुर्गातिनाशिनी  
दुर्गापत्नी कट्यवद्वारा सूचित कर दिया कि ये  
दोनों दैत्य हैं, क्या नहीं। नन्त ! तब पार्वती



शिवजीके सद्योजात, बामदेव, तत्पुत्र, अघोर और ईशान  
नामक पंच अष्टारोका वर्णन

[illegible]

श्रीलङ्का-वीरे कहते—महाभाग सुगन्धी !  
आज तो (पुराणकाली) पारश्वतीदेव विष्णु  
तक ज्ञान और दयामयी विधि है, अतः आज  
आज प्रभुदेव हम अस्मदीयका सर्वत्र  
कीर्तिसे, विष्णुके द्वारा उन्होंने परापूर्वकाल  
प्रकटका विष्णु है ।

सुरजी बोले—होमबहाजी ! अगर वो  
कमबख्तों का बन्धन है, अगर, अगर मैं अपनी  
दिव्यशक्ति से उन कमबख्तों का बन्धन काट दूँ,  
आप अपनी दुर्निमित्तियों से बंधन काटके  
सत्यशक्तिपूर्वक आप स्वतन्त्र बनकर खड़ी होंगे।  
मुझे । धर्मशास्त्रों से सम्बन्धित बातों में नट्टी बजाओ,  
जो सम्पूर्णता में नहीं। तब दिव्यशक्ति ही है,  
वही प्रथम शक्ति है, इस समय यही शक्ति  
दिव्यशक्ति का स्वरूप करने हुए उन्हें भी उबार  
देता है।

नन्दोदरने कहा मुझे ? जो तो सर्वज्यासी सर्वेश्वर त्रिमूर्ते का रूप-कायस्वरूपमें असंख्य अवतार हुए हैं, भक्तवत्सल रूप में अपनी बुद्धिसे अनुसार करनेसे मुझका सर्वान्तरण है। उसीमार्ग काय, जो योगप्रेक्षित नामसे विख्यात है, उसमें निराजनीक 'सुप्रसन्न' नामक अवतार हुआ

७३ : यह उनका प्रथम अवतार काङ्गलगा है । उस काङ्गलगे उस जगह बगलहाका स्थान कर रहे थे, उसी समय एक बंन और लोहित वर्णवर्णन क्षिरावारी कुमार उन्मत्त हुआ । उस देखकर जगहमे मन-ही-मन विचार किया : क्या उन्हें यह ज्ञान हो गया कि यह पुण्य जगहलगी परमेश्वर है, तब उन्होंने अनुचित कार्यकर उसकी सम्मान की । फिर उस परमेश्वर जगहलगे फल लभ गया कि यह महात्मन कुमार सिद्ध ही है, तब उन्हें पछाद् इर्ष हुआ : वे उसकी कदवद्विजे कार्यकर उस परमेश्वरन किया करने लगे । जगहलगी काग्य कर ही रहे थे कि चर्च कोन कार्यकरने कर बगलगी कुमार प्रकट हुए वे परमो-कृत्य जगहलगात तथा परमेश्वरने जगहलगे थे : उनके मुख थे — सुन्दर, नन्दन, विजयल और उन्मत्तन : वे लभ-ही-लभ महात्मन थे और जगहलगीके किया हुए : इनमे यह जगहलगेक सम्मान हो गया । महानन्दन जगहलगातलगाते प्रकट हुए परमेश्वर सिद्धमे फल जगहलगे होकर जगहलगी ज्ञान तथा सुद्विजलगाकी कर्तव्य जगहलगी की : (यह लोहितलगा नामक पञ्चल अवतार हुआ ।)

मध्यम 'एक' नामसे प्रसिद्ध होलका  
काल आया। जब मध्यमे महात्माजीने  
महात्माजीका अंगीर कारण किया था। भिन्न  
मध्यम महात्माजी कुम्भी कामनासे भाव कर  
है से, अंगी मध्यम अंगी एक पुत्र प्रकट  
हुआ। उसके अंगीमर एक रंगकी भाव  
और एक ही भाव होना था से से। उसके  
नेत्र ही एक से और वह आधुनिक भी एक

रिग्वेदा ही धाराण किन्ने हूर का । उस यज्ञान्  
असमयससे समयत्र कुपारको देखकर  
ब्रह्माजी ध्यानस्थ हो गये । जब उन्हें ज्ञान हो  
गया कि वे वायदेव किन्ने हैं, तब उन्होंने वृष  
जोड़कर इस कुपारको प्रलय किया ।  
तब ब्रह्मा, उनके भिरज, विष्णु, विश्वेदेव  
और विश्वधामन नामके चार पुत्र प्रलय हुए,  
जो सबी तबसे सब लोग किन्ने हूर थे । तब  
वायदेव-वज्रभाजी परदेवर जन्मने परम  
प्रलय होकर ब्रह्माको ज्ञान प्राप्त  
सुष्टिरत्नवादी बनित उठने लगे । (यह  
'वायदेव' नामक दूसरा अवतार हुआ ।)

इसके बाद ब्रह्मात्मन् नामक अवतार जो  
'वीतकाला' नामको कहा गया था । उस  
कालमें महाबल ब्रह्म कीलकधारी हूर ।  
यह वे पुनर्जी कामनासे ध्यान कर रहे थे,  
जब तबसे जन्मे एक यज्ञात्मकी कुपार  
प्रलय हुआ । उस वीर कुपारकी पुनर्जी  
विहास की और उसके अतिथर वीतकाल  
हूतकाल रहा था । उस अवस्थामें वज्रधामकी  
देवकर ब्रह्माजीने अपनी बुद्धिके काले जी  
'तत्पुत्र' किन्ने सज्जित । तब उन्होंने  
वज्रधाम कीलके अन्तर्गत लोकोत्तमा  
नामक ब्रह्मादेवी कीलकी नामकी (तत्पुत्रत्व  
विपले महादेवधाम धीमात्र) का जब कालके उन्हें  
वज्रधाम किन्ने इससे वायदेवकी प्रलय हो  
गये । तब ब्रह्मा, उनके वज्रधामको  
वीतकालधारी दिव्यकुपार प्रकट हूर, वे  
सब-के-सब योगधामके प्रत्यक्ष हूर । (यह  
'तत्पुत्र' नामक तीसरा अवतार हुआ ।)

तब ब्रह्मा, समयत्र ब्रह्माके उस वीतकाल  
नामक कालके वीत जन्मेकर पुनः दूसरा  
काल प्रकट हुआ । उसका नाम 'विष' था ।  
उस वकालकी वरताने एक समय दिव्य

काल प्रकट हो गये, जब ब्रह्माजी प्रलयको  
सुष्टि करनेकी इच्छासे दूसरी हो विचार करने  
लगे । उस समय उन वज्रधामकी ब्रह्माके  
समस्त एक कुपार प्रलय हुआ । उस  
यज्ञात्मकी कालके वीतकाल रण काल  
था । यह अपने वीतकी वीत हो रहा था तब  
कालके वज्र, कालकी वज्र और काला  
वज्र-वज्र धारा किन्ने हूर का । इसका  
मुकुट भी काल था और कालके वज्र  
अन्तर्गत—काल भी काले रंगका हो  
का । उस वज्रधाम-वज्रधामी, वज्रधामकी,  
वज्रधामके, अलौकिक, कुपारविपुत्र  
कालके अन्तर्गत देवकर ब्रह्माजीने अपनी  
धर्म काये । तब ब्रह्मा, ब्रह्माजी उस  
कालके अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ब्रह्मा  
समस्तका इह वज्रधामकी अपनी वृत्ति करने  
लगे । तब उनके वज्रधामको वज्रधामकी  
वज्र काले रंगका अन्तर्गत धारा किन्ने हूर  
का वज्रधामकी कुपार प्रलय हूर । वे  
सब-के-सब वज्र मेवकी, अन्तर्गतकी  
वज्र विपलकी वज्रधामकी थे । इनके नाम  
थे—कुपार, कुपारविप, कुपारधाम और  
कुपारधामकुपार । इस अवसर प्रलय होकर  
हूर वज्रधामकी ब्रह्माजीकी सुष्टिरत्नवादी  
मिथिल यज्ञान् अन्तर्गत 'वज्र' नामक योगधाम  
प्रकार किन्ने । (यह अन्तर्गत' नामक चौथा  
अवतार हुआ ।)

मुनिधारे । तबसे ब्रह्माका दूसरा  
काल प्रलय हुआ । यह पाच अवतार का  
और 'विपुत्र' नामके विपुत्र का । उस  
कालमें उस ब्रह्माकी पुनर्जी कामनासे  
वज्र-के-वज्र विपकी वज्रधाम पर रहे थे,  
जो समय यज्ञान् मिथिल कारेवाली  
विपुत्रधाम वरतानी प्रकट हुई तब उसे



[illegible][illegible]

दिव्य हाथकुन्दाजी ! अब हम  
 शिवाजीके सम्मुख अर्धमासीवारक्याका कर्णब  
 सुन्दे । महाप्रभ । यह सब ज्ञानकी  
 कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है । (सुष्टिके  
 आदेशसे) अब मुष्टिकर्ण प्रकाशित रकी हुई  
 उरी प्रकाशित विचारको यही ज्ञान हुई, सब  
 ज्ञान सब दुःखसे दुःखी से विचारकृत हो  
 गये । उरी समय को आकाशकाली हुई—  
 प्रकाश । अब वैकुण्ठी सुष्टिकी रचना करते ।  
 इस रचनाकालीको सुन्दर ज्ञानसे वैकुण्ठी  
 सुष्टि उपाय करनेका विचार किया; परंतु  
 इससे पहले कीर्तिका कुण्ड ईशानसे प्रकाश  
 हो रही हुई थी, इसलिये पञ्चकोनि ज्ञान  
 वैकुण्ठी सुष्टि रचनेसे सम्बंध न हो सके । सब से  
 को विचार कर कि सम्मुखी कृपाके बिना  
 वैकुण्ठी ज्ञान कल्पना नहीं हो सकती, सब  
 करनेको प्रारंभ हुए । इस समय ज्ञान  
 कालिका दिव्यकर्णसे चरनेश्वर विचारका  
 वैकुण्ठीका कल्पने प्रारंभ करके और सब करने  
 गये । सम्मुख रचनाप्रकारसे लगे हुए  
 ज्ञानके इस तीव्र लयसे छोड़े ही सम्मुखसे  
 शिवाजी प्रकाश हो गये । सब से महत्त्वही  
 प्रकार पूर्णसहितसम्मुखी कामका मुनिसे



शिवजीने कहा—‘देखि ! धरमेही ब्रह्माने तपस्व्यद्वारा तुम्हारी आराधना की है। उसने अब हम ऊपर प्रसन्न हो जाओ और उनका सारा मनोरथ पूर्ण करो।’ जब शिवदेवीने धरमेक्षर शिवजी उस आज्ञाको सिर झुकाकर बड़बड़ा किया और ब्रह्मके कंधनस्तुतार दक्षकी पुत्री होकर स्वीकार कर लिया। सुने ! इस प्रकार शिवदेवी ब्रह्मको अनुपम शक्ति प्रदान करके सन्मुखे करीबने

प्रसिद्ध हो गयीं। तत्पश्चात् भगवान् संकर भी तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस लोकमें स्त्री-भजनकी कल्पना हुई और मैत्रिणी रुद्धि चल बसी; इससे ब्रह्मको प्यार अत्यन्त प्रबल हुआ। तब ! इस प्रकार मैंने भुवनें शिवजीके प्यार अनुपम अर्चनारी-कथनसम्बन्ध वर्णन कर दिया, यह सन्मुखोंके लिये सङ्कलन्यक है।

(अध्याय २-३)



## चाराहकल्पमें होनेवाले शिवजीके प्रथम अवतारसे लेकर

### नवम प्रथम अवतारतकका वर्णन

नदीध्वजी करते हैं—सर्वज्ञ सनत्कुमारजी ! एक बार स्कन्दे इर्मित होकर ब्रह्माजीसे संकरके कर्त्रिकर प्रेमपूर्वक वर्णन किया था। वह कर्त्रिकर प्रेम परम सुखदायक है। (उसे सुख अर्थवा कहते) वह कर्त्रिक इस प्रकार है।)

शिवजीने कहा था—ब्रह्म ! चाराहकल्पके समाप्ति में भवन्तारमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेक्षर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैचक्षण्य मनुके पुत्र होंगे। तब उस भवन्तारकी कल्पुर्गियोंके किसी द्वारमार्गमें मैं लोकोंपर अवतर करने तथा ब्राह्मणोंका शिर करनेके लिये प्रकट हुँगा। ब्रह्मन् ! सुग-प्रसूतिके अनुसार उस प्रथम कल्पुर्गीके प्रथम द्वारमार्गमें उस प्रभु लगे ही व्यास होंगे, तब मैं उस कल्पुर्गके अन्तमें ब्राह्मणोंके शिष्य शिवसहित केत नामक महापुत्रि होकर प्रकट हुँगा। उस समय हिमालयके स्थानीय शिखर हज्जल नामक पर्वतमेष्ट्वर मेरे शिष्याधारी जार शिष्य उभय होंगे। उनके नाम होंगे—केत, केतसिख,

केतसिख और केतसिखिन। वे चारों व्यासयोगके अन्तर्गते मेरे द्वारमें जायेंगे। वहीं मैं सुग अभिनायीको गन्तः जानकर मेरे भक्त हो जायेंगे तथा जन्म, जरा और मृत्युसे रहित होकर बरब्रह्मकी सम्प्राप्तिमें लीन रहेंगे। कस्त सितम्ब ! उस समय मनुष्य ज्ञानके अतिरिक्त धन, धर्म आदि कर्पितुक्त ज्ञाननेष्ट्वर भोग करने नहीं पा सकेंगे। दूसरे कल्पमें ब्रह्मपति सब व्यास होंगे। उस समय मैं कल्पिन्तारमें सुतार नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहीं मैं मेरे पुत्रुधि, सतम्ब, इषीक तथा केतुमान् नामक चार शिष्याधी द्विष्ट शिष्य होंगे। वे चारों व्यासयोगके अन्तमें मेरे नगरको अवधिगे और सुग अभिनायीको गन्तः जानकर मुक्त हो जायेंगे। तीसरे कल्पमें जब चार्गव नामक व्यास होंगे, तब मैं भी नगरके निकट ही इक्ष्वा नाथसे प्रकट होऊँगा। उस समय भी मेरे शिष्योक, शिष्येव, विष्वक् और ब्रह्मकल्प ब्रह्मक चार पुत्र होंगे। जतुगन्धन। इस अवतारमें मैं शिष्योंको समय ले व्यासकी स्वायत्ता करीगा





भक्त लगाकर उसे चारह हजार हाथियोंके साथ भी दोगे। ये वातासहित घट्टाकुछे भलीभाँति आभ्यासन देकर तब उन दोनोंद्वारा पूजित हो प्रब्रह्मदत्तकी चक्षुष पुनि स्वेच्छानुसार जसे जायेंगे। ब्रह्मन् ! अब भोजर्वि चक्षुष भी त्रिपुण्योको भीष्मकर और कीर्तिमालिनीके साथ विवाह करके धर्मपूर्वक राज्य करेगा। मुने ! पुनः

जंकरका यह चक्षुष नामक यहाँ अक्षतार ऐसा प्रब्रह्मदत्त होगा, वह सत्पुरुषोंकी वरि तब हीनोके लिये चक्षु-सा हितकारी होगा। मैंने इसका वर्णन तुम्हें सुना दिया। यह चक्षुष-वर्तिन परम वाक्मन्, धर्मान् तब स्वर्ग, यज्ञ और आयुको देनेवाला है; अतः इसे प्रब्रह्मपूर्वक सुनाऊ चाहिये।

(अध्याय ४)



### शिवजीद्वारा दसवेंसे लेकर अष्टाईसवें योगेश्वरावतारोंका वर्णन

शिवजी कहते हैं—ब्रह्मन् ! हाथी उपरसे विद्याना नामके पुनि ब्रह्मन् होने। वे विद्यालयके रमणीय शालर पर्वतकेतय धृगुल्लपर निवास करने। वहाँ भी मेरे शक्तिविहित चार पुत्र होने। उनके नाम होने—पुत्र कल्याण, नरसिंह और तपोधन केमरुगुह। चारहवें उपरसे अब त्रिभुत नामक व्यास होने, तब मैं कलिभुगये गङ्गाद्वारमें तब नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे लम्बोदर, लम्बाज्ञ, कैवल्य और प्रब्रह्म नामक चार दृढज्जी पुत्र होने। चारहवीं चतुर्दशीके उपरयुग्मे अन्तेजा नामके वेदव्यास होने। उस समय मैं उपरके समाप्त होनेपर कलिभुगमें हेमकक्षुके आकर अत्रि नामसे अन्तर लूँक और व्यासकी सहायताके लिये त्रिभुनिर्माणके प्रतिष्ठित करूँगा। महापुने ! वहाँ भी मेरे सर्वज्ञ, सत्सुप्ति, साध्य और जय नामक चार उत्तम योगी पुत्र होने। तेरहवें उपरयुग्मे अब धर्मवत्सव नारायण व्यास होने, तब मैं पर्वतमेघ रघुमादन्तर बालरसिख्याक्रमये महापुनि बलि नामसे उत्पन्न हुँगा। वहाँ भी मेरे सुधाया, काश्यप, वसिष्ठ और विरज

नामक चार सुन्दर पुत्र होने। चौदहवीं चतुर्दशीके उपरयुग्मे अब रक्ष नामक व्यास होने, उस समय मैं अङ्गिराके वंशमें गौतम नामसे प्रकट होऊँगा। उस कलिभुगमें भी अत्रि, बहद, अन्तर और अश्विनाथ ये पुत्र होने। पंध्रवें उपरसे अब व्यासजी व्यास होने, उस समय मैं विद्यालयके पूज्यभागये विद्युत केदधीर्ष नामक पर्वतपर भरस्कनीके आगत्य आगत्य ले केदधिरा नामसे अवतार प्रकट करूँगा। उस समय महापराकवी केदधिर ही मेरा अन्त होगा। वहाँ भी मेरे चार पुत्र पराकवी पुत्र होने। उनके नाम होने—कुणि, कुशिन्धु, कुशरीर और कुनेत्रक।

सोलहवें उपरयुग्मे अब व्यासका नाम देव होगा, तब मैं योग प्रदान करनेके लिये वरय पुच्छवच गोकर्णधनमें गोकर्ण नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँ भी मेरे काश्यप, वहना, धन्वन और बृहस्पति नामक चार पुत्र होने। वे सबके समान निर्मल और योगी होंगे तथा उसी प्रकार आभ्यासे शिवलोकासे प्राप्त हो जायेंगे। सतरहवीं चतुर्दशीके उपरयुग्मे देवकुलराज व्यास होने, उस समय मैं







आत्मस्थर घटारे : फिलाज् घुनिने कनकी घुरी  
आत्मस्थर घटारे : अब के खेनों मधुसूत  
घुनीकर आत्मस्थर घटारे : अब के खेनों मधुसूत  
अब के खेनों मधुसूत

मित्र और बरगाने कहा—'तब  
दिल्लख । यद्यपि तुम्हारा पुत्र नदी बगल  
साथोंके अधोक्ष परगणों विद्यन् है,  
यद्यपि इसकी आयु बहुत छोटी है । इसने  
बहुत तरहसे विचार करके देखा, वस्तु  
इसकी आयु एक वर्षसे अधिक नहीं  
होसती।' उन मित्रवारोंके जो बरगाने  
पुत्रवत्सल दिलाख नदीको छातीसे  
लियेकर दुःखी हो कुछ-  
होने । तब मित्र और दिलाखको बरगानेकी  
भक्ति सुधिया बड़ा हुआ देख नदी  
विद्यकीके चरण-कमलोंका स्पर्श करके  
प्रसन्नतापूर्वक मुझे लग्न—'मित्राजी ।  
आपको भय-सा ऐसा दुःख आ क्या है,  
जिसके कारण आपका शरीर भयि रह है  
और आन हो रहे है ? आपकी यह दुःख  
कहाँसे प्राप्त हुआ है, मैं इसे ठीक-ठीक  
पानना चाहता है ।'

पिताने कहा—बेटा ! सुनारी  
आपना कले व-कले से आनन्द ल-ली ले

रात हैं। (तुम्हीं बताओ) येरे इन कहकसे  
कौन दूर कर सकत है ? ये उसकी शरण  
मरण करी।

पुत्र खोल-कैलाजी ! मैं आपके सामने शपथ करता हूँ और यह विलम्बित रूप से यह कह रहा हूँ कि आप देखें, जानें, समझें, समझें अन्तर्गत प्राणी—ये स्व-के-सम विलम्बित रूप से यह कहें, तो भी ये ही अन्तर्गत प्राणी में मनु नहीं होगी, अन्तः अन्तः वः ही यह ही ।

पिण्डमे पृथक्—येरे ध्यारे स्थाय । तुमसे  
ऐसा बौद्ध-सा लग बिग्या है । अन्धकार तुमसे  
बौद्ध-सा ऐसा ज्ञान, योग का वैधर्म्य प्राप्त है ।  
असले कान्धर तुम इन आत्म नुःसखी नह  
कर होये ?

पुत्रों के कष्ट-नाश । ये व तो तपसे  
मुन्मुको छटाईगा और न विद्यासे । मैं  
जगन्मोक्षार्थके भक्तसे मुन्मुको पीत सिंग,  
कामसे अतिरिक्त अन्य कोई त्याग नहीं है ।

मन्दीश्वरजी कहते हैं—मुझे। यों  
कलमवर सैने सिर झुकाकर पिताजीके  
पाखणोंमें प्रणाम किया और फिर अपनी  
प्रतिभा काके उलाम मन्दीश्वर शाह ली।

(अध्याय ६)

☆

**बन्हीसुरके जन्म, वरप्राप्ति, अभिषेक और विवाहका वर्णन**

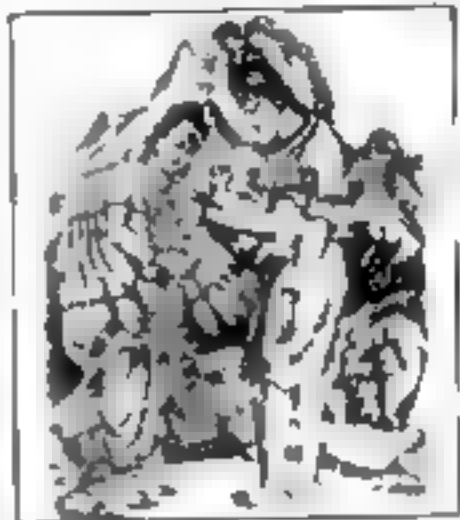
जगदिश्वर कहते हैं—मुने ! हमने  
जाकर यैने एकान्त स्थानमें अपना आसन  
लगाया और उसमें बुद्धिबल आत्मन से ही उभर  
तयमें प्रवृत्त हुआ, जो बड़े-बड़े मुनियोंके  
लिखे भी सुकर था । उस समय यै कईमे  
पावन उता तत्पर सुदृढ़मनसे ध्यान लगाकर  
बैठ गया और एकप्रसंगमें सम्यक्चित्त बनने

[illegible]

[illegible]

नदीतटकी सड़ने ली—कड़ो । जो  
सड़कर कुचबिलकुल बनगूरे सड़गलोंकी सरी  
सुई अपनी शिरोंपल्लवावले आगधर सुन ली  
थी पहलेमें डाल दिया । निज्जर ! उस सुभ  
पल्लवके लगेमें पड़ो ली व नीम देव और कम  
पुत्राओंके समस्त हो पल्लव लज्जित शिरों

‘कलकत्ते, अथ तुम्हें कलकत्ता उल्लेख था ?’

[illegible]

जाता है ! इस विषयमें तुम्हारी क्या राय है ?

तब ठग बोले—देखो ! अगर कभीको गणपतिसमक्ष प्रत्यक्ष कर सकते हैं; क्योंकि परमेश्वर ! यह विमलपद्मन्दन मेरे दिलमें पुनः-परीता है, इसलिए मैं कह रहा हूँ। तबन्तर जबकिमन्त्र भगवान् सेकारने अपने अनुकूलनमन्त्रों में गणेशकी तुलनाकर अपने कहें।

दिल्ली बोले—मन्त्राध्यक्ष ! तुम सब लोग मेरी एक आज्ञाकार पालन करो। यह मेरा प्रिय पुत्र कभीकर सभी मन्त्राध्यक्षोंका अध्यक्ष और मन्त्रोक्त नेता है; इसलिए मैं सब लोग मिलकर तुम्हारे मेरे मन्त्रोक्त अधिपति-व्यपार प्रेमपूर्वक अधिपति करो। आजमें यह नदीकर तुम्हारेनीका स्वाधीन है।

मन्त्रीधरजी कहते हैं—मुने ! ईश्वरजीके इस आशयपर सभी मन्त्राध्यक्षोंमें 'एकमन्त्र' काकार उसे हीकार किया और वे सत्ताही मुदालेमें लग गये। फिर सब देवताओं और मुनियोंमें मिलकर मेरा अधिपति किया। तबन्तर मन्त्रोक्तोंकी धनोहासिही किया कन्ना सुनकारों मेरा विवाह कराया गया। उस समय मुझे बहुत-सी विषय कहते मिलीं। महापुने ! इस प्रकार विवाह करके मैंने अपनी उस पत्नीके साथ सन्धु, विभा, प्रह्लाद और कौटिलिक चरणोंमें प्रणमन किया। तब किन्हेकंधार भक्तवत्सल भगवान् फिर कभीसहित मुझसे परम प्रेमपूर्वक बोले।

ईश्वरने कहा—सत्यम् ! यह तुम्हारी प्रिया सुपत्नी और तुम मेरी कन्या मुने ! तुम मुझे परम प्रिय हो, अतः मैं प्रेमपूर्वक तुम्हें

मन्त्रोक्तिकार कर प्रदान करीता। गणेश्वर नदीकर ! देखो कर्णवीरसिता मैं तुम्हारे सदा संरक्षक हूँ, इसलिए कहें ! तुम मेरा आत्म कर्तव्य पालन करो। तुम मेरे अष्ट प्रेमी, विविध, परम ऐश्वर्यमय, महायोगी, महाभक्त, कर्णवीर, अनेक, सबको जीतनेवाले, महाबली और सब पुत्र होओगे। जहाँ मैं गूँघ्र जहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, जहाँ मैं कर्णवत् रहूँगा। वही सब तुम्हारे मित्र और मित्राभाऊकी भी होगी। पुनः ! तुम्हारे वे महाबली मित्र परम ऐश्वर्यवाली, मेरे धर्म और भक्त्याध्यक्ष होंगे। कहा ! वे ही विषय तुम्हारे मित्राध्यक्ष भी बनूँ होंगे। अन्तमें तुम सब लोग मुझसे सम्मान प्राप्त करके मेरा आश्रित प्राप्त करोगे।

मन्त्रीधरजी कहते हैं—मुने ! तबन्तर महाबली प्रतीति कर देखके दिलमें असुख हो मुझे मन्त्रीके बोली—'देह ! तु मुझसे भी कर योग ले, मैं तेरी सारी अधीष्ट कर्मजनोंको पूर्ण कर दूँगी।' तब देखीके उस कर्मजनों सुनकर मैंने हाथ जोड़कर कहा—'देहि ! अपनेके कर्मजनों मेरी महा अन्तर्गत करी गई।' मेरी वाचन सुनकर देखीके कहा—'एकमन्त्र—हेमा ही होगा।' फिर शिवा नदीको विमलपद्म पत्नी सुपत्नीके बोली।

देखीके कहा—कन्ने ! तुम भी अपना अधीष्ट कर प्रदान करो। तुम्हारे तीन नेत्र होंगे। तुम कर्म-कर्मजनों से बृहद् आओगी और पुनः-पुनःसे सम्पन्न होगी तथा तुम्हारी मूर्ध्नि और अपने स्वासीमें अष्टल रत्न बनी होगी।

मन्त्रीधरजी कहते हैं—मुने ! तबन्तर विमलपद्मकी आज्ञासे परम प्रसाद हुए महा,



विष्णु तथा सप्तम देवगणोंने भी प्रेमपूर्वक हम दोनोंको बरदान दिये । तब अन्तर परमेश्वर विश्व कुटुम्बसहित कुछे अल्पकाल तथा उपरसहित धूपपर आकाश हो सम्बन्धियों एवं भाव्योंको साथ अपने निवासस्थानको चले गये । तब वहाँ उपस्थित विष्णु आदि सप्तम देवता मेरी प्रशंसा तथा विश्व-विश्वाम्नी मुनि करते हुए अपने-अपने वाक्योंसे चर दिये । काल ! इस प्रकार मैंने दूसरे अपने

अवतारका वर्णन कर दिया । महामुने ! वह अनुसूचीके सिन्धे सदा आनन्ददायक और विश्ववर्तमान कार्यक है । जो अज्ञानु मानव भक्तिचर्मित चित्तसे कुछ नदीके इस जन्म, अराजति, अविशेष और विवाहके वृत्तनाको सुनेत्र अथवा दूसरोको सुनायेगा वका चक्रेण वा दूसरोको चक्रयेगा, वह इस लोकमें सचुर्न सुखोंको भोगकर अन्तमें परमार्थको प्राप्त होगा । (अध्याय ५)

☆

कालधैरवका माहात्म्य, विश्वामरकी तपस्या और शिवजीका प्रसन्न होकर उनकी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे उनके पुत्रकणमें प्रकट होनेका इन्हें बरदान देना

तदनन्तर प्रसन्न शम्भुके धैर्यवतारका वर्णन करके नन्दोदयने कहा — ब्रह्मपुत्र ! बरमेका शिव इसलोकमें स्वीकार करनेवाले तथा अनुसूचीके प्रेमी हैं । उन्होंने पार्श्वीर्ष बालके कुम्भापहाड़ी अश्वीनके धैर्यवतारसे अवतार लिया था । कुम्भीनके जो अनुसूच शर्माहीर्षभाधकी कुम्भापहाड़ीके काल-धैरवक इतिवृत्त उपकास करने राशिमें आगरण करता है, वह अवका पर्वोत्तरे भुक्त हो जाता है । जो अनुसूच अथवा भी बलि-पूर्वक आगरणभक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करेगा, वह भी महापावसे भुक्त होकर प्रदुर्गिको प्राप्त हो अवका । अग्निशक्ति लक्ष्मी जन्मोंमें किये हुए जो पाव है, वे सब-वे-सब कालधैरवके वर्णनसे विरक्त हो जाते हैं । जो मूर्ख कालधैरवके भक्त्येव अनिष्ट करता है, वह इस रूपमें दुःख भोगकर पुनः दुर्गिको प्राप्त होता है । जो लोग विद्वान्त्वके तो भक्त हैं परन्तु कालधैरवकी भक्ति नहीं करते, उन्हें पञ्च दुःखकी प्राप्ति होती है । अग्नीर्ष तो इसका

विशेष प्रभाव पड़ता है । जो अनुसूच धैरवकीसे विवाह करके कालधैरवका जन्म नहीं करता, उसके पाप पञ्चवक्रके अन्धकारकी धर्ति कहे रहते हैं । जो काशीमें इत्येक धैरवकारकी कुम्भापहाड़ीके दिन कालधैरवका भजन-पूजन नहीं करता, अथवा कुछ कुम्भापहाड़े काकाकी सहाय शीव हो जाता है ।

तदनन्तर नदीधारे धैरवका तथा शम्भुवतारका पञ्चम सुगमर काण्ड— अज्ञान ! कालधैरव विश्व विश्व प्रसन्न होकर विश्वामर मुक्तिके कर अवतीर्ण हुए थे, शिवजीनिके इस चर्मिकी तुम प्रेमपूर्वक अवका करो । उस समय वे तेजस्वी विधि अधिकृत स्थापित वरच प्रभु शिव अतिशक्तके अधिपतिरूपसे गृहपति रामसे अवतीर्ण हुए थे । पूर्वकालकी बात है, धर्मिके रक्तीव तपस वर्मपुर नामका एक नगर था । उसी नगरमें विश्वामर नामके एक मुनि निवास करते थे । उनका जन्म शम्भुवतार पर्वमें हुआ था वे परम पावन,





और उनका सब इर्दगिर्द हो गया। उस से उठकर बालकमयी सौम्यजीने श्लेसे।

विधानरत्ने कहे— ब्रह्मावतारमें महेन्द्र! आप से सर्वान्वर्त्तनी, ऐश्वर्यसम्पन्न, शर्व तथा शक्तिकी सब कुछ दे देनेवाले हैं। भला, आप सर्वज्ञसे कौन-सी बात छिपी है। फिर भी आप मुझे ही-सा प्रकट करनेवाली वाक्यके प्रति आकृष्ट होनेके लिये क्यों कह रहे हैं। म्हेमान ! क्या आपका आपकी जैसी भुक्ता हो, वस्तु बहिष्कृत है।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! बहिष्कृतसे तब विधानरत्ने उस वचनको सुनकर प्रसन्न शिशुस्यवारी बहनेन ईश्वर शक्ति (विधानर) से बोले—‘शुभे ! तुमने अपने हृदयमें अपनी पत्नी सुविष्मतीके प्रति जो अभिलषा कर रखी है, वह निस्संदेह जाड़े ही संपन्नमें पूर्ण हो आगयी। महेन्द्र ! मैं

सुविष्मतीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा। मेरा नाम गृहपति होगा। मैं परम कर्मान तथा सभ्यता देवताओंके लिये प्रिय होऊँगा। जो वनस्पति एक चक्रेक विष्मतीके संनिष्ठ तुम्हारे द्वारा कथित इस पुण्यकर्म अभिलषाकृत्य होत्रक तौनों ब्रह्म पाठ करोगे, उत्तरी सारी अभिलषाएँ वह पूर्ण कर देंगे। इस होत्रक पाठ पुर, यौग और वनक प्रसन्न, सर्वथा सन्निभकरक, सारी विपत्तिकोंक निवारक, जर्ग और मोहकक सम्पन्नकर करण तथा सभ्यता कर्मानोंको पूर्ण करनेकर्म है। निस्संदेह यह भवेत्ता ही समस्त लोकोंके सभाष है।’

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! इसका बड़ाकर बालकमयी सभ्य, जो सत्पुत्रीकी भवि है, अवधान हो गये। तब विधानर भी प्रसन्न बनने अपने करके स्मृत गये। (अध्याय ८—१३)

☆

शिवजीका सुविष्मतीके गर्भसे प्रकट्य, ब्रह्मावतार बालकका संस्कार करके ‘गृहपति’ नाम रखा जाना, नारदजीद्वारा उसका भविष्य-कथन, पिताकी आज्ञासे गृहपतिका काशीमें जाकर तप करना, इन्द्रकी वर देनेके लिये प्रकट होना, गृहपतिका उन्हें दुकराना, शिवजीका प्रकट होकर उन्हें वरदान देकर दिव्यालयद प्रदान करना तथा

### अग्नीश्वर-लिङ्ग और अग्निक्रम माहात्म्य

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने ! पर आकर उस ब्राह्मणने बड़े इर्दके सभ्य अपने पत्नीसे कह सारा वृत्तान्त कह सुनका। उसे सुनकर विप्रपत्नी सुविष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त प्रेम्पूर्णक अपने भाग्यकी सराइन करने लगी। तदनंतर समय जानेपर ब्रह्मावतार

विशिष्टपूर्वक सर्वज्ञान कर्म सम्पन्न किये जानेपर वह गौरी गर्भवती हुई। फिर उस विद्वन् मुनेने वर्षके स्पन्द करनेसे पूर्व ही पुत्रकी वृद्धिके लिये गृहसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सप्तक-रूपसे पुंसवन-संस्कार किया। तत्पश्चात् आठवीं महीना जानेपर कुप्यात् विधानरने सुतपूर्वक प्रसव

હોનેએ અભિજ્ઞાનને વર્ષકે અઝાદી જન્મદિ  
 કરનેવાલ્ય સીમા-સંસ્કાર સમાજ કરાવ્યા ।  
 સ્વપરાય તારાઓએ અનુકુલ હોનેવાર આ  
 શુદ્ધતાને કેમજાણી દુર ઝીર થુલ મહોવા એમ  
 ગણ્યા, તમ થુલ તમાને વચ્ચાઈ રૂંધાર,  
 વિષયે થુલપટી કાગિત પૂંજીએએ વચ્ચાએ  
 જાગ્યા હૈ તથા એ અભિજ્ઞાની હોમવાએ  
 શુદ્ધાનેવાએ, સમજા અભિજ્ઞાને વિચારવા  
 ઝીર મુ. મુ., જા.—ઝીની સંકેતોએ  
 વિચારી-પીંડી રાજ મગડી થુલ દેખવાએ હૈ,  
 આ શુભિચારોએ વર્ષકે મુદ્દાએએ જાગ દુર ।  
 આ જગત વચ્ચાએ વચ્ચા કરનેવાએ વચ્ચાએ  
 જાગ વેધ વિચારવાની અનુઓએ મુદ્દાવા  
 જાગ-એ રાજ મને અગાઈ પારો ઝીર પાડવી  
 વચ્ચા જાગ ઝાળી । એ વચ્ચાએ વચ્ચા આમ  
 વચ્ચાએ મુદ્દાજાગેની વચ્ચા કરને વચ્ચા ।  
 હોમવાઓની શુદ્ધિવર્ધ વચ્ચાએ જાળી । પાર  
 ઝીર વિચારી વિચાર હો મળી । અભિજ્ઞાને  
 મળીએ રાજ-રાજ સરિખઓવા વચ્ચા વિચાર  
 હો મળા । પ્રતિજ્ઞાની વચ્ચા મળવા  
 જાગવાની ઝીર વિચારવાની હો જાગી ।  
 સન્નિધિ અભિજ્ઞ જાગિ-મુખિ વચ્ચા વિચાર, વચ્ચા,  
 વિચાર, વિચાર અભિ જાગવા જાગ મે-મેવા  
 વચ્ચાએ । રાજ જાગવાની મળવાવર્ધવા અગાઈ  
 અગાઈ-સંસ્કાર વિચાર ઝીર આ વચ્ચાએ  
 જાગ તમા વેદવા વિચાર કરને વચ્ચા વિચાર  
 વિચાર કિ જાગવા મળ મુદ્દાને હોમ વચ્ચાએ ।  
 વિચાર વચ્ચાની વિચાર જાગે વચ્ચાવાવચ્ચાની  
 વિચારે અનુભા વેદવચ્ચાએ અગાઈ કરની  
 શુદ્ધ અગાઈ મુદ્દાને વેદા વચ્ચાવા વિચાર ।  
 અગાઈ-સંસ્કાર વિચાર જાગ વચ્ચા વેદોએ  
 કથિત આગીર્વાદવા વચ્ચાજાગ અગાઈ  
 અભિજ્ઞાન કરને જાગવા જાગવા હો જાગે  
 રાજવાએ વચ્ચા મળે । સ્વપરાય રૂંધાર વચ્ચા

[illegible]

समाजसुखसाधनी । समाजकी सेवा साधन  
सुखकार पत्नीसहित विद्यापत्नी समग्र समाज  
में यह जो बड़ा भावपूर्ण सन्देश है । फिर  
जो 'समाज । मेरा समाज' को बतलाने वाली  
छोटी सी गीत और एकांकीकी व्याख्यान श्रृंखला













सब कार्यक्रम की मजदूरी आत्मन् के साथ दुरात ही अपने स्वान्तर्गत लौट गये। जहाँ उन्होंने सब सारा बुताना आधरपूर्वक देखाओसे सब सुनीय। तदनन्तर भगवान् संकन अपना बचन सब करनेके लिये कल्पवृक्ष पर सुभीके पेड़से नीरस सब धारण करके प्रकट हुए। उस समय भवान् उच्चैः प्रकट गये। शारा बगल गिरावले हो गया। कल्पवृक्षनिर्गल सारा-सारा सारी देखात दुर्बिधोर हो गये। उनके नाम रने गये— कपलकी, विष्णु, श्रीम, विष्णुवत्सल, विष्णुकिन, जालक, अजयल, अर्जिभुवत्सल, रामन्, बगल तथा पय। वे नीरस हो सब सुभीके पुन बलवाने हैं। वे सुनके आत्मन् के साथ देखाओसेकी कार्यसिद्धिके लिये शिवलोकसे प्रकट हुए।

☆

## शिवजीके 'दुर्वासावतार' तथा 'हनुमदवतार'का वर्णन

मन्त्रीधरजी कहते हैं—भगवन् ! अब तुम सबकुछ सब दूसरे करिगये, जिसमें धर्मरजी कार्यके लिये कुर्वाण होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक समझ जाने। अबसुनके प्रति ज्ञानवेला लक्ष्मी जगिने ज्ञानजीके निर्देशानुसार सभीसहित प्रकटकुल कर्त्तव्य साकर पुनकावन्तसे नीरस तय किया। उनके लक्ष्मी प्रसन्न होकर लक्ष्मी, विष्णु और ग्लेश्वर तीनों उनके आत्मन् पर गये। उन्होंने कहा कि 'हम तीनों संसारके ईश्वर हैं। हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे, जो जिसकेकीमें विराजित तथा यन्त्रा-यन्त्राका यन्त्र बघानेवाले होंगे।' यो कहकर वे चले गये। ज्ञानजीके अंशसे प्रकट हुए, जो देवताओंके समुद्रमें चले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे। शिवजीके

अंशसे लक्ष्मी शिवन्त-यन्त्राकी प्रकटित करनेवाले 'रव' प्रकट हुए और लक्ष्मी अंशसे पुनिकर दुर्वासाके जन्म लिया।

इस दुर्वासाने प्यारासे अम्बरीषकी प्रीक्षा की थी। जब सुदर्शनचक्रने इवका चीकर किया, तब शिवजीके आदेशसे अम्बरीषके द्वारा तार्चना करनेपर सब शांत हुआ। उन्होंने भगवान् समझी प्रीक्षा की। कहलने पुनिकर लक्ष्मी धारण करके श्रीरामके साथ सब प्रकट की थी कि 'मेरे साथ बात कहलने समझ श्रीरामके पास कोई न आवे; जो आनेका इरादा निर्वासन कर लिया जायगा।' दुर्वासाजीने इत करके लक्ष्मीको धेक, तब श्रीरामने तुरत लक्ष्मीका त्याग कर दिया। इन्होंने भगवान् प्रीक्षाकी



‘एतच्छ्रुत्वा’ जलसे मिलकर, कैलाशके चंद्रावर को अनुग्रह प्राप्त करिअपनी भक्तिपूर्वक सुननी है और बलवत्प्रसाद है। तथा ! इस प्रकार येने प्रत्यक्षदर्शीकर श्रेष्ठ करिअ—जो जन, शरीर और आत्मका सर्वत्र तथा सर्वत्र अर्थात् आत्मके वरद भोक्तृको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १९-२०)

॥

शिवजीके पिप्पलसद-अवनारके प्रसङ्गमें देवताओंकी दक्षीणि मुनिसं  
अग्नि-याचना, दक्षीणिकर शरीरस्थापन, यज्ञ-निर्वाण तथा इसके  
द्वारा ब्रह्मासुरको बध, सुवर्णाकर देवताओंको हाथ,  
पिप्पलसदका पान्य और इनका विस्तृत वृत्तान्त

सद्वचन प्रोक्तवान् तदा  
ब्रह्मसुतस्य चरितं सुनन्तः शरीरस्थे  
देवाः—महाशक्तिमान् शम्भुसुतस्यैव । अत्र  
तुभ्यं ज्ञायमानं आद्युक्तपूर्वकं प्रोक्तवान्  
‘पिप्पलसद’ नामकं वरदभक्तं अवनारकं  
वर्णाकरं अवनारकं । यद् अत्र आवनारकं  
वर्णाकरं वृद्धिं करणेनैव । सुवर्णाकर ।  
इह जगत्तु देवतां ब्रह्मासुरको शरीरस्थे इति  
आदि तत्त्वज्ञ देवताओंको वरदभक्त कर  
दिया । तदा तदा जगत्तु देवताओंने ब्रह्मा  
दक्षीणिमें अवनारके अपने-अपने अवनारके  
देवतांकर तत्त्वज्ञ ही द्वार लेता है । तत्त्वज्ञान  
वर्णाकर अपने तत्त्व के प्रत्यक्षज्ञान प्रत्यक्ष देवतांकर  
देवतां ही द्वार ही प्रत्यक्षज्ञानके ज्ञान वरद और  
वर्णाकर (ब्रह्मासुरको) उन्होंने अपना बध ब्रह्मा  
बध सुनन्तः । देवताओंकर बध करत  
सुनन्तः लोकविश्वज्ञान प्रदान करने का वरद  
वर्णाकरस्यो अवनार कर दिया कि ‘यद् अत्र  
तत्त्वज्ञानी काव्य है, तत्त्वज्ञानी ही सुवर्णाकरके  
बध करणेके लिये तत्त्वज्ञानका इस  
ब्रह्मासुरको ब्रह्मासुरको अवनार किया है । यद्  
तदा तदा अवनारको तत्त्वज्ञान वरद तत्त्वज्ञान

दक्षीणिमें अवनार है । अत्र अत्र देवा अवनार  
वर्णाकर तत्त्वज्ञान वरद ही लिये । वृद्धिमान्  
देवतां । ये वरदके वरदज्ञान इस विषयमें एक  
अवनार वरदभक्त है, सुनन्तः । जो दक्षीणि  
वर्णाकरके वरदभक्त है, वे तत्त्वज्ञानी और  
दक्षीणिमें है । उन्होंने प्रत्यक्षज्ञान शिवजीकी  
वर्णाकरके वरदके वरद वरदकी अवनारकी ही  
अवनार कर द्वार किया है । अत्र तत्त्वज्ञान  
अवनार वरदकी वरदभक्तके लिये वरदभक्त करे । ये  
अवनार है देवे । फिर तदा अवनारकी  
वरदभक्तके निर्वाण करके सुवर्णाकर ही  
अवनार ब्रह्मासुरको वरद वरदभक्त

वरदभक्तकी वरदभक्त है—यद् अत्र ‘महाशक्ति  
यद् अवनार सुनन्तः इस देवतांकर वरदभक्त तदा  
देवताओंको वरदभक्त ही वरद ही दक्षीणि वरदभक्त  
अवनार अवनारभक्त आये । वरदभक्त इन्हीं  
सुवर्णाकरकी दक्षीणि वरदभक्त वरदभक्त किया  
और आद्युक्तपूर्वक वरदभक्त वरदभक्त उन्हें वरदभक्त  
दक्षीणि, फिर देवतांकर वरदभक्त अवनार अवनार  
देवताओंने जो वरदभक्तपूर्वक वरदभक्त वरदभक्त  
वरदभक्त । दक्षीणि वरदभक्त वरदभक्तमें वरदभक्त वे वे  
ही, वे वरदभक्त ही अवनार अवनारभक्तों तदा





मनुष्यवत्प्रायः प्रारण करनेवाले विष्णुप्रसन्नता प्राप्त करित हुंसे सुख दिया, यह सम्पूर्ण भावनाओंको पूर्ण करनेवाला है। यक्षि, वैदिक और पञ्चमूर्ति विष्णुप्रसन्न—ये तीनों स्वयं विष्णु माने गए हैं। हरिहरवर्णित पौरवत्प्राय महा कर देने हैं। वे युविकर दक्षीण, जो परम ज्ञानी, सामुदायिक विष्णु तथा यक्षि

विष्णुप्रसन्न वे, कन्ध है, विष्णुके चारों स्वयं आत्मज्ञानी यक्षिहर विष्णुप्रसन्न यक्षि पुत्र जेकर जगत्त दूर। तत्ता ! यह आत्मनि निर्दोष, स्वर्गप्रद, कुतहजनिस्त दोषोंकर संसारकर, सम्पूर्ण मनोरथोंकर पूरक और विष्णुवर्णितको विशेष वृद्धि करनेवाला है।

(अध्याय २१ - २५)

४

## भगवान् शिवके द्विजेन्द्रप्रवतारकी कथा—राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तियास्मिनीकी धार्मिक दृढ़ताकी परीक्षा

तदनन्तर वैश्यनाथ स्वयंस्वरूप चर्चन करके नन्दोदरने द्विजेन्द्रावतारका प्रसन्न चलाया वे बोले—तत्ता ! यक्षि विष्णु प्रसन्न भद्रायुका धार्मिक विष्णु प्रसन्न कर और विष्णुप्रसन्न विष्णुके प्रसन्नभावसे अभ्यस्त किया जा, कहीं बरेल्लेख कर्णकी परीक्षा लेनेके लिये वे भगवान् शिव द्विजेन्द्रावतारसे प्रसन्न हुए थे। प्रसन्नके प्रभावसे राजाभूमिसे कष्टुओंकर विष्णुप्रसन्न करके कर्णिकाराली राजकुमार भद्रायु तथा राज-सिंहप्रसन्नकर अलक्ष्य हुए, तब राजा भद्रायु तथा रानी कीर्तियास्मिनीकी छोटी रानी-माधवी कीर्तियास्मिनीके साथ उनका भिक्षा दूना। किसी समय राजा भद्रायुने अपनी धर्मपत्नीके साथ भगवान् शिवके मन-विहार करनेके लिये एक गङ्गा कर्मसे प्रवेश किया। उनकी पत्नी शारदागामयनीके चलाय करनेवाली थी। राजाका भी ऐसा ही निश्चय था। जब राजदम्पतिकी धर्मसे विष्णुकी दृढ़ता है, इसकी परीक्षाके लिये चार्कतीप्रक्षित भगवान् शिवने एक स्त्रीका रानी। विष्णु और विष्णु प्रसन्न भगवान् और प्रसन्नके रूपमें प्रकट हुए। उन दोनोंने स्त्रीप्रसन्न

एक भगवान् प्रसन्न विष्णु विष्णु। वे दोनों कर्मसे विष्णुके प्रसन्नसे बोली ही दूर आगे ऐसे विष्णुप्रसन्न भगवान् लगे और प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न करने लगा। राजाने उन्हें इस भगवान्से देखा। वे प्रसन्न-प्रसन्न भी भगवान् विष्णुके प्रसन्नप्रसन्न शारदाके गये और इस प्रसन्न बोले।

प्रसन्न-प्रसन्न कथा—भगवान् ! इतनी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह प्रसन्न हम दोनोंको रक्षा करनेके लिये आ रहा है। भगवान् प्रसन्नकोके प्रसन्नके समान भय देनेवाला यह विष्णुका ज्ञानी हमें अपना अक्षर कर्मसे, इसके पूर्व ही भगवान् हम दोनोंको रक्षा कीजिये।

उन दोनोंका यह प्रसन्नप्रसन्न सुनकर प्रसन्नकी राजाने जो ही प्रसन्न उठाया, तब ही यह प्रसन्न उनके निकट आ पहुँचा। उसने प्रसन्नकीको कक्षा लिया। यह प्रसन्न 'हा नमः । हा नमः । हा प्रसन्नप्रसन्न । हा प्रसन्न । हा प्रसन्न ।' इत्यादि कक्षकर रोने और विष्णुप्रसन्न करने लगी। प्रसन्न प्रसन्न प्रसन्न था। उसने जो ही प्रसन्नकीको अपना प्रसन्न बनानेकी चेष्टा की, तब ही



धन्वायुने तीजे बाणोंसे उसके गर्भमें अगम्य किया; परंतु अब बाणोंसे उस पद्मवर्णी अगम्यके तनिष्ठ भी क्या नहीं हुई। यह ब्राह्मणीको कल्पवृक्ष कहैयता हुआ तत्काल दूर निकल गया। अपनी पत्नीको बाणके पंजेमें पड़ी देव ब्राह्मणको बहुत दुःख हुआ और वह अरुणरश्मि सेने लग्य। देखकर सेकर अपने राजा अश्वत्थसे कहा—'राजन् ! तुझरे जो बड़े-बड़े अन्न कहाँ है ? पुःखियोंकी राजा करनेवाला तुझरा विपन्न धनूष कहाँ है ? तुम का तुममें अन्न इतना बड़े-बड़े क्षत्रियोंका क्या है। यह क्या हुआ ? तुझरे बहू, बहिन तथा भ्राता-विद्यासे क्या समय हुआ ? दूसरोंको क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। अर्थात् राजा अपना धन और प्राण देकर भी वात्सल्य अन्नसे हुए वीर-पुःखियोंकी राजा करते हैं। जो पंडितोंकी प्राणश्ला नहीं कर सकते ऐसे स्वोन्नेके लिये भी उन्नेकी अपेक्षा मन मान ही अच्छा है।'

इस प्रकार ब्रह्मण्यस्य विचार और उसके अनुसार अपने परमात्मनो विचार सुनकर राजा ने जोकाहे मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'अहो ! आज जन्मके अन्त-केरसे मेरा परमात्मनः यह है (१५)। मेरे परमात्मनो भी नाश हो गया । अतः अब मेरी सम्पत्ति, राज्य और आत्मा भी निश्चय ही नाश हो जायगा।' यों विचारकर राजा भद्राष्ट्राज्ञानके कारणोंसे गिर पड़े और उसे खीरज लैधाने हुए सोले— 'ब्रह्मन् । मेरा परमात्मनः यह हो गया है । ब्रह्मन्ते ! मुझ कविप्रायश्चर कृष्ण करके सोच छोड़ दीजिये । मैं आपको सम्प्रेक्षित करने आया हूँ । यह राज्य, यह रानी और मेरा सब

हारीर लम्ब कुछ अवधिमें असीन है। जोरिल्ले,  
अस्य मन्त्र जाह्नवी है ?'

सत्यमेव जयते - गान्धर्व । अंधेकारे  
एवंजसे क्या राज्य ? जो शिक्षा योग्यकर  
अविद्य-निर्वाह करता हो, वह बहुत-से घर  
लेकर क्या करेगा । जो बुरा है, उसे  
पुनरुत्थाने क्या राज्य क्या जिससे बात नहीं  
बढ़ी है, वह क्या लेकर क्या करेगा ? जोरी  
काली काली गली, वैसे काली कागज-मुद्रका  
उपयोग नहीं किया । अतः कागजभोगसे  
मिलने आग अपनी इस कड़ी रस्तीको चुने वे  
हीजिये ।

गुणको कदा—ब्रह्मन् । कदा यही तुम्हारा कार्य है ? कदा तुम्हें गुणों यही उपदेश दिया है ? कदा तुम नहीं जानते कि परमात्मा अनिमित्त कर्ता स्वयं एवं सुप्रज्ञानी इति कर्तव्यवशम् है ? परमात्माके अवधारणसे जो घाय कर्मका जन्म है, उसे सैकड़ों आकाशमोहना भी मोच नहीं जा सकता ।

अवश्यम गोले—राजम् । मैं अपनी सपनाओं को भलीभाँति समझता हूँ और महिराज-जीने का कथन भी वास्तव में सत्य है । फिर धरणी-संग्रह विषय निम्नलिखित है । आतः आप अपनी इस कथाओं को मुझे अवश्य से दीजिये ताकि मैं आप विषय ही वास्तव में पढ़ूँ ।

ब्राह्मणकी इस बातपर राजाने मन-ही-मन विचार किया कि ब्राह्मणको प्राणोन्नी रक्त न करनेसे ब्रह्मवाय होगा, अतः इससे छलनेके लिये पत्नीको दे द्या गया श्री मेह है । इस मेह ब्राह्मणको अपनी पत्नी देकर ये बातसे मुक्त हो प्रीति ही अभिप्रेत प्रवेश कर सकेंगा । मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके राजाने अलग जलपत्नी और ब्राह्मणको बुलाकर उसे अपनी पत्नीको दे दिया ।



भगवान् शिवका चतिनाथ एवं हेस नाथक भवनार

मन्त्रिभार बढ़ने लगे—मुझे ! अजब नै

वारसात्म्य दिग्गजे धर्मिकता सम्पन्न  
 अन्धकारका कर्म कराने हैं। मुन्निश्वर ।  
 अन्धकारका वास्तव कर्मजोके समीप एक चील  
 रहता था, जिसका नाम था अन्धक । इसकी  
 पत्नीको स्नेह अन्धक्य कहते थे । यह उनका  
 इतनासे पालन करनेवाली थी । वे दोनों कर्म-  
 यकी पादम् निष्पन्नक थे और निष्पत्ती  
 आराधना-पूजासे लगे रहते थे । एक दिन यह  
 दिग्गजधर्म भील अन्धकी कर्मजोके निम्ने  
 अन्धकारकी स्नेह करनेका निमित्त अन्धकार  
 बहुत दूर जाकर गया । इसी समय  
 ईश्वरकात्मने भीलकी वीर्यता लम्बेके निम्ने  
 भगवान् इन्द्रा लम्बिकाका नाम आरम्भ  
 करने पर आये । इन्द्रासे ही इन वाक्का  
 प्राणिक चील की कर्म आभा और कर्म  
 कहे प्रेमी इन वीर्यकात्मक पूजन निम्न ।  
 इन्द्राके अन्धकारकी वीर्यकाके निम्ने इन  
 कर्मधर्मने हीलकात्मने कहा—'भील !  
 आज रातसे कई मन्त्रके निम्ने मुझे जानने  
 से । कर्मका प्रेमी ही कर्म जर्मन, मुन्निश्वर  
 का कर्मका से ।'

भील कोत्र - ज्ञातीभि ! अत्र उच्यते  
 यद्विदुः । तत्रापि मेरी कथा सुनिधे । मेरी कथा  
 इतान्ते मे कथ्यते श्रोता । निरुद्धो अत्रापि  
 यदा विदुः मे कथयति ?

भीलमारी का काल सुन्दर नक्षत्रीय  
काँसे जले जानेको काल हो गये ।

तब पीरमणीने सजा — अन्धकार ! अन्ध  
स्वाधीन्यको स्वातन्त्र्य हे दीनिये । कर आये हुए  
अनिश्चितो निराश्रय न होयइये । अन्धकार  
हमारे गुलाम-बन्दीके पावननये आत्म पर्यङ्गरी ।  
आप स्वाधीन्यको तब नृत्तलङ्घनक कर्मके

जीनर विद्युत और वे छोटे-बड़े जल-चक्र  
लेकर चलाने लगे हैं।

जहाँको यह बात सुनकर भीन्दे  
 बोला—जहाँको चारों तरफ़ निगाहोंकर भी  
 भीन्दे कैसे यह समझता है ? संन्यासीजीका  
 अन्वय जाता भी मेरे लिये अवर्णन्यार्थक ही  
 होगा । ये बोले ही काच एक गृहस्थके लिये  
 सर्वथा अनुचित है । अतः मुझे ही चारों  
 तरफ़ रुन्ध पादिने । जो होखार होगी, वह  
 तो होखार ही होगी । देख राख आत्म चरके  
 अपने लीकले और संन्यासीजीको से साधन  
 चरके भीन्दे एक दिक् और काच यह भीन्दे  
 अपने आत्म चरके एकतरफ़ चरके बाहर का  
 हो गया । राखों जेम्मे कुछ एवं दिम्मेक यह  
 जो पोरक के लगे । अपने भी संन्यासीजी  
 अपने लीकले लिये चरक यह दिक् । इस  
 तरह यह चरक हुआ यह भीन्दे चरकान्  
 होखार भी जेम्मेजोयस दिम्मेक चरकान्  
 चरकान् एक दिक् गया । अतःजोयस  
 चरकान् जो लीकले देख दिम्मेक चरकान्  
 संन्यासी जीन्देका जा जेम्मे है, यह जो  
 चरक दुःख हुआ । संन्यासीजीको दुःखी देख  
 भीन्दे दुःखी चरकान् जेम्मेका भी  
 जेम्मेका उम दुःखको एकतरफ़ जो चरकान्—  
 'संन्यासी । अतः दुःखी किन्हींको हो रो  
 है ? इस भीन्देकाचका तो इस समय चरकान्  
 ही हुआ । ये काच और चरकान् हो गये, जो  
 इन्हें देखी मुम्मे जेम्मे । ये किन्हींका  
 आत्मने जेम्मेका इन्कर अनुकरण चरकान् ।  
 अतः जेम्मेकाचका चरकान् अनुकरण चरकान्  
 लीकला यह है; जेम्मेका चरकान् अनुकरण  
 चरकान् किन्हींको लिये जेम्मेका चरकान् है ।  
 जेम्मेका चरकान् सुनकर संन्यासीजीने स्वयं किन्हीं

विचार की और नीलम्बने अपने कार्यके



अनुसार उनमें प्रवेश किया। इसी समय भगवान् सीकर अपने पैरवाण् सेवकको उसके लम्बने प्रकट हो गये और उनकी प्रार्थना करते हुए बोले—'तुम क्या हो, क्या हो। मैं तुम्हारे प्रसन्न हूँ। तुम स्वयम्भूत हो कर बनो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अर्थ नहीं है।'

भगवान् सेवकका यह वरदान-प्रस्ताव स्वयं सुनकर नीलम्बको डर हुआ था। वह देरी बिधोर हो गयी कि उसे किसी भी बातकी सुझ नहीं रही। उसकी उस अवस्थाको लक्ष्य करके भगवान् सीकर और भी प्रसन्न हुए और उनके न चमकनेपर भी उसे सा दैत हुए बोले—'वेरा जो वांछित है, वह अभी तुम्हारे हुंकारको

प्रकट होना और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनोंका वरदान संयोग करलोह। यह भील निषधदेशकी कलय राजधानीमें राजा कीर्तनका ग्रेह हुए होना। उस समय वान्के लम्बने इसकी ल्वाली होनी और तुम निरर्थक नगरमें भीलताकी पुत्री दयवन्ती होओगी। तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगनेके पक्षान् वह मोह प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगीश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है।'

मन्त्रिपर कहते हैं—सुने। ऐसा कहकर वरदान् किन्तु उस समय सिद्धुकायने स्थित हो गये। वह नीलम्ब अपने कार्यके निर्वर्तन की दृष्टि का, आतः अतीत करके उस सिद्धुको 'अज्ञान' कहा ही गयी। दूसरे लम्बने यह अज्ञान वाक्य भील देवद नगरमें कीर्तनका हुए हो प्रकटता लम्बने वान्की निरन्तर हुआ और आहूत वाक्यकी भीलनी निरर्थक नगरमें राजा भीलकी पुत्री दयवन्ती हुई और वे वनिताय किन्तु वहाँ इसलिये प्रकट हुए। उन्होंने दयवन्तीका लम्बने साथ निरन्तर कराया। पूर्व-लम्बने वरदान-प्रदान वरदाने प्रकट हो भगवान् सिद्धने हुंकारका वरदान वरदान उन ~~सिद्धु~~ सुन किन्तु। ईश्वर-वन्तकी किन्तु भविष्य-भविष्यी बातें करने और विदेह वही-वान्के कुशल थे। वे वर और दयवन्ती दोनोंके लिये वरदान-प्रदान हुए।

(अध्याय १८)



### भगवान् शिक्षके कृष्णार्दन नामक अवतारकी कथा

मन्त्रिपर कहते हैं—सन्तुष्टताकी। भगवान् शम्भुके एक लम्ब अवतारका नाम कृष्णार्दन है, जिसने राजा नमनको ज्ञान

प्रदान किया था। उसका वर्णन करता है, सुने। अज्ञान नामक मनुके को वृक्षारू आदि हुए थे, उनमें नमनका नाम नमन था,



देकर स्वर्णलोकाको जाने गये। उस चन्द्रियरूप धनको जब वे बहुत करने लगे, उस समय सुन्दर मीठा करनेवाले भगवान् विष्णु तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। उनके ऊपर अशु बड़े सुन्दर थे, परंतु वेब बजते थे। उन्होंने नभयसे पूछा—‘तुम क्यों बजे ? जो इस धनको ले रहे हो। यह तो मेरी सम्पत्ति है। तुम्हें किससे यहाँ भेजा है। सब जाने डीक-डीक बताओ।’

नभयने कहा—‘यह तो यज्ञसे बना हुआ वस्त्र है, जिसे धर्मियोंने मुझे दिया है। अब यह मेरी ही सम्पत्ति है। इसको लेनेसे मृत मुझे कैसे रोक रहे हो ?’

कुम्भकर्णने कहा—‘तल ! इस दीवोके इस जलमें तुम्हारे पिता ही पंच रहेंगे। बाकर इनसे पूछो और वे जो निर्णय दें, उसे डीक-डीक यहाँ अन्तर बताओ।’ उसकी बात सुनकर नभयने पिताके पास जाकर इस प्रश्नको उनके सामने रखा। आश्वमेधको कोई पुरानी बात बन्द आ गयी और उन्होंने भगवान् विष्णुके करण-कर्मलोका विज्ञान करते हुए कहा :

‘तुम कहते—‘तल। वे पुत्र जो तुम्हें बात धन लेनेसे रोक रहे हैं, सचकात् भगवान् विष्णु हैं। जो तो लोभारकी लाली बन्धु ही उनकी है। परंतु बजते प्राप्त हुए वस्त्र अन्तर विरोध अधिकार है। यह करनेसे जो धन बच जाता है, उसे भगवान् स्वयं प्राप्त निश्चित किया गया है। अतः यज्ञकर्तृक सारी वस्तु प्राप्त करनेके अधिकारी उन्हेंकर महोदधकी ही हैं। उनकी इच्छासे ही हमारे लोग उस वस्तुको ले सकते हैं। भगवान् विष्णु तुमपर कृपा करनेके लिये ही यहाँ वैराग्य धारण कराके आये हैं। तुम यदि जानो

और उन्हें प्रसन्न करो। अपने उपराजके लिये क्षम्य मानो और प्रणामपूर्वक उनकी श्रुति करो।’ नभय पिताकी आज्ञासे यहाँ भले और भगवान्को प्रणाम करनेका इरादा छोड़कर बोले—‘मोक्ष ! यह सारी विद्वेकी ही अपनी है। फिर यज्ञसे बचे हुए वस्त्रके लिये वे कहना ही क्या है। विष्णु ही उत्तर अत्यन्त अधिकार है, यदि मेरे पिताने निर्णय किया है। वाय ! जैसे नभार्च बात न जाननेके कारण भगवान् जो कुछ कहा है मेरे उस उपराजको क्षम्य करीजिये। मैं अपने करणोंसे परमात्मा परमेश्वर पर शर्धया करता हूँ कि अब मुझपर प्रसन्न हों।’

ऐसा कहकर नभयने अत्यन्त दीनपूर्वक इच्छासे दोनों हाथ जोड़ मोक्ष कुम्भकर्णका सम्मान किया। ‘यह आश्वमेधने भी अपने उपराजके लिये क्षमा माँगी हुए भगवान् विष्णुकी श्रुति ली। तत्काल भगवान् अपने धर्म-हीन वस्त्र को नभयको कुम्भकर्णसे देना और पुत्रको हस्त देना।

कुम्भकर्ण बोले—‘नभय ! तुम्हारे पिताने जो कर्मनुकूल बात कही है, वह ठीक ही है। तुमने भी साधु-व्यथाके कारण सत्य ही कहा है। इसलिये मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सन्तान प्रदानकर ज्ञान प्रदान करता हूँ। इस समय यह वस्त्र धन मेरे तुम्हें दे दिया। अब तुम इसे प्रत्यक्ष करो। इस लोभमें निर्विकार एकर सुख लोने। जन्मसे मेरी कृपासे तुम्हें सद्गति प्राप्त होगी।’ ऐसा कहकर भगवान् सब सबके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। सब ही आश्वमेध भी अपने पुत्र नभयके साथ अपने स्वर्गको स्वीट आये।



उनके चरणोंमें गिरा दिया और  
कहा—'दीनदास गढ़देव ! यह कुछ  
आपके घरणीयें पक्ष हैं। आप इसका और  
मेरा उद्धार करें। इस खेतीभर कोष नहीं, लेन  
करें। गढ़देव ! सरणागत इनकी रक्षा  
करीजिये। उसके स्वयंसे प्रकट हुई यह  
आग इन्हें जलानेके लिये आ रही है।'  
सुहृत्पतिजी यह बात सुनकर अत्यन्त-  
रोषधारी कलत्राभिन्नु शिखरे ठहरे हु  
कहा—'अपने नेत्रोंसे रोषवत्त बाहर निकाली  
हुं अभिचो मैं पुनः कैसे कारण कर सका  
हूँ। क्या सर्व आपकी छोड़ी हुई केशुल्यते  
किं प्रत्य कारण है ?'

बुद्धलक्ष्मी बोले—देव ! धनवान् ! कल  
रत्ना ही क्षुधाको मत होने है । अन्न अर्पण  
भक्तजनस्य वाचको करितार्थ करिनिजे और हुन  
धनोदार लेखको काही अन्धकार हुन करिनिजे ।

कहने परा—किङ्करीते । मैं भुज्जवा प्रसन्न



है। इसलिये जलज नष्ट होता है। इनका ही जीवनमूल्य देनेके कारण आत्मसे मुक्तता एक नया जन्म भी होता। ये सत्यसत्य ही वे होते जो यह ज्ञान प्राप्त हुई है, इसे देखता नहीं यह सत्यते। अतः इसलिये मैं बहुत दूर छोड़ना, जिससे यह इनका पीछा न हो सके।

ऐसा कष्टकर अपने तेजःशक्त्य इस  
अच्छा अङ्गिके द्वारायें लेकर बनवान्  
शिवने और प्रभुकी सेवा दिया । यहाँ यैके  
जोते ही बनवान् शिवका यह तेजःशक्त्या  
कहा बालकके समान परिणत हो गया, जो  
विश्वपुत्र जगन्धर नामके शिवका कृपा ।  
द्वार इन्द्राक्षकी शक्तिनाले प्रगल्भ शिवने  
ही असुरके लक्ष्मी जगन्धरका यह दिया  
वा । अक्षयकीयने ही सुन्दर लीला करके  
लोककल्याणकारी होकर जाग्रीते अनाधर  
हो गये । फिर एक देवता अक्षय शिर्षक एवं  
सूरी हुए । इन्द्र और बृहस्पति भी उस प्रपत्ति  
भूत हो उल्लस सुखके जागी हुए । शिवके  
लिखे इनका आका कृपा वा, यह प्रगल्भ  
शिवका दर्शन प्रभुकर कृताई हुए । इन्द्र और  
बृहस्पति प्रगल्भापूर्वक अपने स्वामिको  
कहे गये । सन्तुष्ट ! इस प्रकार मैंने  
तुम्ही परमेश्वर शिवके अवधूतेश्वर नामक  
अक्षयका दर्शन दिया है, जो भूतके लक्ष  
हो बलीके वरम अक्षय प्रदान करनेवाला  
है । यह शिव अक्षय पालक निवारण  
करके ब्रह्म, स्वर्ग, भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण  
पदोन्नति पालक प्राप्ति करानेवाला है ।  
जो इन्द्रिय एकवर्धित हो इसे सुखा वा  
सुख है, यह ही लोकमें सम्पूर्ण सुखोन्नत  
उपभोग करके अन्तमें शिवकी गति प्राप्त  
कर लेता है ।  
(अध्याय ३०)











[illegible][illegible]

इसके समान भगवान् गिरि अश्वमेध हो गये । अश्वमेध का समान प्रशस्तार्थक का अर्थ है : उन्होंने समस्त सब गरीब समस्त । सुखद भगवन् का हस्त हस्त हुआ । अश्वमेध समस्त सुखीय और अधिक सुखी हो गये । गरीब । इस अश्वमेध गरीब सुखी परमेश्वर गिरिमे सुखदार्थककर करीब किया है । यह अश्वमेध समस्तमेधमे अश्व ही सुख देनेकर है । सुखदार्थकगरी यह काका भगवन् सु सु करमेधमे गरीब समस्त गरीबमेधमे करनेमे देनेकर है । जो इसे अधिकार्थक सुखमे थ सुखमे है, यह समस्त सुखमेधमे भगवान् अश्वमेध भगवान् गिरिमे अश्वमेध है ।

(अनुसूची १२)



नदीकरजी कहते हैं—बुद्धे ! इसका  
कठोर व्यासजी अर्जुनको बुराकार उन्हें  
समाजविधायक उपदेश देनेको आज्ञा दूर, जब  
तीक्ष्णवृद्धि अर्जुनने जाना करनेके पूर्वपक्ष



बैठकर उस विद्याको पढ़ाकर कर लिया । फिर  
उत्तरवृद्धि मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको  
कार्त्तवीर्यविद्वान्के पूज्यपदा विधान कायमकर  
कहा ।

व्यासजी बोले—‘पांडव ! अब तुम  
यहाँसे चार रात्रकीस इन्द्रकीस वर्षोंपर  
जाओ और यहाँ उग्रकीसके लक्षण कैलाश  
सम्पन्नकायसे लयना करो । यह विद्वान्  
अद्वयधत्तमसे कहा तुम्हारा दिन करणी  
होगी ।’ अर्जुनको ईश आसीनके देकर  
व्यासजी पाण्डवोंसे कहने लगे—  
‘नृपकोटो । तुम सब लोग कार्यवा दूर बने  
रहो, इससे तुम्हें सर्वथा श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त  
होगी; इससे आत्मिक विचार करनेकी  
आवश्यकता नहीं है ।’

नदीकरजी कहते हैं—बुद्धे ! इस प्रकार  
मुनिवर व्यास अब पाण्डवोंको उत्तरहीनत्व दे

करके विराटकीके चारपक्षपरसेका स्वरूप  
कारके प्राप्त ही अन्तर्भाव हो गये : उग्र  
लिय-कर्मके कारण करनेके अर्जुनसे भी  
अनुपम मेघ जाह्न हो गया । वे उस समय  
कटीत हो गये । अर्जुनको ईशकर सभी  
पाण्डवोंको निश्चय हो गया कि अचरम ही  
हुमारी विजय होगी; क्योंकि अर्जुनने विपुल  
लेख जयज हो गया है । (तब कहींसे अर्जुनसे  
कहा—) ‘व्यासजीके कथनके ऐसा प्रतीति  
होना है कि इस कार्यको केवल तुम्हीं कर  
सकते हो यह हमारे द्वारा कभी भी  
निष्ठ नहीं हो सका; अब आओ और  
इन्द्रकीसके बीचमें लक्ष्य बनाओ ।’ अब  
अर्जुनने जाने भक्तकी तब हीथीसे अनुपम  
गयी । उस लोगोको अर्जुनके विराटका  
दृ.स से दृ.स पर कार्यकी बहुत देखाकर  
सभीने अनुपमि हो गये । फिर तो अर्जुन मन-  
ही-मन प्रसन्न होते दूर उस समय धर्म  
(इन्द्रकीस) को चले गये । यहाँ पहुँचकर वे  
पुत्रकीके समीप एक वनोदय कानन, जो  
सर्वसे भी उत्तम और अलोककनसे  
सुशोभित था, छत्र गये । यहाँ उन्होंने जय  
करके मुखाशो मयकार विधान और जय  
कलेस विधान बन, उमीके अनुसार सब ही  
अपन लेख कलक । फिर यहाँ मन-ही-मन  
ईश्वरकीसे अन्तर्भाव करने के आसन  
भगवत्कर बैठ गये । कथनानु सप्तसुत्रवले  
सुन्दर कथित (विचरिषु)का निर्वाण  
करके उनके आगे अनुपम मेघोरानि  
हीकरका व्यास करने लगे । वे तीनों समय  
जय करके अनेक प्रकारसे कार्यवा  
विराटकीकी पूजा करते दूर व्यासनासे गरव  
हो गये । तब अर्जुनके शिरोधारसे तेजकी  
अपन निवर्तने लगी : उसे देखकर इन्द्रके





किरातावतारके प्रसङ्गमें मुक्त जयम्भक दैत्यका शूकर-रूप धारण करके अर्जुनके पास आना, शिष्यजीका किरातवेष्टामें प्रकट होना और अर्जुन तथा किरातवेष्टाधारी शिवद्वारा उस दैत्यका वध

मटीशरजी कहते हैं—बुने । कल्पवृक्ष अर्जुन व्यासजीके उन्नेतानुसार विधिपूर्वक स्नान तथा स्नान आदि करके जय वसिष्ठके साथ शिष्यजीका स्नान करने लगे । उस समय से एक ओह घुमिची बलि एक ही वीरके मानपर कड़े हो चुपकी और शूकर-रूपि करके कड़े-कड़े जय उचर रहे थे । इस प्रकार से जय त्रैलोक्यक जय-ह्री-यय शिष्यजीका स्नान करके कल्पके सर्वोत्कृष्ट पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करने शुरू कर लगे । उस मन्त्रका ऐसा उन्कड़ तेज प्रकट हुआ, जिससे देवताय विस्मित हो गये । पुन वे शिष्यजीके जय गये और समाधि विराते बोलें ।

देवताओंने कहा—सर्वेश्वर ! एक कल्प आयोके लिये लयस्वयमें निरत है । प्रभो ! वह व्यक्ति को कुछ वाक्य है, उसे आज ये क्यों नहीं बोलें ?

मटीशरजी कहते हैं—बुने ! वो महाशर देवताओंने अनेक प्रकारसे उनकी भुति की । फिर उनके चण्डीकी ओर दृष्टि लगाकर वे विनम्रभावसे कड़े हो गये । सब उद्यमवृद्धि एवं प्रयत्नका पराजय निरन्तर ही वाक्यको सुनकर उद्यमक इस पड़े और देवताओंसे एक प्रकार बोलें ।

शिष्यजीने कहा—देवताओं ! अब तुमसेव अपने स्वाम्यके सौद जाओ । मैं सब तरफने तुमसेगोप्य कार्य समझ करकेगा । वह किरातकुल राजा है, इसने स्वेच्छकी गुंजाइश नहीं है ।

मटीशरजी कहते हैं—बुने । कल्पके उस कल्पको सुन्दर देवताओंको पुनर्लप्य निद्राय हो गयी । तब से जब अपने स्वाम्यके सौद गये । इसी समय मुक्त जयम्भक दैत्य शूकररूप उस शरणा करके चढ़ी आया । विद्रोह ! उसे जब समय कावाली दुरात्म कुर्वेयने अर्जुनक पास भेजा जा । वह चढ़ी अर्जुन शिवा से, इसी कार्यसे अपना वेनचूर्णक चर्च-वसिष्ठसेवने उपायगा, दुष्टाके विद्रो-विद्रो करमा तथा अनेक प्रकारके लज्ज करमा हुआ आया । तब अर्जुनकी भी दृष्टि उस मुक्त जयम्भक अर्जुन पर की वे शिष्यजीके वाक्यको स्मरण करके वो विचार करने लगे ।

अर्जुनने (मन-ही-यय) कहा - 'वह कौन है और कहाँसे आ रहा है ? वह तो कुम्भकर्ण विलम्बी यह रहा है । निद्राय ही वह वेन अर्जुन करनेके लिये आ रहा है । इनमें तर्क की प्रस्ता नहीं है, क्योंकि निद्राय ही होकर अपना मन प्रमथ हो जाय, वह निद्राय ही अपना विनकी है और जिसके वीरसेव मन काकुल हो जाय, वह अनु ही है । अन्धकारसे कुम्भकर्ण, शरीरसे चञ्चलका, काशीजयसे शास्त्रज्ञानय और नेत्रसे चेतका चरित्र विद्रोह है । अन्धकारसे, चालचालसे, चेष्टसे, चेतसे तथा नेत्र और मुखके विचारसे अपने भीतरका भाव जान जाता है । नेत्र चार प्रकारके कड़े गये हैं - रुग्णत्व, लज्ज, निद्रा और स्वतः । विद्रोनेने इनका जय भी मुक्त-मुक्त करवाया है । नेत्र







संस्कृत-सहित

मेरी सार बात सुन ले। जिस समय तेरा स्नायी आयेगा, उस समय मैं उसे समझा कर बहाईगा। तेरे साथ कुछ धन्य तो मुझे सोच नहीं देता, जल में तेरे स्नायीके साथ ही लोहा लूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का मुझे उपयोगिताका ही भाव आता है। धीरे ! तुने मेरी बात तो सुन ही ली, अब तू मेरे माता-काकाके भी देखेगा। जल, अपने स्नायीके पास लौट जा अकसा केही तेरी हड्डन छे, मेरा घर !

नदीधरजी कहते हैं—बुने ! अर्जुनके भी कानोंपर यह भील ऊर्ध्व निष्काकार सेनापति किरात विराटकाकन से, काई मन्त्र और उन धिक्कातसे अर्जुनका मात कवन विस्मयपूर्णका कह सुनाना। अन्धकी बात सुनकर उन किरातेश्वरकी पक्षर हर्ष हुआ। सब धीरकालकारी कानका जेकर अन्धकी सेनाके साथ काई मन्त्रे। अन्ध कन्धकुर अर्जुनके भी सब किरातकी उस सेनाके देखा, सब से भी कन्धकाकन से लम्पने आकर उठ गये। लम्पनार किरातके पुनः उन कन्धकी सेना और अन्धके द्वारा भरातकी भद्रका अर्जुनके भी कानकाका।

किरातके कन्ध—नयिकर ! तन्त्रिक इस सेनाकी ओर तो दुहितका करते। ओरे ! अब तूय कान छेड़कर ऊर्ध्वी कान जाओ। कन्ध तूय इस समय एक लम्पनार कानके सिन्धे प्राण गीवाका कानके छे ? तुम्हारे काई दुः कने पीडित हैं। जी तो उनसे भी कन्धकर दुःखी है। मेरा तो हेरा विचार है कि हेरा करनेसे पुन्नी भी तुम्हारे हाथसे काने कावनी।

नदीधरजी कहते हैं—बुने ! सब अर्जुनकी सब राखसे रख करनेके सिन्धे किरातकानकारी करनेकर कन्धने उन्धकी

अन्धकी कन्धकनी वरीकाके निमित्त ऐसी काव काने, सब यह निष्का-कन करी समय अर्जुनके पास पहुँच और उनसे यह बात कानका उनसे विस्मयपूर्णका कह सुनाया। अन्धकी सब सुनकर अर्जुनके उस लम्पनार कान पुनः कन्ध—‘बुने ! तूय काकर अपने सेनाकीके काने कि तुम्हारे काननाम्पार करनेसे काने किरात के जावनी। यदि मैं तुम्हें अबका काव से कान हूँ तो विस्मय के अपने कानके कानि करनेकाका सिन्धे कानेका। इसलिये काने ही मेरे काई दुःखकी हो काने कान मेरी सारी विचारि विचारन हो काने, कानु कान आओ तो सही। मैंने ऐसा कावनी वरी सुन है कि काई सिंह गीदड़के कर कान छे। इसी काना राजा (कानि) काने भी कानेकरो कानधीन नहीं हो कानका।

नदीधरजी कहते हैं—बुने ! अर्जुनके भी काननेन यह कान पुनः अपने कानके काव लौट कान और उनसे अर्जुनकी काने काने काते उनसे सामने विस्मयकाके निमित्त कान छे। कन्ध सुनकर किरातकानकारी सेनाकाकन कानेकनी अन्धकी सेनाके साथ







सकता हूँ। यशोवन्त ! आश जो कोई भी हो, आपकी मेरा नमस्कार है। यशोवन्त ! आश जो स्वामी है और मैं आपका दास हूँ। अतः आपको मुझपर कृपा करनी ही चाहिये।

नन्दीधरजी कहते हैं—मुने ! अर्जुनद्वारा किये गये इस सम्बन्धों सुनकर धर्मवान् होकरका मन परम प्रसन्न हो गया। तब वे ईश्वर हुए पुनः अर्जुनसे बोले।

शंकरजीने कहा—कहा ! जब अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम मेरी बात सुने और अपना अर्थात् कर योग लो। इस समय तुम जो कुछ कहोगे, वह सब मैं तुम्हें प्रदान करेगा।

नन्दीधरजी कहते हैं—महर्षि ! शंकरजीके जो कहनेपर अर्जुनने हाथ जोड़कर मागधमाका हो सहायिकके प्रणाम किया और फिर त्रेकपूर्वक गहन ध्यान में डूबा आरम्भ किया।

अर्जुनने कहा—मित्रो ! आश जो स्वामी ही अन्तर्भाविकसे सबके अन्तर विराजमान है (अतः यह-यहही जगन्नेश्वर है), ऐसी दशामें मैं क्या करूँ, तथापि मैं जो कुछ कहूँ हूँ, उसे आश सुनिये। वाचन ! मुझपर शत्रुओंद्वारा जो संकट प्राप्त हुआ था, वह तो आपके दर्शनसे ही निवृत्त हो गया। अब जिस प्रकार मुझे इस श्रेयस्वती वार्ष्णेयिणी प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

नन्दीधरजी कहते हैं—मुने ! इसका कारण अर्जुनने भक्त्यनुसृत धर्मवान् शंकरके नमस्कार किया और फिर वे हाथ जोड़कर धर्मवान् मुझसे हुए उनके निकट खड़े हो गये। जब स्वामी शिखरीको यह ज्ञात हो गया कि यह वाचस्पत्य अर्जुन मेरा अन्तर्भाविक है, तब वे भी परम प्रसन्न हुए। फिर उन

यशोवन्त अपने प्राशुपत नामक अस्त्रको, जो सर्वथा सम्पन्न प्राणिमण्डलके लिये दुर्लभ है, अर्जुनको दे दिया और इस प्रकार कहा।

शिखरी बोले—कहा ! मेने ! तुम्हें अपना शत्रुपत अस्त्र दे दिया। इसे धारण करनेसे जब तुम सम्पन्न शत्रुओंके लिये अनेक हो जाओगे। आओ, विजय-लक्ष्य करो। साथ ही मैं शीकृपासे भी कहूँगा, वे



दुन्दरी सहायता करेंगे, क्योंकि शीकृपा मेरे अस्त्रसम्पन्न, धन और मेरा कार्य करनेवाले हैं। धरत ! मेरे प्रभावसे तुम निष्काण्टक राज्य बनें और अपने भाई युधिष्ठिरसे सर्वदा सदा प्रचरकरके धर्मकार्य कराने रहें।

नन्दीधरजी कहते हैं—मुने ! जो कहकर शंकरजीने अर्जुनके परमेश्वर अपना कर-कर्म रत्न दिया और अर्जुनद्वारा पवित्र हो वे शीघ्र ही अन्तर्भाविक हो गये। इस प्रकार धर्मवान् शंकरसे वरदान और अस्त्र प्राप्त अर्जुनका मन प्रसन्न हो गया। तब वे अपने मुख्य मुक्त शिखर धर्मपूर्वक स्वरूप





है। यूनै । यह जो दूसरा ज्योतिर्वलिङ्ग है, वह दर्शन और पूजन करनेसे मन्त्रा सुलभकरक होता है और अन्तर्मे भक्ति भी प्रधान कर देता है। इससे भक्तिक भी संलग्न नहीं है। तब । ईश्वरजीका पञ्चकाम अथवा तीसरा अवतार इन्द्राग्नी मारीच हुआ । यह अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है। एक बार रामायण-विवाही युद्ध अथवा असुर को सैनिक धर्मका विनाशक, विनाशही तथा सब कुछ नाश करनेवाला वह, इन्द्राग्नीचें आ पहुँचा । तब वेद मन्त्रक ब्रह्मण्यके पुत्रने लिङ्गजीका ध्यान किया फिर तो इन्द्राग्नीचें तुरंत ही प्रकट होकर इन्द्राग्नीका उस असुरको मार कर दिया । मन्त्राग्नी अपने भक्तोंका सर्वथा रक्षण करनेवाला फिर देवताओंके श्राद्धना करनेवा मन्त्राग्नी मन्त्रक ज्योतिर्वलिङ्गमन्त्राग्नी नहीं प्रतिष्ठित हो गये। इन मन्त्राग्नी मन्त्रक लिङ्गका प्रथम-पूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे मन्त्राग्नी मारी रामायण पूर्व हो जाती है और अन्तर्मे उसे परम गति प्राप्त होती है। परम आत्मकालमे मन्त्राग्नी परमेश्वर शम्भु भक्तोंको अभीष्ट कर प्रदान करनेवाला ओम्कार नामक बीजा अक्षरा प्रदान किया । यूनै । विष्णुविग्निने भक्तिपूर्वक लिङ्ग-विवाही शिवजीका पारिवर्लिङ्ग स्थापित किया। इसी लिङ्गसे विष्णुका मन्त्राग्नी पूर्व करनेवाले मन्त्राग्नी प्रकट हुए। यह देवताओंके श्राद्धना करनेका भक्ति-भक्तिके प्रदाता मन्त्राग्नी लिङ्गमारी इन्द्राग्नी को कर्णार्थ विष्णु हो गये। यूनै । इनमें एक धारा ओम्कारमें ओम्कारेश्वर मन्त्रक इस लिङ्गके कर्णार्थ प्रतिष्ठित हुआ और दूसरा पारिवर्लिङ्ग परमेश्वर नामसे प्रतिष्ठित हुआ।

बुद्धे । इस दोबोरे किम किस्तिता भी  
 दर्शन-बुद्धन किम आव, उमे घटतोकी  
 अधिपत्य पूर्व करमेकाय समझना  
 चाहिये । मध्यमे इस प्रकार येने तुम्हें इन  
 दोनो व्याख्यान ज्योतिर्लिङ्गोक्त वर्णन सुना  
 किम । वरमान्ध किमके कोधने अन्वहारका  
 नाम है केदारेश । यह केदारस्थे ज्योतिर्लिङ्ग-  
 उपासे लिख है । बुद्धे ! वहाँ श्रीहरिके जो  
 म-आराधन समक अन्तर है, इसके  
 आराधन करनेवा किमजी किमगिरिके  
 केदारशिखरपर लिख हो गये । ये दोनो उक्त  
 केदारेश्वर सिद्धकी किम पुजा करने हैं । वहाँ  
 सम्य दर्शन श्री बुद्धन करनेवाले जालोको  
 अभीष्ट प्रदाय करते हैं । ताल । मयेधर होले  
 दुर् भी किम इस मण्डके विरमकयसे  
 लकी है । किमजीका यह अन्तर सम्पूर्ण  
 अभीष्टोको प्रदाय करमेकाय है । व्याख्य  
 उपासे उमे अन्तरका नाम भीमशेकर है ।  
 इस अन्तरसे उमेने वही-वही लीपाई की  
 है और भीमसुखी विमान किम है ।  
 कायकय देवके अधिपति राजा सुदक्षिण  
 किमजीके भक्त थे । भीमसु उमे पीडन  
 कर गल का । तब प्रेकारजीने अपने भक्तकी  
 दुःख देनेवाले उक्त अद्भुत असुरका  
 मक करके इसकी राजा की । फिर राजा  
 सुदक्षिणके आराधन करनेपर सब प्रेकारजी  
 उकिनीने भीमशेकर नामक ज्योतिर्लिङ्ग-  
 उपासे लिख हो गये । बुद्धे जो समस्त  
 व्याख्यानकय तब प्रेम-मेकता प्रदत्ता है,  
 यह किमेश्वर नामक सातवीं अन्तर करनीमें  
 हुआ । सुविद्वान् सिद्धकय सबे मन्त्रान्  
 प्रेकार उपासी पूरी कपनीने ज्योतिर्लिङ्गकयमें  
 लिख है । किम्य आदि सची देवता,  
 केदारमणि किम और पीर नित्य उनकी



देवदौलतके निबट्टवतीं एक सरोवरसे प्रकट हुए। भुने ! भुवराके पुत्रको तुझे देने का इरादा था। (उसे जीवित करनेके लिये पुत्रप्राप्ति के लिये जीवित आराधना की।) जब उनकी भक्तिसे संतुष्ट होकर भक्तवत्सल प्रभुने उनके पुत्रको बना दिया। तदनन्तर कामनाओंके पूराक प्रभु भुवराकी प्रार्थनासे उस तपस्वीसे ज्योतिर्लिंगरूपसे निश्चय हो गये। उस समय उसका नाम सुन्दरेश्वर हुआ। जो मनुष्य इस दिव्यलिंगका भक्ति-पुर्बक दर्शन तथा पूजन करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोक्तो भोगकर अगम्य मुक्ति-लाभ करता है। शनैःशुभासी ! इस प्रकार वेनि तपसे इस काष्ठ दिव्य

ज्योतिर्लिंगोंका दर्शन किया। ये सभी योग और योग्यके प्रकृता हैं। जो मनुष्य ज्योतिर्लिंगोंकी इस कक्षाके सका अभवा सुनता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा योग-योग्यो प्राप्त करता है। इस प्रकार मैंने इस दत्तलक्ष्मणाभकी संक्षिप्तता वर्णन कर दिया। यह ज्ञानके सब अभ्युत्थानकी उत्तम कीर्तिसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण अभीष्ट फलसेके देनेवाली है। जो मनुष्य इसे मिल आवाहितधियासे पढ़ता अवश्य सुखता है, उसकी सारी क्लेशसर्प पूर्ण हो जाती है और अन्तमे इसे निश्चय ही मुक्ति मिल जाती है।

( ५५५५५ ५५ )

☆

॥ सप्तसहस्रसंज्ञितः सम्पूर्णः ॥













ऐसा आरम्भ किया। उसे समझ था अपने-  
पक्षसे सारा उठी और अनेक बार लोहपूँछ  
शिव-शिवकी पुकार करने लगी। उस  
समयही हिमालयने मगधम् निम्नकर पुनर्वत्स  
आकर ले लक्ष ५५। शिवका नाम अपने-  
वाली यह सारी आरम्भ किया है अपने  
मर्त्यकी रक्षाके लिये मगधम् समुद्रकी ही  
प्रारम्भ लगी।

समस्त कार्यवाहकपक्षी सन्तः, समस्तवाहकपक्षी



प्रतिष्ठा तथा इस प्रकाशनीयते अत्यन्त प्रबल  
कारणसे निम्ने सम्पन्न विद्या यहाँ प्रचलित हो  
गये। चत्वारस्रसप्त चारोहर होकारसे अब  
श्रीपतिप्रकाश देवराज मुकुन्दसे सम्पन्न भवन  
का विद्या और प्रकाशनीयता और कुम्भट्टिने  
देवराज भगवती रक्षणे निम्ने वर्णित हो  
काहा—‘हय जीने।’ ध्येभक्तसे यह कथन  
सुनकर इस सत्पती प्रकाशनीयते इनके  
इस अत्यन्तप्रबल चक्षुसम्पन्न सम्पन्नसे दर्शन  
विद्या। फिर सम्पत्ते सुख देवराजसे चारोहर  
सम्पत्ते प्रजापति करके भुक्त  
अन्तःकरणवाली इस सत्पत्तीने इस जोर

बलात्कार बलात्कार हमारी सखि नहीं ।

अभिमत होली—देखो तो क्या देख !  
 धनमन्त्रालयका । अन्ध दीनमन्त्र है ।  
 भगवोकी उक्त उक्त करनेवाले ईश्वर है ।  
 आगले कुछ समयमें असुराले मेरे जयकी उक्त  
 की है, क्योंकि आगले द्वारा यह कुछ असुर  
 बना गया । देखो करके आगले समझने  
 कागदकी उक्त की है । अब आग मुझे अपने  
 करकेकी कर उक्त एवं अन्धध धर्म अन्ध  
 कीरिने । यह । यही मेरे लिये कर है ।  
 इससे अधिक और क्या हो सकता है ?  
 जय ! योह ! मेरी दुखी प्राणिया की  
 दुखिने । अन्ध जेनेने अन्धकारके दिने यही  
 यही दिना रहिने ।

उपदेशकोटि—सुख—सुखकोटि । सुख  
उपदेशकोटि—सुखकोटि । सुखकोटि  
उपदेशकोटि—सुखकोटि । सुखकोटि  
उपदेशकोटि—सुखकोटि । सुखकोटि

ब्राह्मणे । इति योऽप्ये श्रीविष्णु और  
ब्रह्म आदि देवता । यहाँ भगवान् शिवका  
अतिशयोक्त दुःख काय इत्येवमेव इह आदि  
और अत्यन्त त्रैलोक्यक विज्ञानके प्रणाम  
करके उन सबके प्रणाम करनेकीति मुख्य  
विधान । फिर कुछ इत्यनेन इहमे जोह मरणा  
प्राप्त्यन्तर प्रणम्ये मृति भी यही । इति समस्त  
सम्पत्ति देवमयी गङ्गा वन आदिभक्ताने उत्पत्ति  
प्राप्त्यन्तरे प्रसन्न करानी हुई प्रसन्नचित्त  
के योगी ।

मन्त्राने कथा—शक्तिने ! वीरासनामध्ये  
ह्या दिन काढी राखेले लिखे पुढे ही तुम्ही  
कथा देत आहिले ! त्या दिन ते ही ह्या  
लीळने निष्कल करवा काढली ही !

सुखी बड़ो है—बाईसो !  
गङ्गादीदी यह बात सुनकर अमं प्रसन्न



विजय होकर उनकी बात नहीं कही : वे रोहिणीमें डूबने आसक्त हो गये थे कि दूसरी किसी पत्नीका कभी अन्तर नहीं करेगे । इस बातको सुनकर एक दुःखी हो फिर सब आकर बाणनाथके उभय नैमित्तिक समझने तथा व्यापारित प्रार्थनाके लिये उद्योग करने लगे ।

दस बोले—बाग़दाम ? सुनो, मैं कहने  
अधिक बात तुम्हारे आचरण कर चुका हूँ। मैंने  
भी तुमने घेरी बात नहीं मानी। इसमिन्ने  
आज बात देता हूँ कि तुम्हें अचानक रोग  
हो जाय।

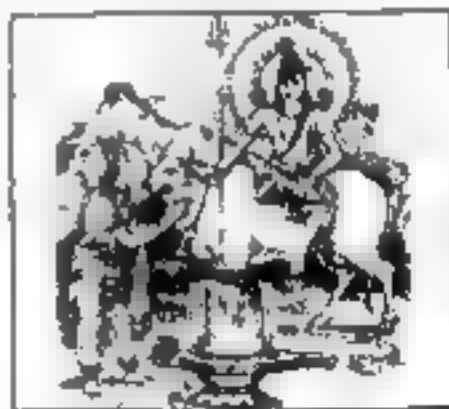
सुतजी कहते हैं :-इसके इलावा कहने की क्षणधरमें सम्झना क्षणरोगसे भरा हो गये । इसके क्षीय होने की उस समय सब शरीर प्रान्त्र इत्यादि सब गया । सब केला और जड़ि कहने लगे कि 'इस । इस । अब क्या करके पाहिजे, सम्झना कैसे लौक होगे ?' चुने । इस प्रकार बु-कने सम्झना के सब रोग विह्वल हो गये । सम्झनासे इस आदि सब ऐश्वर्याओं तथा जड़ियोंके अपनी अवस्था स्थिति थी । तब इस आदि केला तथा जड़ि आदि जड़ि जड़ानीकी करचमें गये ।

तन्मयी वात सुनकर कहावोंने कहा—  
हेकाओ ! जो हुआ, रहे हुआ । अब यह  
निश्चय ही पण्डित नहीं समझता । अतः उसके  
निवारणके लिये मैं तुम्हें कुछ उपाय बताता  
बताना हूँ । आत्तरपूर्वक सुनो । कहावा  
देवताओंके साथ प्रार्थना करके तुम जेबमें  
पाय और चर्डी मृत्पुञ्जमन्त्रकी विधिपूर्वक  
अनुष्ठान करते हुए भगवान् शिवजी  
आराधना करो । अपने लक्ष्मण दिगम्बरधारी  
स्वापना करके वहीं कन्दोव मिला लक्षण

करें। इससे ज्ञान होकर हीम उन्हें अभ्यर्चित कर देंगे।

तब देखलकों तथा भूमिधोके कहनेसे  
 जड़जमीनी भूतलके अनुसार चन्द्रमाने काही  
 कः पानीसक निगार लपला की, धुम्रुल्लभ-  
 जलसे जलमान् युवधधजलता पूजन निगल ।  
 इस कसेइ जलका जल और मन्त्रुल्लभका  
 जलने करते हुए जलका काही स्थिरमित होकर  
 लपलान लड़े रहे । जन्हे लपला करते देखा  
 जलजलका जलमान् जलकर प्रसन्न हो उनके  
 जलने जलक हो गये और अपने जल  
 जलमाने कोले ।

उत्तराखण्ड के लोग—कन्नौज । तुम्हारे  
सम्बन्ध में : तुम्हारे अर्थों को अभीष्ट हो,  
मैं हर चीज़े । मैं प्रसाद हूँ । तुम्हीं सम्पूर्ण  
प्रसाद का प्रदान करींगा ।



बन्दूक चोले—हेरेछार । यदि आप  
प्रसन्न हैं तो मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता  
है; तबालि प्रणवे । जंकर । आप मेरे  
हसीरके इस क्षमरोगका निवारण करीजिये ।  
मुझसे जो क्षमराध बन गया हो, उसे क्षमा  
करीजिये ।

शिवजीने कहा—यत्तरेव ! एक पदमे



[illegible]

अधिवेष्टि कथा—अन्ते अन्त अन्त  
विशेष कथा करके तीसरे अन्तेविशेषकथा  
कथा करके ।

[illegible]

उनके सुलझावक गुण वहाँ लपट बड़ने लगे।  
उनके अन्तर्गत अन्धविश्वास जगती ब्रह्मदेवता  
परिचर्या हो गयी थी।

[illegible][illegible]



\_\_\_\_\_

[illegible]

उन्हीं दिनों उस लेख कारने कोर्ट  
जायिज रहने की, जिसके सम्बन्ध यह था ।  
यह विषय भी और इसविषीमें बहुत दिनोंमें  
रानी थी । यह अपने लाल बच्चे सम्बन्धमें  
मिनी हुए सम्बन्धमें के सम्बन्धमें यही और  
इसमें राजा सम्बन्धमें की हुई सम्बन्धमें  
कुछोंमें आशङ्कित होने किन्तु । राजाके  
सिन्धुसम्बन्ध यह आशङ्कित सम्बन्ध देखकर  
उसने सम्बन्धमें सम्बन्ध किन्तु और किन्तु  
यह अपने सिन्धुसम्बन्ध लीर उसकी ।  
सम्बन्धमें उस सम्बन्धमें भी यह यही  
यही देखी थी । अतः यह आशङ्कित सम्बन्ध

[illegible]







अन्तर्गत आठवीं सीढ़ीसे प्यारमित्रासी नट  
हृत्पन्न होने, जिसके चर्चा जगत्सु भगवान्  
नागसुत उनके पुरुषत्वसे प्रकट हो श्रीकृष्ण  
भावसे प्रसिद्ध होंगे। आइये यह योगकृष्ण  
इस जगत्सु श्रीकरके नाभसे निरोध रूपाति  
प्राप्त करेंगे।'

सुतजी कहते हैं—ब्रह्मण्ये ! ऐसा  
कहकर अश्वनीमन्त्र शिवस्वस्त्वम् कन्याराम  
इन्द्रायन्त्रीने समस्त राजाओं तथा यक्षराज  
मन्त्रसेनख्ये थी कुपलङ्घिते देखा । तत्पश्चात्  
उन्होंने इस बुद्धिमान् मोक्षदायक औरकारको  
कड़ी उन्नतताके साथ शिवोपासनाके इस  
आचार-धर्महास्या उपदेश दिक, जो  
भगवान् शिवन्त्रे जात अथि है । इसके बाद  
परम प्रसन्न हुए इन्द्रायन्त्री कन्त्रसेन और  
औरकारसे विद्या ले इस ज्ञान राजाओंके देखने-  
देखने पार्थि अन्तर्धान हो गये । वे सब राज

हर्षवें धरकर सम्पन्नित हो महाराज  
चन्द्रसेनकी आज्ञा ले जैने आये थे, वैसे  
हो लौट गये। यद्वातेजसकी शीकर की  
इच्छाकरजीका उपदेश पाकर वर्मण  
जाह्नवलोके साथ शीकरजीकी उपासना करने  
लगत। महाराज चन्द्रसेन और गोपबालक  
शीकर दोनों ही बड़ी प्रसन्नताके साथ  
यद्वातेजसकी सेवा करते थे। इन्हींकी  
उपासना करके उन दोनोंने परम पर प्राप्त  
कर लिया। इस प्रकार यद्वाकाल नामक  
शिष्यविष्णु स्वयम्भोक्त आरम्भ है।  
अथवातेजस शीकर कुछ बुझवोंकी शर्तका हुन  
करनेवाले है। यह पाठ पवित्र सत्यदय  
अथवातेजस कहा गया है, जो सब प्रकारका  
सुख देनेवाला है। यह शिष्यवर्तितकी कहाने  
महा कर्षकी शक्ति कहानेवाला है।

(अध्याय १५)

विन्ध्यकी तपस्या, ओंकारमें परमेश्वरलिङ्गके प्रादुर्भाव और उसकी महिमाका वर्णन

कल्पितानि कथा—कथाभरण सुनवी !  
आपने अपने भक्तकी रक्षा करनेका ये  
धन्यकाव्य नाथक शिवलिंगकी बड़ी अद्भुत  
कथा सुनायी है। अब कुछा करके जोसे  
व्योतिर्लिंगका परिचय दीजिये—ओम्कार  
नीर्धने सर्वपापहारी परमेश्वरक ओ  
ज्योतिर्लिंग है, उसके आधिपत्यको कथा  
सुनाइये।

सूतजी बोले—वार्तिको ! ओकेदार  
तीर्थमें परमेश्वरप्रभु ज्योतिर्लिंग जिस  
प्रकार प्रकट हुआ, वह वास्तव है, ऐसी  
सुनो । एक सम्भवतः बात है, भक्तान् वास्तव  
महि भोक्तार्य नथक दिक्को समीप न बड़ी

अभिषेक, स्नान करके सेवा करने लगे। कुछ क्षणोंके बाद वे पुनिभेद बर्तारों में गिराए जाये, जिन्होमें आये और जिन्होमें बाईं हाथे अक्षरोंके साथ ठनका पूजन किया। ये पाई एक पुत्र है, कभी किसी बातकी कमी नहीं होती है, इस भाषणों मनमें लेका जिन्होमें नानदीके सामने स्नान हुआ गया। उसकी वह अभियानभरी बात सुनकर अहंकारनाशक गारुड मुनि लंबी साँस लीचकर खुशचाह लड़े रह गये, धन देखा जिन्हो पर्वतने पूजा - 'आपने ये बाई कर्म-परी कमी देली है? आपके इस तरह लंबी साँस लीचनेका क्या कारण है?'



[illegible]

मुद्रांशो वसुधो हि—वसुधैव कुटुम्बकम् ।

ये जोर्नलिस्ट्स प्रकाश हुआ और उनकी  
प्रशंसा करने से ये काम मिलना है, यह सब  
वहाँ करने का विषय। इनके काम से अन्य  
लेखक समकाली जोर्नलिस्ट्स का काम आसानी से  
(अध्याय १८)

**केदारेश्वर तथा भीमहंकर दामक ज्योतिर्लिंगोंके आविर्भावकी कथा  
तथा उनके महाप्रलयका वर्णन**

सुनने वाले हैं—ब्राह्मणों ! जगन्नाथ  
शिवपुराण को यह-व्याख्यान करके जो अन्तर्गत  
है और भक्तभावसे वह श्रवणकरनेवालोंमें  
प्रसन्ना करता है, उन दोनोंमें फर्कित  
शिवशक्ति काकाकार दोनों शिव जो पूजा  
पूजन करनेके लिये भक्तान्-सम्पूने प्राप्त  
की । शिवजी काकीके अतीव श्रेष्ठके कारण  
प्रतिविम्ब उनके कानके एक काकी-शक्तिपुरे  
पुजित होनेके लिये आया करते हैं । यह एक  
शे-कीके फर्कित-पूजन करते बहुत दिनों  
गये, यह एक कानके कानके शिवके कारण  
हीकार कहें—“मैं सुनानी आनन्दकाके कान

संजुष्ट है। 'तुम दोनों मुझसे पार जानो।' उस  
प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष ऐसा सङ्केतपर यह और  
आत्मचरित्रने लोकोकेतः द्वितीयो आत्मचरित्रने  
कहा—'दोस्त ! यदि अस्य प्रत्यक्ष है और  
यदि तुम पार इस जानो है तो अपने आत्मचरित्रने  
तुम लक्षण सङ्केतों निम्नो यही निम्न हो  
जायगी।'



આ લેનોએ કમ્પ્યુટરોએ દ્વારા પ્રકાશન અનુભવ  
કારણેના કારણવાળાઓની મહેશ્વર દિગ્ગજનો  
આ લેન્ડાઈનીયોએ સર્વે અર્થાત્તિલ્લુએ કરાવે  
નિર્ણય છે અને : આ લેનોએ સુધિત લેવા

४।११। कु. कोटिद्वयवर्धिका १९। २२।

हुःलसे आसुर होकर यहाँ निवास करती थी। इसी समय यहाँ कल-बराहकसे सम्बन्ध रखता कुम्भकर्ण जो राक्षसके समेटे थाई से, यहाँ आया। उन्होंने कलसूँ केरे सखा सम्बन्ध किया। फिर वे मुझे छोड़कर लड़का चले गये। तबकाल मुझारा जन्म हुआ। मुझ की पिताके जमान ही कहान् कलसूँ और पराकायी से। अब मैं तुम्हारा ही सखाय लेकर यहाँ कलसूँ करार है।

मुत्तजी कहते हैं—जहाँको। कार्कटीकी यह बात सुनकर भवान्क पाण्डवी भीष कुपित हो यह विचार करने लगा कि 'मैं विष्णुके साथ कैसा करार करके ? उन्होंने मेरे पिताको मार डाला। मेरे मामा-मामी भी उनके करारके हुक्मसे मारे गये। विराटको भी उन्होंने ही मार डाला और इन प्रकार मुझे बाल दू स दिया। यदि मैं अपने पिताका पुत्र हूँ तो श्रीहरिको अवश्य पीड़ा होगा।'।

ऐसा निश्चय करके भीम यहाँ तब जानेके निम्ने जाया गया। अपने जहाँकी प्रसन्नताके निम्ने एक हजार वर्षोंक यहाँ सव किया। तबसेके सख-सख यह पन-ही-मन इहदेवका ज्ञान किया करता था। तब लोकविशायह जहाँ उसे मार देनेके निम्ने गये और इन प्रकार चले।

सखाजीने कहा—भीम ! मैं तुम्हारे प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, उसके अनुसार कर माँगो।

भीम बोला—देवेन्द्र ! कलसूँ ! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझे मार देने चाहते हैं तो आज मुझे ऐसा कल दीजिये, जिसकी कहीं तुलना न हो।

मुत्तजी कहते हैं—ऐसा कहकर उस

सखसे सखाजीको नमस्कार किया और सखाजी भी उसे अभीष्ट मार देकर अपने सखाको चले गये। सखाजीसे अवश्य सख पाकर राक्षस अपने घर आया और माताको प्रसन्न करके प्रीतिपूर्णक बड़े गर्वसे

—'यह' अब तुम मेरा सख देखो। मैं कुछ शक्ति देवताओं तथा इनकी सखाया करारकरने श्रीहरिका यहाँ सखा करार करके हूँ।' ऐसा कहकर भवान्क पराकायी भीमने पहले कुछ आदि देवताओंको जीता और इन सखाके अपने-अपने स्वामने निकलने बाह्य किया। भवान्क देवताओंकी प्रसन्नताके इनका यह लेनेवाले श्रीहरिको भी अपने चढ़ने हुआ। फिर प्रसन्नतापूर्णक पृथ्वीको जीतने आरम्भ किया। इससे पहले वह भवान्क देवताके सखा कृष्णिको जीतनेके निम्ने गया। यहाँ रामाके साथ उसका करारक चढ़ हुआ। यह असुर भीमने सखाजीके दिने लू करके जमानसे निकले अभिमत करनेवाले यहाँकी महाराज कृष्णिकको पराजय कर दिया और सब सामर्थ्यपूर्णक उनका राज्य तथा सर्वस अपने अधिकारमें कर लिया। जगहान् निकले द्विष वल शक्तिभी धरम शर्माका सखाको भी उसने कैद कर लिया और उनके पैरोंमें छोड़ी डालकर उन्हें एकान्त स्थानमें छोड़ कर दिया। यहाँ उन्होंने भगवान्की प्रीतिके निम्ने शिवकी उग्रम शक्तिपूर्ण बनाकर श्रीहरिका भवान्-पुत्र आरम्भ कर दिया। उन्होंने भवान्क सखाजीकी लुप्ति की और सर्वसिक सख आदि करके शक्तिपूर्ण-पुत्रकी विधिसे जकारजीकी पुत्री सम्बन्ध की। विधिपूर्णक भगवान् शिवका ध्यान करके वे प्रसन्नक यहाँकरके (3) नम











लिये उपासस्थिति सदा बड़ी विरतज्वाला रहे। सदाशिव ! आप सबसेस जीवोंको संसार-सागरसे पार करें। इस । मैं करेबारा आर्चना करता हूँ कि आप अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करें।

सुतजी कहने में आइयाने ! अब

विष्णुनाम्ने धनवान् हाँकरसे इस प्रकार आर्चना की, सब सर्वसंग शिव स्वस्त लोकोका उपकार करनेके लिये बड़ी विलज्वाला हो गये। जिस दिवसे धनवान् शिव काशीमें आ गये, उसी दिवसे काशी सर्वसंग पूरी हो गयी। (अध्याय ५२)

३२

### वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य

सुतजी कहने में सुनीयाने । मैं संक्षेपसे ही वाराणसी तथा विश्वेश्वरके साथ सुन्दर माहात्म्यका वर्णन करता हूँ सुने। एक सचपाती बात है कि काशी देवीके लोक-हितकी क्षामयाने बड़ी उपायलक्ष्मी साध धनवान् शिवसे अभिपूज्य होत और अभिपूज्य सिद्धका माहात्म्य पुनः।

सब परमेश्वर शिवसे राज—सब वाराणसीपुरी लवाके लिये मेरा गूढ़तम श्रेष्ठ है और सभी जीवोंकी सुनिष्ठा सर्वश्रेष्ठ है। इस क्षेत्रमें सिद्धात्म सदा मेरे उत्तम आश्रय से यथा प्रकारके सेवा करके लिये मेरे लोकसे जानेकी उच्छा रसकर विमलता और विलोचन हो जिस महायोगका अन्वय करने है। इस उत्तम महायोगका नाम है मायुष्य योग। उत्तम अभिपूज्यारा अभिपूजन हुआ है। यह योग और मोक्षका सब प्रदान करनेवाला है। भोक्तृ । वागवसी पुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जिस कारणसे मैं सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ उसे बताया हूँ सुने। जो मेरा सब तथा मेरे सबका जानी है वे लोग अवश्य ही मोक्षकं धामी होने हैं। इनके लिये तीर्थकी अपेक्षा नहीं है। विद्वान् और अविद्वान् दोनों प्रकारके कार्य उनके लिये सम्पन्न है। उनके

जीवनपूज्य ही वचनका शक्ति है। वे लोग बड़ी भी बने, सुख ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यह मेरे निश्चित बात बड़ी है। सबोत्तमशक्ति देवी जो ! इस पाप उत्तम अभिपूज्य तीर्थमें जो विशेष बात है, उसे सब मन लगकर सुने। सभी वर्ग और सबसे आश्रयके सब चाहें वे कायक, कर्मक या कुछे कोई भी वर्ग न हो—जदि इस पुरीमें जा जाय तो पुनः हो ही जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जो अशुभ हो या बलित, कुमारी हो या विचरिता, विपन्न हो या कथवा रसमल, जन्मल, अन्धकारादीय अथवा जैसी-जैसी—किसी ही वर्ग न हो, यदि इस क्षेत्रमें मरी हो तो अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं है। जैविक, अपविक, अधिविक अवकाश वरापूज्य प्रणीत होने बड़ा करनेवा मोक्ष प्राप्त है, वैसे और कहीं नहीं पाता। हेमि ! बड़ी करनेवालेके लिये य श्रावकी अपेक्षा है न भक्तिकी, न कार्यकी अन्वयकल है न दानकी; न कभी संस्कृतिकी अपेक्षा है और न कार्यकी ही; बड़ा नान्यकीर्तन पुनः सब इसमें जातिकी भी अपेक्षा नहीं होती। जो मनुष्य मेरे इस योगदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जैसे बने, उसके लिये मोक्षकी प्राप्ति

सुनिश्चिता है। विद्ये। येरा यह विषय चुन गृहस्थ भी गृहस्थ है। इसका अर्थ देनात भी इसके मतानुसारकी नहीं जानते। इसीलिये यह महान् क्षेत्र अभिव्यक्त करनेके प्रसिद्ध है। कभीकहि वैश्व अर्थि तभी तीर्थोले यह क्षेत्र है। यह बरनेपर अवश्य मोक्ष देनेवाला है। सर्वथा सार सत्य है, मोक्षका सार सत्यता है तथा सचता क्षेत्रों एवं तीर्थोले सार यह 'अभिव्यक्त' तीर्थ (काशी) है—ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है। इसानुसार मोक्ष, शायन, इत्यादि तथा विविध कार्यका अनुष्ठान कराता हुआ भी मनुष्य यदि इस अभिव्यक्त तीर्थमें प्राणोक्त परित्याग करता है तो उसे मोक्ष मिल जाता है। जिसका फल विचलनेसे अलग है और जिससे धर्मकी वधि आता है। यह भी यदि इस क्षेत्रमें मनुष्यने प्राप्त होता है तो फल: सकार-कामनमें नहीं बढ़ता। फिर भी सचतासे रहित, धीरे, सत्यवादी, दृढवादी, कार्यक्षमता और कार्यक्षमके अधिकारके रहित होनेके कारण किसी भी कार्यका सारम्भ न करनेवाले है, उन्की तो सार ही क्या है। तो यह मनुष्यने ही मिल है।

इस काशीपुरीमें विद्यमानछोटा अनेक विशालभूत स्थानित करने लगे हैं। चर्चते। ये सम्पूर्ण जमीनको देनेवाले और मोक्षदायक है। चारों दिशाओंमें पाँच पाँच कमर केन्द्र हुआ यह क्षेत्र अभिव्यक्त काय लम्बा है, यह सब ओरसे मोक्षदायक है। जीवन्त मनुष्य-कालमें यह क्षेत्र उदात्तता से जात तो उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति होती है। यदि निश्चय मनुष्य काशीमें धरे तो उसके तत्काल मोक्ष हो जाता है और जो चले मनुष्य बरत है,

यह कायस्थानके प्राप्त होता है। जो पहले मानसका अनुष्ठान कराके ही पीछे मोक्षकी प्राप्ति होती है। सुन्दर ! जो इस अभिव्यक्त क्षेत्रमें सत्य करता है, यह हजारों वर्षोंका पीछे कायन्त वाक्य वाक्यका फल योगकेसे ब्रह्मात् ही मोक्ष प्राप्त है। इनकाटि कामनमें भी अपने करने हुए कार्यका सार नहीं होता। जीवन्त अपने द्वारा करने लगे सुखशुभ कार्यका फल अवश्य ही योगका फल है। केवल असुख कार्य तथा देनेवाला होता है, केवल सुख कार्य करनेकी प्राप्ति करावेवाला होता है तथा सुख और असुख दोनों दोनों मनुष्य कोविही प्राप्ति कराती नहीं है। असुख कार्यकी कमी और सुख कार्यकी अधिकता होनेवाला फल जय प्राप्त होता है। सुख कार्यकी कमी और असुख कार्यकी अधिकता होनेवाला फल अजय अथवा प्राप्ति होती है। चर्चते ! जय सुख और असुख क्षेत्रों ही कार्यका सार ही जाता है तथा जीवन्त सार मोक्ष प्राप्त होता है। यदि विद्वानोंने पूर्वजन्ममें अव्यक्त काशीका कार्य किया है, तथा उसे इस जन्ममें काशीमें पहुँचकर मनुष्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य काशी जाकर लक्ष्मी प्राप्त करता है, उसके विद्यमान और संवित कार्यका सार ही जाता है। चर्चते ! जय सुख और असुख क्षेत्रों ही कार्यका सार ही जाता है, इनके प्रारम्भ कार्यका ही फल हो जाता है। विद्ये ! जिसने एक जन्मकायमें ही काशीवास करवाया है, यह लक्ष्मी ही काशीवासका अवसर वाक्य मोक्ष प्राप्त करता है।



जाय, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु दूसरोंके दुःखका निवारण ही करते हैं। दयालु, अधिकजनसुख, उपकारी और जितेन्द्रिय—ये पुण्यके चार संघे हैं, जिनके आधारपर यह पृथ्वी टिकी हुई है।\*

सत्यनगर गौतमजी वहाँ उस परम दुर्लभ जलम्बरे पाकर विधिपूर्वक निम्न वैविधिक कर्त्तव्य करने लगे। उन मूर्खद्वारे वहाँ निम्न होमवर्षी सिद्धिके लिये बाज, बौ और अनेक प्रकारके बीजार बोआ दिये। तल-तल्लके धान्य, चाँते-चाँतेके कुक्ष और अनेक प्रकारके कल-कुल वहाँ लगाए जाते। वह समाचार सुनकर वहाँ दूसरे-दूसरे पड़कों बहि-बुनि, पसु-पक्षी तथा कर्मजन्तुका जीव जागृत रहने लगे। सब कम इस घुमसुमकी चक्रा सुन्दर हो गया। उस अक्षय जलके संपर्कके अनन्वृद्धि बहकि लिये दुःखदर्शिकी नहीं रह गयी। इस समय अनेक दृष्टिकर्म-परम्परा बहि अपने लिये, चाचाँ और धुव आलिके साथ वास करने लगे। उन्होंने कालक्षेप करनेके लिये वहाँ जाय कोआ दिये। मौनमजीके प्रभावसे उस समय सब ओर आनन्द का गन्ध।

एक बार वहाँ गौतमके आशयसे जाकर

जबे हुए अक्षयजलकी विधाँ जलके प्रसङ्गसे लेकर अक्षयजलपर जागृत हो गयी। उन्होंने अपने चर्तियोंको उपमाया। उन लोगोंने मौनमन्त्र अर्पित करनेके लिये मनोकाजीकी आराधना की। परम्पराधीन गणेशजीने प्रकट होकर हर बाँगेके लिये कहा—तब से बोले— सत्यम्। यदि आज इसे नर देन पावते हैं तो लेन कोई उपाय कीजिये, जिससे समस्त बहि इष्टि-फलकारकर गौतमको आशयसे बाह्य निकलते।

गणेशजीने कहा—बहियो! तुम सब लगे लगे। इस समय तुम उचित कार्य नहीं कर रहे हो। किन्तु किसी अपराधके उपर संशय करनेके कारण तुम्हारी प्राप्ति ही होगी। जिनको वल्ले उपकार किया हो, उन्हें यदि कुछ दिया जाय तो वह अपने लिये निष्कारक नहीं होता। जब उपकारीको कुछ दिया जाता है, तब उससे इस जगत्में अपना ही नाश होता है। ऐसी लपटा करके बलाय कलमकी मिट्टि की जाती है। लगे ही तुम कलमका परित्याग करके अक्षितकारक परम्परा नहीं सहन किया जाना। ब्रह्माजीने जो यह कहा है कि अस्माकं कभी साधुताको और साधु कभी अस्माकं नहीं प्रदत्त

\* गौतमी साधुजोडं पदु अरुणिकान्ध  
कले दुःखं च मयसां पदु-कल करले।  
दयालुसदगर्जं अक्षरं जितेन्द्रियः  
एतेषां पुण्याभोग्यं चर्तव्यंयमे वी

(वि-सु-मोटि- १०- २५। २४- २५।)

\* अपराधं जिना तस्य कथ्यते इति। यः  
उपकृतं नर वीरु तेनैव दुःखं हिता की।  
यदा च दीनो दुःखं तदा करो भवेत्।

(वि-सु-मोटि- ४- २०- २१। २४- २५।)





Digitized by srujanika@gmail.com

झुंझने अपने लिये अस्वयं चमकता । वहाँ भी  
जाकर उन झड़पणों के झड़ — 'जगतम्  
तुम्हारे ऊपर झक लगी है, जगतम् तुम्हें कोई  
पत्र-पत्रादि वहाँ नहीं करना चाहिये ।  
किन्ती भी वैदिक देवचक्र या विष्णुचक्रके  
अनुष्ठानका तुम्हें अधिकार नहीं रह गया है ।'  
मुनिवर गौतम उनके कलकलनुभवा किन्ती  
तब एक पक्ष चिताकर उन दुःखसे दुःखी हो  
कारंवार उन मुनियोंसे अपनी सुदृढ़क लिये  
प्राधान्य करने लगे । उनके हीनभावसे प्राधान्य  
कारनेपर उन प्राधान्यसे बड़ा 'गौतम !  
तुम अपने पापको प्रकट करते हुए तीन बार  
सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करो । फिर लौटकर  
वहाँ एक महीनाका जल करो । इसके बाद  
इन झड़पणोंकी एक जो एक परिक्रमा  
करके पश्चात् तुम्हारी सुधि लेगी । अथवा  
वहाँ गङ्गाजीको ले आकर ऊँचके ऊपरसे

काम करते लक्ष्मी एक करोड़ पार्श्वमिच्छ  
कनकर मङ्गलवरीकी आराधना करो । फिर  
तुम्हारे काम करके इस सर्वतकरी प्यारह बार  
परिक्रमा करो । तत्पश्चात् ली धर्मके बगले  
पार्श्वमिच्छकको काम करानेपर तुम्हारा  
उद्धार होगा । उन प्राधान्योंके इस प्रकार  
कहनेपर गौतमने 'बहुत अच्छा' कहकर  
उसकी बात मान ली । वे बोले — 'मुनिवरों !  
मैं आज क्षीयानोकी आज्ञासे यहाँ  
कर्त्तव्यकृत्य लक्ष झड़पणोंकी परिक्रमा  
करूँगा ।' ऐसा कहकर मुनिसेतु गौतमने इस  
कर्त्तव्यकी परिक्रमा करकेके पश्चात्  
पार्श्वमिच्छकको निर्धार करके इसका ध्यान  
किया । लक्ष्मी आज्ञापाने की आज्ञा राखकर  
वह सब कुछ किया । उस समय शिव-  
प्राधान्य उन दोनोंकी सेवा करते थे ।

(अध्याय १४-१५)

☆

पत्नीसहित गौतमकी आराधनासे संतुष्ट हो भगवान् शिवका उन्हें दर्शन  
देना, गङ्गाको वहाँ स्थापित करके स्वयं भी स्थिर होना, देखताओका वहाँ  
बृहस्पतिके सिंहराशिपर आनेपर गङ्गाजीके विशेष माहात्म्यको  
स्वीकार करना, गङ्गाका गौतमी (या गोदावरी) नामसे और  
शिवका श्रम्यक ज्योतिर्लिंगके नामसे विख्यात  
होना तथा इन दोनोंकी महिमा

सूतजी कहते हैं — यद्यपि गौतम  
प्राधान्यके इस प्रकार आराधना करनेपर संतुष्ट  
हुए भगवान् शिव वहाँ शिवका लक्ष  
प्रमथगणोंके साथ प्रकट हो गये । तत्पश्चात्  
प्रसन्न हुए कुण्डलिन्य शोकरने कहा —  
'महाभूने ! मैं तुम्हारी स्तम्भ भक्तिसे बहुत  
प्रमत्त हूँ । तुम कोई का प्रार्थना ।' उस  
समय महात्मा शम्भुके सुन्दर रूपको देखकर

आनन्दित हुए गौतमने भक्तिभावसे संकारको  
प्राप्त करके उसकी स्तुति की । लक्ष्मी स्तुति  
और प्रसन्न करके दोनों द्वारा जोड़कर वे  
उनके सामने लड़े हो गये और बोले —  
'देव ! तुम्हारे निष्ठाप्य का दीजिये ।'

भगवान् शिवने कहा — 'तुम्हारे तुम अन्य  
हो, कुण्डलिन्य हो और सदा ही निष्ठाप्य हो ।  
इन दोनों तुम्हारे साथ रहल किया । जगतके

स्वर्ण तुम्हारे दर्शनसे कवरहित हो जाते हैं। फिर क्या मेरी व्यक्तिमें तत्पर रहनेवाले तुम क्या पावी हो ? बूते ! फिर दुरात्मकोंमें तुम्हारा अस्वभाव फैला है, वे ही पापी, दुरात्मा और हथारे हैं। उनके दर्शनसे दूसरे स्वर्ण चरमित हो जायेंगे। वे स्वर्ण-हथारे कुमज हैं। उनका कभी उद्धार नहीं हो सकता।

यह धारणा कि यह ज्ञान सुन्दर नहीं  
मौलिक मन-ही-मन को चिन्तित हुए । उन्होंने  
भक्तिपूर्वक शिक्षा को प्रणम्य करके इस ज्ञान  
पुनः इस प्रकार कहा ।



गौतम बोले—महोदय ! उन अधिपतिने  
 तो बेरा बहुत बड़ा उपकार किया । यदि  
 उन्होंने यह काराव प किया होता तो मुझे  
 भ्रायका दर्शन कैसे होता ? यन्त्र ईं के  
 माथि सिन्हाने घेरे लिये परम सज्जनकार  
 कार्य किया है । उनके इस दुराचारके ही वेरा  
 मान स्वार्थ सिद्ध होता है ।

गौतमजीकडे यह क्षण सुरूचर प्रवेश  
करे असवे क्षण । उभोने गौतमजीकडे कृपणदृष्टिसे  
देखकर उभो उभो ही यो क्षण दिसा ।

शिवजी बोले—विजयपुर । तुम शायद  
मेरे साथी अधिकारीमें सेहतर हो । मैं तुमपर  
कसूर उठाऊँ हुआ हूँ । ऐसा अन्यायकर तुम  
मामले उठाव कर लीये ।

श्रीकृष्ण बोले— अथ ! आप सब जानते हैं, अनादि ब्रह्म अनन्तरिमित्ये जो ब्रह्म दिया था कम दिया, ब्रह्म जगत्का नहीं हो सकता। अतः जो हो गया, सो रहे। हेतुह ! यदि अनादि प्रलय है तो मुझे मृत्यु प्रदान कीजिये और ऐसा करने लोकात्मक महान् उपकार कीजिये। अतःप्रभो मेरा वचनस्वर है, वचनस्वर है।

यों ब्रह्मकार गौतमसे ऐसेप्रकार भगवान् शिवसे ऐसे प्रकारविन्द कर्मादि विषये और लोकादिककी व्यवस्थामें उन्हें सबसमस्त विद्या । तब लोकादिकमें सुविधी और जगत्के स्वरूपमें अनेकों विचारप्रकार, जिसे उन्होंने पढ़नेसे ही सब ज्ञेय था और विद्याद्वये ब्रह्मकीके दिने हुए जाग्योसे जो कुछ प्रेय रह गया था, वह सब भगवान्साथ प्राप्तहुने उन गौतम मुनिसे दे दिया । इस समय यह प्रकृतिकार जगत् सब सुन्दर अभिन्न सब प्रकृतिकारके चर्चें सब प्राप्त । तब मुनिवर गौतमसे उन ब्रह्मकीकी कृति करके उन्हें सम्पन्न कर दिया ।

गीतगोविन्द-मंत्र— गङ्गा ! तुम क्षण्य हो,  
 कृतकृत्य हो । तुमने संपूर्ण भुवन्को पवित्र  
 किया है । इसलिये निश्चित रूपसे नरकायें  
 नारायण द्वारा भूत-शैल्यको पवित्र करो ।

छन्दोग शिष्याने गायत्री कहा—  
 ऐति ! इयं मुनिव्यो पवित्र करो और सुरेश  
 वाचक न जाकर वैजयन्त धनुषे अङ्गाईसरी  
 कल्पिप्रणमक यही रहे ।

नमस्ते कल - धोखा ! यदि मेरा

Digitized by srujanika@gmail.com

साक्षात्कार कर जड़ियोंसे अविच्छेद हो और  
अविच्छेद तथा गन्तोंके साथ उल्लस भी नहीं  
हो, बल्कि वे इस साक्षात्कार में ही ।

सुन्दरियों की यह बात सुनकर भगवान्  
विस्मयित होकर—यह ! तुम क्यों हो ? मेरी बात  
सुनो । मैं तुमको अपना नहीं हूँ, अन्धविश्वास  
तुम्हारे कानमानुषता नहीं विनाश नहीं है । तुम  
भी विनाश होओ ।

अबसे उसकी वारंवार विचारों की यह बात  
सुनकर गङ्गादेवी मन-ही-मन उल्लास हो उठती  
थी—युति-युति करती थी । इसी समय देवता,  
आर्षादि ब्रह्म, अनेक आत्मा नीचे और ऊपर  
उल्लासके शेष नहीं आ पाईये । उन उल्लास की  
आवाजों का-काकार करके हृत् स्वेच्छा,  
गङ्गा तथा गिरिजाकी शिखरों भुवन विनाश ।  
तबन्तर उन उल्लासोंमें अनेक उल्लास  
होकर जोड़कर उन उल्लासों में अनेक उल्लास  
मिली थी । उन उल्लास उल्लास में गङ्गा और  
गिरिजाके उल्लास का— ओह देवताओं ! का

कोई । सुन्दरों कि करनेकी सुन्दरों यह कर  
हम सुनो दो ।

देवता को—देवता । यदि आज  
सुन्दर है और गरिमाओंसे ओह तुम्हें । यदि  
आज भी उल्लास है तो हमारा उल्लास कम्पनीका  
किन्हीं करनेके किन्हीं आत्मयोग सुन्दरोंका  
नहीं विनाश करे ।

गङ्गा को—देवताओं ! किन्हीं को  
उल्लास कि करनेके किन्हीं आत्मयोग कर्म ही  
नहीं कर्म नहीं तुम्हें ? मैं तो नीचमर्त्योंके  
साक्षात्कार उल्लास करके नीचे आती हूँ, उनी  
करा नीच करती । अनेक उल्लासों में नहीं  
मेरी कोई विनाश कर्मही नहीं है । इस  
साक्षात्कार का कैसे रस ? यदि आज नहीं  
मेरी विनाश विनाश कर लगे तो मैं अन्धविश्वास  
नहीं नहीं—हमारे उल्लास नहीं है ।

सब देवताओं का—गरिमाओंसे  
ओह तुम्हें । तुम्हें का सुन्दर सुन्दरोंकी  
का—अब किन्हीं उल्लास विनाश होने, सब-सब  
उन सब रसों में नहीं आता करेगे, इसमें उल्लास  
नहीं है । गङ्गा कर्मोंका उल्लासों की उल्लास  
नहीं उल्लासों में, इसमें अन्धविश्वास हो  
करेगे उन उनी साक्षात्कारों कोनेके किन्हीं  
आत्मयोग सुन्दरों का आनेगे । इसमें यह  
सर्वका सब का नहीं है । गरिमा ।  
यह कि ? अब सुन्दरों और भगवान्  
उल्लासों के उल्लास उल्लासों अन्धविश्वास कर्म  
हमारा कि करनेके किन्हीं नहीं विनाश विनाश  
करना नहीं है । यह उल्लास किन्हीं उल्लासों  
होने, उल्लास उन नहीं विनाश करेगे । अब  
सब सुन्दरों कर्मों विनाश-आत्म और  
अन्धविश्वास उल्लास उल्लास करके उन सुन्दर  
होने । किन्हीं सुन्दरों उल्लास उल्लास अपने  
उल्लासों में ही है ।



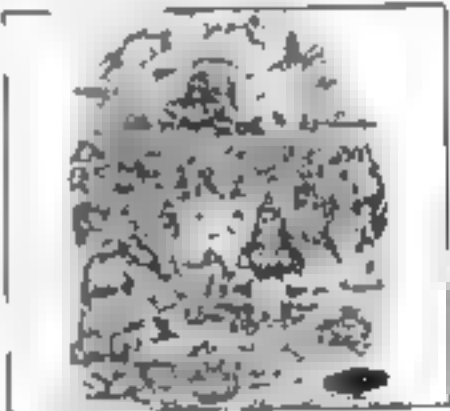


जैसे जलपरी इन्द्रासे अनुसूता अनुसूता आती  
 बाल प्राप्ति किन्ती। धनपद्म निषकरी  
 कृष्णपद्म काकर राजन लज्जाले नमस्कार  
 हो हस बोझुकर इन्से कह्यो— 'देवता !  
 प्रसन्न होइये ; मैं आनन्दो मधुमयी से प्रसन्न  
 हूँ। आनन्द मेरे पुत्र कन्दोरकाली लज्जाले  
 कीजिये। मैं आनन्दी कराली आनन्द हूँ।'

[illegible]

सुराजी कहते हैं—ब्रह्मचर्य । भगवान्  
 श्रीकृष्णके द्वारा ब्रह्मचर्य राक्षसराज समान  
 'बाहु अक्षर' कहें यह शिवलिंग नाम  
 लेकर अपने हाथों और पाय । परंतु मार्ग  
 भगवान् शिवजी प्रकाशने उसे मुनिवर्णनी  
 हुआ है । पुनस्तथापन राक्षस  
 सामर्थ्यद्वारा ही भोजन भी मुने के भोजन से  
 न भेदा । इसी समय कहीं अन्न-पान एक  
 स्थानों पर देखकर अपने प्राचीनपुत्रक यह  
 शिवलिंग अपने हाथों से बना दिया और यह  
 मुनिवर्णने शिवने कहें भक्त । एक मुनि  
 जीनी-जीनी यह प्रकाशने शिवलिंगके  
 प्रारंभे मन्त्रान्तर पीछा हो मन्त्रान्तर हो गया  
 तब अपने उसे मुनिवर्णन रक्त दिया । शिव ने  
 यह शिवलिंग शिवलिंग नहीं शिव हो गया ।  
 यह शिवन करनेवाले समुद्र अजीर्णको  
 देनेवाला और प्रपराशिवने ही लेनेवाला है ।  
 मुने ! यह शिवलिंग लीने लेनेको  
 देना-देनाके नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो

सन्तुलनकोषों को भोजन और शोषण देनेवाला है। यह विषय ज्ञान एवं श्रेष्ठ च्योतिर्दिग्गु दर्शन और पृथक्पथे की समस्त धारोको हृद लेता है और कोशकी प्रशस्ति करता है। यह विज्ञानिकता एवं सम्पूर्ण लोकिक विज्ञान के लिये यहाँ निम्न दो प्रकार, तथा समस्त प्रगल्भ विज्ञान का यह ज्ञान पर आधारित अपने प्रशस्ति प्राप्त करता। यहाँ प्रशस्ति एवं महान् असुरने को कोशकी समस्त ज्ञानकी विज्ञान प्रशस्तिदीर्घा



अपनी जगत् काय सुकली : इन्द्र आदि सम्पूर्ण  
देवताओं और निर्धन मृषियोंके लक्ष यह  
लक्षणांश धुन, लक्ष वे परस्पर लक्ष्य करके  
कहाँ आये । इस लक्षणांश में धर्मज्ञान विद्यमान  
लक्ष्य हुआ है । इस लक्ष्य देवताओंमें इस  
लक्ष्य काही बड़ी उपलब्धताके साथ मिलकर  
विशेष ध्यान किया । जहाँ धर्मज्ञान संस्कारके  
अवस्था दर्शन करके देवताओंमें इस विशि-  
ष्टधर्मकी विशिष्टता स्थापना की और इसका  
सिद्धि-साधन ताव रक्षक उपलब्धी कष्टना और  
साधन करके वे स्वर्गलोकमें चले गये ।

अभिधाने पुत्र-सुखी ! तस्य सः  
विश्वामित्रो ज्ञाती त्विमां ह्येव तस्य सः  
अपने वारको यथा ज्ञातः, तस्य ज्ञातः यथा-यथा

**सज्जना सज्जित हई—यह आप कहवारी ।**

सूतजीने कहा—ब्राह्मणों ! कमजान्  
 शिष्यका घरमें अथवा घर पान्तर गङ्गान् असुर  
 राक्षस अपने घरको चला गया । यहाँ अपने  
 अपनी प्रियासे सब बातें कहें और सब  
 अस्त्राल आनन्दका अनुभव करने लगें ।  
 दुधर इस समाचारको सुनकर बेचैन पड़ा  
 गये कि पाप जी यह केवलही ब्राह्मण राक्षस  
 भगवान् शिष्यको घरगृहमें चला पाकर गया  
 करेगा । उन्होंने राक्षसीको भेजा । राक्षसीने  
 चतकर राक्षसों कहा—'तुम कैलाश  
 पर्वतको उतरओ, सब पाप रनेगए कि  
 नाकजीका विधा हुआ बरतन कहीतक  
 सकल हुआ ।' राक्षसको यह बात दीव  
 गयी । अपने जाकर कैलाशको उतरा

निष्ठा । इससे साथ कैम्पस हिल उठा । जब निरिक्तके कक्षसे आकाशदेवकीने रावणकी खम्बी लम्बकर इस प्रकार साम्य दिष्टा ।

महादेवजी बोले—हे रे दुष्ट भक्त बुद्धिनि  
समझ ! तू अपने कल्मष इत्यादि धर्म न  
कर । तेरी इन भुजाओंका धर्म छूट  
कारनेवाला हीर सुख शीत ही इस जगत्में  
अवधीत होत ।

सूत्रको कहते हैं—इस प्रकार वहाँ जो  
कहना। हाँ उसे कहलजीने सुना। रावण भी  
प्रसन्न किता हो जैसे अत्यार बार, उसी तरह  
अपने चारको स्नेह गया। इस प्रकार जैसे  
विक्रमकोचरवण महात्म्य बताया है।  
इसे सुननेवाले अनुष्ठीका पाप भय हो  
जाता है। (अध्याय २४-२८)



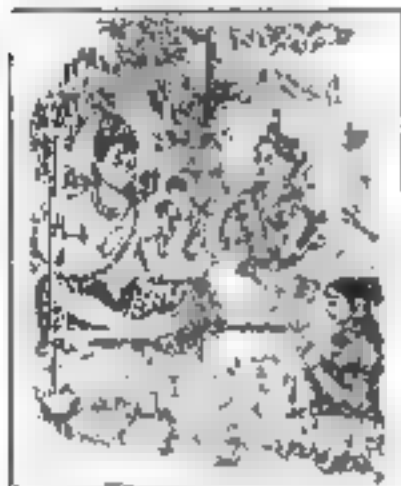
## मागेश्वर नाथक ज्योतिर्लिंगका प्रादुर्भाव और उनकी महिमा

सुतजी कहते हैं—ब्राह्मणे । अन्य वै  
परमात्मा किन्तुके अनेक नामक परम ज्ञान  
ज्योतिर्लिंगके आधिपत्यका प्रत्यक्ष  
सुनाईगा । दारुका नामसे प्रसिद्ध कोई  
राक्षसी भी, जो पार्वतीके शरकनसे मृत  
पड़्यो, भरी राक्षसी भी । अनेक कलकान्  
राक्षस दारुका जन्मसे पैदा हो । अनेक वृक्ष-  
से राक्षसोंको साथ लेकर बाईं सम्पूर्णको  
संहार मक रखा था । यह लोगोंने ब्रह्म और  
शर्वका नाश कराना किस्त था । पड़िय  
समुद्रके तटपर उत्पन्न एक वन था, जो  
सम्पूर्ण समुन्द्रियोसे भरा रहता था । उस  
वनका विस्तार सब ओरसे स्थैर्य होकर  
था । दारुका अपने विलसके लिये यहाँ  
जाती थी, वहीं घूमि, कुछ तथा अन्य सब  
वृक्षरक्षोसे युक्त वह वन भी कलकान्

॥ देवी शार्वतीने जस कावली देस-देसका  
भार दुखकावले लीप दिया था । दासका  
अपने पतिके साथ ब्रह्मनुसार उसने  
विचारके करली थी । राक्षस दासक अपनी  
धनी दासकाके साथ बड़ी रङ्गकर लम्बके मय  
देता था । उसने पीछे लुई प्रजाने नदी  
औरधनी दासकाके जाकर उनको अपना दुःख  
सुनाया । औरने दासकागर्भोकी रक्षके लिये  
नक्षत्रोको यह हाथ दे दिया कि 'ये राक्षस  
यदि पृथ्वीपर प्राणियोकी हिंसा या बर्शोकर  
विषय करे तो उसी समय अपने प्राणोसे  
हाथ धो बैठेगे ।' देवताओंने जब यह बात  
सुनी, तब उन्होंने दुराकारी राक्षसोंपर नैर्झर  
कर दी । राक्षस पहराये । यदि ये लड़ाईमें  
देवताओंको मारके तो मुनिके हाथसे स्वयं  
मर जाते हैं और यदि नहीं मारने तो परजित



आपकी ही हैं और आपके ही अग्रजोंमें रहती हैं। अतः मेरी बातोंमें भी प्रभावित (सत्य) कीजिये। यह सबसे बड़ा सबब है—मेरी ही नाक है और राजनीतिमें प्रतिष्ठित है। अतः यही राजनीतिक राजकारण स्थापन करें। वे राजस-परिषद् जिन कुओंमें पैदा करेंगी, वे सब मिलकर इस कार्यमें निष्ठा करें, वेही मेरी प्रेरणा है।



शिव बोले- जिये ! यदि तुम ऐसी बात कहती हो तो मेरा यह बचन सुने मैं धनदाता पालन करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक इस बचनसे

राहूँ। जो पुत्र्य यहाँ वर्षाधर्मके धारणमें तब ही जन्मपूर्वक बेरा दर्शन करेगा, वह भक्तवर्ती राजा होगा। कलियुगके अन्त और तमयुगके आरम्भमें महासंनका पुत्र सीरसेन राजाओंका भी राजा होगा। वह मेरा भक्त और अत्यन्त पराक्रमी होगा और यहाँ आकर येष्ट दर्शन करेगा। दर्शन करते ही वह भक्तवर्ती राजा ही जन्मगा।

सूक्तों को पढ़ते हैं—ब्राह्मणों ! इस प्रकार बाड़ी-बाड़ी मीसमई करनेवाले वे दम्पति घर-घर इत्यधुनक जाति-त्याग करके स्वयं काई स्थान हो गये । पयोनिर्मिद्वस्वकम्य पशुदेवजी काई नागेश्वर कक्षरासे और शिवा देवी कामेश्वरीके नामसे धिस्वात हुई । वे दोनों ही सम्प्रत्यक्षके प्रिय हैं ।

इस प्रकार प्योतिरिङ्गके स्वामी नागेश्वर  
नन्दक महामोक्षजी प्योतिरिङ्गके कर्मों  
जगत हू। ये तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण  
कामनाओंको सदा पूर्ण करनेवाले हैं। जो  
प्रतिदिन अक्षरपूर्वक नागेश्वरके आनुर्धासका  
यह अङ्ग सुनता है, वह बुद्धियान्, मानस  
व्यापारमन्त्रोंके माहा कामेवाले सम्पूर्ण  
मोक्षरसोंको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय २९-३०)

रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके आविर्भाव तथा माहात्म्यका वर्णन

सूतजी कहते हैं- 'अभियो । अब मैं  
 यह बता रहा हूँ कि रामेश्वर अथवा  
 ज्योतिर्लिंग पहले किस प्रकार प्रकट हुआ ।  
 इस प्रसङ्गको सुन आनन्दपूर्वक सुनो ।  
 भगवान् विष्णुके रामायतासमेत जब रावण  
 सीताजीको हरकर लङ्कामें ले गया, तब  
 सत्रीके माथ अठारह पद्म वासरमेना लेकर

श्रीराम समुद्रतटपर आये। कहाँ थे विचार करने लगे कि कैसे इस समुद्रको पार करेंगे और किस प्रकार राखणको जीतेगे। इनमेंमें ही श्रीरामको प्रज्ञा लगी। उन्होंने जल पीछे और धाना धोया जल ले लाये। श्रीरामने प्रसाद होकर वह जल ले लिया। तबतक उन्हें प्रसाद हो आया कि 'मैंने अपने स्वामी



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

भगवान् प्रकरकर दर्शन तो किया ही नहीं। फिर यह 'जब कैसे प्रकट कर सकती है?' ऐसा कहकर उन्होंने उस जगत्को नहीं दिया। जब वह देखके पक्षान्तर धनुष्यन्त्रने पार्थिव-पूजन किया। अतएव आदि श्रेष्ठ उपचारोंको असुल करनेके विधिपूर्वक बड़े श्रेष्ठसे प्रकरजीकी अर्चना की। प्रभाव तथा दिव्य साक्षात्कार का अनुपूर्वक प्रकरजीको संस्तुत करके श्रीरामने धर्मोपनिषदसे इससे आर्चना की।

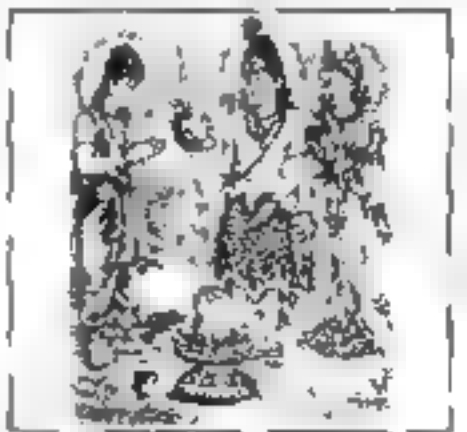
श्रीराम बोले—असल प्रभाव वरुण करनेवाले मेरे ज्ञानी देव महेश्वर ! अन्तर्को घेरी सहायता करनी चाहिये। अन्तर्को सहायोंको बिना मेरे कार्यकी सिद्धि असम्भव है। तबही भी अन्तर्को ही जगत् है। अब इसके लिये सर्वका दुर्लभ है। वस्तु आपकी लिये हुए वस्तुको वह सब सर्वके भरा रहता है। यह विपुलविपुलकी महावीर है। इधर मैं भी आपका दास हूँ, सर्वका अन्तर्को अपनी रहनेवाला हूँ। तबही ! यह विचारकर आपकी मेरे प्रति पक्षान्तर करना चाहिये।

सुनती कहती है—इस प्रकार प्रकरजी और शरीरकर वस्तुकर करनेके अन्तर्को उक्तप्रकारसे 'जब प्रकर, जब दिव्य' इत्यादि करके हुए दिव्यका सफल किया। फिर उनके वस्तुको जब और जगत्को तबसे हो गये। तबही धनुष्यन्त्र पूजन करनेके से स्वाधीन आगे जाने लगे। उस समय उनका हृदय श्रेष्ठसे प्रकट हो रहा था, फिर अन्तर्को दिव्यके संतोषके लिये गमन वस्तुकर आभक्त शब्द किया। अब समय भगवान् प्रकर जगत् वस्तु प्रभाव हुए और वे ज्योतिर्धर्म महेश्वर वाष्पान्त्रपुता वार्त्तनी तथा

वर्षद्वयको सत्य साक्षीकर निर्मल रूप करके करनेके तत्काली वार्त्त प्रकट हो गये। श्रीरामकी वार्त्तको संस्तुति करके महेश्वरने इससे कहा—'श्रीराम ! तुम्हारा कल्याण हो, कर लीये।' उस समय उनका हृदय देखकर वार्त्त वार्त्तित हुए जब श्रेष्ठ वार्त्तित हो गये। दिव्यवर्षद्वयका श्रीरामजीने सब उनका पूजन किया। फिर वार्त्त वार्त्तित वृत्ति एक प्रभाव करनेके अन्तर्को धनुष्यन्त्र दिव्यके लक्ष्मणे सत्यको साक्षी होनेवाले वस्तुके अन्तर्को लिये विपुलकी आर्चना की। तब सत्यवर्त्तित प्रभाव हुए महेश्वरने कहा—'भगवान् ! तुम्हारी वार्त्त हो।' वस्तुकर दिव्यके लिये हुए विपुलसुखका कर एवं वस्तुकी आभक्तकी वस्तु श्रीरामने वस्तुकर हो जब जोड़कर इससे वृत्त आर्चना की।

श्रीराम बोले—मेरे ज्ञानी प्रकर ! यदि असल संस्तुति है तो जगत्को ज्योतिर्धर्म वार्त्तित करने तथा वस्तुकी वार्त्तित करनेके लिये जब वार्त्तित किया करें।

सुनती कहती है—श्रीरामने ऐसा करनेकर भगवान् शिव वार्त्तित ज्योतिर्धर्मको



समयमें निवृत्त हो गये। तीनों लोकोंने रामेश्वरके नामसे उनकी प्रतिष्ठा हुई। उनके प्रभावसे ही अपार लघुग्रहों अन्धकार धार करके श्रीरामने रावण आदि राक्षसोंका पीण ही संहार किया और अपनी विद्या सत्ताकी प्राप्त कर लिया। तबसे इस भूतलपर रामेश्वरकी अद्भुत महिमाका प्रसार हुआ। भगवान् रामेश्वर सदा ध्येय और लोक देनेवाले तथा भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं; जो दिव्य गुरुजनोंसे रामेश्वर विष्णुको

अभितपूर्वक ज्ञान करता है, वह जीवन्मुक्त ही है। इस संस्कारमें ऐक्यदुर्लभ समस्त ओषोमका उपयोग करके अन्तर्में ज्ञान प्राप्त पाकर वह निश्चय ही कैवल्य योक्षको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जैसे तुलसीदासोंसे भगवान् शिवके रामेश्वर नामक दिव्य लोभिलिङ्गका दर्शन किया, जो अपनी मूर्तिमा तुलसीदासोंके समस्त वापोंका उपकारण करकेकरता है।

( अक्षराणां १२ )

☆

घुड़माकी शिवभक्तिसे उसके घरे हुए पुत्रका जीवित होना, घुड़मेघर  
निघका प्रादुर्भाव तथा उनकी भक्तिमाका वर्णन

सुतजी कहते । अब मैं पूजयेन  
मायक पदोत्तिर्लिङ्गके अङ्गुलीयका और  
उपके बाह्यायका वर्णन करेगा ।  
मुनिबरो । ध्यान देकर सुने । दक्षिण दिगम्बरे  
एक श्रेष्ठ पर्याप्त है, जिसका नाम देवगिरि है ।  
यह शैलनेत्र अङ्गुल तथा निम्न वरम श्लेषसे  
सम्पन्न है । उत्तरेके निम्नत छोड़ करह्यम-  
सुतमें अल्पत सुधर्मा मायक अङ्गुलेना प्रादुर्भाव  
रहते थे । उत्तरी दिक् कर्त्रीयका नाम सुदेहा  
क्ष, यह सदा शिवधर्मके कालनये वर्य  
रहती थी घरके काम-कार्यमें कुशल थी  
और सङ्ग पतिव्रती सेवामें लगी रहती थी ।  
द्विजसंघ सुधर्मा भी देवगङ्गके और  
अलिङ्गियोंके पूजक थे । ये वेदवर्णिता  
मार्गपर चलते और नित्य अभिहोत्र चढ़ा  
करते थे । तीनों कालकी संस्कृति करनेमें  
उनकी धान्ति सूर्यके समान उज्ज्वल थी । ये  
वेद-शास्त्रके पर्यङ्ग थे और शिष्योंको धर्मप्रा  
करते थे । कनकान् होनेके साथ ही बड़े दान्य  
थे । सौजन्य आदि स्वगुणोंके मञ्जन थे ।

વિશ્વવિદ્યાલયની શૃંગારાદિ કાર્યોમાં હોી સરકાર અને  
 રાજ્યો છે । એ સ્વર્ણ નો વિશ્વવિદ્યાલય છે હોી,  
 વિશ્વવિદ્યાલયો કાર્યો ગ્રેવ રાજ્યો છે ।  
 વિશ્વવિદ્યાલયો પી છે બહાર વિશ્વ છે ।

यह सब कुछ होनेपर भी उनके पुत्र नहीं थे। इसी त्रासदायकते से दुःख नहीं होता था, परंतु उनकी पत्नी बहुत दुःखी रहती थी। बड़े-सी और दूसरे लोग भी उसे ताका भाव करते थे। यह पतिसे बग-बार पुत्रके लिए प्रार्थना करती थी। बति अन्तमें जानोपदेक देकर सपत्नियों से, चांनु उसका मन नहीं चला था। अन्ततोगत्वा ब्राह्मणने कुछ उपवास भी किया, परंतु यह सफल नहीं हुआ। तब ब्राह्मणोंने अत्यन्त दुःखी हो बहुत इष्ट करके अपनी बहिन सुष्मासे पतिव्रत दूसरा विवाह करा दिया। विवाहसे पहले सुष्माईने अन्तमें सपत्नियोंसे कि 'इस समय तो तुम बहिनसे प्यार कर रही हो; परंतु जब इसके पुत्र हो आया तब इससे स्वर्ध करने लगोगी।' उसने उत्तर दिया कि मैं बहिनसे





यह सरोवर शिवालिकोंका आलम्ब हो कर  
और इसीलिये इसकी तीनों स्त्रोत्रोमे  
शिवालम्ब नामसे प्रसिद्धि हो । यह सरोवर  
सदा दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण अभीष्टोंका  
होनेवाला हो । सुप्रती ! तुम्हारे चेहरे  
होनेवाली एक सौ एक पीढ़ियोंका ऐसे ही  
बेह धुन व्यपन्न होगे इससे संशय नहीं है । वे  
सब-के-सब सुन्दरी बनी, उलम बन और पूर्ण  
आयुसे सम्पन्न होंगे, चतुर और विद्वान् होंगे,  
व्यापक धर्म और मोक्षका फल पानेके  
अधिकारी होंगे । एक सौ एक पीढ़ियोंका  
सभी पुत्र गुणोंमें बढ़े-बढ़े होंगे । तुम्हारे  
प्रेमका ऐसा विस्तार क्या श्रेष्ठप्राप्त  
होगा ।'

ऐसा काङ्क्षकर भगवान् सिन्धु बह्यं  
ज्योतिर्निष्कृते स्वयमेव निवस्यते । अन्यथा  
सुवनेन वायसे प्रविशति ह्यं और तत  
सरोवरया वाय निवस्यत्येव । सुधर्मः ।

बुरमा और सुदेस—तीनोंने आकर तत्काल ही उस शिवलिंगकी एक सौ एक दक्षिणावर्त परिक्रमा की। पूजा करके परस्पर विलम्बकर मनका मेल दूर करके ये सब बहई बड़े सुलका अनुभव करने लगे। पुत्रबन्धे जीवित देस सुदेस बहुत लज्जित हुई और यही तथा बुरमासे क्षमा-प्रार्थना करके उठने अपने पापके निवारणके लिये प्रार्थित किन्तु : पुनीक्षरो ! इस प्रकार वह बुरमेक्षर लिङ्ग ब्रकट हुआ। उसका दर्शन और पूजन करनेसे तथा सुलकी वृद्धि होती है। ब्रह्मण्ये ! इस तरह मैंने तुमसे बारह फोर्लिर्लिङ्गोकी महिमा बतायी। ये सभी लिङ्ग सम्पूर्ण कायकाओके पूरक तथा भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। जो इन फोर्लिर्लिङ्गोकी कथाको पढ़ता और सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता तथा भोग और मोक्ष पाता है। (अध्याय ३२-३३)

**इदं ज्योतिर्लिंगं वास्तव्यं समाधि**

शंकरजीकी आराधनासे चण्डान् मिण्डुको सुदर्शन चक्रकी प्राप्ति तथा उसके द्वारा दैत्योका संहार

अध्यायी कहते हैं—कुम्भार का काम  
सम्भार का सुनीधरने उन्नीधरि धरि धरि  
अन्तरा काके लोकाधिपति कायपाली हुन  
अन्तरा काय ।

कवि करते—दुलही । आग उस जगह  
 है । दुलहिनो इस आगको चुलही है । जगह !  
 दुलही-दुलहिनो यह जगह कर्मों की जगह है ।  
 माता । हमने कर्मोंको चुल रखा है कि आगका  
 चिल्लाते शिखरों आगका जगह चुलही जगह  
 माता किरण आ । आग-उस कर्मोंको भी  
 चिल्लाते जगह जगह है ।

सुताजीने कहा—बुटिमने ! इन्ही-  
मिथुनीं सुन कहां तुझे ! भगवान् मिथुने  
पूज्यकारणने इन्ही-मिथुने ही सुनने का  
आज्ञ किया था । एक सचवादी राजा है, कि  
आजकल प्रलय होकर लोलोके वीर्य देने और  
सर्वकार लोक करने लगे । उस भगवान् और  
भगवान् के लोकोने वीर्य देने के लोकाजीने  
देवरक्षक भगवान् मिथुने अर्थात् राजा दुःख  
का । उस लोहि के लोकाजकल भगवान्  
मिथुनीं विभिन्नपुंज आराधना करने लगे । ये  
हुताव मांसेने मिथुनीं नृनि करने लगे  
प्रत्येक वाचनी एक प्रमाण कहने थे । उस  
भगवान् पुंजकरने मिथुने पवित्रवादी  
परीक्षा करनेके लिये इनके लगे हुए एक  
हुताव मांसेनेने एकलने किन्ना दिना ।  
मिथुनीं वाचनेके कारण सौंन हूँ इस अर्थात्  
प्रत्येक भगवान् मिथुने का नहीं लगे ।  
इन्हीने एक पुंज का लोकाजकल लोके  
आराधनी । दुःखप्रत्येक लगे लोकाज  
का लोकाजने लोहिने भगवान् मिथुनीं

अनन्तरके निम्ने इस एक पुस्तकी प्राप्तिके  
बोधवशे सारी बुद्धीया भ्रमण किया। चरतु  
कहीं भी उन्हें यह पुस्त नहीं मिल। तब  
मिन्नुहलेना निम्नुने एक पुस्तकी दुर्गिके  
निम्ने अपने समानमनुष्य एक नेवको छी  
निकालकरा कहा दिया। जब ऐसी समझ  
हु। तब हारनेवाले भगवान् ब्रह्मा बड़े प्रसन्न  
हु। और कहीं उनके समाने प्रसार हो गये।  
प्रसार होकर वे जीवितके बोले—'हो। मैं  
सुनकर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम पुस्तानुसार का  
योगी। मैं तुम्हें यकीनपूर्वक कहूँ हूँ।  
अपने निम्ने मुझे कुछ भी अर्थ नहीं है।'

मित्र, शत्रु, माता । अत्यन्त सत्य  
सुखे कला कलाप है । अन्य अत्यन्तार्थी है, ज्ञान-  
मय कला कलाप है, अत्यन्त अत्यन्त आदेशक  
मित्रता वस्तुके मित्र कलाप है । अत्यन्त  
अत्यन्तार्थी पीछे का वस्तु है । अत्यन्त ।  
अत्यन्तार्थी सुख मूर्ति अत्यन्त । अत्यन्त ।  
मित्र अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त अत्यन्त  
अत्यन्त । अत्यन्त । अत्यन्त । अत्यन्त ।  
अत्यन्त अत्यन्त । अत्यन्त । अत्यन्त ।

सुनने करते हैं—जीविन्मुक्त का  
 कथन सुनकर वैष्णवोंके लोभाने  
 मेळोवईलियन अपना सुदर्शन चक्र हाँके  
 दिया । इसको बाहर भगवान् विष्णुने क  
 मयस प्रथम देखाकर सब चक्रके छटा बिना  
 धनिलयके ही उबार कर आय । इससे बाल  
 बाल् लम्ब हो गय । किल्लाओके भी सुन  
 गिला और अपने सिने सब आसुधको बाहर  
 फगवान् विष्णु की अत्यन्त प्रसन्न एवं परम  
 सुखी हो गये ।

अधियोंने गुहा शिवके से रखन नाम  
भौन-कौन है, बताइये, तिनसे सगुह डेकर  
महेन्द्रने श्रीहरिको सब ज्ञान दिया का ?  
उन रूपोंके पाहलप्यम्मा भी खर्चन कीजिये ।  
श्रीविष्णुके ऊपर शंकरजीकी जैसी कृपा हुई

धी, उसके सत्कार्यस्यमे प्रतिपादन कीजिये।  
सुद्ध अन्तःकरणस्थले तत्र मुनिर्गोकी  
वैसी काम सुनकर सुने शिवके सरणारविन्दों-  
का विनयन करके इस प्रकार कहना  
आरम्भ किया। (अध्याय ३४)

भगवान् विष्णुद्वारा पठितः शिवसहस्रनाम-स्तोत्र

सु. ३३३

श्रुयतां सो अविशेष्टा येन तृहां प्रहेषः ।  
 तदहं कथयाम्यस्य त्रैलोक्यमस्तु ॥ १ ॥  
 मुत्तली बोले—मुनियसे ? सुनो, जिससे  
 प्रहेषर संतुष्ट होते हैं वस्तु हिंसाभक्तकथाय-प्रहेष  
 आज हम सबको सुना रहा हूँ ॥ १ ॥

1000

विष्णो इषी भूयो बहः पुनरः पुनलोचने ।  
अर्धिमयः सत्पुनरः उर्वः इन्मूर्तिभार ॥ २ ॥

मग्नान् विष्णुमे मया—१ शिव —  
सम्प्रदायस्वरूप, २ हर — भक्तिके वाच-साव  
हर मेनेवाले, ३ मङ्ग — सुखदाता, ४ महः—  
दुःख दूर करनेवाले, ५ पुनरः—अकाल-  
स्वरूप, ६ पुनलोचनः—पुनरके समान लिले  
हुए नेत्रवाले, ७ अर्धिमयः—आर्थिकोक्ते ज्ञान  
मेनेवाले, ८ सदाचारः—जेष्ठ अक्षरस्वरूपवाले,  
९ उर्वः—सौदारकारी, १० जम्बु -- कर्मफल-  
निवेदन, ११ महेधा मग्नं ईश्वर ॥ २ ॥

सद्भापीष्टमूर्तिभारं विष्णुमेवः ।  
देवताभिः एतदोः कथनी नीलसंदिग्धः ॥ ३ ॥

१२ चन्द्रपीठ चन्द्रमासके तिथिभूतलगे  
 सप्तमे श्रावण करनेवाले, १३ चन्द्रार्द्रे—  
 सित्तप चन्द्रमास मुकुट श्रावण करनेवाले,  
 १४ विहा—सर्वस्वहत्या, १५ विष्णुमोक्ष—  
 विष्णुका भरण-पोषण करनेवाले श्रीविष्णुके  
 भी ईश्वर, १६ वैद्यमाससमेत—वेदशास्त्रके

स्मरतस्तु सप्तदिनान्द्वयस्य ब्राह्मणो राक्षसश्च भूर्ति,  
१७ यन्मत्स्ये—ब्राह्मणे कपाल धारण करनेवाले,  
१८ श्रीमत्स्योदित—(मत्स्योदित) भील और (शेव  
अपुत्रोदित) ऐलेयिज वर्णवाले ॥ ३ ॥  
यन्मत्स्योदितोऽपि यन्मत्स्योदितो गौरीपादं गणेशम् ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ५ ॥

१९ मन्त्रावाक्यः—आवाक्ये आधार,  
२० अजीव्येव—देश, काल और वस्तुकी  
सीमासे अविधातव्य, २१ गौरीवर्त—गौरी  
अर्थात् वाक्यसीमाके प्रति, २२ गणेश्वर—  
त्रयकलाकाके स्वामी, २३ महागूर्तिः—पाल,  
अग्नि, वायु, आकाश सह सर्व वस्तुया, पृथ्वी  
और वनमान—इन आठ रूपोंवाले, २४ विश्व  
गूर्ति—अविनाश ब्रह्मात्मक बिराट् पुरुष,  
२५ निर्गन्तव्यमप्ययः—अर्थ, अर्थ, काय तत्त्व  
वर्णवर्ती प्रतीति करानेवाले ॥ ४ ॥

अनागतो नृकथते दण्डेभिर्योचनः ।  
 नाप्येते मय्येकः कदा पतितस्तु ह्यः ॥ ५ ॥

२६ जनगण्यः—ज्ञानसे श्री अनुभवसे  
आनेके योग्य, २७ दुष्टप्रहः—सुस्मिन्  
बुद्धिबलसे, २८ देवदेवः—देवताओंके श्री  
आराध्य, २९ त्रिलोक्यः—सुख, कष्टमा और  
अग्रिम्य तीन जेजोंकाले, ३० वामदेवः—  
लोकके विपरीत स्वभाववाले देवता, ३१  
भस्मदेवः—महान् देवता इत्यादिकोंके श्री  
पूजनीय, ३२ पद—सब कुछ कालमें समर्थ







महर्षिकपिलसचारी निश्चयितिविलेखन-  
पिनाकपणिर्भूदयः स्वस्तिकः स्वस्तिकस्तुष्टी ॥ १३ ॥

१३० महर्षिकपिलसचारी—सोऽस्यशास्त्रके  
प्रणेता भगवन् कपिलसचारी, १३१  
विश्वदीक्षितः अपने प्रभासे सबको प्रकाशित  
करनेवाले, १३२ विलोचनः—तीनों लोकोंके  
इष्ट, १३३ पिनाकपणि सुखमें पिनाक  
नामक धनुष धारण करनेवाले, १३४ भूदेवः  
पृथ्वीके देवता—ब्राह्मण अथवा  
पार्थिवलिङ्गरूप, १३५ स्वस्तिक—  
कल्पपाणवता, १३६ स्वस्तिक—  
कल्पपाणकारी, १३७ सुष्टी—विस्तृत  
बुद्धिवाले ॥ १४ ॥

आशुभाषा धामप्रदः तपः सर्वश्रेष्ठः ।  
ब्रह्मसूत्रप्रवक्तारः कार्त्तिकेयनः कविः ॥ १५ ॥

१३८ आशुभाषा—विशुद्ध आशु-योचन  
करनेमें सक्षम तेजवाले, १३९ धामप्रद  
तेजस्वी सुष्टि करनेवाले, १४० सर्वश्रेष्ठ—  
सर्वश्रेष्ठ, १४१ सर्वश्रेष्ठ—प्रत्येक आशु,  
१४२ ब्रह्मसूत्र प्रकाशकीके व्याख्यान, १४३  
विशुद्ध—जगत्के ब्रह्मा, १४४ स्वस्तिक—  
सुष्टित्वरूप, १४५ स्वर्णपाणीय करनेके  
फलसे प्राप्त करनेवाले, १४६ कवि—  
विकासदर्शी ॥ १८ ॥

शास्त्रे विद्यास्ते गेयशतः शिलो विमलवृत्तः ।  
गङ्गाप्रोदको भगव पुष्करः लक्ष्मीः सिद्धः ॥ १९ ॥

१४७ शास्त्रः—कार्तिकेयके छोटे भाई  
शास्त्ररूप, १४८ विद्याः—सन्तोंके छोटे  
भाई विद्यास्वरूप अथवा विद्यास्त्र नमस्कृत  
श्रुति, १४९ गेयशास्त्र वेदवाणीकी  
भाषाओंका विस्तार करनेवाले, १५०  
शिलो—मङ्गलार्थ, १५१ विमलवृत्तः—  
भयरोगका निवारण करनेवाले वीरों  
(ज्ञानियों) में सर्वश्रेष्ठ, १५२ गङ्गाप्रोदकः—

गङ्गाके प्रवाहस्वरूप जलको सिरपर धारण  
करनेवाले, १५३ भगवः—कल्पपाणकरूप,  
१५४ पुष्करः—पूर्णतया अथवा व्यापक,  
१५५ लक्ष्मीः—ब्रह्माण्डकारी भगवन्के निमाता  
(मायाई), १५६ सिद्धः अचञ्चल अथवा  
स्थानुस्वरूप ॥ १९ ॥

निर्मलतया विभक्तः प्रसन्नहृदयः ।  
सगुणे नमस्वरूपः पुनर्निर्दिष्टमहेश्वरः ॥ २० ॥

१५७ निर्मलतया—सच्चे ब्रह्ममें  
रहनेवाले, १५८ विभक्तः—हरीर, घन और  
ईश्वरोंसे अपनी हृदयके अनुसार काम  
लेनेवाले, १५९ प्रसन्नहृदयः—  
कल्याणलोक तथा (हरीर)का संवालय  
करनेवाले बुद्धिकर्य प्रारम्भ, १६० सगुणः—  
प्रसन्नहृदयके साथ रहनेवाले, १६१  
नमस्वरूप—भगवत्स्वरूप, १६२ पुनर्निर्दिष्ट—  
करीबवाले, १६३ निर्दिष्टतया—संशयोको  
काट देनेवाले ॥ २० ॥

कर्मदेवः कर्मपात्रो भगवन्पुनर्निर्दिष्टः ।  
कर्मपात्रो भगवन्पुनर्निर्दिष्टः कर्मः कर्मः कर्मः ॥ २१ ॥

१६४ कर्मदेवः—कर्मपात्रोद्धार अधिभूत  
समस्त कर्मपात्रोंके अधिष्ठाता कर्मदेव, १६५  
कर्मपात्रः—सकल कर्मोंकी कामपात्रोंको  
पूर्ण करनेवाले, १६६ भगवन्पुनर्निर्दिष्टः—  
अपने श्रीअर्जुनमें भग्न रमानेवाले,  
१६७ कर्मपात्रः—कर्मके प्रेमी,  
१६८ कर्मपात्रः—कर्मपर प्रेम करनेवाले,  
१६९ कर्मपात्रः—अपने प्रिय भक्तोंको  
बहनेवाले, १७० कर्मपात्रः—परम कर्मनीय  
प्रभावस्वरूप, १७१ पुनर्निर्दिष्ट—समस्त  
तत्त्वज्ञानोंके रक्षिता ॥ २१ ॥

कर्मपात्रोद्धारक कर्मपात्रः कर्मपात्रः  
अवस्थाकर्मपात्रोद्धारकः कर्मपात्रः ॥ २२ ॥

१७२ कर्मपात्रः—संसारस्त्रको धली-

धौति सुमानेकारे, १७३ अन्विष्टत्व—सर्वत्र  
विद्यमान होनेके कारण निष्का अन्वित  
कहींसे भी छूट नहीं है, ऐसे, १७४ सर्वपुत्रः—धर्म या पुण्यकी रक्षित,  
१७५ सदाविद्यः—निरन्तर कल्पात्मकारी,  
१७६ अकल्मषः—पापरहित, १७७  
पतुर्बाहुः—बार पुत्राधारी, १७८ दृग्बलः—  
जिन्हें योगीजन भी नहीं कठिनाईसे अपने  
हृदयमन्दिरमें बसा सके है, ऐसे, १७९  
दृग्बलः—परम दुर्जय ॥ २२ ॥

दुर्लभो दुर्गादे दुर्गः सर्वपुत्रविभक्तः ।

अपेक्षायोगोपितः सुकृतस्तत्पुत्रार्थम् ॥ २३ ॥

१८० दुर्लभः—अतिथीन पुत्रलक्षणे  
कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, १८१ दुर्गः—  
जिनके निकट पहुँचना किसीके लिये भी  
कठिन है ऐसे, १८२ दुर्गः—पाप-साधसे रक्ष  
करनेके लिये दुर्गलक्ष अथवा दुर्जय,  
१८३ सर्वपुत्रविभक्तः—सम्पूर्ण अन्तर्भक्त  
प्रयोगवादी कलामें कुशल, १८४ अपकल्म-  
षोपनिषदः—अध्यात्मयोगमें स्थित, १८५  
पुत्रपु—सुन्दर विलुप्त जगत्-कथ तपुजाके,  
१८६ तपुपुत्रार्थः—जगत्-कथ तपुको  
सकनेवाले ॥ २३ ॥

शुभको लोकसारज्ञो जगदीशो जगद्विभक्तः ।

धनवद्विभक्तो गैरधनको पुत्रविभक्तः ॥ २४ ॥

१८७ शुभपुत्रः—सुन्दर अश्वमेधके,  
१८८ लोकसारज्ञः—लोकसारज्ञही, १८९  
जगदीशः—जगत्के स्वामी, १९० जगद्विभक्तः—  
भक्तजनको भी भक्तनाके आलम्बन, १९१ धन-  
शुद्धिकर—धनसे शुद्धिकर सम्पन्न करने-  
वाले, १९२ गैरः—सुमेरु पर्यन्तके स्थान  
केन्द्रकथ, १९३ ओषधः—तेज उर्वर कलसे  
सम्पन्न, १९४ शुद्धविभक्तः—निर्मल  
शरीरवाला ॥ २४ ॥

असम्पन्नः सम्पत्तयश्च धनमर्हन्त्यप्यहम् ।  
विरम्येतः कैवल्ये त्रिपुर्वीवहरे वस्ये ॥ २५ ॥

१९५ असम्पन्नः—साधन-भजनसे वृ  
क्षनेकले स्थितके लिये आलम्ब, १९६ साधु-  
लक्ष्यः—साधन-भजनपरायण सत्पुरुषोंके  
लिये सुलभ, १९७ परममर्हन्त्यप्यहम्—  
श्रीराधके सेवक कनर अनुमनका कथ धारण  
करनेवाले, १९८ विरम्येतः—अतिशक्त्य  
अथवा सुखलक्ष्य कीर्तनाले, १९९ पौटणः—  
पुराणोद्धृत अतिशक्ति, २०० त्रिपुर्वीवहरे—  
जगत्भक्तोंके प्राप्ति हर लेनेवाले, २०१ वस्ये—  
अवस्थाली ॥ २५ ॥

महाहरे भक्तगते विदुषुपुत्रविभक्तः ।

महावर्धनको जगत्भी महावृत्ते महानिधिः ॥ २६ ॥

२०२ महाहरे—परमानन्दके महावृ  
त्तेवर, २०३ भक्तगते—ब्रह्म आकाशरूप,  
२०४ विदुषुपुत्रविभक्तः—विद्वान् और  
देवताओंद्वारा मान्य, २०५ महावर्धनपुत्रः—  
व्यापककी ब्रह्मके सत्त्व धारण करनेवाले,  
२०६ अन्तर्भक्तः—सर्वोन्तर् आधुनकी भीति  
करल करनेवाले, २०७ महावृत्ते—विशालमें  
भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूमिखल,  
२०८ महानिधिः—सम्पत्के महान्  
निवासस्थान ॥ २६ ॥

अमलप्रोक्तपुत्रपुः पञ्चजन्यः षडङ्गनः ।

पञ्चधर्मविरक्ततायः पनेकतः कथायः ॥ २७ ॥

२०९ अमलप्रोक्तः—जिनकी आशा कभी  
विफल न हो ऐसे अपोषसंकल्प, २१०  
अमृतपुत्रः—जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो  
ऐसे—निर्विच्छिन्न, २११ पञ्चजन्यः—

पञ्चजन्य नामक शङ्खस्वरूप,

२१२ प्रपञ्चनः—व्यापकताय अथवा

संसारकारी, २१३ पञ्चधर्मविरक्ततायः—प्रकृति,

पञ्चजन्य (बुद्धि), अहंकार, लक्ष्म, श्रोत्र,



कल्याणप्रभृतिः कल्पः लोकलोकात्मिकाः  
 गरुडी रश्मिरे धीवन् पञ्चनः पञ्चपञ्चः ॥ २३॥  
 २५९ कल्याणप्रभृतिः कल्याणप्रभृति  
 स्वभाववाले, २६० कल्पः सन्ध्या,  
 २६१ सर्वलोकप्रभृतिः—सम्पूर्ण लोकलोकी  
 प्रजाके पालक, २६२ तल्ली—वेगजाली,  
 २६३ तारकः—द्वारक, २६४ धीवन्—  
 विनाश बुद्धिसे युक्त, २६५ पञ्चनः—  
 भवसे वेग, २६६ पञ्च—सर्वलोकप्रभृति,  
 २६७ अत्रयः—अभिनाथी ॥ २३ ॥  
 लोकलोकात्मिका कल्याणः कल्याणः ।  
 कैनाकागर्भलोकप्रभृतिः कल्याणः ॥ २४ ॥  
 २६८ लोकपालः—समस्त लोकलोकी रक्षा  
 करनेवाले, २६९ अपलोकात्मिका—अपलोकी  
 आत्मा अथवा अक्षय कल्याणवाले, २७०  
 कल्याणः—कल्याण आदिकारण, २७१  
 कल्याणः—कल्याण समस्त कल्याण, २७२  
 कैनाकागर्भलोकप्रभृतिः—लोक और लोकलोकी अर्थ  
 एवं लोकलोकात्मिकावाले, २७३ अत्रयः—  
 विधायकप्रभृति २७४ विधायक—सम्पूर्ण  
 सुनिश्चित आश्रयस्थान ॥ २४ ॥  
 तत्र सूर्यः पतिः कैनाकागर्भः विदुष्यन्ति ।  
 भक्तिपदः पञ्चनः पञ्चनः पञ्चनः ॥ २५ ॥  
 २७५ पञ्चनः—पञ्चनः पञ्चनः  
 आकाशकारी, २७६ सूर्यः—सम्पूर्ण उपलब्धि  
 हेतुपुत्र सूर्य, २७७ पतिः—सन्ध्याकरण,  
 २७८ कैनाकागर्भः—कैनाका नामक कल्याण,  
 २७९ पञ्चनः—सुन्दर झरनेवाले,  
 २८० विदुष्यन्तिः—धीवन्धी—धी  
 चान्तिवाले, २८१ भक्तिपदः—भक्तिके दत्त  
 भक्तके लक्ष्ये होनेवाले, २८२ पञ्चनः—  
 परमात्मा, २८३ मृगधर्माणि—मृगधर्माणी  
 भूतपर नाग चलनेवाले, २८४ अत्रयः  
 पापप्रहित ॥ २५ ॥

अद्विष्टकल्पः कल्पः पञ्चनः पञ्चनः  
 सर्वलोकप्रभृतिः मन्त्रलोका मन्त्रलोकः ॥ २६ ॥  
 २८५ अद्विष्टकल्पः—अद्विष्टकल्प  
 सर्वलोकप्रभृति, २८६ अद्विष्टकल्पः—वैद्यस्य और  
 मन्त्र आदि सर्वलोकप्रभृति निकल करनेवाले,  
 २८७ कल्पः—सम्पूर्ण विपत्तयः,  
 २८८ पञ्चनः—पञ्चनः पञ्चनः,  
 २८९ पञ्चनः—समस्त संसारके मूल,  
 २९० सर्वलोकप्रभृतिः—सम्पूर्ण कल्याण  
 कल्याणप्रभृति, २९१ तुष्टः—सुख प्रसन्न,  
 २९२ मन्त्रलोकः—मन्त्रलोककारी,  
 २९३ मन्त्रलोकः—मन्त्रलोककारीणी हस्तिसे  
 संयुक्त ॥ २६ ॥  
 मन्त्रलोक टर्भनः लक्ष्मिः लक्ष्मिः लक्ष्मिः  
 अत्रः—मन्त्रलोकात्मिकाः प्रत्येक कल्पे ॥ २७ ॥  
 २९४ मन्त्रलोकः—मन्त्रलोक लक्ष्मी, २९५  
 टर्भनः—दीर्घकालप्रभृति लक्ष्मी करनेवाले,  
 २९६ लक्ष्मीः—अत्रयः लक्ष्मी, २९७ लक्ष्मीः  
 लक्ष्मी—अत्रि प्राचीन एवं अत्रयः लक्ष्मी २९८  
 अत्रः—मन्त्रलोक—मन्त्र लक्ष्मी संवत्सर आदि  
 कल्याणप्रभृति लक्ष्मी, अत्रयः लक्ष्मी,  
 २९९ लक्ष्मीः—लक्ष्मी लक्ष्मी लक्ष्मी,  
 ३०० लक्ष्मीः—प्रत्येक लक्ष्मी प्रमाणलक्ष्मी,  
 ३०१ लक्ष्मी लक्ष्मी लक्ष्मी लक्ष्मी  
 लक्ष्मी ॥ २७ ॥  
 लक्ष्मीलोकके मन्त्रलोकः लक्ष्मीलोकः  
 अत्रः लक्ष्मी लक्ष्मी लक्ष्मी लक्ष्मी ॥ २८ ॥  
 ३०४ संवत्सरप्रभृति संवत्सर आदि  
 कल्याणप्रभृति लक्ष्मीलोक, ३०५ लक्ष्मीलोकः  
 लक्ष्मी आदि लक्ष्मीसे प्रणीत (प्रत्येक) लक्ष्मीलोक,  
 ३०६ लक्ष्मीलोकः—लक्ष्मी लक्ष्मी,  
 ३०७ लक्ष्मीः—लक्ष्मी लक्ष्मी, ३०८ लक्ष्मीः—  
 लक्ष्मी लक्ष्मी, ३०९ लक्ष्मीः—लक्ष्मीलोक  
 आश्रय, ३०८ लक्ष्मीलोकः—लक्ष्मी लक्ष्मीलोक,











वालोके वामके गुरु वामन,  
 ४८६ पीतिमान्—प्रसन्न, ४८७ नीतिमान्—  
 सदा नीतिपरायण, ४८८ पक्क—सबके  
 स्वामी, ४८९ वसिष्ठ—जन और दुनियोंको  
 अत्यन्त बढ़ाये रखनेवाले अथवा वसिष्ठ  
 ऋषिसंग ४९० कश्यप—इस अथवा  
 कश्यप मुनिसंग, ४९१ पक्क—प्रबलमानस  
 अथवा दूरदर्शक, ४९२ योग—सुलेखी अथ  
 शिखाके, ४९३ भीमपञ्चम—अतिबल  
 भयदायक पराक्रमसे युक्त ॥ ६१ ॥

[illegible]

तान् मलविशेषान् च विचर्षेत्तु विभूषणम् ।  
 ५०१ अर्चयन् ऐश्वर्यजगन्मृत्युजगतिम् ॥ ५०१ ॥  
 ५०२ तत्पुण्यं यथाार्थं तत्प्रकाशम्, ॥ ५०२ ॥  
 तत्प्रविण्—यथाार्थं तत्प्रकाशं पुनर्नया  
 जाननेवाले, ५०३ एकलक्षं अष्टिनीय  
 आश्विनीय, ५०४ विष्णुः सर्वज्ञ आत्मकः,  
 ५०५ विश्वभूषणः सम्पूर्ण जगत्को उत्तम  
 गुणोसे विभूषित करनेवाले, ५०६ अर्चयः  
 भक्तप्रभु ॥ ५०७ तत्पुण्यं प्रकाशेन,  
 ५०८ ऐश्वर्यजगन्मृत्युजगतिम्— ऐश्वर्य, जगत्,  
 मृत्यु और जगत्से अर्चय ॥ ५०८ ॥

पञ्चमस्तुतिविधौ निम्नोदयः ।  
 तत्त्वतोऽभिप्रेत्य ब्रह्मलोकादनेकपुत्र ५८४ ।  
 ५०९ पञ्चमस्तुतिविधौ पञ्च  
 पञ्चमस्तुतिविधौ ५१० विधौ  
 निम्नोदयः ५११ निम्नोदयः निर्मल  
 अभ्युदयः ५१२ अभ्युदयः स्वयम्भुः  
 ५१३ अनादयः — आदि-अन्त्यो रक्षित ५१४  
 कालः — अन्त्यो रक्षित ५१५ अन्त्यो रक्षित  
 ५१६ अन्त्यो रक्षित — अन्त्यो रक्षित  
 अन्त्यो रक्षित ॥ ५१७ ॥

गवतोल्लसथः कर्तुर्निष्कामसः प्रभाकरः ।  
 तितुर्गिरिः कन्द सुनेमः सुरराजः ॥ ६५ ॥  
 १६ गवतीभक्तः — गायत्रीमन्त्रे  
 प्रीति, ५२७ प्रजुः — ईशे हरीपाले, ५२८  
 निष्कामः शम्भुर्जगत्पते अन्तर्ब्रह्म  
 ५२९ प्रभाकरः — सुर्यस्य, ५३० गिरिः —  
 बालकान्तः ५३१ गिरित — ईशस्य पर्याय  
 रम्य करयेवाले, ५३२ स्वादः — ईश्वरीये  
 श्री ईश्वर ५३३ सुनेमः सुरराज  
 प्रयत्नलोकी सुन्दर सेवासे युक्त तथा  
 देवराजकीय सौन्दर्य करयेवाले । ६५ ॥

अयोध्याप्रतिष्ठे ५३३ कुमुदे निगतम्बर  
 जयन्तेनोत्सङ्गमुत्तिष्ठति स्वयं योनिरप्यङ्गात् ॥ ५३३ ॥  
 ५२३ अयोधोदित्येवैः — अयोध  
 रीकान्त्यवाले बहुविं कान्त्यमलम्,  
 ५२५ कुम्भ — धृतायुजे आह्वय प्रदान  
 कारयेत्यस्मै चन्द्रायाम्, ५२६ विगायन्वा —  
 धिन्कारक्षित, ५३३ स्वयंज्योतिस्तनुज्योति —  
 जयन्ते ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले  
 सुशब्दज्योतिःस्वस्य, ५२८ आत्मज्योतिः  
 अपने स्वस्यभूत ज्ञानकी प्रभासे  
 प्रकाशित, ५२९ अचञ्चल चञ्चलतासे  
 रक्षित ॥ ५३३ ॥

























यहाँ अन्तर्धान हो गये। भगवान् सिन्धु भी  
 पंकरजीके कबनसे तक उस चुप कावको  
 या जगहसे बच-ही-मम बड़े प्रसन्न हुए। फिर  
 वे प्रतिदिन साम्प्रतिक अन्तर्द्वारक इस लोकोका  
 याद करने लगे। उन्होंने अपने भक्तियों की

इसका उल्लेख किया। तुम्हारे उसके अनुसार  
 मैं यह प्रसन्न हुआ हूँ, जो श्रोताओंके  
 पावको इस लोकोका है। अब और क्या  
 सुन्न लहने हो ?

(अध्याय ३५-३६)



## भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाले इतोकर वर्णन, शिवरात्रि-व्रतकी विधि एवं पहिगमका कथन

सामान्य श्रुतिकोके सुनेपर सुनजीने  
 शिवजीकी आराधनाके द्वारा ज्ञान एवं  
 सर्वोपरिप्राप्त प्राप्त प्राप्त करनेवाले बहुत ही  
 महान् जी-पुत्रोंके नाम बताये। इनके नाम  
 श्रुतिकोने दित पुत्र—‘आत्मविषय। फिर  
 इसकी संतुष्ट होकर भगवान् शिव इस चुप  
 कथन करते हैं ? फिर इनके अनुसूचको  
 भक्तजनोंको योग और मोक्षकी प्राप्ति हो  
 सके, इसका आश शिवोक्तियोंसे वर्णन  
 कीजिये।’

सुतर्धान कथा—श्रुतिको। तुम्हारे जो  
 चुप कहा है, वही बात किसी समय उद्घाट,  
 सिन्धु तथा पंकरजीने भगवान् शिवको सुनी  
 थी। इसके उत्तरमें शिवजीने जो चुप कहा,  
 वह मैं तुमलोगोंको कथन करूँ हूँ।

भगवान् शिव बोले—ये बहुत-से बात  
 हैं, जो भोग और मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं।  
 उनमें मुख्य दस बात हैं, जिन्हें ‘अष्टांगश्रुतिके  
 विधान’ ‘दश ईश्वरान’ कहते हैं। श्रुतिकोके  
 सदा अन्तर्द्वारक इन अष्टांगका पालन करना  
 चाहिये। इसे। अन्तर्द्वारक अष्टांगको केवल  
 जानने ही भोजन करे। श्रुतिकोके सुन्न-  
 पक्षकी अष्टांगको भोजनका सर्वोपरि विधान  
 कर दे। सुन्नपक्षकी अष्टांगकी भी भोजन

की है। किन्तु सुन्नपक्षकी अष्टांगकी  
 रूपमें भोग भोजन करनेका पक्षार्थ भोजन  
 किया जा सकता है। सुन्नपक्षकी अष्टांगकी-  
 को जो रूपमें भोजन करना चाहिये;  
 अर्थात् सुन्नपक्षकी अष्टांगकी शिवोक्तियोंकी  
 सुन्नपक्षकी अष्टांगकी भोजनका सर्वोपरि विधान है।  
 इनके पक्षमें अन्तर्द्वारक भोजनका अष्टांगपूर्वक  
 केवल जानने ही भोजन करना चाहिये।  
 शिवको कथने मया सुनेवाले लोकोका शिव  
 यह अन्तर्द्वारक विधान है। इन सभी अष्टांगोंमें  
 अष्टांगी पूर्विके [ ] अपनी शक्तिके अनुसार  
 शिवभक्त अष्टांगोंको भोजन कराया  
 चाहिये। श्रुतिकोके इन सब अष्टांगोंका  
 अन्तर्द्वारक पालन करना चाहिये। जो शिव  
 इनका नाम करते हैं, वे कोर होने हैं।  
 मुक्तिप्राप्तमें अष्टांग सुन्नपक्षकी अष्टांगी प्राप्ति  
 करनेवाले सब अष्टांगी विधानपूर्वक पालन  
 करना चाहिये। वे बार बार इस प्रकार हैं—  
 भगवान् शिवकी पूजा, भगवान्को ज्ञान,  
 शिवविचारमें अष्टांग तथा अष्टांगमें मया।  
 ये अष्टांगके सत्त्वमय मार्ग हैं। अष्टांगकी  
 अष्टांगी और सुन्नपक्षकी अष्टांगी—इन दो  
 श्रुतिकोके अष्टांगपूर्वक ज्ञान रक्षा ज्ञान ही  
 यह भगवान् शिवको संतुष्ट करनेवाला होता











प्रकृतक अस्मोदय न हो जाय । अस्मोदय होनेपर पुनः स्नान करके धार्मिक-धार्मिक पुस्तकपद्यादि और उपहारोंद्वारा शिष्यकी अर्चना करे । तत्पश्चात् अपना अधिवेषक कराये, नाना प्रकारके छत्र दे और प्रहस्यकी रत्न्याके अनुसार ब्राह्मणों वगैरे संपासिष्योंको अनेक प्रकारके भोज्य-पदार्थोंकर भोजन कराये । फिर संकरस्थो नधस्त्वर करके पुष्पाञ्जलि दे और बुद्धिमान् पुस्तक ज्ञान श्रुति करके विज्ञाङ्गिण बच्चोंसे प्रार्थना करे—

सर्वविभक्त्युद्गमप्राणसर्वविभक्त्युद्गम ।  
 पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा ज्ञानं ज्ञानं चोक्तं तत्तत् ।  
 अज्ञानाद्यदि यः ज्ञानमप्युपायिकं ययः ।  
 आपातिभिराज्ञानजालिभ्यः मुक्त्याप्तं त्वमेव मे ।  
 अग्निभिराज्ञानं गच्छाम्य परमेश्वरं यः ।  
 तैत्तिरीयं श्रीकण्ठं देवः शिष्यः मुक्तपदम् ॥  
 मुले नमः भगवते नमः नमः नमः ॥  
 मधुसूतं मुले जयं ययः तत् तत् तत् ॥

‘सुखदायक कुपाविद्याय विष्णु ! मैं आपका हूँ । मेरे प्राण आपमें ही लगे हैं और मेरा धर्म सदा आपका ही धर्म बन रहा है । यह जानकर आप जैसा उचित समझें, वैसा करें । भूतनाथ ! मैंने जानकर या अनजानमें जो जप और पूजन आदि किया है, उसे समझकर दयासागर होनेके लगे ही आज मुझपर प्रसन्न हों । उस उपवासव्रतसे जो फल हुआ है उसीसे सुखदायक भगवान् उक्तकर मुझपर प्रसन्न हों । महामते ! मेरे कुलमें

सदा आपका भजन होता रहे । जबकि आप इष्टदेवता न हों, उस कुलमें मेरा कभी जप न हो ।’

इस प्रकार ब्राह्मण करनेके पश्चात् भगवान् शिष्यको पुष्पाञ्जलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे शिष्यक और आपत्तिर्वात् प्रहृष्ट करे । तदनन्तर उन्मुख शिष्यदेव करे । शिष्यने इस प्रकार उक्त किया हो, उससे मैं दूर नहीं रहता । इस उक्तके फलस्वरूप वर्णन नहीं किया जा सकता । मेरे पास मेरी कोई वस्तु नहीं है, शिष्यने शिष्यरात्रि-ज्ञान करनेवालेके शिष्ये मैं दे न दारूँ । शिष्यके द्वारा अनायास ही इस ज्ञानका फलत्व हो गया, उसके शिष्ये भी अवश्य ही श्रुतिज्ञान हीन को दिया गया । भगवान्को प्रणिवासा प्रणिमूर्त्यक शिष्यरात्रि-ज्ञान करवा चाहिये । तत्पश्चात् इसका उपाय करके चतुष्प साङ्ख्येपाङ्ग फल लाभ करना है । इस ज्ञानका फलत्व करनेमें मैं शिष्य विज्ञान ही उपवासके समस्त दुःखोंका नाश कर देता हूँ और उसे भोग-मोक्ष आदि सम्पूर्ण करनेवाला फल प्रदान करता हूँ ।

मुनयः कहते हैं । महर्षिणो ! भगवान् शिष्यका यह अस्वस्थ शिष्यकरक और अशुभ वजन सुनकर जीविष्यु अपने घामको लौट अपने । उसके बाद इस ज्ञान ज्ञानका अपना शिष्य चाहिये करने लगेगें प्रचार हुआ । किसी समय केरुकेने नारदजीसे भोग और मोक्ष देनेवाले इस शिष्य शिष्यरात्रि-ज्ञानका वर्णन किया था । (अध्याय ३७-३८)

### शिखराग्नि-अराके उद्यापनयने विधि

शुद्धि खोले—सुनारी ! अब हमें  
विश्वराशि-मलमे उद्यमजनकी विधि बताना है,  
जिसका अनुष्ठान करनेसे साक्षात् जगज्जन्म  
पावन विहाय ही प्रलय होवे है :

[illegible]

शिक्षण की प्रक्रिया स्थापित करके राष्ट्रिय  
कक्षा शुरू करें । अल्पकाल छोड़कर  
सुदृढता कायम करना चाहिये । उस कार्यमे  
सार प्रशिक्षणोंके साथ एक पक्का आधारभूत  
कार्य करें और इन सबकी आज्ञा लेकर  
भविष्यके शिक्षण की कुरा करें । इससे  
अनेक प्रकारके सुझाव-सुझाव पूजा करते हुए  
कामका करें । इसी सुझाव प्रभावप्रभावकी  
धीरेधीरे, गीत एवं अन्य आर्थिक द्वारा सारी  
राज्य मिलाने । इस प्रकार शिक्षण  
सुझावपूर्ण बनाने शिक्षणों सेपुत्र करके  
प्रभावप्रभाव सुझाव सुझाव कार्यके प्रभाव  
सिद्धि होय करें । फिर प्रभावप्रभाव प्रभावप्रभाव  
मिलाने करें । फिर प्रभावप्रभाव भविष्यके  
प्रभावप्रभाव और प्रभावप्रभाव काय है ।

[illegible]

### प्रार्थना

हिमालये वासिनेभ्यः शिवायामृतस्य ।  
 उन्नम्यते देवस्य कण्ठे भूयः शिवायस्य ॥  
 उच्चैः पर्वतानुसारेण उन्नम्यते भूयः शिवायः ।  
 शिवायः उन्नम्यते भूयः शिवायस्य उन्नम्यते ॥





जागदूँ गिरली रहूँगी हैं। तबसे ही एक कुछ विचार है।"

सुताजी कहते हैं—मृगीके ऐसा कहनेपर भी जब व्यापने ठसकी बात नहीं आनी, तब उसने अचानक विचित्र एवं अवधीत हो पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मृगी बेसी बड़ाब । तुम्हें, मैं तुम्हारे सामने ऐसी जगह बतानी हूँ, जिससे वह जानेघर मैं अचानक तुम्हारे पास लौट आऊँगी। जहाजब यदि वेर केके और तीनों कात संघटा व करे तो इसे जो बात लगता है, पसिंदी आताका अलखून कारके जल्द-मुसर कार्य करनेवाली विचोकेके किता पापकी प्राप्ति होती है, किसे हूँ अवकाशको व भावनेवाले, भावकन् संकारके विपुल रहनेवाले, सुमरोसे डेह करकेवाले, बर्षको लीपवेधाते तब विचारबलक और कर करनेवाले लोकोकेके जो बल लगता है, उसे बभके मैं भी लिख के जाऊँ, यदि लौटकर आई व आऊँ।

इस तरह अनेक जगह जाकर उस मृगी बुधबाब खड़ी हो गयी, तब जब व्यापने इसपर विचार करके कहा—'अब, अब तुम अपने घरको जाओ।' तब वह मृगी लड़े इतके लल पानी पीकर अपने अचानक-मजबूतसे गयी। जानेमे ही रातका वह पहला प्रहर उजाधके जागते-ही-जागते बीन गया। तब उस विचरिनी बहिन दूसरी मृगी, जिसका पहलीने स्वतः किता कर, उरीकी राह देरकी हुई तब पीनेके लिये बड़ी आ

करी। उसे देखकर बसने लगे बाबको तरकसले लीक। ऐसा करते समय पुनः पहलीकी भौन गगनात् शिखर ऊपर गल और विचरक गीरे। उसके द्वारा महात्मा लम्बुकी कुरो प्रहरकी राजा सम्पन्न हो गयी बसि वड इसल्लवक ही हुई थी, तो भी जल्दके लिये सुलज्जिनी हो गयी। मृगीने उसे बल बसिने देर पूरा—'जोका ! वह क्या करते हो ?' जाधके पूर्वार्ध उतर दिया—'मैं अपने भूले बुद्धिबलके पुनः करनेके लिये तुम्हें बहिन।' यह सुनकर वह मुग्ध बोली।

मृगीने कहा बड़ाब । बेसी बल तुम्हें मैं बल हूँ। वेर के-आरम सकल हो गया। कलिक हूँ अलित शरीरके द्वारा जल्द होना। वस्तु को लोटे-लोटे लड़े करते हैं। अतः मैं एक कर बाकर इसे अपने लकीके लीक हूँ, किता तुम्हारे पास लौट आऊँगी।

जब बोल-सुनारी बसपर लड़े विचार नहीं है। मैं तुम्हें बहिन, इससे संभव नहीं है।

वह सुनकर वह इरिणी धावात् लम्बुकी जगह लानी हुई बोली—'जोका ! जो कुछ मैं बतानी हूँ, उसे सुने। यदि मैं लौटकर व आऊँ तो अपना पारा पुनः हार जाऊँ, कलिक जो बल देकर उससे फलक जाता है, वह अपने बुधको हार जमा है। जो पुनः अपनी विवाहिता बसिने जागकर दुसरीके बल जाता है, वैदिक बर्षक अलखून कारके जल्दबलिक धारक

बलवत्ता है, धनवान् विजयुषा बल होकर शिवजी निरुद्ध करता है, साधक-विनायकी नियम-विधियों आदि जगत् में करके उसे चुना बिना देव है तथा मनमें संतापको अनुभव करके अपने दिने हुए कष्टमयों वृत्त करता है, ऐसे लोगोंकी ओर काम लगता है, यही मुझे भी लगे, यदि मैं स्वैच्छिक न आऊँ ।'

सुरभी कहती है—अच्छ ठेका कहनेपर व्यापके इस पुरीसे बड़ा—जैसे ।' कभी जल पीकर दुर्बलता अपने अन्तर्भावसे गयी । इसनेही ही रातका दुलरा चहर भी व्यापके जगत्-जगत् कील गया । इसी समय तीसरा चहर आया जो जानेवा पुरीके लोटेमें बहुत विराम्य हुआ कम चरित्त हो गया इसकी लोटे करके लगे । इसनेही ही उसने जलके घाँघे एक दिनमें देव । यह बड़ा बड़ा-पुष्ट भी ओर देवका बनेबनेको बड़ा दुर्ब हुआ और यह कष्टकर काम रक्तका उसे धार कालमेंको जल हुआ । ऐसा करते समय उसके अन्तर्भावमें कुछ कम और विनायक विनायक्यार लगे, उसने उसके लीवायको बगवान् विनायकी लीवा बहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी । इस तरह बगवान् उसपर अपनी वत्ता दिखली । बलके बिने आदिकर जगत् सुन्दर उस मुग्धने व्यापकी ओर देवता ओर धूम—'क्या करते हो ?' व्यापके उत्तर दिया—'मैं अपने कष्टमयों कोजने देनेके लिये तुम्हारा बंध करूँगा ।' व्यापकी यह वत्ता सुन्दर हरिणके मनमें बड़ा दुर्ब हुआ और मुग्ध ही

व्यापके इस प्रकार सोच ।

हृदयने बड़ा—मैं क्या हूँ बिना बड़ा-पुष्ट होकर समस्त हो गया । क्योंकि मैं करीबों अन्तर्भावकी मुक्ति होगी । विनायकी करीब बनेबनेको काममें नहीं आता, उसका लगे कुछ कर्तव्य करता गया । जो व्यापकी रहने हुए भी विनायकी उपकार नहीं करती है, उसकी यह लालच कर्तव्य वाली जगत् है तथा यह बालकमें बचकगामी होता है \* । पानु एक बार मुझे जाने दो । मैं अपने कालमेंको उपकी पालने के हाथमें लीवाय और इस समयमें बीरस लीवाय नहीं लौट आऊँगा ।

उसके ठेका कहनेपर व्याप मन-की बंध बंध विराम्य हुआ । उसका इष्ट कुछ बड़ा हो गया था और उसके बारे बापपुष्ट नष्ट ही चुके थे । उसने इस प्रकार कहा ।

जगत् बालक—जो-जो नहीं आये, वे सब मुझकी ही बाध करने काकार कले गये; पानु मैं बहुत अनीलक नहीं नहीं लौटे हूँ । बंध । तुम भी इस जगत् अन्तर्भाव ही, इसलिये बहुत कोमकर बने आओगे । फिर अन्त वेरा लीवाय-विनाय केने होना ?

गुण बोले—अच्छ । मैं जो कुछ करता हूँ उसे सुने । मुझमें असत्य नहीं है । जगत् बगवान् बगवान् सन्तमें ही दिखा हुआ है । विनायकी वाली झुटी होगी है, उसका कृष्ण उसे जगत् नष्ट हो जाता है; तथापि नील ! तुम मेरी लड़ी प्रसिद्ध सुने । संभवतःसन्तमें मैंभूत तथा शिकरात्रिके दिन कोजने करनेमें जो पल लगता है, झुटी









अधिकारी) कृत - सुनारी । आत्मने  
कारणान् मुक्तिद्वारा नान विना है । यदि मुक्ति  
विनाशक नान होवे ? मुक्तिमें जीवन्मुक्ति केवल  
आत्मने होती है ? नान को आत्मने ।

હું ન સ્વામી છીશ ન મોદક હું ન મહાદેવ । મારાં  
 અપરિણીત કામની અને ન મારામત મોદક આવી હું, મારા  
 મારામત મારામત હું જેમ મારામત હું । તેને  
 અપરિણીત કામની મારામત હું, તેને અપરિણીત  
 મારામત ની મારામત હું । મારામત મારા  
 મારામત મારામત જેમ મારા મારામત  
 મારામત હું । મારા મારામત મારા  
 મારામત હું । મારા મારામત મારા  
 મારામત હું । મારા મારામત મારા  
 મારામત હું ।

[illegible][illegible]

गयी है। इनके सिवा वैश्विकी और अन्वैश्विकीके चेदसे भक्तिके दो प्रकार और बताये गये हैं। वैश्विकी भक्ति छः प्रकारकी जाननी चाहिये और अन्वैश्विकी एक ही प्रकारकी। फिर विशिष्टा और अवशिष्टाके चेदसे विद्वानोंने उनके अनेक प्रकार माने हैं। उनके बहुत-से चेद होनेके कारण नहीं विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा है, उन दोनों प्रकारकी भक्तियोंके लक्षण आदि चेदसे नौ अङ्ग जानने चाहिये। भगवानकी कृपाके बिना इन भक्तियोंका लब्धाद्य होना कठिन है और अन्वैश्विकी कृपासे सुगमतापूर्वक इनका लब्ध होना है। हिंदी। भक्ति और ज्ञानको लब्ध करने एक-दूसरेसे भिन्न नहीं बतला है। इसलिये उनमें चेद नहीं करना चाहिये। ज्ञान और भक्ति दोनोंके ही सम्बन्धसे सदा सुख मिलता है। ब्रह्मणे ! जो भक्तिकार होतेभी हैं, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् दिव्यकी शक्ति धारणवानको ही लोकात्पूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः मुनिब्रह्म ! गद्देहारकी भक्तिकार साधन करना आवश्यक है। इसीसे लक्ष्मी सिद्ध होगी, इससे लोकात् नहीं है। धर्मिकों, तुमने जो कुछ कृत्य का, अस्मिन् वर्णन किया है। इस प्रसङ्गसे सुनकर बहुत सब पापोंसे निराकरण हुका जाता है।

(अध्याय ४१)

(અધ્યાય ૪૬)

### शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा के स्वस्वयका विवेचन

अधियोंने पूछा—भित्त क्यों हैं ? किण्वु  
क्यों हैं ? तार क्यों हैं और कच्चा क्यों है ? इन  
सबमें निर्गुण क्यों है ? इनमें इस संवेदन  
आप विचारण आदि।

सूतजीने कहा—भद्रविन्दो ? केद और  
केदाम्नाके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्गुण  
परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणकर्म प्रकट हुआ,  
उसीका नाम दिव्य है। दिव्यसे पुण्य-सम्पन्न  
प्रकृति व्यपन्न हुई। उन क्षेत्रोंमें भूतस्वामयमें स्थित  
जलमें भीतर तप किया। वह स्थान पञ्चतन्त्री  
काशीके नामसे विख्यात है, जो भगवान्  
हस्तको अव्ययत्रिंश है। वह जल सम्पूर्ण  
विश्वमें व्याप्त था। उस जलका आत्मत्व से  
योगात्मासे युक्त जीवित्ति यहाँ स्थित है। नार अर्थात्  
जलको अपन (निवासस्थान) बनानेके कारण  
किर 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध हुए और प्रकृति  
'नारायणी' कहलप्रयी। नारायणके नाभि-  
कमलमें जिनको व्यपत्ति हुई, वे ब्रह्म कदापि

॥। ब्रह्माने तत्त्वका कारणके विनका साक्षात्कार किया, उसे विष्णु कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुके विराट्प्रकोटों द्वारा करनेके लिये निर्गुण विद्यने जो एक प्रकट किया, उसका नाम 'ब्रह्मेव' है। उसीमे कहा—'यै भव्यु ब्रह्मजीके लक्षणसे प्रकट होईगा' इस कथनके अनुसार सत्यता लोकोंपर अनुष्ठा करनेके लिये जो ब्रह्मजीके लक्षणसे प्रकट हुए, उनका नाम यह हुआ। इस प्रकार स्वरहित परमात्म सबके विषयमेव विषय करनेके लिये साकाररूपमें प्रकट हुए वे ही साक्षात् भक्त्यात्मक सिद्ध हैं। जोनों गुणोंसे विश्व सिद्धमें तथा गुणोंके धाम करने में उसे ब्रह्म सात्त्विक चेष्ट नहीं है, जैसे सुखार्थ और उसके आनन्दपूर्ण नहीं है। दोनोंके रूप और कार्य समान है। दोनों समानरूपसे भक्तियोंसे उत्पन्न गति ब्रह्म करनेवाले हैं। दोनों समानरूपसे उसके सेवनीय हैं तथा नाना प्रकारसे लीला-विहार करनेवाले हैं। भवानक





नाहीं है। कन्यावि दारण सेवक जीव संसार-  
बन्धनसे छूट गया है।

आज्ञाये । इस प्रकार चर्चा करने पर  
शक्तियों ने बरस्तर निश्चय करके जो यह  
ज्ञानकी बात कही है, इसी अपनी बुद्धिसे  
इस प्रत्यक्षपूर्ण कारण करने काहिने ।  
बुद्धिसे । तुम्हें जो कुछ कुछ था, यह सब  
ये तुम्हें कला दिया । इसे तुम्हें प्रत्यक्षपूर्ण गुण  
बुद्धिसे । आताही, अब और क्या  
ज्ञानसे कहे हो ?

आपि योसे—कलशविष्णु ! आत्मको  
नमस्कार है । आप धर्म हैं, विद्याधरको भी लेते  
हैं । आपसे हमें विद्याधरनन्दनकी वरम ज्ञान  
ज्ञानका अन्वय करार है । आत्मकी कृपासे  
हमारे मनकी प्रगति बिन्दु गयी । हम आपसे  
भोक्तृधर्म विद्याधरनन्दन ज्ञान धर्म करार  
करते हैं ।

सूतजीने कहा— भ्रूजो ! जो अशिक्षित हो, अंधाधीन हो और लज्जित हो, जो अक्षय्य शिष्यका अक्षय न हो तब ही शिक्षणको सुननेकी इच्छा न रहता हो, उसे ही तत्त्वज्ञानका उपदेश नहीं देना चाहिये । व्यासजीने इतिहास, पुराणों, वेदों और शास्त्रोंका आरम्भ विचार करनेके उपरान्त स्व-

निकारागुवा नुझे उपरोक्त सिद्धा है। इसका एक कार कारण कारनेवासे जारे पाप भक्त हो जाते हैं, अधकर्मों के जिक्र प्राप्त होती है और भक्तकी भक्ति बढ़ती है। दूसरा सुननेसे ज्ञान भक्ति प्राप्त होती है। तीसरी कार सुननेसे मोक्ष प्राप्त होता है। अतः ज्ञान और मोक्षकर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको इसका जालकार ध्यान करना चाहिये। तब भक्तकी पानेके औरकरे इस पुराणकी पाँच आशुतिपाँ करनी चाहिये। ऐसा करनेपर बहुत बसे भक्तिय पाता है, इससे संदेह नहीं है; क्योंकि यह भक्तकीका वचन है। जिससे इस ज्ञान पुराणको ज्ञान है, उसे एक भी दुर्लभ नहीं है।

यह शिक्षा-विज्ञान व्यवस्था इसकारणसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। यह योग और मोक्ष ऐक्यवादा तथा शिक्षाव्यवस्था के सम्बन्धवादी है। इस प्रकार वेदो शिक्षाव्यवस्था से यह भी ही आत्मव्यवस्था की तथा यह पुण्यव्यवस्था से ही बनती है, जो वेदोपदेशानुसार ही मानने योग्य है। जो पुण्य एकव्यवस्था से व्यक्तिभावसे इस संविधानसे सुलेगा या सुझावेगा, यह अवश्य जो-जो-किस प्रकारके अन्तर्गत परव्यवस्था को प्राप्त कर लेगा।

(अध्याय ४६)

✱

॥ कोटिस्वसंहिता सम्पूर्ण ॥

# उमासंहिता

भगवान् श्रीकृष्णके तपसे संतुष्ट हुए शिव और पार्वतीका उन्हें अभीष्ट कर देना तथा शिवकी महिमा

ये सब भूतानी सब गुणवान् सब राज-सत्त्व-  
संगति मन्त्रयोगसे भुगवन्ते भगवन्तसे विना ।  
सत्यनन्दमन्त्रको श्रवणसे **कामदेव** प्रसन्न  
विना **कामदेव** भगवन्तसे पूज्य **विना** भगवन्तसे

‘जो रसोगुणका आनन्द ले लेगावन्ती  
सृष्टि करते हैं, सबगुणसे सम्पन्न हो सती  
भुक्तियोंका चरण-सोचन करते हैं, तबोगुणसे  
भुक्त हो सम्पन्न अहार करते हैं तथा  
विगुणकी भावनासे सर्वकार अपने सुख  
साधनसे विगत रहते हैं, उन सबगुण-  
सम्पन्न, अपना सोचन, निर्धन एवं पुनः  
ब्रह्म शिवका इस भाव करते हैं । ये ही  
सृष्टिकारण हैं ब्रह्मा, कल्मषके सम्पन्न विष्णु  
और ईश्वर आत्मसे सब नाम चरण करते हैं  
तथा सत्त्व सात्त्विक-भावकी अप्रत्यक्ष ही  
प्राप्त होते हैं ।

प्रथम बोले—**ब्रह्म** की **कामदेव** विना  
भुक्त । आचर्य भगवन्त है । अपने  
काटिल नामके नीची संज्ञित होने सुक  
ही । अब उमासंहिताके अन्तर्गत माना  
प्रकारके उपाख्यानोंसे भुक्त जो चरणका  
साम्य महाशिवका करिष्य है, उनका चर्चन  
करिष्ये ।

सुतजीने (१४) जो-काम आदि  
महर्षियों भगवान् इन्द्रका ब्रह्मण्य  
करिष्य नाम विना एवं भोग और मोक्षके  
देनेवाला है सुमन्त्रेण प्रेक्षते प्रसन्न  
हवन्त करो । पूर्वकालसे मुनिवार आसने  
सनत्कुमारके सामने होने ही कथित  
प्रसन्न उपरिक्त विना का और इसके  
उत्तरमें उन्होंने भगवान् विनाके उपा

करिष्य नाम विना का ।

अब अथ भुक्तों प्रसिद्ध विविध  
श्रीकृष्णके विना परस्पर आकर महर्षि  
उपमन्त्रसे विना, उन्नी ब्रह्मा ही  
महर्षिके अनुसर भगवान् शिवकी  
प्रसन्नताके विना सब करने, इनके तपसे  
प्रसन्न होकर पार्वती, कार्तिकेय तथा  
कामदेवविना शिवके प्रसन्न होने तथा  
श्रीकृष्णके द्वारा उनकी मुक्तिपूर्वक भगवान्  
कामदेवकी काम सुभावा मनसकुमारजीने  
कहा—**श्रीकृष्ण** का काम सुभावा भगवान्  
अथ इनसे बोले—‘**कामदेव** । तुमने जो  
सुख चर्चन विना है, वह सब पूज्य होगा ।’  
इतना कहकर विष्णुवाणी भगवान् विना  
कर बोले—‘**कामदेव** । तुम्हें भाव नाथसे  
प्रसिद्ध एक ब्रह्मण्यकी कल्पान् पुत्र प्राप्त  
होगा । एक समय मुनिपौत्रे भगवान्  
सर्वक (अनन्तर) सुर्षको प्राप्त दिया का  
कि ‘तुम भगवान् विनासे प्रसन्न होओगे’ अतः  
ये सर्वक सुर्ष ही तुम्हारे पुत्र होंगे । इससे  
विना जो जो कल्प तुम्हें अभीष्ट है, वह सब  
सुख प्राप्त करे ।’

रामदेववाणी कहते हैं—इस प्रकार  
कामदेव विनासे सम्पूर्ण चर्चन प्राप्त करके  
श्रीकृष्णने विविध प्रकारकी कष्ट-सी  
मुनिवीक्षण उन्हें पूर्णतक संतुष्ट किया  
मन्त्रकर भगवान् विना गिरिराजकुमारी  
विनासे प्रसन्न हो इन अपनी शिवभक्त  
मन्त्रक कामदेवसे कहा ।

पार्वती बोली—परम बुद्धिमान्  
कामदेवन्दन श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हसे बहुत





















मान्य है। फिर उस शरीरमें सब ओर बड़ी  
 पत्ती फैलकर फैली है। जो सभी दिग्-  
 मन्दिरोके सब अन्तर्गत ऐश्वर्यके अन्तर्गतमें  
 सब वृत्तोंमें फैल गये हैं। इनके विष्णु और  
 ब्रह्मदेवोंके लोकोके सुन्दरोंके दूर-दूर तक  
 दिया जाता है तथा आगमें जगती हुई सुन्दर  
 लोकोके सब भी फैली है। फिर सब ओर  
 इन्द्रियोंके फैली दृश्य फैली है। जो सब को  
 हुए भी वृत्तोंके कारण अन्तर्गत सब को  
 फैली और अन्तर्गत सब कारण अन्तर्गत  
 आन्तर्गत अन्तर्गत फैली है, वे सबको सब  
 फैली अन्तर्गत नरकोके फैली है \* । जो  
 सुन्दर और अन्तर्गत अन्तर्गत सब अन्तर्गत  
 फैली न केवल सब अन्तर्गत सब फैली है। इनके  
 सुन्दर दूर दूरमें फैली लोकोके फैली है ।  
 "अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत जो  
 फैली और अन्तर्गत (अन्तर्गत सब  
 फैली) फैली है, वे इनके फैली सब  
 अन्तर्गत सब फैली है, वे सब फैलीके फैली  
 फैली : " अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत और अन्तर्गत  
 फैली फैली जो अन्तर्गत फैली है, वे  
 फैली सब फैली फैली फैली फैली है, वे  
 फैली सब फैली फैली फैली फैली है । सब  
 अन्तर्गत फैली फैली फैली फैली फैली है।  
 फैली फैली फैली फैली फैली है। जो सब  
 अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत सब फैली  
 फैली अन्तर्गत अन्तर्गत दे अन्तर्गत  
 फैली फैली फैली फैली फैली है, वे

અવરોધને ત્યાં દેશને ઝીર સ્થગિત થાશે નહીં ।  
પ્રાચીનને પ્રતિનિધિ થઈને દેશને જાગૃતિ ।

[illegible]

\* अने अनेपि वे पुरे न ज्ञानमणि मण्डप ३

●**तिथि** : साकल्यवर्ष २०२१ साले शुक्रवारे २०-०५-२०२१ ते शुक्रवारी रात्रि मध्याह्ने १२.०० वाजेपर्यंत N

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

\* श्री आनी प्रसादरावली सापराई-मोचली : श्री सापराव सापरावली : श्री मुनी-पुनी सापरावली

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । श्रीकृष्णार्चनस्तोत्रम् ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

1994年3月13日

















एकमात्र भगवान् शिवका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रत्यक्षित है। ग्रन्थकाल, सार्वकाल, रातमें तथा मध्यरात्र आदिमें भगवान् शिवका स्मरण करनेसे पापहरित हुआ मनुष्य पारलोक्य भाग्यसे प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके स्मरणसे सबका पापों और श्रेयोंका क्षय हो जानेसे मनुष्य सर्व भक्ष्या योक्ष प्राप्त कर लेता है। शिवका चित्त जप, होम और पूजा आदि करते समय विभवा भगवान् भोमेश्वरसे ही लगा रहता हो उसके लिये इन्द्र आदि पञ्चवी प्राधिकार्य फल तो अन्तरात्मा (चिह्न) ही है। बने। जो पुण्य भक्तिभावसे दिन-रात भगवान् शिवकी स्मरण करता है, उसके सारे पापका नाश हो

जाने हैं। इस्लामिये यह कभी नरकमें नहीं  
 पहुँचा। नरक और स्वर्ग से पाप और  
 सुखके ही दूसरे नाम हैं। इनमेंसे एक तो  
 दुःख देनेवाला है और दूसरा सुख देनेवाला।  
 जब एक ही वस्तु कभी प्रीति प्रदान  
 करदेवाली होती है और कभी दुःख  
 देनेवाली बन जाती है, तब यह विश्रय होता  
 है कि कोई भी पदार्थ न तो दुःखमय है और  
 न सुखमय ही है। ये सुख-दुःख तो मनुके ही  
 विचार हैं। ज्ञान ही धरातल है और ज्ञान ही  
 आतिथ्य को भक्षण कारण है। यह सारा  
 जगत्तर विश्व ज्ञानमय ही है। इस परम  
 विज्ञानसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

(अवकाशाय १६—१७)

प्रत्युक्ताल निवृत्त आनेके कौन-कौनसे लक्षण हैं, इसका वर्णन

इसके पश्चात् द्रोणी, लोदी और मधुजीवास  
परिषद देख कर समाजके फल, वार्ति एवं की  
स्वभाव अतिरिक्त वर्णन किया गया । तदनन्तर  
अन्त्येके विषयमें व्यासजीके पुत्रोंपर  
सनत्कुमारजीने कहा—भूमिबोध । पूर्वकासमें  
वार्तिगीरीके बाबा प्रकारकी दिव्य अन्तर  
सुनकर धरमेश्वर शिष्यकी प्रणम्य करके उनसे  
परी बात पत्ती की ।

पार्वती बोली— धातवर् ! मैंने जलपत्नी  
कृपासे सम्पूर्ण घत जान लिया । देव ! जिस  
मन्त्रोंद्वारा जिस विधिसे जिस प्रकार जलपत्नी  
भूजा होती है, वह भी मुझे ज्ञान हो गया ।  
किंतु प्रश्न ? अब भी एक संशय रह गया  
है । वह संशय है कर्ममयान्तके सम्बन्धमें ।  
देव ! मृत्युका क्या विग्रह है ? आयुका क्या  
प्रमाण है ? राक्ष ! यदि मैं जलपत्नी प्रिया हूँ  
तो मुझे ये सब बातें बताइये ।



महादेवजीने कहा—प्रिये ! यदि  
अकलमत्त झरीर सब ओरसे सफेद या पीला

यह जाब और औरसे कुछ लम्बे हीरे से यह जानना चाहिये कि उस मनुष्यकी मृत्यु कः महीनेके भीतर हो जायगी। जिसे। अब मृत्यु, कर्म, वेद और शिक्षाका सम्बन्ध हो जाय, तब भी कः महीनेके भीतर ही मृत्यु जाननी चाहिये। यो। जो उस मनुष्यके मृत्यु होनेवाली शिक्षाविषयी कथानक आकाशवाणी की जाती नहीं सुनात, उसकी मृत्यु भी कः महीनेके भीतर ही जाननी चाहिये। अब सुन, कर्मका या अर्थके समिधानसे प्रकट होनेवाले प्रकाशको मनुष्य नहीं देखता उसे तब कुछ कल्पना-कल्पना - अनुमानप्रधान ही दिखानी देता है, तब उसका जीवन कः मनुष्यके अधिक नहीं होता। तैय्य। जिसे। अब मनुष्यका कार्य प्राप्त लगाना एक सारासारा कथनम् ही रहे, तब उसका जीवन एक कर्म ही बन है—कर्म जानना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। अब इसे अङ्गीर्ये मीराबाई आने लगे और तात्पु प्राप्त जाय तब यह मनुष्य एक कथनम् ही जीवन प्राप्त है—इसमें संशय नहीं है। मितुनसे शिक्षाकी कर्म करने लगी, इसका जीवन प्रकट दिनसे अधिक नहीं समझ। मृत और कर्म सुनने लगे तो यह जानना चाहिये कि कः महीने के भीतर-जीनो इसकी जाब समाप्त हो जायगी। धर्मविनि। जिसकी जीव कृत जाब और हीरोसे प्रकट शिक्षासे लगे, इसकी भी कः महीनेके भीतर ही मृत्यु हो जाती है। इन शिक्षासे मनुष्यका कर्म प्रकटना चाहिये। सुन्दर। कर्म, वेद, जो कर्म करनेसे भी तब अपनी पकड़ा। न दिखानी दे या निकल दिखानी दे, तब कथनम्प्रधानके प्रकाश प्रकाशको यह जान लेना चाहिये कि इसकी भी आब कः मनुष्यके अधिक लम्बे नहीं है। तैय्य। अब दूसरी बात सुने जिससे

मनुष्यका ज्ञान होता है। अब अपनी कथाको मिरसे रहित देखे अथवा अपनेको कथासे रहित करने तब यह मनुष्य एक पाप भी जीवन नहीं रहता।

कथने। वे हीने अङ्गीर्ये प्रकट होनेवाले मनुष्यके लक्षण कथने है। भवे। अब प्रकाश प्रकट होनेवाले लक्षणकोका कर्म कथना है। सुन। अब कथनम्प्रधान का सुविधम्प्रधान प्रकाशित एवं लम्ब दिखानी दे, तब आगे कथने हो मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है। अन्तर्गती, मनुष्यके, कथना—इन्हें जो न देखे तब अथवा जिसे लाराअर्थका दर्शन न हो, ऐसा एका एक पापका जीवन रहता है। यदि मनुष्य दर्शन होनेपर भी दिखानीअर्थका ज्ञान न हो—कथना कथनी से तो कः महीनेके शिक्षा ही मृत्यु हो जाती है। यदि कथना पापका मनुष्यका प्रकाश अथवा सुविधम्प्रधानकी भी दर्शन न हो जाके, तबसे मनुष्य मनुष्य और मनुष्यके प्रकाशका ज्ञान दिखानी दे गया नीच और कथने से तो तो यह मनुष्यकी आब कः महीनेके अधिक नहीं है। यदि आकाशको मनुष्य प्रकाश कर्मकार (कथनम्प्रधान) न दिखानी दे तो कथनम्प्रधान मनुष्यको इस मनुष्यकी आब कः कथना ही सेव समझनी चाहिये। जो अन्तर्गती मनुष्य और कथनम्प्रधान के लक्षणे ज्ञान देखता है और मनुष्यकी शिक्षा जिसे मनुष्य दिखानी देनी है, यह अथवा ही कः महीनेके कर जाता है। यदि कथनम्प्रधान नीचे कथनम्प्रधान आकाश प्रकाशको सेव से तो कथनम्प्रधान इसकी जाब एक कर्म ही हो जाननी चाहिये। यदि नीच, कथना अथवा कथनम्प्रधान मिरसे कथना तो यह प्रकाश हीरो ही एक पापके भीतर ही कर जाता है, इसमें संशय नहीं है। (अध्याय १७—२५)

**कालखण्डे जीतिनेका उपाय, नवधा शब्दब्रह्म एवं तुंकारके अनुसंधान और उससे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका वर्णन**

देवी धार्वतीने कहा— बच्चे ! कल्पसे आकाशका भी जल होता है। वह धरतल का जल बड़ा बिकराल है। वह जलका भी एकमात्र जगती है। आपने इसे देख कर कहा था, परंतु अनेक प्रकारके जलजोतुका जल हमने अत्यन्त मृत्ति की, तब आप फिर जंतु हो गये और वह जल पुनः अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुआ—पुनः जल हो गया। आपने हमसे कहा— बच्चे— 'काल'। तुम सर्वत्र बिखरोगे, किन्तु तब तुमों केक नहीं सकेगे।' अब प्रकृति कृपावृत्ति होये और वह मिलनेसे वह जल भी उस जगह जलका जलका जलका जल पका। अतः पदोपर । वह धरती पर कोई जलका है, जिसके उन कल्पसे वह जल का सके ? यदि हो तो पृथ्वी पराजिते, पदोपरि अलग जलजोतुके बिखरोगे और जलका प्रभु है। आप परोपकारके जल ही जारी करण करते हैं।

दिव्य योगे—देवि ! मेरा देवता है, ब्रह्म, राक्षस, मान और मनुष्य—मिट्टीके भी कलकल कर रही किन्ना वह इच्छता; परन्तु जो काल-विराजित होती है, वे शरीरभारी होनेपर भी सुखपूर्वक कलकलते लड़ कर देते हैं। बरगोड़े ! यह कलकलीकल शरीर सदा उन घुनोंके मुहोंसे धूल ही उड़ता होता है और ऊनीने इच्छता लभ होता है। मिट्टीकी देह मिट्टीमें ही दिव्य आते है। अन्तर्गतसे बाधु कलकल होती है, बाधुसे मेघमल्लय प्रकट होता है, मेघसे कलकल प्रकटत्व कलकली लभ है। और ऊनीसे

पृथ्वीका आन्तरिकता होता है। पृथ्वी आदि भूत कायका अन्तर्मे कारणसे तीन होते हैं। पृथ्वीके बाह्य, मध्यमे चार तैरके तीन और वायुके दो गुण होते हैं। आकाशका एकमात्र गुण ही गुण है। पृथ्वी आदिके जो गुण कहलये गये हैं, उनके मध्य इस प्रकार हैं—  
 जल, पर्वत, पत्त, रत्न और गन्ध। जल भूत अन्तर्मे गुणको लक्षण देता है, रत्न वायु हो जाता है और जल गुणको लक्षण करता है, रत्न आकाशका आन्तरिक गुण। चालक जाता है।  
 हेतुवर्ति। इस प्रकार गुण चर्चों चूतोंके बचार्थ एकत्रकरी लखलखे। हेतु। इस कारणका कारणको जीसकेकी हृदयकारने कोरीको बाहिरके कि वह प्रसिद्धि प्रथम-  
 गुणका अन्तर्मे-अन्तर्मे कारणसे उनके अन्तर्गत गुणको विचार करने।

[illegible]



[illegible]

योगीश्वरी सम्पूर्ण जगत् प्रज्ञा हो जाती है।  
दुष्ट-विनाश विनाश करनेवाला स्वयंसेवक बल  
और कृतार्थ करनेवाला दुष्ट जगत् है। देवेश्वरी !  
सर्व-जगत् अन्तर्भाव होनेपर इच्छानुसार  
जगत् कारण करनेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है।  
योगीश्वरी विनाशके योगीश्वरी कभी विपरित्या  
समान नहीं करता बहुत। जगत् । जो  
अन्तर्भाव स्वयंसेवकको स्वयंसेवकी ऐकात्मता  
कारण करता है, उसके लिये कुछ भी अलग  
नहीं होता। इसे योगीश्वरीशक्ति सिद्धि प्राप्त  
हो जाती है। यह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और  
इच्छानुसार जगत्कारी ईश्वर सर्वत्र विद्यमान  
करता है, कभी विनाशके नहीं होता। यह स्वयंसेवक  
होता है। यह स्वयंसेवक ही है, इससे जगत्  
नहीं है। वरसेवरी । इस प्रकार देने तुम्हारे  
स्वयंसेवक स्वयंसेवक स्वयंसेवक स्वयंसेवक  
स्वयंसेवक है। जगत् और जगत् स्वयंसेवक  
करती हो ?  
( अध्याय २५ )



काल या मृत्युको जीतकर अमरत्व प्राप्त करनेकी चार योगिक साधनाएँ—  
 प्राणाशवास, भूषण्यये अभिक्का ध्यान, मृत्यसे वाचुषान तथा मुहूर्ति कुर्त्त  
 जिह्वाद्वारा गलेकी धौंटीका स्पर्श

सर्वोत्तम शैली—अच्छे ! यदि आप  
अलग हैं तो योगी योगवासनायोग का अनुभव  
निराकार प्राप्त होता है, यह एक मुक्त  
प्राप्ति है ।

भाषान् शिवने वना—सुन्दर ! कहते हैं बोलियाँ के हिन्दी काव्यनामों में एक बड़ा नाम है, जिसके अनुसार बोलियों के कालपर विचार होना ही है। बोली जिस प्रकार वाक्यात्मक रूप में व्यक्त है, इसके विचारों ही का नाम है। इसीलिए बोली-विचारों के द्वारा मनु-विचारों का नाम

प्राणमयस्थानमें समाप्त हो जाता है। ऐसा करनेवाला अपने प्राणमें ही सब जगत् ही देख सकता है। जीत लेता है। इसका ही विचार हुआ प्राणमयस्थान सदा अशिक्षितों की ही प्राणमयवाणी है। इसे अशिक्षित समाजका प्राणमय स्थान है। यह वास्तु वास्तव और जीवन सदा ही अशिक्षित और गरीब है। ज्ञान, विज्ञान और अज्ञान - सबकी प्रवृत्ति प्राणमय ही होती है। जिसने कोई वास्तविक जीत लिया, उसने इसे प्राणमय अज्ञानपर विज्ञान का तरीका है।

रसभक्तको जाहिले छिद कह पाता औत  
मृत्युको औतनेको छिद कह पाता आरामे



महान् प्योतिर्वयं पुनः (परमात्मन्) को भी जानता है। इन्हींमें जानकर मनुष्य काल या मृत्युको नहीं जानता है। मोक्षके लिये इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं है। " देवि ! इस प्रकार मैंने तुमसे मेधावत्तमके विद्वान्मणी ज्ञान विधिक्रा वर्णन किया है, जिससे जो भी कालपर विजय पाकर अचरत्वको प्राप्त कर लेता है।

देवि ! अब पुनः दूसरा बहुत उपाय बताता हूँ, जिससे मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती।

देवि ! ज्ञान करनेवाले प्योतिर्वयंकी चौकी गति (स्थाना) बताती जाती है। योगी अपने विचारको कालमें करके उपायोप्य उपायमें सुखद आश्रयकर बैठे। यह करीबमें उपाय करके आश्रय करके प्योतिर्वयंकी आकृतिवाले मुखके द्वारा धीरे-धीरे कथक धन धरे। ऐसा करनेसे अक्षरधरने तालुके भीतर स्थित जीवराशिकी कालकी कृति उपजने लगती है। इस कृतिसे काकुके द्वारा वेदों सुधे। यह जीवराश अमृतत्वका है। जो योगी इसे प्रतिष्ठित पीता है, वह जानी पुनः अवीन नहीं होता। उसे धूल-धूल नहीं लगती। आकाश शरीर दिव्य और तेज महान् हो जाता है। यह बालमें हाथी और वेगमें

खेड़ेकी सघनता करता है। उसकी दुष्टि बसुके समान तेज हो जाती है और उसे दूरकी भी बातें सुनायी देने लगती हैं। उसके केस काले-काले और धूपतले हो जाते हैं तथा अक्षरधरने यमकी हथि विद्याधरोकी समनता करता है। यह मनुष्य देवताओंके समान ही वर्तितक जीवित रहता है तथा अपनी जन्म कृतिसे द्वारा कृतिगतिके सुख हो जाता है। उसमें कृतिधरने विचारनेकी शक्ति हो जाती है और वह सब ही सुखी सुखकर अचरत्वसे विचरनेकी शक्ति प्राप्त कर लेता है।

जानने। अब मनुष्य विजय पायेगी पुनः दूसरी विधि बता रहा हूँ, जिससे देवताओंमें भी अक्षरधरने किया गया है, सुध इसे सुधे। योगी पुनः अपनी जिज्ञासे कोझकर समुद्रमें लम्बेका प्रयत्न करे। कुछ कालतक ऐसा करनेसे वह ज्ञानः लम्बी होकर गलेकी शक्तिगत कृति जाती है। तदनन्तर वह जिज्ञासे गलेकी पांटी सटती है, तब जीवराश सुखकी शक्ति करता है। इस सुखको जो योगी श्रद्धा पीता है, वह अचरत्वको प्राप्त होता है।

(अध्याय २७)

☆

**भगवती उपाके कालिका-अक्षरधरकी कथा—समाधि और सुरधके समक्ष मेधावत्त देवीकी कृपासे मधुकैटभके वधका प्रसङ्ग सुनाना**

इसके अनन्तर तब पुनः, सर्ग, वर्णन सुननेके पश्चात् मुनिवर्ग सुतजीसे कथनप्रसंग, मननान्, मनुष्यः सन्तुष्टः— कथा— अक्षरधरनेमें बहुत सुतजी ! हमने ब्रह्म, पितृकल्प तथा यज्ञमोक्षति अर्थात् अक्षरधरने मुखसे भगवान् विजयकी अनेक





निकाले और गहज करने वाले गये। वहाँ  
दुपार-उत्तर धूपले हुए राखले एक ठेक



मुनिवत आशय देखन जो पारों और कुम्भके  
बनीले लगे होयले बाड़ी कोयल का रक्त था।  
बाड़ी कोयलकोठी बाधि गैर रही थी। सब  
बीच-कपु सन्तभावले रहते थे। मुनिके  
शिष्यों, प्रशिष्यों सब उनके पी दिखलेंगे  
उन आशयको सब औरले होर रहल था।  
महात्मा। किन्तु येनाके प्रभावले उन  
आशयले चढ़ावली पाला अदि अन्य  
प्रतिपाले नै अदि वस्तुओंको पीछ  
वही है। वहाँ जानेवा मुनिवत केहाने  
पीछे बचन, भोजन और अन्न-सहायता का  
ब्राम क्वाल् मुनिवत मीरवत आदर-  
सम्मान दिया।

एक दिन राजा बुराब बहुत ही क्रिन्तल  
तक ओझके बसीबुल होकर अनेक प्रकारले  
विचार कर रहे थे। इतनेमें ही बाड़ी एक मेट्र  
अन धुँजा। राजाके इससे कुछ—'मिना।

तुम औरत हो और किन्तलले बाड़ी आले हो ?  
क्या कारण है कि तुम्हें दिखानी दे रहे हो ?  
'क्या कुछ कहओ ?' राजाके मुखले यह पद  
कवन सुनकर वैभवप्रवर क्वालिने होयी  
जेहोले औरत कहले हुए तेन और बालावून  
कलीले हुए बचन उत्तर दिला।

मेट्र बोलन—'राजन् ! मैं वैभव हूँ।  
मेरा काम समाधि है। मैं बनीके कुम्भमें प्रपन्न  
हुआ हूँ। वस्तु मेरे पुत्री और स्त्री आदिने  
कलके लोचले कुछ बरले निष्कास दिया है।  
अतः अपने प्रभावकर्मले दुःखी हो मैं अपने  
कल अलका हूँ। कल्याणकार प्रभो ! बाड़ी  
अन्तर मैं पुत्री, मीरा, बली, भाई-बलीके  
कल अन्य सुन्दरमेक कुपानि-जवाहार बनी  
काय कल।

राजा बोले—'जिन दुराचारले तथा अन्यके  
लोचले कुछ आदिने तुम्हें निष्कास दिया है,  
उसीके प्रति धूर्त होऊँगी यदि तुम मेरा  
कल करले हो ?

मेट्रने कहा—'राजन् ! अपने अन्य  
कल बाड़ी है। अलकी बली सारगर्भित है,  
सहायि होइवाकले बीधा हुआ मेरा सब  
अन्तर मोड़ले प्राप्त हो रहा है।

इस तरह कहले क्वाकल हुए वैभव और  
राजा केनै मुनिवत केकाके पास गये।  
वैभवकलन राजाके द्वार जोड़कर मुनिवत  
प्रभाव दिया और इस प्रकार कहा—  
'ममन् ! अतः इस सेनेके मोड़वाकले  
काट दीजिये। तुम्हें राजकस्त्रीले होइ दिया  
और येने गहन कन्की सरल लीः सहायि  
राज किन जानेके कारण मुझे संताप नहीं  
है। और यह वैभव है, जिसे मैं आदि  
सब-सेने बरले निष्कास दिया है; सहायि  
अन्की ओरले इसकी बली दूर नहीं हो रही





[illegible]

५८१

हीगूठिर्चा भी हैं। निम्नकर्माने उन्हें पनेछा परसा धैर किया। साथ ही अनेक प्रकारके भक्त और अनेक कलाक हिये। समुद्रने लक्ष सुख एवं सरस रहनेवाली जगत् दी और एक कमलका फूल भेंट किया। विष्णुकरने समुद्रीके हिये सिंह तथा आभूषणके हिये बाला प्रकारके रत्न दिये। कुम्भने उन्हें अपने भरा पात्र अर्पित किया तथा सम्येके जेल होवनागने विविध रत्नवालीरत्नसे सुलेखित एक भागाहर भेंट किया, जिससे बाल प्रकारकी सुन्दर जगिर्चा गूनी हुई थी। इन सबने तथा सुन्दरे देवताओंने भी आभूषण और अन्य-सजा देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने कारवार अहङ्कार करके उल्टवारने गर्वना की। उनके उस गर्वका नाशसे समुद्रमें आकाश गूँज उठा। उनके जब भीरवी प्रतिष्ठाति हुई, जिससे तीनों लोकोंमें डलजल मच गयी। चारी समुद्रोंने अपनी गर्वाङ्क छोड़ दी। वृन्की होलने लगी। उस समय महिषासुरसे भीड़ित हुए देवताओंने देवीकी कण-मन्त्रधर की।

तदनन्तर सब देवताओंने उन महात्मनीरत्नज्वा। भाग्यरतिर उल्टकाका मलिन-गहगद कापीछरा सम्मान किया। सम्पूर्ण जित्नेकीको क्षेपज्वा देव देवीकी दैत्य अपनी समस्त सेनको कण्ठ जलिते सुलज्जित कर इन्होंने इधिवार से लहर उठ लये हुए। रोषसे भरा हुआ महिषासुर भी उस सम्झकी और लज्ज करके झुक और अपने पहुँचकर उसने देवीको देला, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंकेके प्रकाशित कर रही थी। इस समय महिषासुरके क्रूर पक्षिण सं० जि० प० ( मोटा टाटा ) १२५—

करेको लज्जवासी महवीर बाई आ पहुँचे। विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, काल, ब्रह्म, कामरु, लक्ष्मी, उतास, उतासी, विष्णु, अन्तर, पूर्वा, दुर्गल, त्रिनेत्र और ब्रह्मन्—ये तथा अन्य बहुत-से पुण्ड्रुपाल शुरवीर जयराज्ज्वासे देवीके साथ युद्ध करने लगे। ये सब-के-सब भक्त-सन्तोकी मित्राये जागता है। इस प्रकार देवी और देवज्ज्वा होके परस्पर युद्धने लगे। उनका यह भीमज्ज्वा मार-काटने ही बीतने लगा। इस तरह लज्जका युद्ध होनेके बाद महिषासुर देवीके साथ बन्धायुद्ध करने लग्न।

तब देवीने कहा—दे मूढ़ ! तेरी बुद्धि धरी नहीं है। तू जब यह क्यों करता है ? तूने जेकने कोई भी असुर युद्धमें भी लगने निक नहीं सकते।

जो कठुकर सबकलापकी देवी कुदकार महिषासुरपर कड़ गयी और अपने पैरसे उसे जलका उड़ने बर्बकर सुखसे उसके कण्ठमें अन्तर किया। उनके पैरसे तथा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे सुन्दरे कणमें बाहर निकलने लग्न। अभी आके शरीरसे ही वह कठर निकलने थावा था कि देवीने अपने प्रचाकसे उसे रोक दिया। आधर निकलना होनेपर भी वह लज्ज-अचम दैत्य देवीके साथ युद्ध करने लग्न। तब देवीने बहुत बड़ी लज्जकरसे उसका तिर काटकर उस असुरको बरसायी कर दिया। फिर तो उसके चिन्मकल 'हूँ ! हूँ !' करके नीचे मुख हिये कणभीत हो लक्ष्मीसे धागने और जल-जलिकी पुकार करने लगे। उस समय



बादरगिरी एवं कल्याणगिरिजी गौरी केी बहुत प्रसन्न हुई। उन्होंने समस्त देवताओंके भूला आपत्तोग काई निरालगी मुक्ति कराते हैं ?' तब उन्हें गौरीके शरीरसे एक कुमारी प्रकट हुई। वह सब देवताओंके देखने-संजाने शिवाङ्गिकसे आकरपुर्वीय बोली—'हाँ ! वे समस्त स्वर्गवासि देवता निखुल्य और सुख प्राप्त प्रकट होखेसे अवगत होड़िग हो अपनी राहाके निचे पैरी मुक्ति कराते हैं।' पार्श्वीके शरीरकोपरासे वह कुमारी निकली थी, दुर्धर्मान्ने कोसिककी मन्त्रसे प्रसिद्ध हुई। योशिका ही साक्षात् शुक्लास्वराय काट करदेवताकी सरसली है। उनकीसे उमरका और बहोत्सवता भी कहा गया है। मन्त्रके शरीरसे कला प्रकट होनेके कारण से इस भूतलपर लज्जती भी कहागली है। उन्होंने समस्त देवताओंसे कहा—'मनस्सेय निर्भय रहो। वे समस्त हैं। अब निरसीया स्वराय निचे शिवा ही मुहारा काई सिद्ध कर हुंगी। शिवा कहकार से देखी लज्जाल काई अनुभव हो गली।

इस विषय राज्य और विपक्षों के बीच  
काया और मृत्यु के बीच के बीच : इनका  
पनीया का नैतिक रूप का नैतिक रूप  
या : इन के बीच ही वे जोड़ते हैं राज्य का

सोफावर चुपचाप बिर बसे, बिर होठोंमें  
अधरेपर से अपने सजाके पास गये और  
आरामसे ही सारा दुःखान्न झलकाकर बोले—  
'मजदारा ! तूय सोचनेसे एक अपूर्व सुन्दरी  
जानी देखी है, जो हिमालयका रमणीय  
निकलपर गहरी है और सिंधुपर सपारी  
करती है।' चन्द-चुपचपी का, कास सुनकर  
मकर आधुन सुनने देखीके कास सुनीय  
सोफाक जगमग हल भेज और कहा— 'दुःख !  
हिमालयपर भाई अपूर्व सुन्दरी गहरी है । तूय  
कहाँ काओ और जगमग केरा रमेश कछका  
उरी जगमगपूर्वक गहरी के आओ।' यह  
आज्ञा काकर राजपुत्रादेवकी सुनीय  
हिमालयका गया और जगमग गहरीके  
तूय काकर कोरल ।

દુનને સમજાવે—કેવિ ! કેવલ જુનાવાસુ  
અપને જાણ્ય નવન ઝીવે જિજ્ઞાસુને સિધી સીધી  
સોકોને જિજ્ઞાસુ છે : કમલન કોટી વાઈ  
જિજ્ઞાસુ સી સેવા કી છે : જુનાને મુઠે મુકાને  
વાસ કુલ જાણકાર બેસ છે : કમલને સી વાઈ  
આવા છે : જુનાને ! કમલે સી સીધા દિવા છે,  
કમે કમ સમજે મુઠે | 'કમે રાધાકૃપાને કમ  
આદિ દેશવાસોકોને ઝીજ્ઞાસુ કમલે જાણ  
જાણકાર અજાણકાર જાણ છે : જાણને દેશવા  
અજાણકાર કમે કમ દેશવાસુને સી સમજે કી

[illegible]





प्रेम। आज्ञा परकर वे ईश्वर को स्तुत कर रहे, उन्हें देवी विराजमान थीं। अन्तिम आदि सिद्धियोंसे सेवित तथा अपनी प्रकृति सम्पूर्ण दिशाओंकी प्रकाशित करती हुई भाववली सिद्धिवाहिनीको देखकर वे श्रेष्ठ दान्यव वीर बोले— 'देवि ! तुम लीला ही शुभ्य और निशुभ्यके प्राप्त करने, अन्धका तुम्हें गण और पावनसहित बरसा दालोगे। बामे ! शुभ्यको अपने पति बना लो। लोकपाल आदि वीर उनकी श्रुति करते हैं। शुभ्यको पति बना लेनेपर तुम्हें हम महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी, जो देवताओंके लिये भी सुखेभ है।'

उनकी ऐसी बात सुनकर परबेधरी अन्धा मुक्तकामर द्वारा मधुर कानीये बोलीं।

देवीने कहा—अहिनीय परबेध परमात्मा सर्वत्र विराजमान हैं, जो सर्वत्र विराजमान हैं। वेद भी उनके भक्तको नहीं जानते, फिर विष्णु आदिपति तो बात ही क्या हैं। उनकी भक्तिसिक्तता ही मुख्य प्रकृति है। फिर हमारेको पति कैसे बना सकनी है। सिद्धिनी कितनी ही कामासुर को न हो जाना,

जो ग्रीष्मकाल के अन्धका पति नहीं बनसकेगी। इतिनी गह्वरको और बाधित हरलेश्वरको नहीं चरेगी। देखो ! तुम सब लीला झूठ कोचने हो; क्योंकि कष्टरूपी सर्वत्र फैलेये फैले हुए हैं। तुम या तो कामात्माको लौट जाओ या शक्ति हो तो युद्ध करो।

देवीका यह शोध देवा करनेवाला अन्ध मुक्तकामर ने ईश्वर बोले—'हमने अपने मनमें तुम्हें अन्धका समझकर धार नहीं रखे थे। परंतु यदि तुम्हारे मनमें मुक्तकी ही इच्छा है तो सिद्धि पर सुनिश्चित होकर बैठ जाओ और मुक्तके लिये आगे बढ़ो।' इस तरह आदि-विवाद करते हुए उनकी कलह बढ़ गया और अन्धकाह्वरने दोनों बलोंपर तीखे आक्रोश की कर्षा होने लगी। इस तरह उनके लीलापूर्वक युद्ध काकें परबेधरीने अन्ध-मुक्तसहित महान् असुर स्वर्गजको धार दाला। वे देवीकी असुर इन्धुमि करके आगे थे, तो वीर अन्धमें उन्हें इस बात लोचनी प्राप्ति हुई, निम्नमें देवीके भक्त बोले हैं।

(अध्याय ४७)

☆

## देवीके द्वारा सेना और सेनापतियोंसहित निशुभ्य एवं शुभ्यका संहार

श्रुति कहते हैं—रावन् ! जलसमीप पराक्रमशाली यद्वान् असुर शुभ्यने इन श्रेष्ठ देवीको धारा जाना सुनकर अपने उन दुर्लभ गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी, जो संप्राप्तका नाम सुनते ही हर्षसे हिलने लगे थे। उसने कहा—'आज मेरी अस्त्राले कालका, कालकेव, वीर, दीर्घ तथा अन्य असुरगण बड़ी भारी सेनाके साथ संघटित

हो निजगन्धी आज्ञा रखकर लीला युद्धके लिये प्रस्थान करें।' निशुभ्य और शुभ्य दोनों बड़ी उन देवीको पूर्वोक्त आदेश देकर रखर आकाश हो अपने वीर नगरसे बाहर निकले। उन पराक्रमी वीरोंकी अज्ञासे उनकी संनाई उसी तरह युद्धके लिये आगे बढ़ी, माने नरकोचुल फलक आगवे कुत्तेके लिये लठ खड़े हुए हो। उस समय असुरराजने युद्ध-

[illegible]

मे : झगुकी ऐसी मेरगळे आकाशमन करती  
ऐसा जगदगळे अपने कनुकर प्रसन्न  
करती : सव ही सगुओंको हलोतव  
करनेकले पेटको भी कजाता : ॥॥ ऐसा सिंह  
भी अपनी चर्च और प्रसन्नको केलोंको  
कीकला हुआ और-औरी जगद  
करने प्रसन्न ।

[illegible]





तिनका अपने स्वामनसे तिलकर भी न हटा। इससे पापुदेव लज्जित हो गये। वे चुप हो इन्ककी सभ्यमें लौट गये और अपनी पराजयके साथ बर्हाकर सारा कुत्तम उछोने सुनकर। वे बोले—‘देवेन्द्र ! इस सब लेन भूटे ही अपनेदे तर्केश्वर होनेका अधिष्ठात रखते हैं; क्योंकि किसी छोटी-सी वस्तुका भी इस कुछ नहीं कर सकते।’ तब इन्कने बारी-बारीसे समस्त देवताओंको भेजा। जब वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्क बोले गये। इन्कको आगे देव का अग्रज पुत्रक तेज तत्काल अनुपम हो गया। इससे इन्क बड़े विस्मित हुए और कम-ही-कम बोले—‘जिसका ऐसा चरित्र है, उसे सर्वेश्वरकी ये सारा लेता है।’ सत्त्व-वैश्वारी इन्क बानेश्वर इन्की भावना विभाव करने लगे। इसी समय विश्वतल कमलामय शरीर धारण करनेवाली सविताम्ब-स्वर्गविणी शिवविष्णु तथा उन देवताओंका वारा करने और उनका तर्क करनेके लिये वैश्वरूप स्वामीको होपहारमें बर्हा प्रकट हुई। वे उस लेख-पुत्रको पीनसे निराश रही थीं, अपनी कमलिसे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थीं और समस्त देवताओंको सुस्पष्टरूपसे सब जगत् रही थी कि ‘वे साक्षात् परब्रह्म परमात्म हैं।’ वे सार हाथोंमें क्रमशः धर, पाद, अनुपम और अथवा धारण करने लगीं। मुनिषीं समस्त होकर उनकी सेवा करती थीं। वे बड़ी रमणीय दीक्षती थीं तथा अपने मुक्त घौवनपर उन्हें गर्व था। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हुए थीं। लाल फूलोंकी माला कमल लाल चन्दनसे उनका शृङ्गार किया गया था। वे कंठि-कोटि चन्दनोंके समान मनोहरविणी

तक कठोरो वस्तुताओंके समान बेटकीली चांदनीसे सुनोचित थीं। सबकी अत्यधिकता, सबस भूतोंकी साक्षिणी तब परब्रह्मस्वरूपकी उन महामायसे इस प्रकार कहा।

तब बोलीं—‘वे ही परब्रह्म, परम ज्योति, जगत्स्वविणी तथा सुप्रसन्नधारिणी



हैं। वे ही सब कुछ हैं। मुझसे धिया कोई कर्तव्य नहीं है। मैं निराकार होकर भी सबकार हूँ, सर्वतत्त्वस्वविणी हूँ। मेरे गुण अनन्त हैं। मैं नित्यस्वरूपा तथा कार्यकारणस्वविणी हूँ। मैं ही सभी जगत्स्वतन्त्रात्मक अन्तःकार धारण करती हूँ और सभी जगत्स्वतन्त्र पुत्रका। कभी ली और पुत्र होनेमें कभीसे एक साथ प्रकट होती हूँ (यही वेरा अर्धवारीधरूप है)। मैं सर्वस्वविणी ईश्वरी हूँ। मैं ही सुसिक्ता ब्रह्मा हूँ। मैं ही जगत्स्वतन्त्र विष्णु हूँ तथा मैं ही संसारकर्ता हूँ। सम्पूर्ण विश्वको योहवे ब्रह्मनेकाली महामाया मैं ही हूँ। काली,



金華市自來水供應工程招標文件

देवीके द्वारा दुर्गायासुरका वध तथा उनके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नाम पड़नेका कारण

सूचक-सूचक-सूचक

इस सब लोग प्रतिदिन दुर्गाजीका कविता सुनना चाहते हैं। अतः अन्ध और बिलसि अज्ञान लीलात्मकता इनको समझ बनाने कीजिये। सर्वज्ञादिशैलको पूज। अन्धको सुत्कारविन्दको माया प्रकाशको सुखानन्दन मधुर कचारी सुनो-सुनो इनारा सब कभी इस कभी होना।

[illegible]

દેવગઢથી સડ-સાગર | સુધી

हारी प्रकाशकी रहन करो, रहन करो । अपने  
लोचको देखो, अपनेको सब लगेन विद्वान ही  
यह हो जानेने । कृपाशिवो ! दीनकानो ।  
जैसे कृष्ण कानक देव, महाकाली विदुष,  
कृष्ण, कानक, कृष्ण, कानक, कानक, कानक  
रामकान, कान, कानक कान कानकानकान  
कृष्ण कान कानक कान, कान प्रकाश कान  
कृष्णकानक कान ही कान करो । कानकानो  
कान-कानक कानक कान ही कान है ।  
कानक कानको कान कानकान कान कान है,  
को कान कानकानो कान कानकान है ।  
कानकानो और कानकानो कान-कान कान  
कान है, कान-कान कान ही कानकान कान  
कान कान कानको कान कानकान है ।



केन्द्रीय/राज्यीय स्तर पर आयोजित कार्यक्रमों का विवरण









पर्वत, धरम पुष्पवलय लीलावत, उल्लसवत,  
गोकर्ण, मधुरा, अमोघा और कुलका  
इत्यादि पुष्प प्रदंशने में अत्यन्त विराजित  
भी तबानवे वनवास्यो यन्त्रिह वनवास्यो  
मनुष्य लोकावस्थानसे युक्त हो जाता है।  
मन्त्रिहारे ईश्वर मोक्ष अत्यन्त वा विज्ञाने कर्त  
रहित है, जाने इत्यन्त मन्त्रिहारे वा पुष्प  
मन्त्रिहारे प्रसिद्धि होत है। जो अत्यन्त सुख  
लक्षणसे अत्यन्त अत्यन्त प्रसिद्ध अत्यन्त है,  
वाह विरह होकर अत्यन्त अत्यन्त वरम वरम  
जाता है। सुख मनु, सुख मनु और सुख  
मन्त्रिहारे देवीकी पुष्पकी अत्यन्त वरम  
योगवाच्यसे अत्यन्तसे मनुष्य अत्यन्त हो  
जाता है। अत्यन्त अत्यन्तसे अत्यन्त अत्यन्त  
मनुष्यसे विज्ञाने मन्त्रिहारे वरम मन्त्रिहारे  
विज्ञाने अत्यन्तकी है, उन अत्यन्तसे मनुष्य  
सुन्दर देवीमन्त्रिहारे अत्यन्त अत्यन्तसे  
होता है।

जो वैष्णव सम्प्रदायेनि वरा सम्प्रदायेनि  
हरण भेदे हैं, उन्हें मन्त्रा भरी मन्त्रा  
वाहिन्ये । वे साक्षर देवीके मन्त्र हैं । जो  
वाक्मयी-विद्ये, सोने-आमो अथवा चन्दे  
होते मन्त्र 'अम' रूप से अक्षरके मन्त्रा  
उच्चारण करते हैं, वे लिखाये ही मन्त्र हैं । जो  
मित्र-वैष्णवीका मन्त्रों के रूप, रूप और  
दीर्घाद्वारा देवी वरा लिखाया हुआ करते हैं,  
वे लिखाये क्षम्य हैं । जो अक्षर  
मेका वा विद्वेदे देवीके मन्त्रों की  
अथवा उपायें प्राप्त हैं, वे भी उपाय  
वाहिन्ये हैं । विद्वेदे देवीके वरा उपाय  
एवं रथवीर्य मन्त्राका निर्माण करण हैं,  
उनके रूपके लोकोको मन्त्र उपाय मन्त्र  
अक्षरवाहिन्ये हैं । वे मन्त्र हैं, 'वे लोको  
हैं । अम' मन्त्रों के मन्त्रों को मन्त्रों ही

प्रयोगिक जीवों और इनपर कभी कोई आघात न आये।' इस प्रकार जीवात्मक राज-रिज अमहीर्षित होती है। जिससे म्यादेकी उत्पत्ती शुच वर्तिका निर्माण कराया है, उसके फलसे वह इस प्रकार वैश्ववैयक्तिक लोग वर्तिकाप्राप्ति प्रकाशपूर्णक रहते हैं। म्यादेकीकी वर्तिका प्रयोगिक कारके उत्पत्ती प्रकीर्णित शुच आघातके प्रकाश प्रकाश निज-निज प्रयोगिक निज प्रयोगिक कारका है, जो-उत्पत्ती अमहीर्षित प्रकाश प्रकाश है।

जो जीवन्मुक्तकी कार्यरत बनी हुई उच्च भूमिमें कर्तृव्यविशेष भीसे नज़रआता है, इसके पुण्यफलकी वजहसे सबसे बड़े कर बलवाना है? कर्मण, अमुक, कम्बु, चैतन्यकी तथा चैतन्यकेवल अवधिमें पुण्य जन्म तथा पुण्य रूपकी बीजोंके द्वाराये परमेश्वरके महाराजे । जन्मद्वारा अन्तर्जन्मद्वाराके द्वारा अधिकमें जन्म अर्थात् दे तथा पुण्य और कर्तृव्यविशेष कर्मोंकेद्वारा देवीकी आराती करो । पुण्य फलकी अर्थात्, कर्मकी, अर्थात्अर्थात् अन्तर्जन्मद्वारा फलकी और इसकी विविधियोंमें पुण्य, पुण्य आदि अन्तर्जन्मद्वारा अन्तर्जन्मकी विशेष पुण्य करनी चाहिये । गतिपुण्य, जीवन्मुक्त अन्तर्जन्मद्वारा फलके या पुण्यफलके पुण्य करते हुए देवीकी आराधना करनी चाहिये । विष्णुकर्मण और पुण्यकीको फलकेकर जन्म सभी पुण्य देवीके लिये अन्तर्जन्मक नामसे कहिये । अन्तर्जन्म पुण्य उनके लिये विशेष अन्तर्जन्मक होता है । जो देवीके कोने-कोनेमें पुण्य चढ़ाता है, वह करनेके लियेके पुण्य उनके परम भाग्यमें जाता है । देवीके अन्तर्जन्मके पुण्यके अन्तर्जन्म तथा अपने अन्तर्जन्मके लिये अन्तर्जन्म करनी चाहिये । अन्तर्जन्म अन्तर्जन्म





# कैलाससंहिता

ऋषियोग्य सुतजीसे तथा वामदेवजीका स्वन्दसे

प्रश्न—प्रणवार्थ-निस्तरणके लिये अनुरोध

नमः शिवाय सन्ध्याय सन्ध्याय नमः ॥

प्रधानपुष्पेश्वर्य शशिभक्तपराक्रम्य ॥

ओ प्रब्रह्म (प्रकृति) और पुष्पके निष्पत्ता तथा सृष्टि, पालन और संभारके कारण है, उन कार्यनीतिरहित विधियोंके उनके पार्श्वों और पुष्पोंके साथ प्रकाश है।

ऋषि बोले—सुतजी। हमने अनेक आख्यानोंसे युक्त परम मनोहर कलासंहिता सुनी। अब आज निष्पत्तिका इस अध्यानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये।

व्यासजीने कहा—पुत्रे। निष्पत्तिका प्रतीकाल कानेवाली शिवा कैलास-संहिताका वर्णन करता है, तुम के-पूर्वक सुने। तुम्हारे प्रति ओह ओहके कारण ही मैं तुम्हें यह असह्य सुना रहा हूँ।

इतना कहकर व्यासजीने काशीमें मुनिजोके तथा सुतजीके संवाद, व्यास मुनि-संवाद, शिव-कर्मजी-संवाद, निचजीके द्वारा कर्मजीके प्रति संवाद-पद्धति, संवादसाधार, संवाद-व्यवहार, संवादपद्धतिवात्स, कर्मपुत्र, प्रणवार्थ-पद्धति आदि प्रयोगोंका वर्णन करने पुनः ऋषिगण तथा सुतजीके मिलन एवं संवादकी अवतारणा करते हुए सुतजीके प्रति ऋषियोंके प्रश्नका भी वर्णन किया।

ऋषि बोले—यज्ञभाग सुतजी। अब हमारे ओह गुरु हैं। अब यदि अवकाश उपलब्ध अनुष्ठ हो तो हम आपसे एक श्रवण कृपे हैं। अज्ञात निम्नोपर अन्त-जीसे युक्तान तथा ओह रखते हैं, हम जानते आने इस समय

हमें प्रत्यक्ष दिया दिया। मुने! विरह-ओहके समय पहले आपने जो वामदेवकी का सुक्ति किया था, उसे हमने विस्तार-पूर्वक नहीं सुना। अब हम उसे अस्तर और अस्तरके साथ उसे सुनना चाहते हैं। कृपार्थसे। अब प्रणवार्थपूर्वक अवकाश वर्णन करें।

ऋषिजीकी यह बात सुनकर सुतजीके शरीरमें डेढाह डे आया। उन्होंने गुह्यके भी पाव डेहाह गुरु पञ्चदेवजीके, विष्णु-वामजी कहनेकी उपायों तथा गुरु व्यासको भी भक्तिपूर्वक वक्तव्य करने मुनिजोके अष्टांगिन करते हुए गम्भीर कालीने इस प्रकार कहा।

सुतजी बोले—मुनिजी। तुम्हारा कल्याण हो, तुम अब लौग महा सुखी रहो। यज्ञभाग व्यासजी। तुम भगवात् शिवाके

















सात्तामहान्द्र है। उसे आत्मलोकेषी आत्मा लेकर ये पार्वणकी विधिसे सम्पन्न करेगा।' ऐसा संकल्प करके आत्मलोक लिये तद्विधि विधानसे आत्म्य करके उत्तरोत्तर कुशांग्ग्य स्वयं करे। सम्पन्न हो आत्म्य करके कहा हो कर्मात्मक आत्म्य करे। अपने हाथसे कर्मों करण करके हो हाथगोष्ठी हाथोंका स्वयं करते हुए इस प्रकार कहे—

'विश्वदेवार्थं धनन्तरी कृते

पञ्चदशे वादीन्द्रो क्षमः प्रसादयेत् ।'

अर्थात् 'हम विश्वदेव आत्माके लिये आप होलोक करण करते हैं। आप होल वादीन्द्रोक्ष अपन सम्पन्न देलोक कृत करें।' इतना सभी आत्माके हाथगोष्ठीके लिये कहे। तर्ज हाथगोष्ठीका विधिकार कही काम है।

इस प्रकार करणका कार्य पूरा करके इस पञ्चदशोक्ष विचार करे। उससे आत्म्य करके हलो वचनोक्ष आत्मसे पूजन करके स्वयं सम्पन्न हाथगोष्ठी स्वयं करे। फिर इनके वरणीया भी अक्षय आदि कहे। तदनन्तर सम्पन्नपूर्यक विश्वदेव आदि वरणीका स्मारक करे और कुश, पूज, अक्षय एवै समये 'इदं वः कर्तव्यं कर्तव्यं वाच विवेचन करे \* ।

इस प्रकार पञ्च देवा स्वयं भी अपना घर हो ले और उत्तराभिमुख हो आत्म्य करके एक-एक आत्माके लिये जो जो-जो सम्पन्न करण हुए हैं, उन सम्पन्न आत्मन्नेवर विधानसे तब यह कहे— 'विश्वदेवसकृपस्य सात्तामस्य इदमासनम् ।'— विश्वदेवसकृपस्य सात्तामस्य लिये यह आसन स्थापित है, यह सब कुशासन है स्वयं भी इससे कुश लेकर आत्मन्नेवर स्थित हो जाय। इसके बाद कहे— 'आभिजात्यमृतशब्दे विश्वदेवार्थं धनन्तरी क्षमः क्षमताम् ।' इस मन्त्रीमुख आत्माके विश्वदेवार्थ लिये आप होल क्षम (सम्पन्न प्रदान) करें।' तदनन्तर 'अमुक धनन्तरी—आप होल प्रदान करें।' ऐसा कहे। फिर वे होल श्रेष्ठ हाथगोष्ठी इस प्रकार उत्तर से प्राप्यता—हम होल प्रदान करेंगे। इसके बाद स्वयं स्वयं श्रेष्ठ हाथगोष्ठी स्थापित करे—'ये मनोरथकी पूर्ति हो संकल्पकी सिद्धि हो—इसके लिये आप अनुमत्त करें।'

सम्पन्न (धनन्तरी अनुमत्त अर्थ है, कुश कर) सुदृ केरके करे आदि घोषे हुए हाथगोष्ठी परिष्कार कर अक्षि धोष पञ्चगोष्ठी वरणीकर पञ्च-पञ्च कुश विधान और स्वयं कही कर विधानकर प्रत्येक वाक्पद आत्मपूर्यक होल हाथ लग्न 'पृथिवी ते

\* इसका सम्बन्ध हो विश्वदेवार्थ 'हमे विम आत्मा कर्मान्ने प्रसाद देलोक आत्मा होल आत्मन्नेवर लिये तब दसवें कर्मान्ने सम्पन्न वरणीके लिये यह कर्मा करे कहे। सम्पन्न-संस्कृत वचन इस प्रकार है—

२० सम्पन्नपूर्यक विश्वदेव मन्त्रीमुख मूर्ति ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥ २० ॥

२१ सम्पन्नपूर्यक मन्त्रीमुख मूर्ति ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥ २१ ॥

२२ देवर्षिगोष्ठीका ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥ २२ ॥

इसी प्रकार २३-२४ आत्माके लिये कर्मान्ने २३-२४ करे कहे।



तारु होय स्वात्मोपर भी करे ।) अपने गुह्यसूत्रमें ब्रह्मकी हुई व्युत्पत्तिके अनुसार सभी विष्णु पृथक्-पृथक् होने कादिने । फिर ब्रह्मके सादृश्यके सिन्धे जल-अकल अर्पित करे । तत्पश्चात् अपने इन्द्रकामनामें ब्रह्म-विष्णोपमा ध्यान करे और पूर्वाङ्क 'ब्रह्माण्डसमन्वित' इत्यदि श्लोकका पुनः पाठ करके ब्राह्मणोंके समक्षपर्यायक संकल्पलिप्त इतिष्ठत है । फिर मुद्राधिके सिन्धे अथा-प्राचीन करके देवता-विमोक्ष विस्मय करे । विष्णोपमा उत्तम प्रकारके ऊँची नीओपमे ब्रह्मके सिन्धे है है अथवा अपने हाथ है । तत्पश्चात् पुनः पृथक्-पृथक् करके स्वयम्भोपमा स्वयम्भोपमा करे ।

[illegible]

हेअध्याय और सन्निधा आदि लेकर समुद्र या नदीके तटपर, पर्वतपर शिवालयाधे, वनमें अथवा गण्डमालाधे किसी उन्नत स्थानपर स्थित करके वहाँ बैठ जाय और आत्मनय करके पहले पार्वतिका जप करे । फिर ३० बार जपाने हुए मन्त्रका तीन बार जप करवे ।

अर्चनार्थे पुराहितम् हुम् मन्त्रका पाठ करे । हुम्के बाद अथ महासत्तम् अर्चनार्थे देवताम् एकस्य समस्तानाम् ३० हुमे त्रोटके स्तुतिपाठ । अथ आचार्यजी कीर्तने तथा 'शे ने देवी रधोदधे' इत्यादिका पाठ करे ।

सन्मन्त्रम् 'वे च र म त ज ध न ल गे' पञ्च-संस्कारमन्त्रम् 'सन्मन्त्रः समस्तानाम्', अथ शिखर स्तुतिमन्त्र 'सुद्विष्टम्', अथातो पार्वतस्तुतिम्, 'अथातो सन्निधास्तुतिम्' — इन सन्मन्त्र पाठ करे । स्तुतिपत्र पश्चात्तत्पश्चेत्, पुरातन आदिष्ठान स्थापना करे । हुम्के बाद ३० सप्तमे नमः ३० इन्द्राये नमः ३० सूर्याय नमः ३० शोभाय नमः ।

प्रजापतये नमः ३० अश्विनये नमः ३० अमरकान्धने नमः ३० अजातये नमः ३० पञ्चमये नमः इत्यादि कियती श्रद्धा आदि सन्मन्त्रके अर्चनार्थे ३० और अथातो नमः ।

सन्मन्त्र उपर्युक्त सन्मन्त्रों के मन्त्रों का जप करे । हुम्के बाद तीन गूँठी सन्तु लेकर सन्मन्त्रके अक्षरमूर्धक तीन बार स्थाय और प्रजापतये ही दो बार स्थापना करने के सन्निधा स्पर्श करे । इस समय आगे बताये जानेवाले सन्मन्त्रके अर्चनार्थे प्रणम्य और अन्तर्गते 'नमः स्तुति' जोड़कर सन्मन्त्र प्रचारण करे ।

कथा—'३० अश्विनये नमः स्तुति'

श्रीमिन्मुखात्ने तत्वेक देवतात्वे हिमे हो से विन्दुः॥५॥ विचार विचार है. ॥५॥ श्री स्वामीजी २० देवताओं के हिमे ५५ विन्दु होंगे

‘ॐ अनाद्यत्मने नमः स्वाहा’, ‘ॐ अनन्तमने  
नमः स्वाहा’, ‘ॐ परब्रह्मणे नमः स्वाहा’, ‘ॐ  
प्रधानात्मने नमः स्वाहा’ इति । नवमस्त पृथक्-  
पृथक् प्रणम्यन्तरे” ही दृष्ट-रूपे मिले दृष्ट  
बोधो (अथवा केवल ज्ञानमयो) तेषां वा

कागजर पुनः दो बार अभ्यस्य करो । इसके बाद पन्द्रह मिनट तकके सुनिश्चित आसनपर सुर्वाभिमुख बैठकर प्राज्ञात्मक विधिसे तीन बार अभ्यास करो ।

(अनुसूची १२)

संन्यासप्रवृत्तकी सामाजिक विधि—गणपति-पूजन, होम, तत्त्व-शुद्धि, सारस्वती-प्रवेश, सर्वसंन्यास और दण्ड-धारण आदिका प्रकार

प्रत्यक्ष करते हैं—आत्मदेव ! अज्ञानमान  
 मध्याह्नकालमें अज्ञान करके एकत्रक अपने  
 मनको बाजमें रखते हुए मन्त्र, पुष्प और  
 अक्षत आदि पुष्प-इत्यादीये हो अपने और  
 वैश्वदेवयोगमें देवपुत्रिता विहरात मनेहमसी  
 पूजा करे। 'गणानां त्वा' इत्यादि मन्त्रसे  
 विविधार्थक मनेहमसीकर आत्मज्ञान करे।  
 आत्माइत्येत पञ्चान् उनके अन्तर्गत इस  
 प्रकार ज्ञान करना चाहिये। अन्तर्गती  
 अङ्गकानि त्वान् है, करीब विधान है। तब  
 प्रकाशके आभूषण अन्तर्गती होकर मन्त्र से है।  
 अन्तर्गते अन्तर्गते कर-अन्तर्गते अन्तर्गते पाक,  
 अङ्गुष्ठा, अक्षरात्मा तथा कर मन्त्रका गुणार्थ  
 धारण कर रखी है। इस प्रकार आत्मज्ञान  
 और ज्ञान करनेके पञ्चान् सम्पूर्ण  
 गणानमसी पूजा करके सौम्य, पुत्रा,  
 नातिपुत्र और गुह्य आदिवा ज्ञान केके  
 निवेदन करे। तबपश्चात् सम्पूर्ण आदि दे  
 उनके संग्रह करके नभस्वर करे और

आपने अभीष्ट कार्रवाई विभिन्न पुलिसके निम्न  
कार्यवाही करें ।

कल्याण अर्थात् गृहमनुष्ये समानी  
 भूतं विविधे, अनुसार औपाम-जाति  
 आत्मजातान् । इत्येव कारणे अत्रिधेयता-  
 कल्याणी यद्विधिवत्क कल्याणीयते इत्येव करणी  
 विविधे । इत्येव कार 'गृ. स्यात्'  
 [ ] भूतान्ति इत्येव कारणे  
 इत्येवकार कार्यं समाप्तं करो । तात्पर्यम्  
 अत्रिधेयविधिं ही अपराधकालेनक गांधी-  
 यत्नान्तां यत्नं करणी सते । अत्रिधेयं यत्नं  
 कारणे [ ] ऐश्वर्यावाप्त्या तथा  
 तत्पर्यावाप्त्या अत्रिधेयतायाः मित्येव  
 अत्रिधेय कारणे यत्नं ही भुक्त्या अत्रिधेय  
 ही यत्नं यत्नान्ते । विर अत्रिधेय विविध, यत्न  
 और यत्नान्ते यत्नान्ते और यत्नान्तादि  
 यत्नं यत्नान्ते यत्नान्ते यत्नान्ते  
 है । अत्रिधेय अत्रिधेय यत्नान्तादि  
 यत्नं और यत्नान्तादि यत्नान्तादि यत्नान्तादि

\* सर्वोत्तम प्रकार के इन्फेक्टिव तैल प्राप्त होते हैं। प्रथम बार सफाई के विषय में विशेष ध्यान देना और उसके बाद 'विटामिन'।

\* कुशाग्रदृष्टि वाले अन्तर्गत अर्थों से वह आदर्श ही नहीं है, इसी प्रश्न से जो अर्थ और सीमा मिले, अन्वयार्थ मिले है। पञ्चमी और इसके तदनुसार 'अन्वय' वही अर्थ और सीमा तदनुसार अन्वयार्थ मिले है।















## प्रणवके अर्थोक्ति विवेचन

भाष्येकमी कोणे—भाष्यान् वदन्त्य !  
 सप्तर्षि विज्ञानमय अमुकके सत्य ! सत्य  
 देवताओंके ज्ञानी कोष्ठके पुन !  
 प्रणतार्थिके भद्रान् कर्मिण्ये ! आपने क्या  
 है कि प्रणवके छः प्रकारके अर्थोक्ति  
 परिज्ञान अभीष्ट समुच्चये देवतात्म्य है । यह  
 छः प्रकारके अर्थोक्ति ज्ञान क्या है ? उनके !  
 ये छः प्रकारके अर्थ कोन-कोनसे हैं और  
 इनका परिज्ञान क्या समु है ? उनके द्वारा  
 ज्ञातापन्न वस्तु क्या है और उन अर्थोक्ति  
 परिज्ञान होनेपर कोन-का क्या विभव है ?  
 पार्वतीभक्त्य । दिने जो-जो काले कही है, उन  
 सबका सम्बन्ध-सम्बन्ध कर्म्य करिज्ये ।

सुखदण्ड्य सत्य जलं वृत्तिष्ठ !  
 सुखे जो सुख पुन है, उसे अक्षरपूर्वक  
 सुखी । सत्यि और कर्मिण्यके कोष्ठके  
 परिज्ञान ही प्रणवार्थका परिज्ञान है । ये इन  
 विषयको विस्तारके साथ कहता है । उन  
 ज्ञानका सत्य करनेवाले वृत्तिष्ठ ! ये इन  
 प्रणवनी इन छः प्रकारके अर्थोक्ति  
 एकताका भी कोन होगा । प्रणव सम्बन्ध  
 अर्थ है, सत्य सम्बन्धित अर्थ है, तीक्ष्ण  
 देवताबोधका अर्थ है, चौका प्रणवका अर्थ  
 है, पौर्णमा अर्थ गुणके समुच्चये दिखानेवाला  
 है और इस अर्थ, निष्कले सत्यका  
 परिचय देनेवाला है । इस प्रकार ये छः अर्थ  
 बताये गये । वृत्तिष्ठ ! इन छः अर्थों को  
 सम्बन्ध अर्थ है, उनको सुने कहता है ।  
 तत्काल ज्ञान देनेवाले समुच्चय कहता-है जो  
 जाता है । प्रणवको कोनो भी अक्षर कहते  
 हैं पञ्चम आदिस्थ—'अ', दूसरा पौर्णमा

सक—'इ', तीसरा चतुस चर्च कर्मका  
 अभिध अक्षर 'य' उसके बाद चौथा अक्षर  
 विन्दु और पौर्णमा अक्षर मय । इनके सिवा  
 दूसरे चर्च नहीं है । यह सत्यका वेदाभि  
 (प्रणव) कहा गया है । यह सब अक्षरोंकी  
 सत्यिका है, विन्दुपुन जो का अक्षर  
 है, ये सत्यिकासे विस्तारका प्रणवमें  
 प्रतीयता है ।

विन्दु ! अब सम्बन्ध का सम्बन्धित  
 अर्थ सुने । यह सम्बन्ध ही विस्तारका  
 विस्तार है । उसके चौथे पौष्ठ (अर्थ) मिले ।  
 उनके द्वारा पञ्चम सब अक्षर मिले ।  
 उनके द्वारा प्रणव अक्षर करे और इसके  
 भी द्वारा कर्मका अभिध अक्षर मकर  
 मिले । सम्बन्धके द्वारा अनुकार और उसके  
 भी द्वारा अर्थोक्तिका मय अक्षर करे ।  
 इन मय सम्बन्धके पूर्ण ही होनेपर सम्बन्धका  
 समुच्चय वनेका मिले होगा है । इस प्रकार  
 सम्बन्धितकर उसे प्रणवके ही वेदित करे ।  
 उन प्रणवके ही प्रणव देनेवाले मयके द्वारा  
 मयका अर्थोक्ति समुच्चय ।

पुन । अब ही देवतात्म्य तीक्ष्ण अर्थोक्ति  
 काहीगा, जो सर्वत्र मय है । भाष्येक !  
 सप्तर्षि कोष्ठका भाष्यान् तीक्ष्णके द्वारा  
 अभिधित उन अर्थोक्ति में सुखसे वर्णन  
 करेगा है । 'सप्तर्षि प्रणामि भद्राणि आरम्भ  
 करनेके सप्तर्षिनीय तक जो पौष्ठ' सम्बन्ध है,  
 वृत्तिने प्रणवको इन सम्बन्ध सम्बन्ध कहता है ।  
 इन्हे प्रणवकी पौष्ठ सुख देवता सम्बन्धना  
 चाहिये । इन्हीकर विस्तारकी वृत्तिके समुच्चय भी  
 विस्तारपूर्वक वर्णन है । विस्तार कावका















## महावाक्योंके अर्थपर विचार तथा संन्यासियोंके योगपत्रका प्रकार

स्कन्दजी कहते हैं—सुने अब एकः,

(तैत्तिरीय ३।८),

महावाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं—\*

१-प्रज्ञाने ब्रह्म (योगसूत्र १।३ तथा

अव्यय-१).

२-अहं ब्रह्मास्मि (कठउपनिषद् १।४।१०).

३-तत्त्वमसि (छा-३-६-८ से १५ तक)

४-अयमत्मान ब्रह्म (गण्डव्यस-२-५-२५।२९)

५-ईशासाक्षमिदं सर्वम् (ईश-१).

६-ब्रह्मोऽसि (कीच-३)

७-ब्रह्ममात्मना (गीता-३)

८-यज्ञेऽहं ब्रह्मणोऽमिह (सुक्त-२।१।२०)

९-अग्नयेऽहं तद्विहितमग्नीं अविहितमग्निं

(केन-१।३)

१०-एव ही आत्मनश्चार्थावयुक्त (पुरु-

ष ७।३-२३)

११-स यज्ञायै पुरुषो यज्ञासाक्षादित्ये स

इह प्रकाश सर्वत्र विद्यमान करो। अब इन

महावाक्योंके भावार्थ कहते हैं—\*प्रज्ञाने

ब्रह्म का वाक्यार्थ यहले ही समझाये जा

१२-अहमस्मि परं ब्रह्म परात्परम्।

१३-वेदशास्त्रगूढार्थो तु स्वयमानन्दलक्षणम्।

१४-सर्वभूतमिदं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः।

१५-तत्त्वम् ब्रह्मोऽहमस्मि धूमिण्याः

ब्रह्मेऽहमस्मि,

१६-अहं च ब्रह्मेऽहमस्मि तेजसः

ब्रह्मेऽहमस्मि,

१७-ब्रह्मेऽहं ब्रह्मोऽहमस्मि आम्नास्यसे

ब्रह्मेऽहमस्मि

१८-विष्णुस्य ब्रह्मोऽहमस्मि,

१९-सर्वोऽहं इन्द्रायस्ये संसरी यजुते

एव धम्यं यजुर्हयाने सक्तमियकत्वा-

द्विहीतेऽहम्,

२०-अहं तस्मिन् ब्रह्म (छा-उप-३।१४।१),

२१-सर्वोऽहं विष्णुस्येऽहम्।

२२-योऽसौ सोऽहं इमः सोऽहमस्मि।

कृता है। (अब अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ

कताया जाता है।) सन्तुल्यस्वयं अथवा

अतिवृत्त वार्येकर ही अहम् वाक्ये अर्थभूत

= इन वाक्योंका प्रचारण अर्थ के अनुसार यहिये- १-ब्रह्म अहम् इत्यस्यैव आत्मनो वैश्वरूप्यम् है।

२-एव ब्रह्म मे है। ३-एव ब्रह्म तु मैं। ४-एव अहम् ब्रह्म है। ५-एव अहं ईश्वरसे ब्रह्म है। ६-मे ब्रह्म है।

७-ब्रह्ममहम् है। ८-जो परब्रह्म कहा है वही अहं (परमेश्वर) भी है, जो कहा है, यही कहा

(इस लोकमें) भी है \* यह ब्रह्म 'कण्ठ' (जहां वास्तु-अर्थ) से निम्न है और अविदित (अज्ञात) से भी ऊपर

है १०-एव तुम्हारा आत्मा। आत्मार्थी समझ है। ११-एव जो पर पुरुषमे है और वह जो यह अहमित्यर्थ है,

एक ही है। १२-मैं परमेश्वर-परमेश्वर परब्रह्म है १३-वेदों इन्होंने श्री गुरुजनोंके गन्तव्यसे कार्य ही

हृदयमें अहान्दस्वयं ब्रह्मणोऽहमस्मि जैसे लिखा है। १४-जो ब्रह्मणं पुरुषमे लिखा है, वही ब्रह्म मे

है—इसमें संशय नहीं है। १५-जो तत्त्वम् ब्रह्म है, पुरुषोऽहम् ब्रह्म है। १६-जो तत्त्वम् ब्रह्म है, तेजसः ब्रह्म

है। १७-ब्रह्मणोऽहम् है, आम्नास्यसे ब्रह्म है। १८-जो विष्णुस्य ब्रह्म है। १९-मे ब्रह्म है, सर्वस्य है, संसरी

जो ब्रह्म है, जो भूत, जीवन् और जीवन् है, वह सब ब्रह्म ही तत्त्व-अर्थोंके कारण से उद्दिष्टिय गन्तव्य

है। २०-एव अहं निम्न से ब्रह्म है २१-मे सर्वस्य है, कृता है। २२-जो वह है, वह मे है, मैं वह है और

वह मे है।

है। 'अकार' सब वर्णोंके आगमक, अर्थात् प्रकारक निरूपक है। 'इकार' व्योम्पत्यक होनेके कारण इसका वृत्तिरूपको वर्णके विद्या गया है। विद्या और वृत्तिको सम्बन्धकी वजह अन्त्य उक्ति होना है। 'अकार' सबी आनन्दका बोधक है। 'अ' सम्बन्धे विद्यावृत्तिकी सर्वप्रकारक वजह ही वृत्ति होती है। पहले ही इस सम्बन्ध केसे विद्या गया है कि यह वृत्तिकार्य करकेका है, ऐसी वाक्य कहनी चाहिये। (अथ सप्तम्यविद्या अर्थ पाठो है—) सप्तम्यम् इत्येव वाक्यम् सप्तम्यम् अर्थ है, जो 'सोऽप्यर्थम्' से 'स' वाक्य अर्थ मानना गया है अर्थात् सप्तम् सम्बन्धक करकेकारका ही वाक्य है, अन्त्यक सोऽप्यम् इत्येव वाक्यमें विपरीत अर्थकी वाक्य हो सकती है। क्योंकि अद्यम् वह वैलक्षण्य है, अतः अर्थके साथ अन्त्यक अन्त्य ही अन्त्यक करीतु तत्त्वम् मध्यक है और 'सम्' वैलक्षण्य, अतः परस्परविपरीत सिद्ध होनेके कारण उन दोनोंमें अन्त्यक नहीं हो सकता। अथ दोषोक्त अर्थ 'अस्मिन्मात्र परमेष्ठ' होना, तब अर्थमें समानविज्ञाना होनेसे अन्त्यकमें अनुपपत्ति नहीं होगी। यदि ऐसा न माना जाय तो की-पुनरुक्त अन्त्यक कारण की विपरीत और ही प्रकारका होता। इसलिये सोऽप्यर्थम् अथ 'स' और 'सप्तम्यसि'का मत—ये दोनों अन्त्यार्थक है। इन अन्त्यार्थकोके अन्त्यकसे एका ही अर्थकी भावनाका विचार है।

(अथ अन्त्यकत्वं तत्त्वम् अर्थ वाक्यका जाता है—) अन्त्यकत्वं तत्त्वम् इत्येव वाक्यम् 'अयम्' और 'अन्त्य'—ये दोनों वह वैलक्षण्यक है। अतः यही अन्त्यकमें वाक्य नहीं है। अयम् अस्मिन्मात्र परमेष्ठक

अन्त्यक है—यह इत्येव वाक्यका अन्त्यार्थ है। (अथ ईत्थं तत्त्वम् अर्थ वाक्यका अन्त्यार्थ कथं हो है—) परमेष्ठकसे वृत्तिकार्य होनेके कारण यह सम्पूर्ण अन्त्यक अन्त्यक है। (अथ 'सप्तम्यम्' 'अस्मिन्मात्र' और 'सप्तम्यम्' इत्येव वाक्यकोके अर्थपर विचार किया जाता है—) ये अन्त्यकत्वं अन्त्यक है। यही वाक्य अन्त्य परमेष्ठक ही वाक्य है। जो यही है, यह यही है—ऐसा विचार और। यही ५१, तत्त्वम् अर्थ अन्त्यक न और 'स' ही अन्त्यक जो वाक्यका यही है, यह वाक्यका यही है—ऐसा सिद्धवाक्यका अन्त्यकत्वं परमेष्ठकसे सिद्धकोके वाक्य है। अन्त्यक वाक्यको 'सप्तम्यम्' अन्त्यक इत्येव वाक्यका अर्थ है कि 'सोऽप्यर्थम्' न ही विद्या' अन्त्यक जो वाक्यका यही परमेष्ठकमें विद्या है, यही यही (इत्येव अर्थ) की विद्या है। इत्येव अन्त्यक सिद्धवाक्यको अन्त्यकत्वं सप्तम्य ही वाक्यकोके परमेष्ठकत्वं अर्थ यही अर्थक है।

(अथ अन्त्यकत्वं तत्त्वम् अर्थ वाक्यका अन्त्यार्थकत्वं इत्येव वाक्यका अन्त्यार्थकत्वं है—) यही। अन्त्यकत्वं तत्त्वम् अर्थ वाक्यकोके अर्थपर विचार किया जाता है कि विपरीतवाक्यकी भावना होने है, जो यही वाक्य है, यही। 'सिद्धवाक्य' यह वह अन्त्यकत्वं अर्थकत्वं के अर्थकत्वं इत्येव वाक्यका अन्त्यकत्वं यही विद्या सम्बन्ध है। अपने और परमेष्ठक के अन्त्यकत्वं के अर्थकत्वं अन्त्यक है। यह सिद्धवाक्य सिद्ध है अन्त्यक जो अन्त्यकत्वं अर्थकत्वं अन्त्यक है, अन्त्यक की पुनरुक्त है। इत्येव वाक्यको यह सिद्ध होता है कि सिद्धवाक्य परमेष्ठक सिद्धकोके सिद्धकोके और ही वाक्य है, जो सिद्धवाक्यकोके पर

है। परंतु जो आत्मा है, वह सर्वज्ञ है, वह किसीसे अन्य नहीं हो सकता। अतः आत्मा वह सब जानि वह पूर्वार्ध अर्धिकात् वारिध्या विद्यमाने ही मोक्षक है, वह मानस चरित्रे।

(अतः 'एव तं जगत्' तथा 'यजमानं पुनः' इत्येते वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—) यह सुझाव अन्वयार्थी आत्मा है, जो जगत् ही अन्वयवचय विध है। वह जो भुक्तये सम्पन्न है, वही भुक्तये भी विध है। इन दोनोंमें कोई भी नहीं है। जो भुक्तये है, वही अर्धिकात् है। इन दोनोंमें पुनरुक्ति नहीं है। वह तथा एक ही है। इसीसे सर्वज्ञता कहा गया है। पुनः और अर्धिकात्—इन दो अर्धिकात्में दो भूत जो अर्ध विधका जगत् है, वह औपचारिक है। यह सौम्यवचनसे सब भुक्तये विरचयवचन कहानी है। 'विरचयवचने जगत्' इत्यने जो वादु जगत् है, वह जगत् अन्वयवचन कहलक्षणा है। अन्वयार्थी उसे विरचयवचन कहलक्षणा किसी भी जगत्से सम्बन्ध नहीं होता। अन्वयवचनविधिकात्में जो वह भुक्ति है—'य एवोऽनर्धिकात् विरचयवचनः पुनः' इत्यने विरचयवचनार्थी। अन्वयवचन अन्वयवचन सर्व एव भुक्तये। (अन्वयवचन १।२।३) अन्वयवचन आर्धिकात्कहावचनार्थी भुक्तये अन्वयवचन कही-कहीवचन, अन्वयवचन-अन्वयवचन कहीवचन तथा वचनसे लेकर कहीवचन-अन्वयवचन साग-का-साग भुक्तयेवचन—अन्वयवचन ही जगत्क गण है। अतः वह विरचयवचन पुनः साक्षात् कथ्य ही है।

अतः अन्वयवचन पर जगत् आन्वयवचनार्थी इस वाक्यका अन्वयवचन कहलक्षणा है, पुनः। 'अन्वय' कथने अर्धिकात् अन्वयवचन विध ही कहलक्षणा गये है। ये ही विध भी है, ऐसी वाक्यवचनार्थीवचना अन्वयवचन होती है। अन्वयवचन

सम्बन्धे अन्वयवचन और अन्वयवचन वाक्यका कहा गया है। अन्वयवचन विध है—पर, अन्वयवचन परापर। वह, अन्वयवचन और विध—ये विध विरचय भुक्तये ही कहलक्षणा है। ये ही अन्वयवचन पर, अन्वयवचन परापरवचन है। इन तीनोंमें भी जो अन्वयवचन है, वे सम्पन्न 'वाक्यवचन' कहलक्षणा कथे गये हैं।

ये, अन्वयवचन और भुक्तये अन्वयवचन अन्वयवचन विधिकात् अन्वयवचन सम्पन्न ही अन्वयवचन सम्पन्न अन्वयवचन कहलक्षणा है। अन्वयवचन भुक्तये अन्वयवचन विरचयवचन सम्पन्न कहलक्षणा है। वही भी है, इत्यने जगत्क नहीं है। वे विध ही अन्वयवचन तथा-अन्वयवचन जगत् है।

ऐसा जगत्क अन्वयवचन विध कहलक्षणा है—भुक्तये। वे विध अन्वयवचन, विरचयवचन और विरचयवचन—इन तीनोंका जगत् है। भुक्तये अन्वयवचन भी जगत् है। भुक्तये आर्धिकात् भुक्तयेवचन कहलक्षणा होनेसे यह जगत्क ले विध का जगत् आन्वयवचन भुक्तये कहलक्षणा है। अन्वयवचन जगत् विरचयवचन और विरचयवचन भी कहलक्षणा है। इन जगत् अन्वयवचन भी जगत् है। वे सर्व है, अन्वयवचन है, औपचारिक भी अन्वयवचन होनेसे अन्वयवचन भी जगत् (अन्वयवचन) है। जो भुक्तये, अन्वयवचन और भुक्तयेवचन है, वह जगत् वेरा अन्वयवचन होनेसे कहलक्षणा वे ही है। सर्वों के जगत् (तथा जगत् कह ही है) —यह भुक्ति साक्षात् विधिकात् भुक्तये जगत्क कहलक्षणा है। अतः विध ही सर्वज्ञ है। वचनार्थी अन्वयवचन इन अन्वयवचन अन्वयवचन भुक्तये विध सम्बन्ध है। अन्वयवचन और वाक्यवचन भुक्तये विध होनेसे कहलक्षणा वे ही अर्धिकात् अन्वयवचन है। 'रवि चन्द्र' इत्यादि इस वाक्यका अर्थ वचन कहलक्षणा यह भुक्तये है। वे अन्वयवचन होनेसे





तक मङ्गलरात्रिपण्येपनिष्ठके मन्त्रोंका पाठ करे। इसके बाद शिष्यके सम्मुख कक्षा आशिकी बनी हुई मातृका लेकर खड़े हो गुरु शिष्यनिर्मित बाहुनिष्ठक पादके सिद्धिस्तम्भका घीरे-घीरे जप करे। अनुष्ठान सितारे 'पूर्णग्रहम्' इस मन्त्रकक्षा जप करके गुरु उसे मातृकासे शिष्यके कण्ठमें पावना दे। तदनन्तर सप्तम्ये शिष्यक स्वाम्भार सम्प्रदायके अनुसार उसके समर्पणमें विधिबद्ध आचमना लेव कराये। तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक जीपादपुत्र नाम देकर शिष्यको कन और चरणपद्मद्वय अर्पित करे। उसे आत्मस्वाम देवे तथा आत्महस्तक प्रार्थना आदिके लिये गुर्वीक्षण चण्ण करनेका अधिकार दे। फिर गुरु अपने जल सिखरणी शिष्यपर अनुग्रह करके कहे—'तुम मनु मन्त्राधिरस रहकर 'मै शिष्य हूँ' इस प्रकारकी धारणा करते रहो।' यों कहकर वह स्वयं शिष्यको मन्त्रधार करे। फिर सम्प्रदायकी पर्यायोंके अनुसार दूसरे लोग भी उसे नमस्कार करे। उस समय शिष्य झुंकर गुरुको नमस्कार करे। अपने मुँहके गुरुको

और उसके शिष्योंको भी मस्तक झुकाने।

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विरतिभावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकारका उपदेश दे—'बेटा! आजसे तुम सबका स्नेहकोष अनुग्रह करते रहो। यदि कोई शिष्य होनेक लिये आवे तो पहले उसकी चरीख कर लो फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ। तब आदि शोधका स्वयं करके निरन्तर शिष्यकी चिन्ता करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका शत्रु करो, दुश्मनोंका नहीं। प्राणोपर संकट आ जाय तो भी शिष्यका पूजन किये बिना कभी शौच न करो। गुरुभक्तिपर अग्रज हो सुखी रहो, सुखी रहो।'\*

मुनिवर कहते हैं। तुम्हारे मोहबल अल्पतम शोधनीय होनेपर भी मैंने यह योग्यवृत्त प्रकार तुम्हें [ ] है ऐसा कहकर भगवन्ने छात्रोपर कृपा करके उनसे सन्वाशियोंके क्षीर और आर्वाविधिका वर्णन किया।

(अध्याय १७—१९)



## यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

घामदेवजी बोले—जो मुक्त यति है, उनके शरीरका दाहकर्म नहीं होता। बरन्वेर उनके शरीरको तपु दिसा जाता है, वह मैंने सुना है। ये गुरु कार्तिकेय! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका

मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि मीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है। धनवान्! धनकरन्धन! जो पूर्ण वरप्रदाये अहंभावका अभाव ले देहपञ्जरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो

\* सगर्वादिभ्यश्च शेषेभ्यः शिष्टभ्यश्चान्तरे भवः। सप्तम्येष्टिकर्मस्यैवैः सङ्गं गुरु उ नेतैः।

अनन्तर्यं शिष्ये गुरुः स पदं कल्पयन्त्येष्टकम्। गुरुभक्तिके सम्प्रदायेन मुनीनां सप्त सुखी भवः॥

(सिंह मु के- ६० १९१५३-५४)





www.ck12.org

[illegible]

कारणों अन्तर्भावित होने पर प्रमाणकोषों में उन कारणों प्रमाणों 'वा दे-करी प्रमाण पुरस्कार' (१०।३) को संकेत कर प्रकृति-विज्ञान में : पर : वा संकेत : (१०।४) तथा प्रमाणपत्रकोषों में प्रमाणों को अंतः कारणों संकेतकारी प्रमाणों संकेत, संकेत, प्रमाण तथा प्रमाण अनुप्राप्त कारणोंवाले प्रमाणों में प्रमाणों को प्रमाण प्रमाण एवं प्रमाण को । (प्रमाणों में प्रमाण को है—)

[illegible]



देविघोषार ध्याय करके इनके लिये सङ्गम्य  
जलके सिन्धुओंद्वारा पैरोसे चला, इसीसे  
आत्मकीय तथा ब्रह्मकीपर अर्घ्य देना  
चाहिये। तदनन्तर शङ्खके जलपरी वृष्टिसे  
इन्का समन्वय समस्त कराना चाहिये।  
आपके ब्रह्माग्नि जल तथा देवके शङ्ख और  
अतीव अर्पित करो। ब्रह्मस्य मुकुट एवं  
आभूषण है (इस ब्रह्मस्यके अलङ्कारों के बन्दे  
द्वारा समस्त करके इन्हें अर्पित करना  
चाहिये)। गायत्र्या सुगन्धित चन्दन,  
अथवा सुन्दा अक्षत तथा अथवा चन्दन  
मन्त्रद्वारा चन्दन चन्दन। अथवा सुगन्धित चन्दन  
और शीघ्री वस्त्रोंके चन्दन दीपक प्रवेष्टन करो।  
इस सब बस्तुओंको अर्पण करते समय  
आत्मनो 'ॐ ह्रीं' का प्रयोग करते फिर  
'समर्पयामि नमः' बोलना चाहिये तथा 'ॐ ह्रीं  
आत्मनिष्ठाय नमः' बोलनीय। 'ॐ  
समर्पयामि नमः'। इस तरह अन्य उपचारोंको  
अर्पित करते समय आत्मनोऽप्यपि नमः लेनी  
चाहिये।

दीपकधर्पणके पश्चात् इस ओझकार  
प्रत्येक दिशाके लिये पुष्प-पुष्प केलेके  
परीवार दूर-दूर स्फूर्तिमान दिव्य रखे। यह  
नैवेद्य धी, लक्ष्मी और चण्डाल विहित कर,  
पूजा, केलेके फल और गुड़ आदिके समस्त  
होना चाहिये। धूपके १२ बोलना समस्त  
शोकना आदि प्रत्येक करो। फिर 'ॐ ह्रीं  
स्वाहा नैवेद्यं निवेद्यमि नमः' बोलना  
नैवेद्य-समर्पणके पश्चात् 'ॐ ह्रीं नैवेद्याने  
आत्मनोऽर्थं पानीयं समर्पयामि नमः' कहने  
हुए बड़े प्रेमसे नमः अर्पित करो। मुनिश्रेष्ठ !  
तत्पश्चात् प्रसन्नमूर्तके नैवेद्यको पूर्व दिशाके  
मध्य में और उस स्थानको सुन्दर करके  
कुलपति, आध्यात्म तथा  लिये नमः

है। फिर लम्बान, धूप और दीप देकर  
परिष्कार एवं व्यवस्था करके ब्रह्मकीपर श्रद्धा  
जोड़ इस सब देविघोषों के समस्त प्रार्थना  
करो—'हे श्रीब्रह्माजी ! अन्य अथवा प्रसाद  
हो निम्नस्थानों परिष्कार करनेवाले इस  
परिष्कार के ब्रह्मस्यके आत्मनिष्ठोंमें रख दे  
और इनके लिये अपनी स्वीकृति है।' इस  
प्रकार प्रार्थना करनेके उपरान्त, वे जैसे  
आसीं हों, उन्हीं वस्तु निम्न देकर, निम्नस्थान  
कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी  
काम्यार्थोंको दान दे या गौओंको दान दे  
अथवा चराने दान दे। इनके लिये और  
कहीं किसी प्रकार भी न हाने।

कहीं धर्मद्वारा करो। बर्तनके लिये कहीं  
भी चन्दनदिग्गज अथवा चिन्तामणी नहीं है। यहाँ  
कर्म-कर्मके लिये जो विधान है, उसे भी  
करना है। मुनिश्रेष्ठ ! तुम इसे सुनो।  
इससे ब्रह्मकीप्राप्ति होगी। ब्रह्मकर्ता  
पुष्प चान करके ब्रह्मावाय करो।  
'आत्मकीय चान समस्तान् हो श्रद्धाके पवित्री  
कारण करके देव-परिष्कार कीर्तन करनेके  
पश्चात् 'ॐ इस पुष्पनिष्ठों के पवित्री-श्री  
कर्मना' इस तरह समस्त करो। समस्तपके  
अप्यपि दिव्यसे अन्यके लिये समस्त चान  
दिहिये। फिर चानना करी करो। उप  
अथवापर ब्रह्मस्यके समस्त प्रत्येक पालन  
करनेवाले कर दिव्यकर ब्राह्मणोंको  
मुक्तान् परिष्कारको दिहिये। वे ब्राह्मण  
अथवा श्रद्धाकर चान करने होने चाहिये।  
उन्मेंसे एक ब्राह्मणों को—'अथ  
चिन्तितके लिये चान अथवा चान करनेकी  
पुष्प करो।' इसी तरह दूसरोंसे आत्मनो  
लिये, तीसरेसे अपरत्माके लिये और  
चौथेसे ब्रह्मकीके लिये श्राद्ध प्रदान





ब्राह्मणोंके घर चोकर अन्नको चरके लाट्टियाँ चीन छो और चरके विधुधित उन ब्राह्मणोंको सुवर्धियपुत्र अन्नकर मिष्टाने । चर्हि सत्तारिण आदिने कर्मने उन अन्न ब्राह्मणोंका बहु लाट्टिके साथ विनाय करे अर्थात् उन्हें सत्तारिण आदिना चरक करे । मुने । अन्य घर ब्राह्मणोंका भी पार गुरुओंके कर्मने विनय करे । चरों गुरु ने है—गुरु, चारगुरु, चारगुरु गुरु और चारोही गुरु । चारोही गुरुका उल्लेख अन्नविज्ञान महाभारते पाचन चरते हुए विनय करे । अन्य गुरुका साथ लेकर चरने करे । उन चरके निम्ने 'इयमभ्यन्' ऐसा चरकर पृथक्-पृथक् अन्न करे । आदिने अन्न, बीजने द्वितीय गुरु तथा अन्त्ये 'अन्नकहयति नमः कोलका' अन्नकर करे । चर्हि—४३ अन्नकहयति गुरुम् अन्नकहयति नमः । ४३ पृथक्गुरुम् अन्नकहयति नमः । ४३ पृथक्गुरुम् अन्नकहयति नमः । ४३ चारोहीगुरुम् अन्नकहयति नमः । इन चरकर अन्नकर करके अर्थात् (अर्धने रके हुए अन्न) से पाक, आचमन और अर्ध मिश्रण करे । फिर चर, चर और अन्न लेकर '४३ गुरुने नमः' इत्यादि चरने गुरुओंको तथा '४३ सत्तारिण नमः' इत्यादि चरने अन्न चरोंके अन्नकहयति अन्न अन्य ब्राह्मणोंको सुगन्धित कुन्दीने अन्नकर करे । तत्पश्चात् चर, दीप लेकर चरकिं सकलभाराधनं मण्डपगतम् (यही गरी पक्ष सारी अन्नाद्यन्न पूर्णकर्मने अन्न करे) ऐसा चरकर चर छो नचकर करे, इनके चर केलेके फलोंको चरकरने मिश्रण करके शुद्ध करने अन्न शुद्ध अन्न, खीर, घृत, दाल और अन्य आदि चरकर चरकर करे ।

केनेके काम, करिबान और मूढ़ भी रहे।  
 फातेफा रकनेके तिनके आसन भी आलग-  
 आलग है। इन आसनकेक कमल; ओहक  
 कामके ठहै बजाबान रहे। फिर  
 फोफनफानफान भी ओहक एवें अभिविक  
 करके फुफले डमकत नपन करके हुए कई—  
 'दिनके इजमिह रकन (हे विफाते। इन  
 इजमिहके आज सुधिल रहे)' फिर डठकर  
 इन इजमिहके कीनेके तिनके काम केकन इसी  
 इन इजमिह करके—'करकेकनके मे  
 केक करके फनके (एकदिल आधि सुकन)  
 इनके हे अफीक कर केनेके हे)'।

इसके बाद 'ये देख' (सु. चतु. १७। १३-१४) आदि पञ्चमया उच्चारण प्रकारके अक्षरप्रयोगिता इस अक्षरका स्वरानुसार है। फिर यथानुसार इसके ओ और 'सर्वोत्पन्नम्'। 'ऐस' यन्त्रकार प्रकाशकोशमें ईश्वर इसके 'नमो' ला' (सु. चतु. १६। १९) इस सप्तमया यन्त्रके पाठ प्रकारके प्रकारों केओके आदिप्रयोगका, तथाप्रयोगका, यथानुसारप्रयोगका, यथानुसार तथा सप्तमयादि पाठ प्रकाशकोशका पाठ करे। प्रकाश-कोशको अन्तर्गत भी यथानुसार तथा ओके और अक्षर ओके, फिर अक्षरप्रयोगिता उत्तर है। इस-केर और सुद्ध ओकेके लिये भी उत्तर आर्जित करे। आक्षरप्रयोगिता यन्त्रका तथा प्रकाशकोशके सुद्धप्रयोगिता अक्षरप्रयोगिता यन्त्रकार सुद्ध प्रयोग केके अक्षरकार सुद्धप्रयोगिता लिये यथोचित यन्त्र आर्जित करे यन्त्र यन्त्रकारित करे। फिर यन्त्रकार, यन्त्रकारप्रयोगिता, आसन उत्तर, यन्त्रकार, यन्त्रकार और यन्त्रकार के यन्त्रकार यन्त्रकारप्रयोगिता ईश्वर करे तथा उत्तर आर्जित करे।









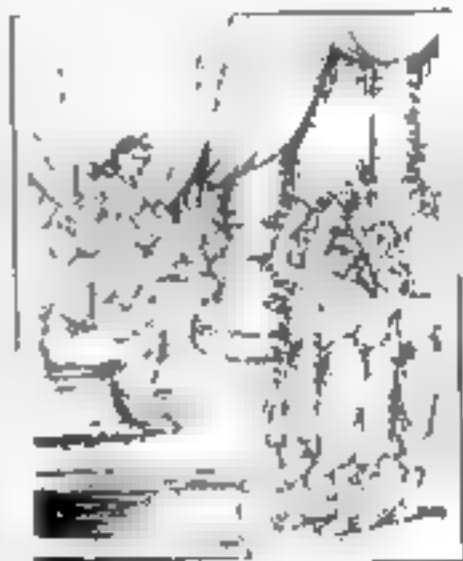
एक ब्रह्मलोक नामसे प्रसिद्ध था है। इसमें नवरा प्रकारके चन्द्रमण्डल भी हुए हैं। इसकी लंबाई मी योजन और चौड़ाई दस योजनकी है। इसमें भीतर एक राजकीय सराया है, जो सुभासु निर्मल जलसे भरा रहता है। वहहि राजकीय पुष्पिल सुखोपर चक्रवाते कीरि कल्पे रहते हैं। इस वनमें एक बनेहर एक विशाल नगर है, जो प्रता-कालके कूर्पकरी प्रणि प्रकाशित होत रहता है। वहाँ सुपथ रत्निकसे युक्त चन्द्रप्रियङ्गवी देव, दुर्गा तथा राक्षसोंका निवास है। यह नगर लक्ष्मी दुर्ग सुवर्णका बना बना रहता है। इसकी छायादीव्यविद्या और अरु कपटक कदा होते हैं। छोटे भुवों, हारु कल्पे, आनन्दमयानों तथा दीव्यो नन्दियोंसे इस नगरकी बड़ी शोभा है। यह विविध चन्द्रमण्डल यन्त्रियोंसे आकाशको कृपण-ज प्रणि होत है तथा कई करोड़ विशाल भवनोंसे अलङ्कृत है।

इस कारणसे प्रजापति ब्रह्म अपने  
समासबोधके साथ निवास करती है। यहाँ  
जाकर इस बुद्धिसे ही ब्रह्मत्व स्वेच्छाविनाश  
प्रजापतिसे होता है। ऐश्वर्यबोधके सम्बन्ध  
उनकी सेवामें बैठे थे। उनकी अक्षरपति  
शुद्ध सुखबोधके समान थी। वे सब  
आध्वपणोंके विभुजिन् थे। उनका पूर्व प्रसन्न  
है, अपने समानात्म प्रसन्न होता है। उनके  
पैर कमलद्वयके समान विज्ञान है। दिव्य-  
कान्तिसे सम्पन्न दिव्य गन्ध एवं अनुलेखनसे  
अर्धित, दिव्य रंग वस्त्रोंसे सुसज्जित तथा  
दिव्य घातमओसे विभुजिन् प्रजापति  
परमेश्वरविशेषोंकी वन्दना सुनिन्द, असुनिन्द तथा  
योगीन्द्र भी करते थे। जैसे ब्रह्म विष्णुकाकी  
सेवा करती है, उसी प्रकार स्वयत्त शुद्ध  
हृदयोंसे पूजा सम्पन्न सरस्वती देवी काकी

केंद्रीय हो उनकी सेवा कर रही थीं, इससे उनकी खाति जोरधा हो रही थी।

महाभारत दर्शन कावे उन सभी  
मूर्तिदेवों का और वेद लिखे हैं । उन्होंने  
महाभारत अष्टांगि कीधकार उन सुर गेहणी  
कावे की ।

इससे पहले -मेसारेकी सुविधि, काल्पनिक और नैसर्गिक इन्तु तीन फल प्राप्त करनेवाले आप पुराणपुराण परमात्मक ब्रह्मको व्यवहार है। प्रकृति नियंत्रण करीब है, जो प्रकृतियों के क्षेत्र प्राप्त करनेवाले है तथा प्रकृतिस्वभाव से ही नियंत्रण करने वाले सुख होनेवा भी जो काल्पनिक निर्मितकार है, उन ब्रह्मस्वभाव को व्यवहार है। प्रकृतिक नियंत्रण के क्षेत्र है, तो भी जो प्रकृतिक क्षेत्र करने विनाश करने है तथा कहीं राजा नियंत्रण कार्य और करने प्रकृतिक-स्वभाव से सिद्ध होने है, उन प्रकृतिक क्षेत्र व्यवहार है।



ॐ ह्रीं क्लीं श्रीगणेशाय नमः । प्रमत्ता लोकायते ।

लष्टा है, जो सम्पूर्ण जीवोंका अग्रगण्य संशोधन और विधेग कार्याभेद है, उन स्वतन्त्रियोंको नभस्वतन है। नाभ ! विनायक ! अन्तसे ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि, पालन और संरक्षण होते हैं, तथैपि पालनसे आनन्द होनेके कारण उन आयुको नहीं जानने ।

भूतजी कहते हैं—उस महानकार्य  
महर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेका अनुकूल  
उस भूमिकोस्ते आशुभ अनुपम करते हुए मायवीर  
बाणीमें इस प्रकार बोले ।

ब्रह्माग्निने काहा—ब्रह्म! भवगुणसे  
संपन्न महाभाग ब्रह्मतेजस्वी ब्रह्मर्षिन्ने ! तुम  
ह्याहं लोक दुःख सागर याही किता रिगते आये हो ?

રાજાજીએ હસ સ્વચ્છ પૂરવેના  
રાજાએતાઓને લેલું અને સર્વે પુરિષોએ હાથ  
જોડે વિનયમયી વાતોને કહ્યા ।

गुणि बोले—प्रणमन् ! हुनको  
भयानको यहुन कान्छकारको अन्तर्गत हो निज  
हो रहे छ । यसको निजको कस्तो धुन छ

परमेश्वरकहाँ सबीदाकार नहीं हो रहा है। आम सम्पूर्ण जगत्के कारण-प्रभाव करनेवाले तथा सबका करनेवाले की धारणा है। नाथ ! यहाँ कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपकी विन्दित न हो। जीवन ऐसा पुण्य है, जो सम्पूर्ण जीवोंको पुरातन, अन्तर्धीमी, ऊकट विसृष्ट परिपूर्ण एवं सम्पन्न परमेश्वर है ? जीवन अपने अद्भुत विचित्रविचित्रताएँ सबसे अधिक होनाकी सृष्टि करता है ? महाशय ! हमारे इस संज्ञाकार विचारक करनेके लिये आम हमें परमात्मिकता का जन्म देता है।

मुनियोगों इस प्रकार प्रत्येक ब्राह्मणोंके  
केन्द्र अधिपत्यसे रहित रहे। वे केवलाभी,  
उज्जयिनी और मुनियोगों निराला रहे।  
नये और विशिष्टात्मक धर्मनियम रहे 'अथ'  
केन्द्र केन्द्रों हुए आत्मनियमों रहे। उज्जयिनी  
समस्त काग्रेस मुनियोगों के उद्देश और वे द्वारा  
जोकायें कोले।

(अध्याय २)

1

ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें योगवान् शिवजी ही महानका प्रतिपादन, उनकी कृपाके ही सब साधनोंका फल बताना तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका वैमिशारूपमें आना

सद्गोनीने कहा - सुनिये ! विन्ने न पाकर मनसकित बाणी स्पष्ट अनी है, जिनके आत्मव्यय तत्काल अनुभव करनेवाला पुत्र कभी किसीसे नहीं डरता, जिनसे सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियोंके स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रपूर्वक सब स्वयं ब्रह्मा पहले ब्रह्म होता है, जो कपलके भी जड़ और विचारक परम कारण है, जिनके सिवा और जिनसे कोई भी जगत्परी व्यपति नहीं होती,\* सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके

१. यत्ने भक्तो निवर्तते साक्षात् यत्नात् । अत्रान्तं यत्नं च विष्णुः न विचिरेत् कुतश्चन ।  
यस्मात् सर्वविद् भगविराष्टोक्तोऽर्चयन् । अहं पूर्वोद्भूतः सौमिः शरणं समुदाहराम् ।  
कृष्णस्य च ये यत्नं योऽहं भक्तोऽहम् । न त्वत्पुण्यं च त्वत्पुण्यं मुनिभ्यः कदाचन ।













निकलता (परमेश्वर) । इन्हीं तीनोको समझे  
पात्र, यन्त्र तथा वस्तुपति कहते हैं । तत्त्वज्ञ  
पुण्य आज इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर  
तथा इन दोनोंसे अतीत कहते हैं । अक्षर ही  
सबुद्ध कहा गया है । क्षर तत्त्वका ही नाम पात्र  
है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे जो जो  
व्यवस्थित है, इसीको प्रति या वस्तुपति कहते  
हैं । प्रकृतिज्ञान ही क्षर कहा गया है । पुण्य  
(जीव) को ही अक्षर कहते हैं और जो इन  
दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर  
दोनोंको विना तत्त्व परमेश्वर कहा गया है ।  
मायाका ही नाम प्रकृति है । पुण्य उस  
मायासे उत्पन्न है । पात्र और पात्रोंके द्वारा  
प्रकृतिजन्य पुण्यसे तत्त्व सम्पन्न होता है ।  
विना ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर है । पात्र  
महेश्वरकी शक्ति है । निष्कलण जीव उस  
मायासे उत्पन्न है । वेदान्त जीवको अक्षरपद  
कारणवत्ता अज्ञानका कारण ही तत्त्व  
कहा जाता है । उससे सुद्ध हो जानेपर जीव  
रक्तः शिव ही प्राप्त है । वह विराट् ही  
शिवत्व है ।

मृनिर्गो पृथ—सर्वव्यापी क्षेत्रज्ञकी  
माया किस विधिसे उत्पन्न करती है ?  
विश्वज्ञानसे पुण्यको उत्पन्न करने का  
विधि ? और किस उपायसे तत्त्वका निष्कारण  
होता है ?

मायुदेवता बोले—आपका तत्त्वको भी  
आध्यात्मिक उत्पन्न करने का विधि है ; कर्मात्मिक  
कारण आदि भी प्रमाण है । योगसे विन्ने  
विद्या तथा कार्य ही उस उत्पन्न करने का  
विधि है । तत्त्वका उद्धार होनेसे वह उत्पन्न हो  
जाता है । कलम, विद्या, राग, काम और  
निष्कल—इन्हींको कारण आदि कहते हैं ।  
कार्यवत्तता जो उत्पन्न करने है, उत्पन्न

कारण पुण्य (जीव) है । कार्य से प्रत्यक्ष  
है—पुण्यकार्य और पात्रकार्य । पुण्यकार्यका  
कारण पुत्र और पात्रकार्यका कारण पुत्र है ।  
कार्य उत्पन्न है और कारण उत्पन्न करने  
केन्द्र उत्पन्न उत्पन्न हो जाता है । यद्यपि वह  
कार्यका उत्पन्न उत्पन्न होकर उत्पन्न नहीं है,  
यद्यपि उत्पन्न-उत्पन्न होकर उत्पन्न-आपत्ति  
पत्र रक्ता है । योग कार्यका विनाश  
कारणवत्ता है, प्रकृतिज्ञानसे उत्पन्न कहते हैं और  
योगज्ञान उत्पन्न है उत्पन्न । पात्र इतिहास और  
उत्पन्न-कारण उत्पन्न हो है । अतिरिक्त  
विश्व-कारणसे उत्पन्न हो उत्पन्न-कारण  
पुण्यवत्ततासे उत्पन्न उत्पन्न होता है और  
पुण्यवत्ता का जो उत्पन्न पुण्य निर्गल—  
विश्वसे उत्पन्न हो जाता है । विश्व पुण्यकी  
उत्पन्न-कारणसे और पात्र उत्पन्न विद्या-  
कारणसे अध्यात्मिक कारणवत्ता है । राग  
उत्पन्न उत्पन्न विन्ने विद्यासे उत्पन्न  
कारणवत्ता होता है । कारण उत्पन्न उत्पन्न  
होता है और विद्यासे उत्पन्न विद्यावत्ता  
रक्तवत्ता है । उत्पन्न-कारण जो उत्पन्न है,  
वह विद्यावत्ता है, उत्पन्न पात्र उत्पन्न  
उत्पन्न उत्पन्न है और उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न  
है । तत्त्वज्ञानसे पुण्य उत्पन्न उत्पन्न ही  
उत्पन्न और प्रकृति कहते हैं । तत्त्व, राग और  
पात्र—ये तीनो पुण्य प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं ;  
विन्ने विद्यासे उत्पन्न वे प्रकृतिसे उत्पन्न-कारणसे  
विद्यावत्ता रहते हैं । पुत्र और उत्पन्न उत्पन्न  
उत्पन्नसे उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न है, पुत्र और  
उत्पन्न उत्पन्न उत्पन्न है तत्त्व उत्पन्न और  
पात्र—ये उत्पन्न-कारण है । उत्पन्नकी  
वृत्ति उत्पन्नसे उत्पन्न-कारण है, तत्पत्ती वृत्ति  
उत्पन्न-कारणसे उत्पन्न-कारण है तत्त्व उत्पन्न वृत्ति  
उत्पन्न विद्यासे उत्पन्न-कारण है । पात्र

संक्षिप्त विवरणम् ०

सम्पत्तयः, यौव भूतः, यौव ज्ञानेन्द्रियाः, यौव कार्येन्द्रियाः तथा प्रधान (चित्), प्रधानत्व (बुद्धिः), अहंकार और मन—ये चार अणुःकारण—येच विमलान् यौवैक्यं अणु होते हैं। इन प्रधान संक्षेपसे ही विचारारम्भिक अवस्था (प्रकृति) का वर्णन किया गया। कारणभावसाधने रखेपर ही इसे अवस्था कहते हैं और शरीर आदिसे पहले यह यह विचारभावसाधने प्राप्त होता है, यह अवस्था 'मनस्क' कहा जाती है—ठीक इसी तरह, जैसे कारणभावसाधने विचार होनेपर इसके हुए 'निद्रा' कहते हैं वही कारणभावसाधने 'मन' आदि साथ अवस्था यह होती है। जैसे यह आदि कार्य बुद्धिमान् आदि कारणसे अधिक भिन्न नहीं है, इसी प्रकार शरीर आदि पहले पदार्थ अवस्थासे अधिक भिन्न नहीं है। इसीलिये ह्यवस्था अवस्था ही कारण, कारण, उनका आकारभूत शरीर तथा योग्य वस्तु है, वृक्षों कीड़ों वही।

संक्षेपान् पञ्च—अणुः। बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे अवस्थितिक चित्ती अवस्था यन्त्रिक वस्तुकी अवस्थितिक स्थिति कहा है ?

यौववस्था कोले—बुद्धिसे। कार्यसाधनी यौववस्था बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे यौववस्था अवस्था है। अवस्था यन्त्रिक कोले पदार्थ विज्ञान ही विचारसाधनी है। यन्त्रिक अवस्था लक्ष्मण विज्ञानी हेतुकी अवस्थितिक वस्तु

ही कहिये है। सम्पत्तय बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको अवस्था नहीं मानते, यद्यपि स्थिति (बुद्धिमान् ज्ञान) अवस्थित है तथा इसे सम्पूर्ण शरीरमान ह्यवस्था अनुभव नहीं होता। इन्द्रियको चेतो और चेतोको अवस्थाको बुद्धिमान् विचारकोला कारणसाधनी, सम्पूर्ण ज्ञान वस्तुकोले कारणसाधनी अवस्थाकोला कह्य जाता है। यह न ही है, न बुद्धि है और न वस्तुसाधनी ही है। न कारण है, न अवस्था-वस्तुसाधनी है, न यौव है और न विज्ञानी अवस्था-विचारकोले। यह सम्पूर्ण ज्ञान शरीरसे अधिकतर, विचारसाधनी अधिकतर अवस्था विचार है। इसी बुद्धि विचार विचार कारणसे ज्ञान अवस्थासाधनी कारणसाधनी यह वही है।

पुनरावस्था जो यह शरीर कहा गया है, इससे कारणसाधनी, यौववस्था, यौववस्था और अवस्था वस्तुकी कोले वस्तु नहीं है। शरीर ही यह विचारसाधनी कारण साधनी है। इसके बुद्धि हुआ बुद्धि अवस्था कार्यको अनुसार सुखी, दुःखी और मृदु होता है। जैसे कार्यको यौववस्था हुआ ज्ञान अहंकार अवस्था करता है, इसी प्रकार अवस्थासे अवस्थासाधनी हुआ कार्य ज्ञान शरीरको ज्ञान होता है। ये शरीर अवस्था बुद्धिसे अवस्था नहीं ज्ञान है। इसकी बुद्धि अवस्थासाधनी होती है। बुद्धिमान् विचारसे ही शरीर ज्ञान ही गये और

० न य वही न बुद्धिसे ही कार्य अवस्था। यौववस्था यौववस्था यौववस्था ॥

अवस्था शरीर ज्ञान सम्पूर्णवस्था तथा वस्तुसे ही कार्य न अवस्थासाधनी ॥

(विज्ञान कृ. का. सं. बु. को. ५। ४८-४९)

० यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था ॥

विचार यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था यौववस्था ॥

(विज्ञान कृ. का. सं. बु. को. ५। ५१-५२)

















एक ब्राह्मणने अत्यन्त ही रम्यत्र प्रेम  
विचारते है। यह सन्तान ब्रह्मचर्य  
अव्यक्तकी भीमके प्रकट एवं ईश्वरके  
अनुग्रहपर स्थित है। बुद्धि ब्रह्मज्ञान तथा और  
बड़ी-बड़ी शक्तियाँ है। बुद्धिपूर्ण भीमके  
मोचते है। महाभूत ब्रह्मकी शक्ति है।  
विशेष प्रकार ब्रह्मके निर्मल बने है। सर्व और  
आदर्श ब्रह्मके सुन्दर मूल है। इसमें सुख और  
सु:खकी परम जगत् है तथा यह सन्मुख  
भक्तिके जीवनका आधार है। ब्रह्मज्ञानमे

सुरसेकन्दो इन्द्रास चरत्तक, आकाशको  
नाभि, कश्यप और सुर्यको नेत्र, विष्णुको  
कन्य और पृथ्वीको उनके पैर माने हैं। ये  
अभिपत्यकाल मनेष्वर की दस भूतोंके  
निर्माता हैं। इनके मुखसे आकाश प्रकट हुए  
हैं। वायु-रक्तको ऊपरी भागसे क्षत्रियोक्ति  
कयति हुई है, दोनों ओरोंसे वीर्य और पैरोंसे  
सूत उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार इनके अङ्गोंसे  
ही सम्पूर्ण वर्णाश्रम व्यवस्था हुआ है।

(अध्याय ४—१२)



भगवान् लक्ष्मण के ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट होनेका रहस्य, लक्ष्मण के महायहिम स्वस्वका वर्णन, इनके द्वारा लक्षणोंकी सृष्टि तथा ब्रह्माजीके रोकनेसे उनका सृष्टिसे विरत होना

इति बोले—अब । आपने जन्मद्वारा  
ब्रह्मत्वे मुक्तने पाया तथा सम्यक्बुद्धि  
प्राप्तायी है । इस विषयमें हमको संशय होना  
है । जो अस्मत्कालमें बुद्धिमान होकर ब्रह्म,  
विष्णु और अश्विनीतिवत् सत्ता स्वेकवत्  
संहार कर द्यात्मे है- किन्तु ब्रह्म और विष्णु  
अपने ब्रह्मत्व करते हैं, तब स्वेकवत्कारणता  
अक्षरके बलमें वे दोनों मर ही रहने हैं, तब  
ब्रह्मदेवजीने पूर्वकालमें ब्रह्म और विष्णुको  
अपने दागीने ब्रह्म किया था, जो प्रभु मर  
ही उन दोनोंके योगक्षेमका निर्वाह करनेवाले  
हैं, वे आश्विदेव ब्रह्मत्व प्राप्त युक्त भगवान् का  
आत्मकत्वका ब्रह्मत्वे एक कैसे हो गये ?  
तात् ! भगवान् ब्रह्मत्वे बुद्धिमेंसे जीवी  
बान् करतायी थी, वह सब आप टीका-टीका  
करिये । भगवान् भिक्षुके उक्त ब्रह्मत्व  
अवकाश करनेके लिये हमारे हृदयमें बड़ी  
मत्ता है ।

वायुदेवतासे कहा—ब्राह्मणों । तुम सब  
 लोग विज्ञापार्थें कुशल हो, अतः तुमने यह  
 बहुत ही उचित क्रम किया है । मैं भी  
 पूर्वकालमें विज्ञा-यज्ञ ब्रह्माजीके समक्ष नहीं  
 गया रहता था । उनके उत्तरमें विनायकने  
 भूतसे जो कुछ कहा था, उसी मैं तुम्हें  
 बताऊँगा । जैसे कालेश अथवा हूर और फिर  
 विनायकने ब्रह्म और विष्णुजी परस्पर  
 कथिनी हुई, यह सब विषय सुन रहा हूँ ।  
 अतः, विष्णु और यह—सीधी ही कारणवशात्  
 है । वे क्रमशः परास्पर अगस्त्यी सृष्टि, वासन  
 और मोक्षार्थके हेतु हैं और साक्षात् मोक्षधरसे  
 उद्भूत हुए हैं । उनमें वरुण देवर्षि विज्ञापन है ।  
 वे वरधेश्वरसे आश्रित और उनकी इच्छासे  
 अधिष्ठित हो सदा उनके वाच्य करनेमें समर्थ  
 होते हैं । पूर्वकालमें विनायकने ही उन  
 तीनोंको तीन कथोंमें निम्नतः किया था ।  
 ब्रह्मजीके सृष्टिकार्यमें, विष्णुजीके रक्षणकार्यमें



कहा—'देखते-देखते ! आपकी कल्पना है। नहीं होगी। अनुभव प्रजाओंकी सृष्टि तुम्हीं  
आप ऐसी प्रजाओंकी सृष्टि न कीजिये,  
आपका कल्पना हो। अब दूसरी प्रजाओंकी  
सृष्टि कीजिये, जो सर्वव्यापक होगी।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर परमेश्वर सब  
उत्तर देते हुए बोले—'येही सृष्टि वैसी

(अध्याय १३ १४)

☆

**ब्रह्माजीके द्वारा अर्द्धनारीश्वरस्वरूपकी सृष्टि तथा उस स्तोत्रकी महिमा**

आयुर्वेद कहते हैं—जब किता  
ब्रह्माजीकी रची हुई प्रजा वह न बची तब  
उन्होंने पुनः वैष्णवी सृष्टि करनेका विचार  
लिया। इसके बादले ईश्वरले नारियेका  
समुदाय प्रकट वहाँ हुआ था। इसलिये  
नवतक विनायक वैष्णवी सृष्टि नहीं कर सके  
थे। तब उन्होंने मनमें ऐसे विचारको लान  
दिया, जो विश्रुतत्वसे उनके बड़े-बड़े  
मित्रोंमें सहायक था। उन्होंने सोचा कि  
प्रजाओंकी सृष्टिके लिये परमेश्वरसे ही पूजन  
चाहिये; क्योंकि उनकी कृपाके बिना ये  
प्रजाएँ अब नहीं सकती। ऐसा सोचकर  
विश्रुतत्वा ब्रह्माने तत्पक्ष करनेकी फैसली  
की; तब जो आद्या, अयन्य लोककल्पिनी,  
सूक्ष्मतरा, सुहृद, भवगाम्या, मनेहरा,  
निर्गुण, निरुपमज्ञ, निष्काम, निष्क तथा  
सदा ईश्वरके पास रहनेवाली जो उनकी परकी  
शक्ति है, उसीसे कुछ भगवान् लिखे-लिखकर  
अपने हृदयमें लिखन करते हुए ब्रह्माजी की  
भारी तपस्या करने लगे। नीचे तपस्यामें लगे  
हुए परमेश्वरी ब्रह्मापर उनके चित्त ब्यापककी  
बोड़े ही सम्मुखें संतुष्ट हो गये। तदनन्तर  
अपने अविर्लक्षनीय अंशसे किन्हीं लक्ष्मण  
मूर्तिमें आविष्ट हो भगवान् ब्यापक आये  
शरीरसे नारी और आगे शरीरसे ईश्वर होकर

जब ब्रह्माजीके पास गये। उन सर्वव्यापी,  
सदा कुछ देखाते, सदा-आसने रहित,  
सम्पन्न प्रजाओंमें सुख, शरणार्थकाल  
और सनतन निवासके लक्ष्यकर प्रगाथ करके  
ब्रह्माजी को और प्राण जोड़ ब्यापककी तथा  
माहटीकी शक्तिकी सृष्टि करने लगे।



ब्रह्मा बोले—'देव ! यहदेव ! आपकी  
कृपा है। ईश्वर ! परमेश्वर ! आपकी जय हो।  
सर्वगुणकण्डु शिव ! आपकी जय हो।







## महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

साधुदेवता कहते हैं—सदन्तर महादेवजी महाबोधकी वर्जनाके समान मधुर गन्धीर, मङ्गलवायिनी एवं सनेहर बाणीमें बोले—‘ब्रह्मन् । तुमने इस लक्ष्य प्रयाजनोंकी वृद्धिके लिये ही तपस्या की है। तुम्हारी इस तपस्यासे मैं संतुष्ट हूँ और मुझे अभीष्ट धन होता है।’ इस प्रकार परम अथवा तथा सत्धातुतः मधुर लक्ष्य कष्टकर देवदेवर हरने अपने शरीरके मध्यभागसे देवी स्वाधीका प्रकट किया। जिन दिव्य गुण लक्षणा देवीको ब्रह्मदेवता पुनः परमात्मता शिवाकी परासक्ति कहते हैं तथा जिनमें अन्य धाम्य और वरा आदि विकारोंका प्रवेश नहीं है, वे धकानी इस समय शिवाके अङ्गमें प्रकट हुईं। जिनका वरमन्त्रमय देवताओंको भी ज्ञात नहीं है, वे समस्त देवताओंकी भी अभीष्टारी देवी अपने स्वाधीके अङ्गमें प्रकट हुईं। इन सर्वलोक-भौतवरी वरदेवताओंके देखकर विराट् द्रुम ब्रह्माने ब्रह्मत्व किया और उन सर्वज्ञा, सर्वव्यापिनी, सुख्या, सद्यन्त्रावसे रहित और अपनी उभासे इस सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाली परासक्ति महादेवीसे इस प्रकार प्रार्थना की।

बाधाजी बोले—सर्वजगत्की हेनि । महादेवजीने प्रथम पक्षमें मुझे उन्मत्त किया और ब्रह्माकी सृष्टिके क्षयमें लक्षणा। इनकी उद्घासे मैं समस्त जगत्को सृष्टि करता हूँ किन्तु हेनि । मेरे मानसिक संकल्पसे एबे गये देवता आदि समस्त जगत् बाधवार सृष्टि करनेपर भी बन्द नहीं रहे हैं। अतः अब मैं वैष्णवी सृष्टि करके ही अपनी

सारी प्रजाको लक्ष्म्या चाहता हूँ। आपके पहले नारीकुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। इसलिए नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है। सम्पूर्ण शक्तियोंका आविर्भाव आपसे ही होता है। अतः सर्वत्र सबको सब प्रकारकी शक्ति देववाली आप वरदायिनी माया देवेश्वरीसे ही प्रार्थना करता हूँ, संसारमध्यको भूत करनेवाली सर्वव्यापिनी हेनि इस प्रकार जगत्की



वृद्धिके लिये आप अपने एक अंशसे मेरी पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाइये।

ब्रह्मदेवि ब्रह्माके इस प्रकार माधना करनेपर देवी ब्रह्मजीने अपनी भीष्टीके मध्यभागसे अपने ही लक्ष्म्या कान्तिमायी एक शक्ति प्रकट की। उसे देखकर देवदेवदेवर हरने हँसते हुए कहा—‘तुम तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके उनका मनोरथ

पूर्ण करो।' परमेश्वर शिवजी इस आज्ञाको निरोधन करके यह देवी ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार ब्रह्माजी पुत्री हो गयी। इस प्रकार ब्रह्माजीको ब्रह्मात्मिनी अर्थात् शक्ति देकर देवी शिव ब्रह्मदेवजीके प्रतिपक्षे प्रविष्ट हो गयी। फिर ब्रह्मदेवजी की अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस जगत्के भीतर जीवासिमें ज्येष्ठ प्रतिष्ठित हुआ और विधुनहारा प्रजापती सृष्टिकार करने लगे। अतः भूमिदेवी। इससे ब्रह्माजीको भी

आमन्द और संतोष प्राप्त हुआ। देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावका यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कहा सुनया। अग्निचोटी सृष्टिके प्रसङ्गसे इस विषयका वर्णन किया गया है। यह पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है, अतः अवश्य सुननेयोग्य है। जो प्रतिदिन देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावकी इस कथाका कीर्तन करता है, उसे सब प्रकारका पुण्य प्राप्त होता है तथा वह सुखमयान पुत्र प्राप्त है।

(अध्याय १६)

☆

भगवान् शिवका पार्वती तथा पार्वतीके साथ चन्द्राबलपर जाकर रहना, शुम्भ-निशुम्भके वधके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे शिवका पार्वतीको 'काली' कहकर कुपित करना और कालीका 'गौरी' होनेके लिये तपस्याके निमित्त जानेकी आज्ञा पाँगना

साधुदेवता कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मदेवजीसे ही जनकत्व प्राप्तकिन्तु ब्रह्मदेव प्रजापति ब्रह्मा वैकुण्ठी वृद्धि करनेकी इच्छा लेकर स्वयं भी आगे झरीरसे अट्ठन गयी और आगे झरीरसे पुत्र्य हो गये। आगे झरीरसे जो गौरी अवस्था हुई थी, वह इनसे प्राप्तक्या ही प्रकट हुई थी। ब्रह्माजीने अपने आगे पुत्र्य झरीरसे विराट्को उत्पन्न किया। वे विराट् पुत्र्य ही स्वयम्भुव मनु ब्रह्मजन्मे हैं। देवी स्वयम्भुवने अवश्य पुत्र्य रूपका करके ज्येष्ठ प्रजापति मनुको ही प्रतिपक्षमें प्राप्त किया।

इसके पश्चात् मनुके वंश तथा दक्ष-पुत्र-विष्टस आदिके प्रसङ्ग सुनकर साधुदेवतासे यह बताया कि भगवान् जीकरने दक्ष तथा देवताओंके अपराध क्षमा कर दिये।

तदनन्तर अग्निचोटी पुत्र्य प्रकट। अपने लक्ष्मी तथा देवीके साथ अवर्धमान होकर भगवान् शिव काई गये, काई रहे और सब काके विराट् हुए ?

साधुदेव बोले—पार्वतीको। पार्वतीमें श्रेष्ठ और विष्टि चन्द्राबलसे सुशोभित जो परम सुन्दर परमवत्त है, यही अपनी तपस्याके प्रसङ्गसे देवविष्ट ब्रह्मदेवजीका शिव भिन्नता-स्वात हुआ। उससे पार्वती और शिवको अपने विराट् होनेके लिये कहा गयी वह विष्टा का और दीर्घकालके बाद उसे उनके चरणाभि-दोके स्वर्णका सुख प्राप्त हुआ। उस वर्णतके सौन्दर्यका विभवात्पूर्वक वर्णन सबको सुनोहारा ही करेण्डु वर्णन ही नहीं किया जा सकता। उनके सामने समस्त पर्वतोंका सौन्दर्य तुल्य हो जाता है। इतिश्रुत्ये ब्रह्मदेवजीने देवीका















ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

तथा उन्हें नाना प्रकारसे आकाशमें दिया । प्रभुके वात् देखीने तपस्याके श्रेणी तत्त्वोंमेंके पक्षोंकी है। वे उनके सामने कृत्यकी वर्षा कर रहे थे । ऐसा जान पड़ता था, यन्त्रों उनसे होनेवाले कियोगके शोकसे पीड़ित हो वे अशुं बरसा रहे हों । अथवा जलप्रवाहोंपर बैठे हुए विहंगमोंके कलरवोंके गज्जले से मानो वे आकाशतत्त्वपूर्ण नाना प्रकारसे दीनतत्त्वपूर्ण कियोग कर रहे थे । इत्यन्त

पक्षोंके दर्शनोंके सिन्धे उदात्तरी हो उस व्याघ्रके औरत पुरुषकी भाँति छेड़ने आगे करके झलियाँसे वातवीत करती और देहकी दिव्य प्रभासे इसी दिशाओंको उद्दिष्ट करती हुई गौरीदेवी पन्द्राचलके चारों तरफ़, जहाँ सम्पूर्ण जगतके आधार, जल, वायु और अग्निदेव महेश्वर निराकृत्य थे ।

(अध्याय २४)

★

मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने अक्षरूप स्वरूप एवं अविच्छेद्य सम्बन्धपर प्रकाश तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रके उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना

कविर्लेखि पृष्ठ—अपने सतीतवर्षे दिव्य गौरवर्णसे युक्त बनाकर निरितजकुवारी देवी पार्वतीने जब मन्दराचल प्रदेशमें प्रवेश किया, तब वे अपने पतिसे किस प्रकार मिलीं ? प्रवेशकालमें उनके सम्बन्धपर रहनेवाले गणेश्वरोंके क्या किया तथा महादेवजीने भी उन्हें देखकर उन क्षण उनके साथ कैसा काँव किया ?

अपुदेवतने कहा जिस प्रेम्णर्ध्व रसके द्वारा अमुराणी पुरुषोंके बन्धन हटाने हो जाता है, उस परम रसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है । इन्द्राल जड़ी झाललीसे राह देखते थे । उनके साथ ही महादेवजी भी देवीके अगमनके सिन्धे उत्सुक थे । जब वे घनवर्षे प्रवेश करने लगीं, तब प्रकृत हो उन-उन प्रेम्णर्ध्व भावोंसे वे उनकी ओर देखने लगे । देवी भी उनकी ओर उन्हीं भावोंसे देख रही थी । उस

समय उस घनवर्षे रहनेवाले जेठ पार्वतीसे देवीकी बन्धना थी । फिर देवीने विषयपुल्ल वाणीद्वारा प्रणवान् मिलेबनको प्रणाम किया । वे प्रणाम करके अभी उन्हें भी नहीं पायी थी कि बाबेश्वरने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर बड़े आनन्दके साथ हृदयसे लगा लिया । फिर बृजकरने हुए वे एकटक नेत्रोंसे उनके पुन-धनकी सुभाका फल-सा करने लगे । फिर उनसे वातवीत करनेके सिन्धे उन्होंने कहा अपनी ओरसे वार्ता आरम्भ की ।

देवाधिदेव महादेवजी बोले—सर्वाङ्ग-सुन्दरि जिसे ! क्या तुम्हारी वह मनोदशा दूर हो गयी, जिसके रहने तुम्हारे लोभके कारण मुझे अनुन्म-विषयका कोई भी उपाय नहीं सुझाव था । यदि साधारण लोगोकी भाँति हम दोनोंमें भी एक-दूसरेके अविच्छेद्य काल्य विहंगम है, तब तो इस बराबर



















\*\*\*\*\*

उपकारक होता है—लोकोंको लीकता है, उसी प्रकार विषय भी वह कण आसिद्ध सांनिध्य धारक ही उसके उपकारक होते हैं, उसे सचेत बनाते हैं। उनके विद्यमान सांनिध्यको अकारण इच्छा नहीं आ सकती। अतः जगत्को सिधे जो सदा अज्ञान है, वे विषय ही इसके अधिष्ठित हैं। विषयोंके बिना यहाँ कोई भी प्रत्यक्ष (वेद्व्यापील) नहीं होता, उनकी आज्ञाके बिना एक पला भी नहीं मिलता। उनसे प्रेरित होकर ही वह सदा जगत् विविध प्रकारकी चेष्टाएँ करता है, तथापि वे विषय कभी मोहित नहीं होते। उनकी आज्ञाकविणी जो सक्रिय है, वही सबका नियन्त्रण करती है। इसका एक और गुण है। इसमें सदा इस सम्पूर्ण वृत्त-प्रपञ्चका विलीनता है, तत्काली उसके दोषसे किन्हीं दूषित नहीं होते। जो दूषित मानव मोहकण इसके विपरित पश्यता रहता है, वह वह हो जाता है। विषयोंकी सक्रियता के कारण ही संसार चलता है, तथापि इससे विषय दूषित नहीं होते।

इसी समय अज्ञानको शरीरहित काही सुनयी दी—‘सत्यम् ओम् अनृतम् सौम्यम्’ इन चर्चोंका यहाँ स्पष्ट उच्चारण हुआ, उसे सुनकर सब स्नेह बहुत प्रसन्न हुए। इसके सबका संस्पर्शका विचारण हो गया तथा इन सुनिर्वाण विविधता से प्रभु पञ्चदेवको प्रताप किया। इस प्रकार इन सुनिर्वाणोंके संस्पर्शका कारण भी वायुदेवने वह नहीं माना कि इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। ‘इन्द्रका ज्ञान अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है’ ऐसा समझकर ही वे इस प्रकार बोले।

वायुदेवताके कन्या सुनिषो। प्ररोक्ष और अपरोक्षके चेहरे ज्ञान से प्रकाशका माना गया है। प्ररोक्ष ज्ञानको अन्तर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुखित। सुखितपूर्ण ज्ञानको जो ज्ञान होता है, उसे विद्वान् पुरुष प्ररोक्ष कहते हैं। वही वेद अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो आध्यात्म। अपरोक्ष ज्ञानको बिना प्रोक्ष नहीं होता, ऐसा विद्वान् कारण समुल्लेख अत्यन्तप्रतिष्ठित हो वेद अनुष्ठानकी सिद्धिकें सिधे प्रकाश करते। (अध्याय १२)

## परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार वाशुपत ज्ञान तथा इसके साधनोंका वर्णन

शुनियोंने पूछ वायुदेव। वह कौन-सा वेद अनुष्ठान है, जो मोक्षकाल्य ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है ? इसको और उसके साधनोंको ज्ञान काय इन्हीं बलानेकी कृपा करे

नायन कहा—अनन्तर विस्मयक कथन हुआ जो परम धर्म है, उसीको वेद अनुष्ठान

कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर साक्षात् मोक्षकाल्य सिध अपरोक्ष हो जाते हैं। वह परमधर्म यौजें क्योंकि करण कथनः पाँच अक्षरोंका जानना चाहिये। इन क्योंकि नाम हैं—विद्या, तप, जप, ध्यान और ज्ञान। ये ऊरोतर वेद हैं, उन अक्षर साधनोंसे सिद्ध हुआ धर्म परम धर्म माना गया है। जहाँ प्ररोक्ष

ज्ञान की अवरोध ज्ञान होने पर येकात्मक होता है। वैदिक धर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—वराह और अवरण। वरुण-कण्डसे प्रतिपन्न अर्थमें हमारे मिले क्षुमि ही प्रमाण है। योगदर्शन जो परम धर्म है, वह क्षुमिधर्म होने-भूत उन्निधर्म में वर्तित है और जो अवरण धर्म है, वह हमारी अवस्था को क्षुमिक मुक्त-भाग्यसे अर्धार्ध संक्षिप्त-कर्मोद्धार उत्तिष्ठति हुआ है। जिसमें वह (वह) कीर्तिका अधिपति रही है, वह विद्युत्संक्षिप्त धर्म 'वराह धर्म' माना गया है। इसमें विश्व जो वरुण-सागर है, उसमें सदा अधिपति होनेसे वह सागरका वह 'अवरण धर्म' माना गया है। जो अवरण धर्म है, वही वरुण धर्मका प्रमाण है। वरुण-ज्ञान अधिपति द्वारा उसका समस्त उसमें विद्युत्संक्षिप्त कर्मोद्धार निरूपण हुआ है। अवरण विश्वमें हुए इतिवृत्ति जो वरुण धर्म है, उसीका नाम लेते अनुमान है। इतिवृत्ति और वृत्तार्थों द्वारा उसका विपरीत प्रकार विख्यात हुआ है। वरुण ईश-सागरों द्वारा उसमें विद्युत्संक्षिप्त कर्मोद्धार निरूपण किया गया है। वही उसके समस्तका समस्त हमारे प्रतिपन्न हुआ है। नाम ही उसके वरुण और अधिपति भी समस्त हमारे विद्युत्संक्षिप्त धर्मका बताये गये हैं। ईश-भाग्यसे ले पेट है—और और अधीन। जो क्षुमिक नाम तकसे प्रमाण है वह हीन है; और जो मन्त्र है, वह अधीन माना गया है। समस्त वीक्षण करने हम समस्तका वह, फिर अठारह प्रकारका हुआ। वह क्षुमिक आदि संज्ञाओंमें सिद्ध होनेसे विद्युत्संक्षिप्त नाम

कारण बताया है। क्षुमिकारण जो ईश-सागर है, उसका विचार ही वरुण धर्मकोमें किया गया है। इसीमें समस्त 'वृत्तार्थ नाम' और 'वृत्तार्थ नाम' का वर्णन किया गया है। वृत्त-वृत्तों होनेवाले क्षुमिकोंमें उसका उद्देश्य देनेके मिले समस्त विश्व धर्म ही योगधारणको वरुण-वर्ण अवलीन हो उसका प्रमाण करते हैं।

इस ईश-सागरमें संक्षिप्त कारणों समस्त विद्युत्संक्षिप्त प्रमाण कारणोंमें समस्त कारण वरुण है—वृत्त, वृत्तार्थ, अवरण और वरुणधर्मों का प्रमाण। हमें संक्षिप्त अर्थका प्रमाण 'वृत्तार्थ' नामका वर्णित है। इसी ज्ञान-वर्णनमें ईश-वृत्तों द्वारा मन्त्रों की वृत्त है। वरुण विद्युत्संक्षिप्त जो वरुण धर्म कर्मका गया है, वह वरुण<sup>१</sup> आदि का कर्मोंमें कारण का प्रमाणका माना गया है। इस वरुणों में वरुण नाम है, वह वृत्तार्थों विद्युत्संक्षिप्त सागरों कारणोंवाला है। इसीमें वरुण नाम ही लेते अनुमान माना गया है। इसमें ही वरुणोंमें जो वरुण धर्म माना है, उसका धर्म विरक्त जाता है। अवरण विद्युत्संक्षिप्त वृत्त वरुणविपक्ष जो 'वृत्तार्थकर्म नाम' है, उसके द्वारा समस्त 'वृत्तार्थ नाम' का उद्देश्य होता है। इस वरुणों वृत्त वरुण ही वरुण वरुण नाम जाना है। विद्युत्संक्षिप्त हमारे वह ज्ञान प्रतिपिण हो जाता है, उसके ऊपर वरुण विश्व प्रमाण होते हैं। हमारे वृत्त-वृत्तोंमें वह वरुण नाम विद्युत् होता है, जो विद्युत्संक्षिप्त वरुण वरुण कारण है। विद्युत्संक्षिप्त हमारे वरुण-वर्णनका कारण वरुण ही जाना है। इस प्रकार











[illegible]

प्रथम आचरणमें गजोष्ठ और  
कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये। इसके  
बाद ही बाह्य अङ्गोंकी भी पूजा आवश्यक  
है। प्रथमाचरणमें पूजा हो जानेपर  
द्वितीयाचरणमें कर्माकर्षण विरोधरोकना मुख्य  
कारण चाहिये। तृतीयाचरणमें भक्त आदि  
अष्टभूमिजनोंकी पूजाका विधान है। बड़ी  
महादेव आदि एकदश भूमिजोंका भी पूजन  
आवश्यक है। चौथे आचरणमें सभी  
गजोष्ठ पूजनीय है। पञ्चमअचरणमें कर्माकर्षण  
बाह्यभागमें ब्रह्मज्ञान दक्ष दिक्पालों, उनके  
अश्वों और अनुचरोंकी ब्रह्मज्ञान पूजा करनी  
चाहिये। बड़ी ब्रह्माण्डेयानम भूमिोंकी समस्त  
ज्योतिर्गजोंकी सब देवी-देवताअर्चना सभी  
आकाशवायुस्थितियोंकी, पद्मसत्त्वस्थियोंकी

आसित्त पुनःपुनः, योगिपुनः, सप्त  
कर्मपुनः, इत्युक्तं पुनःपुनः मातृकापुनः,  
पुनःपुनः पुनःपुनःपुनः और इत्युक्तं सप्त  
पुनःपुनः पुनःपुनः पुनःपुनः कर्मपुनः । इत्युक्तं  
पुनःपुनः पुनःपुनःपुनः पुनःपुनः पुनःपुनः  
पुनःपुनः पुनःपुनःपुनः पुनःपुनः पुनःपुनः  
पुनःपुनः पुनःपुनःपुनः पुनःपुनः पुनःपुनः

इस प्रकार आभार-पूजाके बहाने  
 वरकेवल दिव्यका पूजन करके उन्हें  
 अधिकृतक रूप और व्यवहारमय मनोहर  
 दिव्य स्थितिमें करना चाहिये। मृतसृष्टिके  
 दिव्य आभारका उपकारकोसहित सामान्य  
 देकर मन्त्र प्रकारके पुनर्जीव पुनः इष्टदेवका  
 मङ्गल कर। आरती करा। मन्त्रद्वारा  
 पूजनका दोष क्षम्य पुनः करे। चारुण तथा  
 उपकारका स्तुतिप्रयोगसहित तथा समर्पण  
 करे। उपकारका उपकारके समान क्षम्यकीला  
 कर दे। स्तुतिमय मनोहर प्रकारे मन्त्र  
 प्रकारके स्तुति करके दे। जब पूजन करे,  
 पुनर्जीव भी करके तथा प्रत्येक पूजनमें  
 आहुति दे। इसके बाद भूमि, वायु और  
 जल करके उपकारकी स्तुतिमें जड़े।  
 स्तुतिमय और प्रार्थना करके अपने आपको  
 स्तुतिमें करे। मन्त्रद्वारा इष्टदेवके सामने ही  
 गुह्य और उपकारकी पूजा करे इसके बाद  
 अर्घ्य और आम फूल देकर पूजित स्थिति का  
 भूमिसे देवदेवका विसर्जन करे। फिर  
 अर्घ्यदेवका भी विसर्जन करके भूमा समर्पण  
 करे। मन्त्रद्वारे चाहिये कि प्रसिद्धि इसी  
 प्रकार पुनर्जीवमयसे सेवा करे। पूजनके  
 अन्त्यमें सुवर्णमय कमल तथा अन्य सब  
 उपकारकोसहित मन्त्र शिवलिङ्गको गुह्यके  
 हृदयमें दे दे अथवा दिव्यमन्त्रसे स्तुति कर  
 दे। पुरुषों, स्त्रियों तथा विशेषतः



कहे—'भगवान् ! अब ये अन्धकार अन्धकारों  
इस ज्ञातका उत्सर्ग करता है।' ऐसा कह  
विश्वविष्णुके मुख भागमें ऊपर दिशक्की ओर  
कुशोका स्पर्श करे। तदनन्तर दण्ड, खीर,  
जल और मेखलाको भी त्याग दे। इसके  
बाद फिर विधिपूर्वक अन्धकार करनेके  
पश्चात्तर मन्त्रका जप करे।

जो आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ करनेके  
अपने शरीरका अन्त छोड़नेका हस्तप्रयोगसे  
इस ज्ञातका अनुष्ठान करता है, वह 'वैदिक  
ज्ञाती' कहा गया है। जो सब आध्यात्मिक ऊपर  
ऊपर हुआ पश्चात्तराष्ट्र जन्मना चाहिये। वही  
सत्यही पुनर्जाते होता है और वही मनुज  
ज्ञातकारी है। जो वास्तविक ज्ञानविज्ञान  
विधिपूर्वक इस ज्ञातका अनुष्ठान करता है,  
वह भी वैदिकके ही गुण है; क्योंकि अपने  
तीव्र ज्ञातका आश्रय लेता है। जो अपने  
शरीरमें भी लगाकर ज्ञातके सभी नियमोंके  
पालनमें तत्पर हो वे ही-हीन विषय का एक विषय  
भी इस ज्ञातका अनुष्ठान करता है, वह भी  
कोई वैदिक ही है। जो निष्काम होकर  
अपना परम कर्तव्य मन्त्रकर अपने-अपनको  
शिवके चरणोंमें समर्पित करके इस ज्ञान  
ज्ञातका सदा अनुष्ठान करता है, उसके समान  
कोई कोई नहीं है। सिद्धान्त ज्ञातका मन्त्र  
लगाकर महापातकजनित अत्यन्त राख  
पापोंसे भी तत्काल छूट जाता है, इसमें  
संशय नहीं है। स्थापित जो मन्त्रों के अन्त  
पीठ (बल) है, वही मन्त्र कहा गया है।  
अतः जो सभी समयोंमें मन्त्र लक्ष्मणे स्थापित

है, वह वीर्यवान् मन्त्र गया है। मन्त्रमें निष्ठा  
रखनेवाले पुनर्जाते सारे दोष उस भस्माग्निके  
संयोगसे नष्ट होकर नष्ट हो जाते हैं।  
विष्णुका शरीर मन्त्रज्ञानसे विमुक्त है, वह  
मन्त्रनिष्ठ कहा गया है। जिसके सारे अङ्गोंमें  
मन्त्र लक्ष्मण हुआ है, जो मन्त्रसे प्रकाशमान  
है, जिससे मन्त्रमन्त्र विपुल लक्ष्मण रक्षा है  
तथा जो मन्त्रोंसे ज्ञान करता है, वह  
मन्त्रनिष्ठ माना गया है। धृष्ट, प्रेत, विष्णु  
तथा अन्धकार दुःख रोग भी मन्त्रनिष्ठके  
निकटसे दूर जाते हैं, इससे संशय नहीं है।  
वह शरीरमें निहित करता है, इसलिये  
'धर्मिण' कहा गया है तथा वायुका घटन  
करनेके कारण उसका नाम 'धर्म' है।  
भूमि (देवता) मन्त्रका छोड़के उसे 'भूमि' या  
'विभूति' भी कहते हैं। विभूति मन्त्र  
करनेवाली है, अतः इसका एक नाम 'रक्षा'  
भी है। मन्त्रोंके भावनामन्त्रों सेकर मन्त्र और  
मन्त्र कहा जाता। मन्त्रोंसे ज्ञान करनेवाली  
ज्ञाती पुनर्जाते मन्त्रोंके कहला गया है।  
यह परमेश्वर (स्वाभि) सत्यही मन्त्र  
मन्त्रमन्त्रोंके निम्ने कहा जागे अन्त है,  
क्योंकि अपने हीमन्त्र पुनर्जाते वही भाई  
अपनको सत्य आशी हुई आध्यात्मिकोंका  
निकारण किया जा, इसलिये सर्वथा प्रसन्न  
करके पश्चात्तर-ज्ञातका अनुष्ठान करनेके  
पश्चात्तर ज्ञानसत्यही मन्त्रका मनके समान  
संशय करनेके मन्त्र मन्त्रज्ञानमें तत्पर  
रहना चाहिये।

(अध्याय ३३)

## बालक उपमन्युको दूधके लिये दुःखी देख माताका उसे शिवकी आराधनाके लिये प्रेरित करना तथा उपमन्युकी तीव्र तपस्या

अधियोंने पूछा—उन्को ! बीनकी कड़े  
चाई उपमन्यु उस छोटे बालक से, उस  
उन्को दूधके लिये लवरा की की और  
भगवान् शिवसे प्रसन्न होकर उन्हें औरतान्तर  
प्रदान किया था । परंतु शेषशतककाली उन्हें  
शिव-साधकके उपमन्युकी कृति केसे ब्रह्म  
हुई अथवा वे केसे शिवके लवराकालके  
बालक तपस्यामें निरत हुए ? उपमन्युके  
कर्मों उन्हें बालके विद्वानकी प्रशंसा केसे हुई,  
शिवसे जो साधिका उत्पन्न कीर्ति है, उस  
आधारका भव्यको उन्होंने ब्रह्म किया ?

सापुदेवने कहा—भार्यके ! शिवकी  
छात्र तप किया था, वे उपमन्यु कोई लवराका  
बालक नहीं थे, परन्तु उपमन्यु भूमिपर  
साधनपदके पुत्र थे । उन्हें उपमन्युके ही  
सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी । परन्तु शिवकी  
कारणवश वे अपने पत्नी पति हो गये—  
योगबद्ध हो गये । अतः उपमन्यु उस  
होकर वे भूमिपुत्र हुए ।

एक समयकी बात है अपने पत्नीके  
आशयमें उन्हें बीनके लिये बहुत बड़ा दूध  
मिला । उनके माताका कीरा अपनी इच्छाके  
अनुसार बरत-गलत उस दूध पीकर उनके  
सबसे बड़ा था । बालकपुत्रको इस  
अवस्थासे देखकर उपमन्युका उपमन्युके  
भयने ईर्ष्या हुई और वे अपनी  
माँके पास जाकर बड़े प्रेमसे बोले—  
'माँ ! बालकको ! गर्भवती ! मुझे  
अपने स्वादिष्ट बरत-गलत माँका दूध से ।  
मैं बड़ा-सा नहीं पीऊँगा ।'

पत्नी लवराकी बालके भयने उस समय बहुत  
दुःख हुआ । उनके पुत्रको कड़े आहारके साथ  
उपमन्युके लवरा शिव और प्रेमपूर्वक लाज-  
वास करके अपनी निर्धनताका कारण जो  
अनेकों बड़े दुःखी हो मिलान करने लगी ।  
उपमन्युकी बालक उपमन्यु बालक दूधको  
पान करके राम हुए बालके कहने लगे—  
'माँ ! दूध से दूध हो ।' बालकके उस  
कालके उपमन्यु उस लवराकी लाज-वर्षासे  
उपमन्यु इच्छाके विचारणके लिये एक सुख  
उत्पन्न किया । अपने लगे उस-भूमिसे कुछ  
बीनका रोना किया था । उन बीनको  
देखकर अपने लवराके अन्न शिव और  
पीनकर पत्नीमें बोल दिया । फिर बीन  
बालके बोली—आओ, आओ मेरे  
लवरा ! जो बहुत बालकको प्राप्त करके  
उपमन्यु लवरा शिव और दुःखसे पीड़ित हो  
उपमन्यु भूमि दूध उनके हाथमें वे दिया ।  
उपमन्यु दिने हुए उस बालकी दूधको पीकर  
बालक उपमन्यु लवराके हो गए और  
बोला—'माँ ! यह दूध नहीं है । यह वह  
दूध दुःखी हो गयी और केटेका बालक  
दूधकर अपने होके हाथोंसे उनके बाल-  
लवरा केनेको पीनकी हुई बोली—'हेटा ।  
अपने पास नहीं बालकी अभाव होनेके  
कारण हरिप्रसाद लवरा अपमन्युकीने बीने  
हूँ बीनको पत्नीमें बोलकर वह मुझे बिलक  
दूध दिया था । तुम 'दूध नहीं दिया' ऐसा  
कहकर रोते हुए मुझे बालक दुःखी करते  
हो । किन्तु भगवान् शिवकी कृपाके बिना  
तुम्हारे लिये कहीं दूध नहीं है । भक्तिपूर्वक

केटेकी वह बाल लवरा लवराकी

पाता पड़ती और अनुसृतोन्मिश्र भगवान्  
 दिव्यको कलशपरिचोमे जो कुछ सचरित  
 किया गया हो, वही अमूर्त सम्पत्तिको  
 कारण होता है। मन्त्रदेवकी ही कम देवताको  
 है। इस मन्त्र देव लोगोंने उनकी आराध्य  
 नहीं की है। वे भगवान् की सकल पुण्यको  
 उनकी इच्छाके अनुसार प्राप्त करनेको है।  
 इस लोगोंने साक्षात् पहले कभी भी उनकी  
 कल्पनासे भगवान् सिखायी पूजा नहीं की  
 है। इसीलिये इस रसि हो गये और वही  
 कारण है कि तुम्हारे लिये इस नहीं मिल रहा  
 है। चेष्टा। पूर्वजन्मसे भगवान् सिखा अथवा  
 विष्णुके प्रेरणसे जो कुछ दिया जाता है,  
 वही वर्तमान जन्ममें भिन्न है, दूसरा कुछ  
 नहीं।<sup>१०</sup>

उपमन्व बोले—हाँ! यदि जन्म  
 पार्श्वतीमिश्र भगवान् सिखा सिखायन है, अब  
 आजसे शोक कारण क्यों है। मन्त्रदेव।  
 अब शोक छोड़ो, सब मनुष्यजन्म ही होता।  
 हाँ! आज मेरी बात सुन लो। यदि कहीं  
 मन्त्रदेवकी ही मौ में देवसे जो कभी ही उनके  
 हीमसाधन मिल सकेंगा।

सापुंर्यन कहते हैं—अब महाकृष्णम्  
 बालककी यह बात सुनकर उनकी  
 परमेश्वरी भगता उस समय बहुत प्रसन्न हुई  
 और वीं बोली।

माताने कहा—चेष्टा! तुम्हें बहुत  
 अच्छा विचार किया है। तुम्हारा जो विचार  
 मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अब तुम देव  
 न लगानो। सत्य सत्यसिद्धको भजन  
 करो। अन्य देवताओंको छोड़कर अब,

कभी और क्रियाश्रुता धर्माभाषको साथ  
 कार्यरतकोमिश्र उनकी सत्य सत्यसिद्धको  
 भजन करो। 'यः शिवम्' यह मन्त्र उन  
 देवताओंसे वाच्यक सिद्धता 'शिवम्'  
 कथक माना गया है। प्रणवमिश्र जो दूसरे  
 सत्ता करोड़ प्रणवका है, वे सब इसीसे लीन  
 होते हैं और फिर इसीसे प्रकट होते हैं। यह  
 मन्त्र दूसरे सभी मन्त्रोंसे प्रबल है। यहाँ  
 सत्यकी रक्षा करनेसे निरर्थक है; अतः दूसरेकी  
 इच्छा नहीं करनी चाहिये। इसलिये तुम दूसरे  
 मन्त्रोंको मन्त्रका केवल पञ्चाशतीके जपसे  
 लग जाओ। इस मन्त्रके विष्णुवा आते ही  
 यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। यह  
 सब मन्त्र जिनसे मैंने तुम्हारे पिताजीसे ही  
 प्राप्त किया है, यह विराट् प्रेमकी अभिसे  
 सिद्ध हुआ है, अतः वही के वही  
 अत्यन्तिसिद्ध विचारण करनेवाला है। मैंने  
 तुम्हें जो मन्त्रोंका मन्त्र बताया है, इसकी मेरी  
 आज्ञासे प्रार्थना करो। इसके जपसे ही वही  
 तुम्हारी रक्षा होगी।

सापुंर्यन कहते हैं—इस प्रकार आज्ञा  
 केकर और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा  
 कथना भगवान् तुम्हारे लिये किया। यदि  
 उपमन्त्रसे अब आज्ञाको शिरोधार्य करके ही  
 उनके चरणोंसे प्रणमि किया और तबजाने  
 लिये जन्मेकी तैकरी की। इस समय भगवान्  
 अपनीचर्च के लक्ष काल—'यस्य शिवम्  
 तुम्हारा प्रणव करो। माताकी आज्ञा पाकर  
 अब भगवान् तुम्हारे लिये आरम्भ करे।  
 विष्णुको परमेश्वर के लक्ष शिवरूपी आकर  
 उपमन्त्र शिवमिश्र हो केवल वायु पीकर

\*\*\*\*\*

रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाकर उसमें भिड़ोंके दिव्यलिङ्गकी स्थापना की। उसमें माता पार्वती तथा गणेशदेवसहित अश्विनाशी महादेवजीका आवाहन करके भक्तिभावसे पञ्चाक्षर-मन्त्रद्वारा ही अपने पुत्र-पुण्य आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करते हुए वे विरकालत्मक अंश तपस्यामें लगे रहे। उस एकमात्र की कृपाकाय बालक जिसपर उपमन्युको शिष्यमें सब सम्मान तपस्या करते देव-मरीचिके भाषसे पिशाचधन्यको प्राप्त हुए कुछ मुनिकोंने अपने राज्ञ-

सभासभसे इस्ताना और उनके तपमें विघ्न डालना आरम्भ किया। उनके द्वारा सभासे जागेपर भी उपमन्यु किसी प्रकार तपमें लगे रहे और इस 'ना शिष्य' का भर्तनामकी प्रति ओर-ओरसे उच्चारण करते रहे। उस प्रयत्नसे सुनते ही उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाले के मुनि इस बातकी सताना होकर उसकी सेवा करने लगे। ब्राह्मण-बालक महात्मा उपमन्युकी उस तपस्यासे सम्पूर्ण ब्राह्मण जगत् ब्रह्मी एवं संतप्त हो रहा। (अध्याय ३४)

☆

भगवान् शंकरका इन्द्ररूप आरण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से धर देना और अपनी पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना

तत्काल भगवान् विष्णुके अनुरोध करने-पर श्रीशिवजीने पहले इन्द्रका रूप धारण करके उपमन्युके पास जाकेका विचार किया। फिर वेत वैराघतपर आकाश में लगे देवराज इन्द्रका शरीर ग्रहण करके भगवान् सर्वशक्ति केवल, असुर, किन्तु तथा बड़े-बड़े नागोंके साथ उपमन्यु मुनिके तपोवनकी ओर चले। उस समय वह ऐतान्त शयी सैद्धमें बैठा लेकर प्रचीलमिद दिव्य-कलाके देवान् इन्द्रकी इजा कर रहा था और बायीं सैद्धमें वेत हाथ लेकर ऊपर लंगोले बल रहा था। इन्द्रका रूप धारण करने उपमन्यु भगवान् सदाशिव उस क्षेत्र लगेले उसी बग्न सुतांभित हो रहे थे जैसे उड़ित हुए पूर्ण मन्त्र-यक्षससे मन्दराचल सोभायमान होता है। इस तरह इन्द्रके स्वल्पका आत्म ले पायेकर दिव्य उपमन्युके उस आश्चर्य अपने उस बलपर

अनुभव करनेके लिये जा पहुँचे। इन्द्रकायधारी









उनके तपोमय तेजको देखकर प्रसन्नचित्त हुए प्राम्बुने उपमन्यु भूमिमें से पुनः दिव्य बरदान दिया । पाशुपत-मस्त, वासुकी-द्वन्द्व, तन्त्रिक-प्रतियोग तथा चिरकालकाल के उनके प्रमाण-परी परम पदता उन्हें प्रदान की । वनवास-श्रित और निरक्षरों दिव्य वर उनके निम्न सुमाराज्य पाकर वे प्रमुदित हो उठे । इनके बाद प्रसन्नचित्त हो प्रणाम करके हजम जोड़ हाहाग उपमन्युने देवदेव भदेधरसे पाश वर माँगा ।

उपमन्यु बोले—देवदेव ! प्रसन्न होइये । परमेश्वर ! प्रसन्न होइये और मुझे अपनी परम दिव्य दत्त अस्त्रधियाँ पत्नी भक्ति दीजिये । महादेव ! मेरे जो अस्त्र सरो-सम्बन्धी हैं, इनसे मेरी सदा सदा बन्दी रहैका कर दीजिये । साध ही, अपना शास्त्र, अस्त्र-श्रेष्ठ और निम्न सन्तान प्रदान कीजिये ।

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त हुए दिग्गोष्ठ उपमन्युने हर्षणसूक्त बाणीद्वारा महादेवजीका काल्य दिव्य ।

उपमन्यु बोले—देवदेव ! महादेव ! हाहागप्रसन्न ! अस्त्रधियाँ ! दत्ते नये ।

साधसद्वर्तिन ! जाय सदा मुझपर प्रसन्न होइये ।

उपमन्यु कहते हैं—इनके ऐसा कहनेपर सन्तानों वर देनेवाले प्रसन्नचित्त भूतदेवने मुनिवर उपमन्युको इस प्रकार उत्तर दिया ।

दिव्य बोले—कल उपमन्यु ! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ । इसलिये मैंने तुम्हें सप्त कुष्ठ दे दिया । महादेव ! तुम मेरे सुदृढ़ भक्त हो । क्योंकि इस विषयमें मैंने तुम्हारी प्रतीक्षा की थी । तुम अन्तर-अन्तर, दुःख-द्विष्ट, कलश, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होओ । दिग्गोष्ठ ! तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गेह सदा अभय रहेंगे । मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति सदा बनी रहेगी । विश्ववर ! मैं तुम्हारे अस्त्रधियाँ दिव्य भिक्षा करूँगा । तुम मेरे पास सन्तान दिव्य रहेंगे ।

ऐसा कहकर उपमन्युको अपनी वर दे करतेहो सुधेहि सन्तान तेजस्वी भगवान् पतिवर नहीं अस्त्रधियाँ हो गये । इस श्रेष्ठ परमेश्वरने इस वर पाकर उपमन्युका हृदय प्रसन्नतासे भरल उठा । उन्हें बहुत सुख मिला और वे अपनी अस्त्रधियाँ वारोंके स्वाभ्युदय । (अध्याय ३५)

## वाचवीयसंहिता (उत्तरखण्ड)

श्रवियोंके पहुँचनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका  
प्रसङ्ग सुनान्त, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका  
और भगवान् संकरसे पुत्रका लभ

सूत उवाच

ययः समस्तसंकरवक्त्रमन्वेतये ।

गौरीकृष्णोत्तरवक्त्रमुपाङ्गिणवधसे ॥

सुतजी कहती है—जो समस्त संसल-  
वक्त्रको परिभ्रमणमें कारणावय है तथा  
गौरीके सुगल वीरजोये होने हुए केसरको  
[ ] [ ] : तबल अङ्गित है, उन वक्त्रका  
उपावकलव विषयको समझाए है ।

उपमन्युको भगवान् संकरके कृपा-  
प्रसादके प्राप्त होनेका प्रसङ्ग सुनकर  
वधवाङ्कालमें विलस निपचके उदेकले  
वायुदेव काया बंध करके उठ गये । तब  
वैधिवारण्यनिवासी अन्य ऋषि भी 'अब  
अधुन बात सुननी है' ऐसा निश्चय करके  
उठे और त्रिदिनकी भक्ति अपना  
सात्कारिक निवर्तन पूरा करके भगवान्  
वायुदेवकी आत्मा देव निर आन्तर उनके  
पास बैठ गये । निपच सभा होनेका जब  
आकाङ्क्षकत वायुदेव मुनिजीकी सभामें  
अपने लिये विहित ज्ञान प्रमत्तया  
विराजमान हो गये—सुसपूर्वक बैठ गये,  
तब वे एकत्रित पवनदेव पार्वतकी  
श्रीसम्पन्न विभूतिका धन-ही-धन विनय  
करके इस प्रकार बोले—'मैं उन सर्वज्ञ  
और अपराजित महान् देव वक्त्र  
संकरकी प्रार्थना हूँ, जिसकी विभूति  
इस समस्त ब्रह्मण्ड जगत्के सम्यक् फैली  
हुई है ।

उनकी मुख बाणीको सुनकर वे  
निपच ऋषि भगवान्की विभूतिका  
विभारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये यह उत्तम  
वक्त्र बोले ।

ऋषिर्वाच कदा - धनवान् । आपने  
बहुला उपमन्युका वार्त्ता सुनाया, जिससे  
मैं ज्ञात हुआ कि उन्होंने केवल वृद्धके लिये  
उपका करके भी परमेश्वर विषये स्तुत  
का किया । इनके कहनेसे ही सुन रहा है कि  
जनापक्ष ही महान् कार्य करवावाले  
वसुदेवमन्त्र वक्त्रान् श्रीकृष्ण किसी समय  
श्रीकृष्ण की माई उपमन्युसे मिले थे और  
उनकी प्रेरणासे पाशुपत-ज्ञानका अनुमान





तीनों स्टेजोंमें आगके लपटों मेंमच जड़े  
काला धुन बालोंमें बलाओंमें लपटें खड़ी हैं ।

सुतजी कहते हैं—जब यह विषयोपनिषद् का  
श्रीगुरुदेव का पुत्रोत्पत्ति का प्रसंग आया  
तब श्रीगुरुदेव ने इस प्रकार बातें कीं और  
किया ।

कापुदेव बोले—आदिनिने ! कुर्बानगले  
 लीकानासमवादी ! बगवान् विष्णुने अने  
 आत्मनपर कीडे हूए महान् उपायदोने अने  
 प्रमाण करीके आत्मपुरुषक को ज्ञान दिया ।

[illegible]

आहतोही जीवकुलको हुन प्रसार पुग्नेमा  
जीवाणु उपवायुको माध्यमको सहाय देवी  
पानीकोही प्रवाह कारणेन उपरको प्रवाह  
अवस्था नगर देना आरम्भ भिया ।

उपान्यास दोनो—देवकीकथा ।  
 राजाजीसे होकर राजावरचर्चा जो भी  
 राजाको राजाकी जगह पर लाती है, वे  
 राज-को-राज भाग्यान् सिधको यह कहलालो  
 हैं और उनके भी होवेके कारण देवकी  
 सिधको यमुपति कहल कहल है । वे यमुपति  
 अपने यहलकोके राज और राजा जालि  
 राजको लीजले हैं और यमुपतिके उनके  
 द्वारा अलालि होवेकर वे राज ही उनके राज  
 राजको मुक्त करले हैं । जो लीजल राज है,  
 वे राजको राज ही राज है । वे ही सिध  
 राजलाले हैं, लीजो (यमुओ) को लीजले

काले पान के ही हैं। इन पाशोंद्वारा जलवाले लेवार्ड बरिठकीन जलवाले पानोंको जोड़कर

[illegible]

प्रवृत्त करती हैं। जबकि आदि कमिनिस्टों का मान्यता है और सिविली कृषकों अपने लिये निर्यात कार्य ही करती हैं, दूसरा कुछ नहीं। जबकि आदि जाने जाते हैं और कोषिका आदि कार्य लिये जाते हैं। इन सबके लिये भोग्यान् संकरणी गुणान आश्रयक सम्पन्न करना आवश्यक है। परन्तु सिविली कृषकों ही आश्रयक सम्पन्नता को केवल लक्ष्य प्राप्ति के लिये आवश्यक प्रदान करना है, वास्तविक प्राप्ति आदि सम्पन्नता के लिये आवश्यक-धीमात्मा सम्पूर्ण सम्पन्नता प्रदान करना है, आश्रयक देना आदि लिये इस और सम्पन्नता की दितरोके लिये सम्पन्नता है। इस ही सम्पन्नता के लिये सम्पन्न आदि सम्पन्नता ही सम्पन्नता है। इस सम्पन्नता के लिये सम्पन्नता है और सम्पन्नता के लिये सम्पन्नता है।

विश्वकी आज्ञा सम्पूर्ण वैष्णवओंके लिये अलङ्कनीय है। इसीसे त्रेतिन होकर देवराज इन्द्र देवताओंका वास्तव ईश्वरका स्वयं और नीचो लोकोंका भी ईश्वर बनने हैं। वास्तविक सदा जगत्प्राप्तके पालन और संरक्षणका कार्य ही करने हैं, साक्षी ही दण्डनीय प्राणियोंको अपने वासोदारा करीब लेते हैं। उनके स्थायी चक्षुष्य बुद्धि प्रमाणोंको उनके पुत्रके अनुग्रह से प्राप्त भव देते हैं और उक्त बुद्धिवाले बुद्धोंको सम्प्रतिष्ठित साक्षी जान भी प्रदान करते हैं। ईश्वर असाधु पुत्रोंका निन्दित करते हैं तथा सेवा शिवादी ही अवसरों अपने वसन्तकाल पुत्रीको धारण करते हैं। इन दोनोंको श्रीहरिकी मायासी रौद्रमुक्ति कहा गया है, जो

जन्ममरण चक्रवर्त्तन करनेवाली है। ब्रह्माजी विश्वकी ही आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तथा अपनी अन्य मूर्तियोंद्वारा पालन और मोक्षमार्ग प्रदर्शन भी करते हैं। भगवान् विष्णु अपनी विविध मूर्तियोंद्वारा विश्राम पालन, कर्त्तव्य और संसार भी करते हैं। विश्रामावस्था में ब्रह्मा जी भी तीन रूपोंमें विश्राम हो सम्पूर्ण जगत्का संसार, सृष्टि और रक्षण करते हैं। काले समयको उत्पन्न करता है। सभी ब्रह्माजी सृष्टि करता है तथा सभी विश्रामावस्था पालन करता है। यह सब वह महामायास्वरूपी आज्ञासे प्रेरित होकर ही करता है। भगवान् सूर्य ऊर्ध्वकी आज्ञासे अपने तीन अंगोंद्वारा जगत्का पालन करते, अपनी किन्मतोंद्वारा भूद्विके लिये आदेश देते और सब ही अस्मात्माके योग बनकर बसते हैं। सम्पूर्ण विश्वका शासन मानव ही करता। ओषधियोंका पोषण और प्राणियोंकी आज्ञावित्त करते हैं। माय ही देवताओंको अपनी आयुष्यकी कलाओंका पालन करने देते हैं। आदित्य, वायु, रुद्र, अग्नि-दीकृष्ण, वसुदेव, अन्नदायारी इन्द्र, मित्र, कामदेव, अनुष, वृष, पशु, कर्मा, कर्षि आदि, व्याघ्र प्राणी, बहिरा, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, अङ्गोसहित वेद, दाम्प्य, वन्य, वैदिकस्तोत्र और यज्ञ आदि कल्पवृक्षसे लेकर विश्वपर्यन्त भुवन, उनके अन्विष्टि, आसंख्य ब्रह्माण्ड, उनके अस्वरूप, कार्यरूप, कृत और प्रविष्टि, दिस-विष्टिमात्र, कल्प आदि कालके धिक्-विक् वेद तथा जो कुछ भी इस जगत्में देखा और सुना जाता है, वह सब भगवान्















पुनः किसीसे भी सम्बन्ध नहीं होता। जो इस परा और अपरा विभूतिको ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूतिको सर्वोच्च परा विभूतिका अनुभव करने लगता है।

**श्रीकृष्ण ।** यह तुमसे वास्तव्य विषय और पार्वतीके संघर्ष स्वल्पवत् प्रेक्षनीय होनेपर भी वर्णन किया गया है, क्योंकि तुम प्राणवान् विष्णुकी धर्मिके योग्य हो। जो शिव व हो, शिवके उपासक व हो और भक्त व हो, ऐसे लोगोको कभी शिव-पार्वतीकी इस विभूतिका उल्लेख नहीं करना चाहिये। यह वेदकी आज्ञा है। ज्ञातः अज्ञान

कल्पकामराज श्रीकृष्ण ! तुम दूसरोको इसका उल्लेख न देना। जो सुनारे जैसे योग्य पुन्य हो, उन्हींसे कहना; अन्यथा यौन ही रहना। जो भीतरसे पवित्र, शिवका भक्त और विद्याशील हो, वह यदि इसका जीर्ण कर ले धर्मोपनिषत् प्राप्तका भागी होता है। यदि वहलोगे प्रभाव प्रसिद्धिवाक कर्मोद्धार भक्षण का कारणकी प्रार्थना काथा पढ़ जाय, जो भी कारणका प्रथमका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेवाले पुन्यके लिये पाही कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

(अध्याय ४)



## परमेश्वर शिवके पदार्थ स्वरूपकर विवेचन तथा उनकी श्रणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन

उपमान् कहते हैं—चन्द्रमन् । यह बराबर जगत् देहादिभेद सद्गुरुकीय स्वभाव है। परंतु वस्तु (जीव) भारी बालसे हीके प्रोथेके कारण जगत्को इस रूपमें नहीं जानते। यहविष्णु उन परमेश्वर शिवके निर्विकल्प परम भावको न जाननेके कारण उन एकता ही अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं—कोई उन वास्तव्यको अपर ब्रह्मत्व कहते हैं, कोई परब्रह्मत्व कहते हैं और कोई आदि-अन्तसे रहित अकृष्ट सद्गुरु-स्वरूप कहते हैं। पक्ष ब्रह्मभूत इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा प्राकृत विषयवत् जड तत्वको अपर ब्रह्म कहा गया है। इसमें शिव शक्ति सौम्यवत् जड परब्रह्म है। कृष्ण और व्यासके होनेके कारण उसे ब्रह्म कहते हैं। प्रश्न ! क्यों एवं ब्रह्मकीके अस्तिपति परब्रह्म परब्रह्म शिवके से पर और अपर दो रूप हैं। कुछ लोग परेश्वर शिवको विद्याविष्णु-

स्वरूपी कहते हैं। इसमें विद्या सेतना है और अविद्या अनेकता। वह विद्याविद्यावत् शिव सद्गुरु भगवान् शिवकी का ही है, इसमें संदेह नहीं है, क्योंकि शिव उनके पदार्थ है। ज्ञानि, विद्या तथा पराविद्या या परम तत्त्व—ये शिवके तीन अकृष्ट रूप माने गये हैं। यद्यपि शिवकी जो अनेक प्रकारकी असत्ता कागदर हैं, उन्हें ज्ञानि कहते हैं। पदार्थ विष्णु का ज्ञानका काम विद्या है तथा जो विद्याविरहित ज्ञान ज्ञान है, उसे परम तत्त्व कहते हैं। परम तत्त्व ही सत् है, इससे विपरीत असत् कहा गया है। सत् और असत् दोनोंका पति होनेके कारण शिव सत्सत्पति कहलमते हैं अन्य यहविष्णुने क्षर, अक्षर और इन दोनोंसे पर परम तत्त्वका प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण घृण क्षर है और जीवतत्त्व अक्षर कहलमते हैं। ये दोनों परमेश्वरके रूप हैं; क्योंकि उन्हींके अधीन



भुक्तिजन उन परमेश्वरको लक्ष्यार्थ स्वार्थपरता  
निश्चय नहीं कर पाते। जो सर्वथा स्वसे उन  
परमेश्वरकी चरणार्थ आ गये हैं, वे ही उन  
परम कारण शिखको भिना पावके ही प्राप्त  
पाते हैं। जन्मक पशु (जीव), भिन्का  
दूसरा कोई ईश्वर नहीं है उन सर्वेश्वर, सर्वज्ञ,  
पुराणपुराण तथा तीनों लोकोंके शासक  
शिवको नहीं देखता, नन्मक वह पावोंसे  
बन्ध हो इस दुःखमय संसार-चक्रमें गड़ीके

मदिरिकी केमिकल संयोजन प्रकृत है। जब यह हृत्त जीवित्वा सम्बन्धे शासक, प्रह्लादके भी आधिकारिक, सम्पूर्ण अगतके रक्षिता, सुवर्णोत्थ, विन्य प्रकाशस्वयम् परम प्रसन्नता आकाशकाय का लेता है, तब प्रथम ओह पाप सेनेको पलीचोति हटाकर निर्दल हुआ वह ज्ञानी प्रह्लाद सर्वोत्थ सम्पत्तको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ५)

शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वप्रथम, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका  
तथा उनकी प्रणवस्मृताका प्रतिपादन

नमन्यु कहते हैं—पदुन्दन । निम्नको  
न तो आणख घालना ही कम्पन प्राप्त है, न  
कर्मका और न मायाका ही । प्रकृत, कौटु,  
आत्मकार, मन, चित्त, इन्द्रिय, तन्मात्रा और  
पञ्चभूतसम्बन्धी भी कोई कम्पन उनके नहीं हो  
सका है । अधिक तेजस्वी हाथको न काल,  
न कल्प, न विद्या, न विमर्श, न राग और न  
द्वेषका ही कम्पन प्राप्त है । उनके न तो कर्म  
है, न इन कर्मोंका धारिणाह है, न उनके  
फलस्वरूप सुख और दुःख है, न उनकी  
वासनाओंसे सम्बन्ध है, न कर्मोंके  
संस्कारोंसे । भूत, अविद्य और वर्तमान  
मोर्गों तथा उनके संस्कारोंसे भी उनका  
सम्पर्क नहीं है । न इनका कोई कारण है, न  
कर्ता : न आदि है, न अन्त और न यथ है;  
न कर्म और करण है; न अकल्प्य है और न  
कर्मण्य ही है । उनका न कोई कन्धु है और न  
अकन्धु; न निधन्ता है, न प्रेरक; न प्रति है, न  
गुरु है और न ज्ञाता ही है । उनके अधिकारी  
वर्षा कौन करे, उनके स्थान भी कोई नहीं  
है । उनका न उपाय होता है न साधन : उनके

निम्ने कोई जगत् न तो सम्मिश्रित है और न  
 अव्यक्तित्व ही। इनके निम्ने न विधि है न  
 निषेध। न भयान है न भुक्ति। जो-जो  
 अव्यक्त्यात्मकारी लोग हैं वे इनमें कभी नहीं  
 रहते। परन्तु सम्पूर्ण कल्याणकारी गुण उनमें  
 सदा ही रहते हैं; क्योंकि विश्व साक्षान्  
 वरमात्मा हैं। वे विश्व अपनी शक्तिधोहारा  
 इस सम्पूर्ण जगत्में भवात् होकर अपने  
 स्वभावसे चला न चले हुए सदा ही स्थित रहते  
 हैं; इसलिये उन्हें स्वायत्त कहते हैं। यह सम्पूर्ण  
 चराचर अन्तःशक्तिसे अधिष्ठित है; अतः  
 भगवान् शिव सर्वलम्ब माने गये हैं। जो ऐसा  
 अन्तःशक्ति है, वह कभी मोहमे नहीं पड़ता।

रुद्र सर्वोच्च हैं। उन्हें नमस्कार है। वे सत्त्वगुण, परम महान्, पुण्य, शिरोधार्य, प्रभावान्, शिरोधार्य, ईश्वर, अमिताभ, ईशान, भिन्नानन्द तथा सुखदायक हैं। एकपक्षी रुद्र ही परमात्मा परमात्मा हैं। वे ही कृष्ण-विष्णु वर्णवाले पूरक हैं। वे हृदयके भीतर कमलके मध्यभागमें केसरीके आभरणवादी भक्ति सन्तानोंमें निहित करते





## परमेश्वरकी शक्तिको श्रुतियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिव-धर्मका वर्णन

उपमानु कहते हैं—परमेश्वर शिवकी स्वाभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विश्वज्ञान है। यह एक होकर भी अनेक प्रकारसे व्यापित होती है। जैसे सूर्यकी एक ही होकर भी अनेक रूपसे प्रकाशमान होती है। उस विद्यारूपीको प्रकाश, ज्ञान, शिव और वाच आदि अनेक शक्तिपूर्ण उपमाएँ हैं। हाँकि उसी तरह जैसे आँखसे चक्षु-ही शिवगतिरचा प्रकार होती है। कर्णसे श्रवणिक और हृदय आदि मध्य विद्या और चित्तेश्वर आदि मूल्य भी उभरते हुए हैं। वरमन्त्र अकृति भी उसीसे उत्पन्न हुई है। चक्षु-को लेकर चित्तेश्वरकी ही शक्ति का नाम ज्ञान (ज्ञा) आदि श्रुतियों की शरीरसे उत्पन्न हुई है। इसके विचार जो अन्य चक्षु है। वे सब भी उसी शक्तिके कारण हैं, इससे संभव नहीं है। यह शक्ति सर्वव्यापिकी, सृष्ट्यत्क तथा प्रलयवत्क-करिणी है। उसीसे हीनोद्भूतमूल परमात्मा शिव शक्तिमन्त्र कहलाते हैं। शक्तिमन्त्र—शिव वेद है और शक्तिमन्त्रिणी—शिव विद्या है। वे शक्तिमन्त्रा शिव ही ज्ञान, क्षुति, सृष्टि, धृति, शिविनि विद्या, प्रत्यक्षिक, इच्छाशक्ति, कार्यशक्ति, आत्मशक्ति, परब्रह्म, वा और अन्तरात्मकी ही विद्याएँ, सृष्टि शिव और सृष्टि कला है, सर्वोक्ति तथा कुछ शक्तिमन्त्र ही कारण है। यन्त्र, अकृति, जीव विचार, विकृति, अज्ञान और सन् आदि जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह सब उस शक्तिसे ही उत्पन्न है।

वे शक्तिमन्त्रिणी शिव देखी वाचाद्वारा

सबका परमेश्वर प्रकाशमानसे अवतारण ही प्रेरणें उत्पन्न होती और लीलायुक्तक जो प्रत्येक अवस्थासे मुक्त भी बन होती है। इस शक्तिमन्त्र प्रकाशित प्रकार है। प्रत्यक्षिक प्रकाशमान ही इस शक्तिमन्त्र तथा अवधार शिव अन्तर्गत शिवकी वाचा कारणों विचार है। कृष्टिक कारणोंसे मुक्ति विचारणी है। कृष्टिकारणकी वाचा है, अन्तरात्मनकी कृष्टिकी प्रकाशमानसे कुछ प्रकाशकी श्रुतियोंके समर्थ पर प्रकाश हुआ। वे वरमन्त्र शिवमन्त्र वधार्थ-उत्पत्ति विचार करने लगे—इस वरमन्त्र का कारण क्या है ? इस विचारसे उत्पन्न हुए हैं और विचारसे जीवन कारण कहते हैं ? कसारी शक्तिमन्त्र क्यों है ? इसारा अभिव्यक्ति काँन है ? इस विचारके लक्ष्योन्मुखी वाचा मुक्तसे और दुःखसे क्यों है ? विचारसे इस विचारकी अन्तर्भूतिक प्रकाश की है ? यदि कोई कारण, स्वभाव, शिविनि (विशिष्ट ज्ञान ऐन्द्रात्मिक कार्य) और चक्षु-मन्त्र (अन्तरात्मिक कारण) इससे उत्पन्न हो भी वह कथन श्रुतिमन्त्र नहीं ज्ञान कहता। शीघ्र वाचापूर्ण तथा शिवमन्त्र की वाचा नहीं है। इन अवस्था संयोग तथा अन्य कोई भी कारण नहीं है। सर्वोक्ति वे ज्ञान आदि अव्यक्त है। शिवमन्त्रके ज्ञान होकर भी यह सृष्टि-दुःखसे अभिव्यक्त तथा अव्यक्त होनेसे इस अव्यक्त कारण नहीं ही प्रकाश। अतः कौन कहला है, इसका विचार करना चाहिये इस प्रकार अव्यक्त विचार करनेपर जब वे श्रुतिमन्त्रद्वारा किसी निर्वाचनक व प्रसूत



एकत्रीक लेख है। इस विविध शब्दोंसे सम्बन्ध होनेवाली ओ यही सेवा है, इसे 'सिद्धिबर्णन' भी कहते हैं। परम्परा सिद्धिने यौन प्रकारका सिद्धि-वर्णन बताया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। सिद्धिपूजन आदिको 'कर्म' कहते हैं। कन्दर्पण आदि ज्ञानका नाम 'तप' है। ज्ञानिक, उपासु और ध्यात—तीन प्रकारका भी शिव-पूजक अभ्यास (अभ्यास) है, इसलिये 'तप' कहते हैं। शिवका सिद्धि ही 'ध्यान' कहलगा है।

☆

## शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अपर्यादानकी विधि तथा व्यासाखतारोंका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मनवान् । अब मैं इस शिव-ज्ञानको सुनना चाहता हूँ, जो केन्द्रेक स्वरूप है तथा शिवे भगवान् सिद्धिने अपने स्वरूपागत धर्मोंकी सुक्तिके रूपमें कहा है। प्रभु शिवकी पूजा कैसे की जाती है ? पूजा आदिमें किसका अधिकार है तथा ज्ञानयोग आदि कैसे सिद्ध होते हैं ? ज्ञान ज्ञानका ध्यान करनेवाले सुनीधर । ये सब बातें विस्तारपूर्वक बताइये ।

उपगम्युने कहा—मनवान् सिद्धिने शिव केन्द्रेक ज्ञानको संक्षिप्त रूपमें कहा है, यही शिव-ज्ञान है। यह सिद्धि-वर्णन आदिमें शिव तथा शिवनामासे ही अपने प्रति विचार स्वरूप करनेवाला है। यह शिव ज्ञान पुरुषको कृपासे प्राप्त होता है और अनन्तता ही सेवा देनेवाला है। मैं उसे संश्लेषमें ही बताऊँगा, क्योंकि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन यहाँ कर ही नहीं सकता हूँ। पूर्वजन्ममें योद्धा शिव सुक्तिकी इच्छा करनेके सन्तर्क-कारणसे विपुल हो स्वयं ही अवलम्बने एक रूपमें

उपगत हुए। इस भगवत् ज्ञानस्वरूप भगवान् सिद्धिबर्णने देवताओंमें सबसे प्रधान देवता केरूपमें ब्रह्मजीको उल्लेख किया। ब्रह्मने उल्लेख होकर अपने शिव ब्रह्मदेवको देता तथा ब्रह्मजीके अन्तःस्थादेवजीमें श्री सूर्य इन्द्र ब्रह्मजी और ज्योतिष देवता और उनके ब्रह्म रचनेकी आज्ञा दी। सूर्यदेवकी कृपादेवता देवता ब्रह्मके नामधर्मसे युक्त हो उन ब्रह्मदेवने सचन सूर्यदेवकी रचना की और युक्त-युक्त वर्णों तथा अवयवोंकी स्वरूपता की। इन्होंने धर्मके लिये सूर्यकी सूर्य की। सोमसे सुलेकता प्रभुधर्म हुआ। फिर पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, यज्ञधर्म विष्णु और इन्द्रिय इन्द्र उपगत हुए। ये सब तथा अन्य देवता स्वरूप स्वरूप स्वरूपकी भूमि करने लगे। सब भगवान् महेश्वर अपनी स्वीकृत उपगत करनेके लिये उन सबका ज्ञान इच्छा प्रत्यक्षपुरुषसे उन देवताओंके आगे लड़ते गये।

तब देवताओंमें योद्धा होकर उनसे

पुत्र— आप क्यों हैं ?' गणपति यह बोले—'मेरा देवताओं ! सबसे पहिले मैं ही हूँ। इस समय भी दर्शन मैं ही हूँ और भविष्यमें भी मैं ही रहूँगा। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। मैं भी अपने मेरे समस्त उपासकों का नाम हूँ। तुमको अधिक और बड़े सन्मान चाहिए है। जो भूके सम्मान है, वह मुक्त हो जाता है।' ऐसा कहकर गणपति यह नहीं अन्तर्धान हो गये। उस देवताओंमें उन प्रभुत्वमें नहीं देखा, वह वे सामर्थ्यके लक्ष्यद्वारा उनकी कृति करने लगे। अन्तर्धानमें वर्णित महारूप-अन्तर्धान करने उन अवसरमेंसे अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें घटत लगत किया। यह देवता इसपर कुछ करनेके लिये वास्तविक सामर्थ्य अपने गणों और उपासकों साथ उनके निवास करने। शिवायामके द्वारा प्रभुत्वमें उपासकों विहारहित एवं निवास हुए योगीश्वर अपने उपासकों सिन्धु दर्शन करने हैं, उनकी महारूपकी उन देवताओंमें नहीं देखा। लिये प्रभुत्वमें प्रभुत्वका अनुमान करनेवाली पराजयित करने हैं, उन सामर्थ्यके लक्ष्य प्रकटकी भी उनकी सामर्थ्य लक्ष्यके लक्ष्यकागमें विराजमान देखा। जो संसारमें प्रभुत्व सिन्धु पराजयितके लक्ष्य हो भूके हैं तथा जो सिन्धु सिन्धु हैं, उन लक्ष्यके लक्ष्य भी देवताओंमें दर्शन किया। गणपति देवता महारूपकी शक्ति और योगीश्वर सिन्धु लक्ष्यद्वारा देवीपति महारूपकी कृति करने

[illegible]

**टीका संकेत—** भयानक ! इस भूतलवार  
जिसे मारनेसे अत्यन्त ही दुःख होनी चाहिये और  
उस दुःखमें निरन्तर अधिवारा है ? यह  
हीन-नीच कालोत्पन्न भयानक ।

जब केवल निम्नलिखित दोषोंकी ओर ध्यानपूर्वक देखा और अपने मन में सुनिश्चय प्रकट करने दिया जाय :—

\* सोडाबॉट, कलकत्ता ७२। एडमंड्स, कलकत्ता ७२। एडमंड्स, कलकत्ता ७२। एडमंड्स, कलकत्ता ७२। एडमंड्स, कलकत्ता ७२।

[illegible][illegible]













आत्मज्ञानर पूजनमें हमको जो भाव (देव) है, उसीको ही पूज्य करता है। देवि । विद्याका एकमात्र आकाश भाव ही है। यही मेरा सत्यनिर्धारण है। मन, वाणी और कर्मद्वारा काहीं भी विमर्शनाका फलपत्ती फलन न रहकर ही विद्या करनी चाहिये। केलेखरी । कलकत्ता औरंग दरसेको मेरा आश्रय हनु हो जाता है; क्योंकि कलकत्ताको यदि कार न मिले तो वह मुझे छोड़ सकता है। यही वाणी है। कलकत्ता छोड़कर भी विद्या साधनाका विद्या मुझमें ही प्रतीति है, उसे उसके भावको अनुसार कर मे आश्रय देता है। विद्याकी मन फलपत्ती फलन न रहकर ही मुझमें सत्य हो, वाणी पीछे मे कलकत्ताको छोड़, मे भाव भी मुझे विद्या है। जो पूर्वसंस्कारभक्त ही कलकत्ताका विद्या न करके विद्या हो मेरी करण लेने है, मे कल मुझे अधिक विद्या है। केलेखरी । उन फलपत्तीके सिन्हे मेरी प्रतीति कलकत्ता द्वारा काहीं साधनाका फल नहीं है तथा मेरे सिन्हे भी वेको कलकत्ताकी प्रतीति कलकत्ता और कलकत्ता नहीं है। मुझमें सर्वविध हुआ प्रत्यक्ष भाव मेरे अनुसंधारी ही हमको कलकत्ता पूर्ववत् विद्याका फल प्राप्त करता है।

विद्याको अपने विद्याको मुझे समर्पित कर दिया है, अन्त्य जो मेरे अन्त्य भक्त है, मे प्रत्यक्ष फल ही मेरे सर्वविध अधिकारी है। उनके अन्त स्थान बताते गये है। मेरे कलकत्ताको प्रतीति को, मेरी प्रत्याका अनुसंधान, कलकत्ता की मेरे पूजनमें प्रतीति, मेरे सिन्हे ही साधनाका फलपत्ती होना, मेरी कलकत्ता फलपत्ती फलपत्ती, कलकत्ता फलपत्ती फलपत्ती, मेरा और अन्त्य विद्याका होना, कलकत्ता मेरी प्रतीति और कलकत्ता मेरे अन्त्य फलपत्ती ही कलकत्ता-प्रतीति करण—मे अन्त प्रतीतिके विद्या यदि किसी लोकाय भी हो तो वह विद्याकोविद्या हीवान् मुनि है। वह कलकत्ता है और कलकत्ता विद्या है। जो मेरा कलकत्ता है, वह कलकत्ता विद्या हो तो भी मुझे विद्या नहीं है। यही मेरा कलकत्ता है, वह अन्त्य हो तो भी विद्या है। जो कलकत्ता देना चाहिये, कलकत्ता प्रत्यक्ष फलपत्ती फलपत्ती फलपत्ती फलपत्ती ही प्रतीति है। जो कलकत्ता-कलकत्ता मुझे फल फल, कल अन्त्य फल समर्पित करता है, उसके सिन्हे भी अन्त्य नहीं होना है और वह मेरी भी दुष्टिने कलकत्ता अन्त्य नहीं होना है।<sup>१</sup>

(अध्याय १०)



## कर्माश्रय-धर्म तथा भारी-धर्मका वर्णन; सिद्धके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्ताका प्रतिपादन

ब्रह्मदेवकी कहते हैं—केलेखरी । अब मेरे सिन्हे कोलेखरी कलकत्ता-कलकत्ता कलकत्ता है। अधिकारी, विद्या एवं मेरे कलकत्ता-कलकत्ता कोलेखरी कलकत्ता, अन्त्य, विद्या, विद्या

१. य मे विद्याकोविद्या कलकत्ता कलकत्ता है। इसके दोष लोके प्रत्यक्ष न व मुझे कलकत्ता है।

यही फल फल लोके को मे कलकत्ता कलकत्ता । कलकत्ता न कलकत्ता न य मे न कलकत्ता है



संश्लेष, सत्व, असंश्लेष (कोरी) व क्षय),  
प्राज्ञाकर्ष, विज्ञानात्म, वैराग्य, चक्षु-संश्लेष  
और सत्व प्रकाशकी अत्यन्तित्थिते विद्युति—  
इन दस वर्णोंको प्राज्ञानोक्त विज्ञान वर्ण कहा  
गया है ।

[illegible]

चलितचरित्र अलग हो तो वाली बेरा पूजन की मर  
लगाती है। जो ली चलितचरित्र सेक छोड़कर  
जाले लगाने होती है, यह नपकाले जाती है।  
हम विचारले विचार करनेकी आवश्यकता  
होती है।

अथ ही विधवा शिशुओंके सम्भाल-  
कार्यका वर्णन करीये। इस, दाय, तप,  
ह्रीन्ध, भूमि-सुधन, केवल रातमें ही संभाल,  
तथा प्रत्युत्पन्नका सम्भाल नाम आकाश चरित्रों  
काय, रक्षित, जीवन, अथवा, विविधपुत्रोंका सम्भाल  
कीकोष्ठोंके अन्तर्गत विचारका, अङ्गुली, चतुर्वर्णी,  
पुत्रोंका सम्भाल विचारका: हस्तद्वयीको  
विचित्रता सम्भाल और वेत सुख — ये  
विधवा शिशुओंके कार्य हैं। हेमि । इस प्रकार  
वेने संज्ञकोंके अन्तर्गत आकाशका सम्भाल  
कार्यकावे अङ्गुली, क्षीरको, वेतको,  
सम्भालको, अङ्गुलीको तथा सम्भालकी  
और सम्भालकोके अन्तर्गत वर्णन किया। साथ  
ही सुधी और चरित्रोंके रूपमें भी इस  
सम्भालकार्यका सम्भाल दिया। देवेवारी। सुधी  
तथा वेत सम्भाल और वेने सम्भाल-सम्भाल अथ  
कार्यका चरित्रों। यही सम्भाल केकेके कार्य हैं  
और यही कार्य तथा सम्भाल सम्भाल हैं।

[illegible]

\*\*\*\*\*

मेरे लिये कोशुं बिचि-मियेन नहीं है, केन ही  
 उनके लिये भी नहीं है। करिपूर्ण होनेके  
 कारण जैसे मेरे लिये कुछ लाभ नहीं है,  
 वैसे प्रकार उन कुनकुन हाथकेपिचोंके  
 लिये भी कोशुं कार्यन नहीं रह जाय है। वे  
 मेरे जालोंके द्वारेके लिये मान्यमान्य  
 आत्मन केकर भूतलपर निवस हैं। उन्हें  
 बालेबाले परिग्रह रह ही समझन चाहिये;  
 इसमें संशय नहीं है। जैसे मेरी आत्मा स्वयं  
 आदि केवातओके कार्यमें प्रबल कार्यकारी  
 है, उसी प्रकार उन निम्नकोशिकोंकी आत्मा  
 भी अन्य मनुष्योंके कार्यकार्यमें  
 लगायेवाली है। वे मेरी आज्ञाके आचर हैं।  
 उनमें अविशय सञ्चय भी है। इसलिये  
 उनका शक्ति कार्यकारी उन कार्यके नर  
 ही जाय है। इस प्रकार मनुष्यी आशिकों  
 बुधिम कार्यकारी विद्वत्त्वकी भी कृति होती  
 है। फिर बुलबुलाने सुनने अनुगत है, उन्हें हम  
 बालेबाले भी प्रिय ही जाय है, जो करने  
 कभी उनके देखने, सुनने का अनुभवमें नहीं  
 आती होती है। उन्हें अन्तर्गत कार्य, और,  
 अनुभव, कार्यमें कार्यकार गन्त अन्तर्गत  
 आदि मन्त्रोंका कार्यकार गन्त होने लगता है।  
 वे सब लक्षण उनमें कभी एक-एक कार्यके  
 अलग-अलग प्रकट होते हैं और कभी  
 सम्पूर्ण मन्त्रोंका एक साथ उदय होने लगता  
 है। कभी विराम व होनेवाले इन मन्त्र,  
 मन्त्र और उदय मन्त्रोंका उन सब  
 मनुष्योंकी बुद्धिमान करनी चाहिये।

जैसे सब लोक आजमें लम्बर लम्बर हो  
 जाता है, सब केवल लोक नहीं रह जाय।  
 इसी तरह मेरा सावित्र प्रान्त होनेसे वे

केवल मनुष्य नहीं रह जाते—मेरा सबका हो  
 जाते हैं। इस, और अधिक सम्बन्धोंमें  
 मन्त्र-कारण कारण कारणों की वे बालेबाले  
 रह हैं। उन्हें प्रबल मनुष्य समझकर विद्वत्  
 बुधिम उनकी सम्बन्धन न करे। जो बुधिम  
 मन्त्र उनके प्रति अवहेलना करते हैं, वे  
 अपनी आत्मा, स्वयं, बुद्ध और प्रीतिके  
 सम्बन्धन कार्यमें लगे हैं, अन्तर्गत मनुष्य  
 कार्यमें क्या लगे ? फिर विद्वत् की  
 जगत्में सुनने फिर लगाय सम्बन्धनोंकी  
 आशिक एकलाल जाय है।

उपमन्त्र करते हैं—इस प्रकार मन्त्रोंका  
 अन्तर्गतत्व लिये तीनों लोकोंके द्वारेके  
 लिये उनके लम्बर अवहेलना संसृष्ट प्रकट  
 किया है। सम्पूर्ण केवलत्व, इतिहास, पुराण  
 और विद्वत् इस विद्वत्-सम्बन्धों की विद्वत्  
 जायकारी है। ज्ञान, ज्ञेय, अनुभव,  
 अधिकार, साधन और साधक—इन ही  
 अवहेलना ही सब संशय संसृष्ट लम्बर गन्त  
 है। लोकात्मा । जो फिर और विद्वत्त्वकी  
 लम्बरमें मूल है और उनकी मन्त्रोंके लम्बर  
 है, उनके लिये लम्बर-लम्बर बुद्ध भी कार्य  
 ज्ञेय नहीं है। इसलिये ज्ञान: बाह्य और  
 आन्तरिक कार्यकी लम्बर ज्ञानों केवलत्व  
 लम्बरका कार्यके फिर उन लम्बरभूत  
 ज्ञानोंकी भी लम्बर है। यदि फिर लम्बर  
 लम्बर नहीं है तो कार्य करनेकी भी क्या  
 लम्बर ? और यदि फिर लम्बर ही है तो कार्य  
 करनेकी भी क्या लम्बरलम्बर है ? अतः  
 लम्बर और लम्बरके कार्य करके का व कार्यके  
 लम्बर-लम्बर की लम्बरके लम्बर लम्बर  
 फिर लम्बर है। ज्ञानका फिर लम्बर ज्ञानों





मेद और वातक विरक्तजन है; अतः उसके सम्मान दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। सब करोड़ मन्त्रधन्तों और अनेकानेक ब्रह्मचर्यों से यह ब्रह्मक्षर मन्त्र उसी प्रकार विशुद्ध है, जैसे बुल्लिसे धूप : जिसने शिष्याग्रज है और जो-जो विद्यास्थान है, वे सब ब्रह्मक्षर-मन्त्रधरों सुत्रके संक्षिप्त मन्त्र हैं। जिसके हृदयमें ३० मन्त्र 'शिष्याय' यह ब्रह्मक्षर-मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे ब्राह्मणस्यक मन्त्रों और अन्यक विस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन है ? जिसने

'३० मन्त्र शिष्याय' इति ब्रह्मक्षर मन्त्र सुत्रापूर्वक अपना शिष्या है, उसने सम्पूर्ण शास्त्र यह सिद्ध और सफल सुभ कृत्यको अन्तर्गत पूरा कर लिया। आश्रिये 'नमः' कासे मुक्त 'शिष्याय'—वे तीन अक्षर जिसकी विद्युत्के अवभागमें विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। ब्रह्मक्षर-मन्त्रके उपर्ये मन्त्र हुआ मुक्त यदि पवित्र, शुद्ध, अन्तर्गत अक्षरक अर्थक भी हो तो वह वाच्यज्ञासे मुक्त हो जाता है। (अध्याय १५)

☆

**पञ्चाक्षर-मन्त्रकी पहिमा, उसमें समस्त ब्राह्मण्यकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपी पञ्चाक्षर-विद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके अक्षि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अङ्गन्यास आदिका विचार**

देवी बोली—ब्रह्मक्षर ! दुर्लभ, कुम्भकूप एवं कर्तृविक कठिणकालमें जब सारा संसार धर्मसे विमुक्त हो पापमय अधिपत्यसे आच्छादित हो आचगा, कर्ष और अलस-सम्बन्धी आकार नष्ट हो जायेंगे, धर्मसंसार उपस्थित हो आचगा, समस्त अधिपत्य प्रविण्य, अनिष्टित और विकीर्ण हो जायगा, इस समय उपदेशकी प्रकाशी नष्ट हो जायगी और गुरु-शिष्यकी सम्बन्ध भी जाती रहेगी, ऐसी परिस्थितिमें आपके मन्त्र किन्त उपदेशसे मुक्त हो सकते हैं ?

सहोदरजीने कहा—वैधि ! कठिणकालमें मनुष्य मेरी वरदा बन्देय पञ्चाक्षरी विद्याका आश्रय ले जायेंगे धर्मविरहित होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जो प्रकृतनीय और अधिपतनीय हैं—इन धानसिक, धार्मिक और सार्वत्रिक

दोनोंसे जो दूषित, कुतज्ञ, निर्धन, कुली, लोभी और कुटिलचित्त हैं, वे मनुष्य भी यदि मुक्तमें जब लगाकर मेरी पञ्चाक्षरी विद्याका जब करेंगे, उनके सिधे वह विद्या ही संसारधर्मसे तारनेवाली होगी। वैधि ! मैंने ब्रह्मक्षर उपायापूर्वक यह बात कही है कि ब्रह्मक्षर मेरा पतित हुआ भक्त भी इस पञ्चाक्षरी विद्याके द्वारा बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

देवी बोली—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कार्य करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा शिष्य तथा कार्य नरककी ही शक्ति करनेकारण होता है। ऐसी दशामें पतित मनुष्य इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है ?

सहोदरजीने कहा—सुन्दरी ! तुमने यह बहुत ठीक बात कही है। अब ब्रह्मक्षर अक्षर







● 本報記者 王曉明 專訪 中國社會科學院社會學研究所所長 鄭成列

हैं। चतुरांगे ! यौतक, अवि, विप्रलम्बि, अङ्गिण और भरद्वाज—ये चतुरांगि कर्णोंके कर्मकाः कवि मन्त्रे गते हैं। चतुरांगी, अनुष्टुप्, विहृत्, मुहूर्ति और विराट् ये कर्मकाः पाँचों अक्षरोंके कर्म हैं। इन्द्र, राव, विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये कर्मकाः उन अक्षरोंके देवता हैं। चतुरांगे ! येरे पूर्व आदि पाँचों द्विस्तुओंके तथा उग्रारके—पाँचों भुज रुद्र चतुरांगि अक्षरोंके कर्मकाः कर्मका हैं। यक्षाक्षर-सम्बन्ध यक्षाक्षर अक्षर उग्रार है। दूतारा और यौतक भी उग्रार ही हैं। पश्चिमी कर्णित है और तिसरा अक्षर अनुष्टुप् का कर्मका है। इन यक्षाक्षर-सम्बन्धों—दूत विष्णु विराट्, यौत, दूत तथा यक्षाक्षर कर्मका आये। यौत (विष्णुसम्बन्धी) यौत उग्रार यौत विष्णुसम्बन्धी है। यक्षाक्षर विराट् कर्मका है, यक्षाक्षर विष्णु है, 'वि' कर्मका है, 'या' यौत है और यक्षाक्षर अक्षर है। इन कर्णोंके अन्तर्गत अक्षरोंके चतुर्धर्मसम्बन्धों के कर्मकाः कर्मका, यक्षाक्षर, कर्मका, दूत, यौत और कर्मका यौतके अक्षरोंका होता है।

हेमि ! बोझेल भेदके जगजग तुम्हारा है और उन्हें करनेसे आसना विमल

भी कृतमन्त्र है। इस पञ्चाक्षर-मन्त्रमें जो  
 पहिल्याँ वर्ण 'अ' है, उसे पारहमे स्वरसे  
 विपुलित किया जाता है, अर्थात् 'नमः  
 त्रिपुलित' के स्थानमें 'नमः त्रिपुलित' कहनेसे  
 यह दोषोक्त पृथक् हो जाता है। अतः  
 शास्त्रमें कहिये कि यह इस मन्त्रसे मन,  
 कर्मा और शरीरके भेदसे इन दोनोंका  
 पृथक्, सब और हीन आदि करे। (मन  
 अर्थात् भेदसे यह पृथक् तीन प्रकारका होता  
 है—मानसिक, शारीरिक और शारीरिक।)  
 ऐति ! त्रिपुलित वैसी प्रपञ्च हो, जिनसे  
 त्रिपुलित मन्त्र निकल सके, त्रिपुलित वैसी  
 बुद्धि, शक्ति, मन्त्र, प्रपञ्च एवं योग्यता  
 और प्रीति ही, इनसे अनुसार यह  
 त्रिपुलितमन्त्रसे यह कभी, कहीं कहीं भगवा  
 नित त्रिपुलित भी साधनप्रकार वैसी पुजा कर  
 सकत है। त्रिपुलित की हुई यह पुजा उसे  
 अक्षय्य भोग्यही प्राप्ति कर देगी। सुन्दर।  
 त्रिपुलित मन मन्त्रकार जो कुछ मन या  
 कृतकमने किया गया हो, यह कृतकमन्त्रकारी  
 मन्त्र बुद्धि त्रिपुलित है। त्रिपुलित जो वैसी भक्त  
 है और अर्थ करनेमें आत्मना विपुल

[illegible][illegible]







कल्लो-कल्लो अथवा लच्छा होकर जय न करे । गलीमें या सड़कपर, अपवित्र स्थानों तथा झोरेमें भी जय न करे । दोनों बलि फैलाकर, कुच्छट आभरणों वींकर, सफरी या काष्ठपर चढ़कर अथवा बिचाले जगत्पुत्र होकर जय न करे । बलि सज्जि हो तो इन सब विषयोच्छेद धारण करके दूर जय करे और अहंता पूर्ण समाधिस्थ जय करे । इस विषयमें बहुत कहेको क्या सत्य ? संक्षेपसे येही यह बात सुने । जगत्कारी कृष्ण दृष्टान्तसे सब और ध्यान करके कल्याणकर भली होता है । आचार परम भर्त्ता है, आचार उत्तम मन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है । आचारहीन दुष्क संसारमें विद्रिष्ट होता है और परमेश्वरमें भी सुख नहीं प्राप्त । इमालिने सत्यको आचारकम् होन चाहिये \* । केवल विद्रिष्टमें वेद-शास्त्रके कथनाभ्युसार बिना कर्मके होने को कर्म विहित बताया है, उस कर्मके पूर्णको उनी कर्मका सत्यम् आचारक कथना चाहिये । यही उत्तम संस्कार है, सुमरा नहीं । शत्रुपक्षमें उत्तम आभरण विद्या है । इसीलिने यह संस्कार चढ़ाकरा है । उन संस्कारोंमें भी बुरा करण अधिपत्य है । यदि कृष्ण आभरण हो तो उत्तम अर्थिक प्रसारण लच्छाकरके कभी यह हो जनेपर भी सुचित नहीं होता । अतः सदा अधिपत्यका आभय सेन चाहिये । जैसे इच्छाकेकने सत्यकर्म करनेसे सुख और दुष्कर्म करनेसे

दुःख होता है, उसी तरह परमेश्वरमें भी होता है—इस विचारकने अस्तित्वता कहते हैं ।

कल्याणमें हीन, वसित और अपव्यय प्रदान करनेके लिने कर्मिण्यमें पञ्चाक्षर-कर्मसे बहुत दुःख कोई ज्ञान नहीं है । कल्लो-कल्लो, लच्छे होने अथवा लच्छानुसार कर्म करने दूर अपवित्र या पवित्र पुण्यके जय करकेपर भी यह सब विचार नहीं होता । अथवा, मूर्ख, मृग, वसित, कर्मधारिण और शैलके लिने भी यह सब विचार नहीं होता । किसी भी अवस्थामें बड़ा हुआ कृष्ण भी, यदि धृष्टमें उत्तम अधिपत्य रखता है, तो उसके लिने यह सब विचारके सिद्ध होता है । किंतु दूसरे किसीके लिने यह सिद्ध नहीं हो सकता । होने ! इस धर्मके लिने लज्ज, निधि, वसित, जय और योग अधिपत्य अधिक विचार अधिपत्य नहीं है । यह सब कभी सुख नहीं होता, सब ज्ञान ही रहता है । यह महात्मक कभी किसीका शत्रु नहीं होता । यह सब सुनिष्ठ, सिद्ध ज्ञानका सत्य ही रहे । सिद्ध पुण्यके जनेसे ज्ञान हुआ सब सुनिष्ठ कल्याण है । अधिपत्य गुणका भी बिना हुआ सब सिद्ध ज्ञान सब है । जो केवल धर्मरहित ज्ञान हुआ है, किसी गुणके जनेसे नहीं बिना है यह सब साध्य होता है । जो धृष्टमें, कल्लो तथा मूर्खों अधिपत्य प्रदान रखनेकरा है, इसको बिना हुआ सब किसी गुणके द्वारा स्वयित हो या अधिपत्य, सिद्ध ज्ञान ही रहता है, इसमें संशय नहीं है ।

\* आचार-पारमे कर्म अथवा-पारमे उत्तम । आचार-पारमे विद्या अथवा-पारमे गति ।

आचारहीन-पुण्ये लच्छे कभी विद्रिष्ट । जय न सुख न कल्याणकल्याणकम् भवति ।।

इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विद्यमुक्त है। तथापि छोटे-छोटे कुछ फल्लोके लिये होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पञ्चाङ्गीकर आत्मत्व ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं। मोक्षधरि। जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, वही न्याय इन सब मन्त्रोंके लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो योग है, वे इस मन्त्रमें सम्मिल नहीं हैं। क्योंकि यह मन्त्र आत्म आधिकी अनेका व एककर प्रकृत होता।

सहाय। इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।

उपमानु कहते हैं—यमुनन्दन। इस प्रकार विद्वान्कारी ब्रह्मदेवजीने तीनों लोकोंके दितके लिये साक्षात् ब्रह्मदेवी पार्वतीसे इस पञ्चाक्षर-मन्त्रकी विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमार्थको प्राप्त होता है।

(अध्याय १४)



## त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका पहचान, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

श्रीकृष्ण बोले—अच्छम् ! अजने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् ईश्वरके तुल्य है। अब मैं उक्त शिव-संस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-ब्रह्मण्यके उद्धारणसे आपसे कुछ सुनित किया जा। यह बात मुझे भूली नहीं है।

उपमानुने कहा—अच्छ, मैं तुम्हें शिष्यद्वारा कथित परम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापोंका शोधन करनेवाला है। मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा आदिमें उक्त अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस पञ्चव्यरोधन कर्मको संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही उसका नाम संस्कार है। यह विज्ञान देता है और पाशव्यन्त्रको शीघ्र

करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं। शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'साम्यकी', 'शान्ती' और 'वाक्की' तीन प्रकारकी दीक्षाका उद्देश्य किया है। गुरुके दृष्टिपातभावसे, स्वर्गसे तथा सम्भावनासे भी जीवको जो तत्काल पापोंका नाश करने-वाली संज्ञा साम्य बुद्धि प्राप्त होती है, वह श्रवणी दीक्षा कहलाती है। इस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्र और तीव्रतर। पापोंके क्षीय होनेमें जो तीव्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे वे दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षासे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतर मानी गयी है। जीवित पुरुषके पापका अन्वत्त शोधन करनेवाली जो दीक्षा है, उसे तीव्र कहा गया है। गुरु योगमार्गसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञान-दृष्टिसे जो



॥१॥ ॥२॥ ॥३॥ ॥४॥ ॥५॥ ॥६॥ ॥७॥ ॥८॥ ॥९॥ ॥१०॥ ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥ ॥१५॥ ॥१६॥ ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥२०॥ ॥२१॥ ॥२२॥ ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥ ॥२८॥ ॥२९॥ ॥३०॥ ॥३१॥ ॥३२॥ ॥३३॥ ॥३४॥ ॥३५॥ ॥३६॥ ॥३७॥ ॥३८॥ ॥३९॥ ॥४०॥ ॥४१॥ ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ ॥४५॥ ॥४६॥ ॥४७॥ ॥४८॥ ॥४९॥ ॥५०॥ ॥५१॥ ॥५२॥ ॥५३॥ ॥५४॥ ॥५५॥ ॥५६॥ ॥५७॥ ॥५८॥ ॥५९॥ ॥६०॥ ॥६१॥ ॥६२॥ ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥ ॥६७॥ ॥६८॥ ॥६९॥ ॥७०॥ ॥७१॥ ॥७२॥ ॥७३॥ ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥ ॥७८॥ ॥७९॥ ॥८०॥ ॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥ ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

ज्ञानवादी दीक्षित होने हैं, वह ज्ञात्री होती नहीं है। शिक्षावादी दीक्षितोंसे ज्ञानी दीक्षित कहलें हैं। इनमें पहले होनमुख्य और साधनप्रमुख निर्माण विद्या कहल है। फिर मनुष्य कष्टरसे बन्ध का बन्धन छोड़नेको लेकर शिक्षाका संस्कार करते हैं। कठिनायनोंके अनुसार शिक्षा मनुष्यके अनुसङ्गका साधन होला है। लोक-कार्यका अनुसारका शिक्षाप्रमुख है; अतः लोकसेवासे ज्ञानके शिक्षणसे निरन्तर शिक्षा चलता है। जिस शिक्षणसे गुप्तवादी कठिनायन प्राप्त नहीं हुआ, अतः सुखि नहीं आती तथा ज्ञानसे व सो विद्या, व शिक्षाकार, व मुक्ति और व सिद्धिवादी ही होली है; अतः प्रभु कठिनायनोंके शिक्षणोंको देखकर मनुष्य ज्ञान अथवा शिक्षाके द्वारा शिक्षाका होला करे। जो होलाका इनके शिक्षण अथवाका कहला है, वह मुक्ति वह ही ज्ञान है; अतः मनुष्य ज्ञान प्रकारसे शिक्षाका परीक्षण करे। ज्ञानको होला और आनन्दकी प्राप्ति ही कठिनायनका लक्ष्य है। कर्मात्मक वह परमात्मिक प्रबोधानन्दकविनी ही है। अन्त्य और होलाका लक्ष्य है अन्तःकरणसे (साधिका) विद्या। ज्ञान अन्तःकरण इति होला है, ज्ञान वास्तव ज्ञात्रीसे ज्ञान, लेखन, प्रारम्भिक, 'विश्वविद्या' और अनुसंधान' प्रकट होने हैं।

शिक्षा की शिक्षाप्रमुख अर्थसे गुप्तका लक्ष्यका प्राप्त करके अन्तःकरणसे ज्ञान वह कहलें इनमें प्रकट होनेकोले इन लक्ष्योंसे गुप्तकी परीक्षा करे। शिक्षा गुप्तका शिक्षणका होला है और ज्ञानका गुप्तके ज्ञान होला होला

है। इसविषये ज्ञानका प्रकट करके शिक्षा ऐसा अन्तःकरण करे, जो गुप्तके लक्ष्यके अनुसङ्ग हो। जो गुप्त है, वह शिक्षा का ज्ञान है और जो शिक्षा है, वह गुप्त ज्ञान गता है। शिक्षाके अन्तःकरणसे शिक्षा ही गुप्त ज्ञानका शिक्षावादी है। जैसे शिक्षा है, वैसी विद्या है। जैसे विद्या है, वैसी मनुष्य है। शिक्षा, विद्या और गुप्तके लक्ष्यसे ज्ञान का ज्ञान शिक्षा है। शिक्षा अन्तःकरणका है और गुप्त लक्ष्यकायन। अतः ज्ञानका गुप्तका आनन्दको निरोधका लक्ष्य कहलें। यदि मनुष्य अन्तःकरणका लक्ष्यका और मुक्तिवादी है जो वह गुप्तके ज्ञान का, ज्ञानी और शिक्षावादी का शिक्षाकार—कष्टरसे ज्ञान व ज्ञान गुप्त ज्ञान है का व है, शिक्षा ज्ञान ज्ञानका शिक्षा और शिक्षा करे। ज्ञानका ज्ञानसे और ज्ञान ज्ञानसे भी ज्ञानका ज्ञानका ज्ञान है। ऐसे आनन्दसे गुप्त मनुष्य-ज्ञान और ज्ञान ज्ञानसे ज्ञानका लक्ष्यका जो गुप्तका शिक्षा ज्ञान करके ज्ञानका शिक्षा है, ज्ञानी ज्ञान ज्ञानसे ज्ञानका अन्तःकरण है। यदि गुप्त गुप्तका, शिक्षा, परमात्मका प्रकटका, लक्ष्यका और शिक्षाका है जो ज्ञानी मुक्ति होलाका है, ज्ञानी ज्ञान ज्ञानसे ज्ञानका ज्ञान है, ज्ञानी अन्तःकरण ज्ञानका ज्ञान का कहला है। इसविषये ज्ञानका ज्ञान गुप्त होला नहीं का लक्ष्यका।

जैसा है, ज्ञान-ज्ञानका ज्ञान ज्ञान लक्ष्यका है। किन्तु ज्ञान को शिक्षा गुप्तकी शिक्षाको ज्ञान कहलें है ? ज्ञानका ज्ञान गुप्तकी









\_\_\_\_\_

ଅଧିକେକରେ ପାଳନୀ ପୌରାଣିକ। ଶ୍ରେଣୀ ବାସୀ ସାମାଜିକ  
କରେ, ଅସାମାଜିକ କରେ। ଅନାଥକୁ ଶୁଣି ଶ୍ରାବ୍ୟ କରେ।  
ସଂସ୍କାରରେ ଲାଗେ । ସମସ୍ତ ସାମାଜିକୀ ଗଣିତ ତଳ  
କୁହାଟରସଦୃଶ୍ୟ ସଂସ୍କାରରେ ସଂସ୍କାରରେ ଗଣିତୀ  
ସୂକ୍ଷ୍ମ କରେ। ସାମାଜିକ କରେ । ତଳେ ସମସ୍ତ  
ସମ-ଶ୍ରୀ-ସମ ସଂସ୍କାରରେ ଶ୍ରାବ୍ୟ କରେ । ତଳେ  
ଶ୍ରୀ-ସମ ସଂସ୍କାରରେ ଶ୍ରାବ୍ୟ କରେ । ତଳେ  
ଶ୍ରୀ-ସମ ସଂସ୍କାରରେ ଶ୍ରାବ୍ୟ କରେ ।

[illegible]

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

॥ अन्तर्भाव्यं यत्किंच वागवली विलोक्यमानम् ॥

‘ये दिवस आनन्दित परिवारों का है  
अच्छा लोग अच्छा सिर कटते हैं  
अच्छा लोग; किन्तु वे कानून निर्माणकर्ता  
नहीं हैं। वे निर्माण नहीं कर सकते।’

जगत्का मोड़ दूर व हो, तबतक वह  
मनकाय् दिवाये हो निद्रा रसका कहींके  
आसिय हो निवासपूर्वक उन्हींकी आराधना  
करायें हो । फिर भगवान् दिवा हो उठी  
योगयोग प्रदान करायें हैं । ऐसा करनेसे हम  
विशेषकर नाम 'सत्य' होत । हमें  
विद्याकायमें रहनेका अभिप्राय प्रदान होना ।  
हमारे रहनेवाले विद्याको गुल्मी आराधना  
करने करायें दूर तक हमें कहें रहना  
करायें । हमें हमें गुल्मी करायें करायें  
करायें कहें नाम होत गुल्मीकरायें  
करायें करायें दूर हमें नाम हमें कहें  
अभिप्राय करायें विद्याको कहें है है ।  
हम ही भगवत्कीकी विद्या अथवा हमें  
हम करायें (निद्रा) और कहेंकरायें पूजा,  
होत, हमें हमें कहें कहें ही है । फिर  
हम विद्या की विद्याकायमें प्राप्त हुई हमें  
हमकरायें कहींकी अथवा हमें कहें आरयें  
हम कहें करायें । हमें आराधना हमेंकरायें  
हम करायें आराधने प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको  
अभिप्रायमें विद्या रसकर ले जाय और  
हमें दृष्टा करायें । हमें कहें अनुत्तर  
हमों का कहें कहेंकरायें वृत्ता करायें रहे,  
हमें कहें हमें मुक्त कहें, कहें और कहें  
अनुत्तर विद्यामें विद्याकायमें लिखा है ।  
विद्याकायमें विद्याकायमें विद्यामें जो मुक्त  
कहें हो, जो कहें ही हो तथा और ही हो



कलत्राचार '३०' में ईशान्य नाम ईशान  
 स्थापयामि कलत्रकर ईशान्यकी स्थापना करे।  
 पूर्वोक्तों कलत्राचार '३०' में कपुडकच नाम  
 तापुडक स्थापयामि कलत्रकर तत्पुडककी,  
 दक्षिण कलत्राचार '३०' में त्रिा त्र्यम्बक नाम  
 अथोरे तत्पुडकामि कलत्रकर अथोरेकी, नाम  
 का स्थापनागर्भे रखे हुए कलत्राचार '३०' में  
 त्र्यम्बकनाम नाम त्र्यम्बक स्थापयामि कलत्रकर  
 त्र्यम्बककी तथा पश्चिमके कलत्राचार '३०' में  
 सद्योजाताय नाम अक्षयनाम स्थापयामि  
 कलत्रकर सद्योजाताकी स्थापना करे। तत्पश्चात्  
 यज्ञाभिधान नामके मन्त्र पश्चिमकर कलत्राचारके  
 अभिषेकित करे। इसके बाद पूर्वार्ध  
 शिवाग्रमें होम आरम्भ करे। पहले होमके  
 क्रिये जो आधी और एक चौकी की, उत्पन्न  
 हुयन करके होम पश्चिम शिवाग्रमें आनेके  
 क्रिये है। पहलीकी पश्चिम पश्चोक्त त्र्यम्बकनाम  
 कार्य करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात्  
 त्र्योपम कार्य करे। त्र्योपम करने '३०' १  
 नाम शिवाग्र पद स्थापना करे स्थापना करके  
 कलत्राचार 'इदं अग्निं अहोरात्रे तीन-तीन  
 आहुतिर्वा देवीं चार्हिये। (अहोरात्रे इत्यत्र,  
 मिर, शिखर, कलत्र, मेरुनाम और अक्ष—  
 इन च-की गणना है।) इसके पश्चात् एक-एक  
 आहुतिको तीन-तीन बार चक्र पश्चात्  
 तीन-तीन आहुतिर्वा देवीं चार्हिये। इन सबके  
 स्थापनाय के पश्चात् शिवाग्र में शिवाग्र करके  
 चार्हिये। इसके बाद उत्पन्नकी कुशरी  
 कलत्राके द्वारा काले हुए सवेद मन्त्रको एक  
 बार विगुण करके दूर विगुण करे। फिर  
 इस सुत्रको अभिषेकित करके उत्पन्न एक  
 छोर शिवाग्रकी शिखरके अक्षयनाममें रक्षित है।  
 शिवाग्र मिर ऊँच करके लड़ा हो जाय, उस  
 समयस्थाने वह सुन उसके पैरके बीचुटेमक

समयका रहे। सुत्रको इस तरह स्थापनाकर  
 उत्पन्न सुत्रको चोखीकी संवेदना करे। फिर  
 पश्चात् मन्त्र स्थापना मन्त्रके साथ कलत्राचार  
 तीन आहुतिको होम करके उस नाड़ीको  
 लेकर उस सुत्रमें स्थापित करे। फिर पूर्वोक्त  
 कलत्र के पश्चात् शिवाग्रके इत्यर्थे भाष्य करे  
 और इसमें कलत्राचार लेकर बारह  
 आहुतिकोके पश्चात् शिवाग्रमें निर्मेयित करे  
 उस समयमें हुए सुत्रको एक सुत्रमें जोड़े  
 और '१ पद' पश्चात् लड़ा करके उस सुत्रको  
 शिवाग्रमें स्थापित करे। फिर वह स्थापना  
 करे कि शिवाग्रका उत्तर कलत्राचारका पाठा है,  
 भोग और चोखना ही इसकी उत्पत्ति है, वह  
 विषय इतिवृत्त और देव आदिनामक है।

तत्पश्चात् कलत्राचारका आदि पक्ष  
 कलत्राचारको जो कलत्राचारकी लक्षणविवरणी  
 है, उस सुत्रमें इसके नाम से-लेकर जोड़ना  
 चाहिये। यथा—

'चोखनीकी उत्पत्ति' नामके चोखनी,  
 उत्पत्तिकी उत्पत्तिनाम चोखनी, मेरुनामकी  
 उत्पत्तिनाम चोखनी, अक्षयनीकी उत्पत्तिनामकी  
 चोखनी, पूर्वोक्तकी उत्पत्तिनामकी चोखनी।  
 इति।

इस बारह इन कलत्राचारोंका चोखनी करने  
 इसके पश्चात् अन्तमें 'ना: चोखनी कलत्रा  
 पुत्रा करे। यथा—'तत्पश्चात् तत्पश्चात् नाम  
 उत्पत्तिनामकी सत्। इत्यदि। अथवा  
 आचमनादिके बीचपुत्र (४ वें १ वें २ वें)  
 पश्चात् पुत्रा का पश्चात्पुत्रा के बीच अक्षरोंमें  
 वह-विन्दुका होम करके बीचपुत्र हुए उन  
 पश्चात्पुत्रा कलत्रा: पूर्वोक्त कार्य करके  
 तत्पश्चात् अग्निमें पश्चात् पश्चात्की स्थापना  
 विन्दुना करे। इसी तरह पश्चात् पश्चात्की भी  
 कलत्राचारकी स्थापित करे। फिर आहुति













विशेषरूपसे ऐसा करनेका विधान है। प्रतीकों काहिये कि एक ही जात मन्त्रसे अभिधायित किये हुए पवित्र करनेसे सम्यक् करने अथवा नहीं-नदके जलको बचावार्थिक मन्त्र-कर्मके द्वारा अभिधायित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन सर्वत्र करे और विधाधिये आहूति दे। इसीप्रकार पदार्थ खात, पीत वह तीन इष्टियोंके भिक्षात्मसे रीवार करे अथवा केवल घृतसे ही आहूति दे।

जो शिक्षात्मक साधक इस प्रकार धार्मिक-धर्मसे शिक्षाकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इष्टियोंक और परम्परेकसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अथवा प्रतिदिन विना

श्रेष्ठन लिये ही एकाग्रचित्त हो एक सहज मन्त्रका जप किया करे। मन्त्र-साधनाके विना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं सम्यक् अभ्युत्थन ही होता है। वह इस लोकमें विद्या, स्वामी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। साधन, विनियोग तथा निय-वैधित्यक कर्ममें क्रमशः जलसे मन्त्रसे और मन्त्रसे भी सम्यक् करके पवित्र कियत कथितकर मन्त्रोपवीत धारण कर कुम्भकी बर्तनी हाथमें ले ललमटमें विपुल लगाकर मन्त्रकी मातृ लिये पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। (अध्याय १९)



## योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्यु कहते हैं—उदुम्बर ! शिष्यका इस प्रकार प्रोक्षण किया गया हो और जिसने पापाप-कल्मस अमुष्ण पुर कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु इसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, धौम्यात् न होनेपर न करे। इस अभिषेकके लिये पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेष्ठर दिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे। इनमें उत्तर तो सामे दिशाओमें हो और पाँचवाँ मध्यमें हो। पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर त्रिगुणकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर हान्तिकलाका और मध्यकी कलशपर शान्तिशीताकलाका न्यास करके

उन्में १३३ आदिभक्त विधान करके धेनुपुत्रा ब्रह्मकर कलशोंको अभिधायित करके पूर्ववत् पूर्वाह्निकपर्यन्त होय करे। फिर नगे गिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु-मन्त्रोक्त सर्वत्र आदि करे और पूर्वाह्निकपर्यन्त होय एवं पूजन करके पूर्ववत् वेलेष्टरकी आज्ञा ले शिष्यको अभिषेकने लिये ऊँचे आसनपर बिठाये। पहले सम्कलीकरकली लिये उसके पञ्चकलाकपी शिष्यके शरीरमें प्रत्यक्ष न्यास करे। फिर उस शिष्यको ब्रह्मकर शिष्यको स्वीय दे। तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे पुनः कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिष्यपन्नसे अभिषेक करे। अन्तमें मध्यकी कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये।



करे। वहाँ 'ज्ञानवर्तीता' आदि कल्पनाओंके लिये जिस विधिमान अनुष्ठान किया गया है। यह सारा विधान तीन तत्त्वोंकी युक्तिके लिये भी बरतीया है। जिस-तत्त्व, जिस-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व ठीके गये हैं। इसलिये पहले विश्वकार, जिस विश्वकार और उसके बाद इसकी आत्मकार अविवर्धन हुआ है। जिससे 'ज्ञानवर्तीता' व्याप्त है, इससे 'ज्ञानिकता' इससे 'विद्या-

कल्पना' विद्यासे परिशिष्ट 'प्रतिष्ठा-कल्पना' और उससे 'नित्यिकता' व्याप्त है। जिस-तत्त्वके धारण मनीषी पुरुष तत्त्वमूर्तक ज्ञानार्थ (ज्ञान) संस्कारको ध्वनित मानकर ज्ञानमूर्तकारका प्रतिपादन करते हैं। अतः प्रकाश। इस प्रकार ये तुमसे सम्पूर्ण यह अनुष्ठान संस्कार कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुचना चाहते हो ? (अध्याय २०)



### अन्तर्गता अध्यात्मिक पूजाविधिको वर्णन

पदार्थों की कृपाके पूजनेका लिये वैश्विक कर्म तथा कर्मका वर्णन करनेके पश्चात् उपमायु बोले—अब मैं पूजाके विधायिका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। इसे शिक्षायात्रासे विद्यासे विश्वके प्रति कहा है। यन्त्र अधिष्ठानपर्वण अन्तर्गत अनुष्ठान करनेके लिये अन्तर्गता (आत्मपूजा) करे। (इसकी विधि इस प्रकार है—) अन्तर्गतामें पहले पूजायात्राको धरसे कल्पित और शुद्ध करनेके लिये अन्तर्गत विधिपूर्वक विधान एवं पूजन करे। तत्त्वज्ञान, शिक्षा और इस भागमें कर्मका अन्तर्गत और सुवर्णकी कर्मका विधान पुरुष मनसे उत्पन्न आत्मनकी कल्पना करे। सिद्धासन योगस्थ अथवा तत्त्वज्ञान युक्त निर्मल ध्यानात्मकी धारणा करे। उसके ऊपर सर्वमनोहर सात्विक-शिवकार ध्यान करे। ये विश्व समस्त ज्ञान लक्षणोंसे युक्त और सम्पूर्ण अन्तर्गतसे प्रोधात्मक है। ये लक्षणोंसे बहकर है और समस्त अधिष्ठान उनकी शोभा कहते हैं। उनके हाव-बोह लक्षण है। उनका सुवर्णता हुआ युक्त कुन्द और

कर्मकाके ध्यान शोभा जाता है। उनकी आत्मा-कल्पित सुवर्णकर्मकाके समस्त निर्मल है। तीन नेत्र प्रकृतक कर्मकाकी प्रति सुन्दर है। वह भुजाएँ, उत्तम धनु और यन्त्रोंपर कर्मकात्मक युक्त धारण किये भागका और अथवा से लक्षणोंमें बहल तथा अध्यात्मकी युक्त धारण करते हैं और शेष से ध्यानेमें युगपुत्र एवं युक्त किये हुए है। उनकी कर्मकाके कर्मकी धारण करनेका काम होती है। गलेके धीमे मनोहर नील चिह्न प्रोधात्म होता है, उनकी कर्मकाकी कर्मका नहीं है। ये अपने अनुष्ठानी सेवकों तथा आत्मिकक उपकरणोंके साथ विराजमान है।

इस तरह ध्यान करनेके उनके ध्या-भागमें लक्ष्मी दिव्यका विधान करे। विश्वकी अन्तर्गत प्रकृतक कर्मकाके समस्त धारण सुन्दर है। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। पुरुष पूर्ण कर्मकाके समस्त सुवर्णता है। कर्मकाके कर्मकाके युगपुत्र के लक्षणोंसे युक्त है। ये नील अध्यात्मके समस्त कर्मकाकी है। कर्मकाके अन्तर्गत युक्त धारण करते हैं। उनके तीन मनोहर अन्तर्गत



गोल, चन्द्रभूत, जैसे और विविध हैं।  
 शरीरका मध्यभाग कुड़ा है। शिखरभाग  
 स्थूल है। ये प्राचीन पीले रंग का रक्त किन्ने  
 हुए हैं। सम्पूर्ण आधुनिक ऊँचकी श्रेणी बर्तमान  
 हैं। लम्बाइयपर लगे हुए सुन्दर शिखरजैसे ऊँचका  
 खोँदर्य और तिल तड़ा है। विभिन्न पुरुषोंकी  
 मात्रासे गुणित केन्यायास ऊँचकी श्रेणी  
 बढाते हैं। उनकी आकृति सब ओरसे सुन्दर  
 और सुड़ील है। मुल लम्बासे कुछ-कुछ  
 झुका है। ये दाहिने हाथसे श्रेणीपद्धति  
 सुवर्णमय कयल धारण किन्ने हुए हैं और  
 दूतरे हाथसे लम्बकी भाँति शिखरजम्पर  
 रखकर उसका सहारा ले इस माइन आसन-  
 पर बैठी हुई हैं। शिखादेवी सामल पालोका  
 देवन करनेवाली माइन शिखाजम्प-  
 रकविणी हैं। इस प्रकार चन्द्रदेव और  
 माइदेवीका ध्यान करने शेष एक ब्रह्म  
 आसनपर सम्पूर्ण व्यवहारोके सुल भावनेय  
 धुम्योद्धार ऊँचका पूजन करे।

अथवा उपर्युक्त धर्जापत्रों अनुसार प्रत्येक

(अध्याय २२-२३)



### शिष्यपूजनकी विधि

तपस्युः कस्यते हि—पुनश्च !

विशुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे मन्त्र, चन्दनमिश्रित कलके द्वारा पूजा-स्नानका प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद वहाँ फूल बिखेरे। अन्न-मन्त्र (पद्) का उच्चारण करके चित्तोंको भगाये। फिर कलश-मन्त्र (ह्रम) से पूजा-स्नानको सब ओरसे अकण्ठित्त करे। अन्न-मन्त्रका सम्पूर्ण शिष्टार्थोंमें न्यास करके पूजाभूमिमें कल्पना करे। वहाँ सब ओर कुन बिछा दे और प्रोक्षण आदिके द्वारा उस भूमिमें

ब्रह्मरत्न करे : पूजा-सम्बन्धी सबसऱ मात्रोंका सोचन करके ब्रह्मकुटि करे । प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, फलपात्र और आचमनीपात्र— इन चारोंका ब्रह्मालन, प्रोक्षण और पीक्षण करके इन्हें शुभ जल झरे और जितने विद्रुप्त होंके, उन सभी पवित्र द्रव्योंको उनमें छले । चक्षुरज, काँटी, सोन, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, फल्लत और कुश—ये सब अनेक प्रकारके धुप द्रव्य हैं । कान और पीनेके जलमें विशेषरूपसे शुग्न्ध आदि एवं झीतल मनोज्ञ पुष्प आदि





[illegible]

जैसे महादेवजीको सख्त करारी, लखी  
तारा महादेवजीबाजीकीको भी सख्त आदि  
कराया जायिये । इन दोनोंको करोड़ु अंगन नहीं  
है: क्योंकि ये दोनों सर्वथा समान हैं । महादेव  
महादेवजीके स्वरूपको सख्त आदि किन्ना  
करके फिर देवीके रूपमें इन्हीं देवीकोरूपमें  
आदेशसे सब कुछ करो । आर्ध-सर्गिण्डकी  
पूजा करनी हो तो आर्ये पूर्वापसका विचार  
नहीं है । अतः इसमें महादेव और  
महादेवीकी साध-साध पूजा दोनों रहते हैं ।  
शिवलिङ्गमें या अन्यत्र सर्गि आदिसे अर्घ्य-

[illegible]

उत्थारण करता रहे। तदनन्तर भक्तकण अर्घ्य और सुगन्धित चमन चढ़ाये। फिर पुष्पाञ्जलि देकर जगन्नाथ निवेदन करे। इसके बाद जल देकर आवासन कराये। फिर सुगन्धित शण्डोसे सुक्त पौन्य नाम्बूक भेंट करे। तत्पश्चात् प्रोक्षणीय पदार्थोंकी प्रोक्षण करके नृत्य और गीतका आभ्यञ्जन करे। सिद्ध यह मूर्ति आदित्ये दिवस तथा चण्डीदेवता विनम्र करते हुए प्रणामाति दिव्य-वस्त्रधरा जय करे। उसके पश्चात् इन्द्रकिंजल, नमस्कार, क्षुत्तिपाद, अस्त्रसमर्पण तथा कार्पका विनयपूर्वक विज्ञापन करे। फिर

अर्घ्य और पुष्पाञ्जलि दे विचित्रा मूर्ति  
जाँचकर इष्टदेवसे कुट्टियोंके लिये क्षमा-  
प्रार्थना करे। तत्पश्चात् मूर्तिसङ्घित देवताका  
विमर्जन करके अपने हृदयमें उसका ध्यान  
करे। पादोंसे लेकर मुखजासपर्यन्त पूजन  
करना चाहिये अथवा अर्घ्य आदिसे पूजन  
करना करना चाहिये वा अधिक संकटकी  
स्थितिमें त्रेकपूर्वक केवल कृतस्मात्त चक्र देना  
चाहिये। त्रेकपूर्वक कृतस्मात्त चक्र देनेसे ही  
बराब बर्षका सम्पादन हो जाता है। जबतक  
ज्ञान रहे तबतक पूजन किसी विना भोजन  
न करे। (अध्याय २४)



## शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा

इष्टान् कश्चि हे -कृत्यम् ।  
हीनानके बाह और नैवेद्य-दिवेनसे चढ़ाये  
आवागणपूजा करनी चाहिये अथवा  
आरतीका प्रथम आनेपर आवागणपूजा  
करे। चाँहि शिव या शिवानके प्रथम  
आवागणमें ईशानसे लेकर 'सप्तोन्नतपर्यन्त'  
तथा हृदयसे लेकर अक्षयपर्यन्तका पूजन  
करे।<sup>१</sup> ईशानमें, पूर्वभागमें, दक्षिणमें,  
उत्तरमें, पश्चिममें, अक्षयकोणमें,  
ईशानकोणमें, नैऋत्यकोणमें, कर्कश-  
कोणमें, फिर ईशानकोणमें तत्पश्चात् बाएँ  
दिशाओंमें गुणधारण अथवा जप-  
संघातकी पूजा बनायी गयी है या हृदयसे  
लेकर अक्षयपर्यन्त अङ्गोंकी पूजा करे। इनके  
बाह्यभागमें पूर्व दिशामें इन्द्रका, दक्षिण

दिशामें ब्रह्मा, पश्चिम दिशामें कालकाय,  
ऊपर दिशामें कुबेरका, ईशानकोणमें  
ईशानका, अग्निकोणमें अग्निका,  
नैऋत्यकोणमें विष्णुका, वायव्यकोणमें  
वायुका, नैऋत्य और पश्चिमके बीचमें  
अनन्ता वा विष्णुका तथा ईशान और पूर्वके  
बीचमें ब्रह्माका पूजन करे। कमलमें  
बाह्यभागमें ब्रह्मसे लेकर कमलपर्यन्त  
स्नेहेच्छाके सृष्टीस्रष्टु आपुत्रीका पूर्वादि  
दिशाओंमें कवचः पूजन करे। यह ध्यान  
करना चाहिये कि जयका आवागणदेवता  
सुखपूर्वक बैठकर महारथ और महामेखीकी  
ओर लेनेमें इच्छा जोड़े देना रहे हैं। फिर सभी  
आवागण देवताओंको प्रणाम करके 'नमः  
परमुक्त अपने-अपने समयसे पुष्पोपचार-

१ अर्घ्य—

ईशान, सप्तम, जम्बेर, कण्ठेय और उल्लेख-  
नेत्र और बाह—इन अङ्गोंका पूजन करना चाहिये।

इन चीजें मूर्तिदेवता तथा इन्द्र, विष्णु, शिव, कवच,

[illegible]

अधिकांश घराने काढ़िये, जो सोनेके बने हुए तथा विद्युत्चालकके समान चमकीले हों। वे सब बम्बुरे कापूर, गुन्गुन, आगुन और चमकाने पुरिया तथा कुधसबुजोंसे सुवासित होनी चाहिये। चन्दन, आगुन, कापूर, सुन्धियाज आदि तथा गुन्गुनके धूर्ण, ली और बड़ोले जसी इन्हीं सब जन्म बनाया गया है।

[illegible]









[illegible][illegible][illegible]





विद्याजन्यके बाद अन्तर कण्डकार अधिकार हो जाता है।

जब अधिकार्य सम्पन्न कर लिया जाय, तब विद्याजन्यकेस्य कर्माणि अर्थात् अपने गृहसुखमें कालयाँ हुँ विविधे कर्मिकर्म करे। तत्पश्चात् अपनी तराह विज्ञे पुनः कण्डकारों विद्याजन्यके विद्याकार विद्याजन्यकेस्यकी स्वयम्भुव कारके सम्पन्नः पुनः आदिके ~~सम्पन्न~~ करे। विद्याके साधने गुणवत्ता की कण्डकार कर्मकारे यहाँ श्रेष्ठ अस्मत्त रखे और अन्तर पुनः आदिके छुटा गुणवत्ता पूरा करे। स्वयम्भुव पूजाकीय कर्मकीयरी पूजा करे और पूजाकीय चोपन करावे। इसके बाद सके सुखपूर्वक सुख अन्त भोजन करे। यह अन्त सम्पन्न भगवन् विद्याकी विवेकिन विद्या सत्ता हो कर्माणि अन्त अन्त हो। जो अन्तपूर्वक भोजन करे। जो अन्त सम्पन्न भोजन न करे। सत्ता और स्वयम्भुव आदि जो अन्त सम्पन्न हैं, इनके विज्ञे की यह विधि सम्पन्न हो है अर्थात् सम्पन्न सत्ता होवेक। अन्त अन्त यहाँ करवा जातिवे। यहाँ विज्ञे पुनः 'ये ही विद्या' देनी सुवि न करे। भोजन और अन्त

कारके विद्याका कर- ही-कन विमान करते हुए सुख-सत्ता अन्तरन करे। जो सत्ता विद्याजन्यकी कर्माणि अन्त आदि सत्ता कर्माणि विज्ञे। एतन्ना प्रथम अन्त कीय जन्मेक कर्माणि पुनः कारके विद्या और विद्याके विज्ञे एक सत्ता सुन्दर सम्पन्न प्रभुन करे। इसके साथ ही भोजन, भोजन, सत्ता, सम्पन्न और सुखमान आदि की सत्ता दे। अन्त और विद्याकार की सत्ता सुन्दर सम्पन्न कारके कर्माणि हो कर्माणिकी और कर्माणिकी कर्माणिके विज्ञे सम्पन्न करे। यदि सम्पन्न गृहम्भुव हो तो यह यहाँ अपनी यहाँके सत्ता सम्पन्न करे। जो सम्पन्न न हो, वे अन्तके ही सत्ता। अन्तःसत्ता अन्त सत्ता सत्ता-ही-कन कर्माणिकी सत्ता कर्माणिकी अधिकारी सम्पन्न विद्याकी सम्पन्न कारके सम्पन्नकीय अन्त सत्ता सत्ता आदि पुनः पुनः करे। फिर सम्पन्नकी सत्ता आदि सम्पन्नकी विद्या कर्माणिकी सम्पन्न और सम्पन्नकीय सम्पन्न। इसके बाद सत्ता सम्पन्न विज्ञे हुए सत्ता सुखमान पुनःकार विद्या और विद्याकी पुनः कारके पुनःकार कर्माणि अन्त करे।

(अध्याय १७)



## काम्य कर्मके प्रसङ्गमें कतिमदित पञ्चमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन

एतन्ना विद्याभ्रमरीविज्ञेके विज्ञे मैथिलिक कर्माणि विधि सम्पन्न अन्तःसत्ताकी बाहा—कर्मन्तः। अन्त की सम्पन्न कर्माणि कर्माणि करीय, जो सम्पन्नकी और सम्पन्नकी की सत्ता सम्पन्न है। सत्ता सत्ता सम्पन्नकी सम्पन्नः भीतर और सम्पन्न की सम्पन्न कर्माणि। जैसे विद्या और सम्पन्नकी यहाँ सम्पन्न के यहाँ

है, अन्त सम्पन्न की और सम्पन्नकी की अधिक के यहाँ है। जो सम्पन्न विद्याके सम्पन्न सम्पन्न सम्पन्नकी सम्पन्न की है, वे सम्पन्न सम्पन्न है और जो विद्याकी सत्ता सम्पन्न कर्माणिकी सम्पन्न सम्पन्न है, वे सम्पन्न सम्पन्न सम्पन्न करनेके सम्पन्न सम्पन्न की है। इसलिये सम्पन्नकी सत्ताकी सम्पन्न



1. 2. 3. 4. 5. 6. 7. 8. 9. 10. 11. 12. 13. 14. 15. 16. 17. 18. 19. 20. 21. 22. 23. 24. 25. 26. 27. 28. 29. 30. 31. 32. 33. 34. 35. 36. 37. 38. 39. 40. 41. 42. 43. 44. 45. 46. 47. 48. 49. 50. 51. 52. 53. 54. 55. 56. 57. 58. 59. 60. 61. 62. 63. 64. 65. 66. 67. 68. 69. 70. 71. 72. 73. 74. 75. 76. 77. 78. 79. 80. 81. 82. 83. 84. 85. 86. 87. 88. 89. 90. 91. 92. 93. 94. 95. 96. 97. 98. 99. 100. 101. 102. 103. 104. 105. 106. 107. 108. 109. 110. 111. 112. 113. 114. 115. 116. 117. 118. 119. 120. 121. 122. 123. 124. 125. 126. 127. 128. 129. 130. 131. 132. 133. 134. 135. 136. 137. 138. 139. 140. 141. 142. 143. 144. 145. 146. 147. 148. 149. 150. 151. 152. 153. 154. 155. 156. 157. 158. 159. 160. 161. 162. 163. 164. 165. 166. 167. 168. 169. 170. 171. 172. 173. 174. 175. 176. 177. 178. 179. 180. 181. 182. 183. 184. 185. 186. 187. 188. 189. 190. 191. 192. 193. 194. 195. 196. 197. 198. 199. 200. 201. 202. 203. 204. 205. 206. 207. 208. 209. 210. 211. 212. 213. 214. 215. 216. 217. 218. 219. 220. 221. 222. 223. 224. 225. 226. 227. 228. 229. 230. 231. 232. 233. 234. 235. 236. 237. 238. 239. 240. 241. 242. 243. 244. 245. 246. 247. 248. 249. 250. 251. 252. 253. 254. 255. 256. 257. 258. 259. 260. 261. 262. 263. 264. 265. 266. 267. 268. 269. 270. 271. 272. 273. 274. 275. 276. 277. 278. 279. 280. 281. 282. 283. 284. 285. 286. 287. 288. 289. 290. 291. 292. 293. 294. 295. 296. 297. 298. 299. 300. 301. 302. 303. 304. 305. 306. 307. 308. 309. 310. 311. 312. 313. 314. 315. 316. 317. 318. 319. 320. 321. 322. 323. 324. 325. 326. 327. 328. 329. 330. 331. 332. 333. 334. 335. 336. 337. 338. 339. 340. 341. 342. 343. 344. 345. 346. 347. 348. 349. 350. 351. 352. 353. 354. 355. 356. 357. 358. 359. 360. 361. 362. 363. 364. 365. 366. 367. 368. 369. 370. 371. 372. 373. 374. 375. 376. 377. 378. 379. 380. 381. 382. 383. 384. 385. 386. 387. 388. 389. 390. 391. 392. 393. 394. 395. 396. 397. 398. 399. 400. 401. 402. 403. 404. 405. 406. 407. 408. 409. 410. 411. 412. 413. 414. 415. 416. 417. 418. 419. 420. 421. 422. 423. 424. 425. 426. 427. 428. 429. 430. 431. 432. 433. 434. 435. 436. 437. 438. 439. 440. 441. 442. 443. 444. 445. 446. 447. 448. 449. 450. 451. 452. 453. 454. 455. 456. 457. 458. 459. 460. 461. 462. 463. 464. 465. 466. 467. 468. 469. 470. 471. 472. 473. 474. 475. 476. 477. 478. 479. 480. 481. 482. 483. 484. 485. 486. 487. 488. 489. 490. 491. 492. 493. 494. 495. 496. 497. 498. 499. 500. 501. 502. 503. 504. 505. 506. 507. 508. 509. 510. 511. 512. 513. 514. 515. 516. 517. 518. 519. 520. 521. 522. 523. 524. 525. 526. 527. 528. 529. 530. 531. 532. 533. 534. 535. 536. 537. 538. 539. 540. 541. 542. 543. 544. 545. 546. 547. 548. 549. 550. 551. 552. 553. 554. 555. 556. 557. 558. 559. 560. 561. 562. 563. 564. 565. 566. 567. 568. 569. 570. 571. 572. 573. 574. 575. 576. 577. 578. 579. 580. 581. 582. 583. 584. 585. 586. 587. 588. 589. 590. 591. 592. 593. 594. 595. 596. 597. 598. 599. 600. 601. 602. 603. 604. 605. 606. 607. 608. 609. 610. 611. 612. 613. 614. 615. 616. 617. 618. 619. 620. 621. 622. 623. 624. 625. 626. 627. 628. 629. 630. 631. 632. 633. 634. 635. 636. 637. 638. 639. 640. 641. 642. 643. 644. 645. 646. 647. 648. 649. 650. 651. 652. 653. 654. 655. 656. 657. 658. 659. 660. 661. 662. 663. 664. 665. 666. 667. 668. 669. 670. 671. 672. 673. 674. 675. 676. 677. 678. 679. 680. 681. 682. 683. 684. 685. 686. 687. 688. 689. 690. 691. 692. 693. 694. 695. 696. 697. 698. 699. 700. 701. 702. 703. 704. 705. 706. 707. 708. 709. 710. 711. 712. 713. 714. 715. 716. 717. 718. 719. 720. 721. 722. 723. 724. 725. 726. 727. 728. 729. 730. 731. 732. 733. 734. 735. 736. 737. 738. 739. 740. 741. 742. 743. 744. 745. 746. 747. 748. 749. 750. 751. 752. 753. 754. 755. 756. 757. 758. 759. 760. 761. 762. 763. 764. 765. 766. 767. 768. 769. 770. 771. 772. 773. 774. 775. 776. 777. 778. 779. 780. 781. 782. 783. 784. 785. 786. 787. 788. 789. 790. 791. 792. 793. 794. 795. 796. 797. 798. 799. 800. 801. 802. 803. 804. 805. 806. 807. 808. 809. 810. 811. 812. 813. 814. 815. 816. 817. 818. 819. 820. 821. 822. 823. 824. 825. 826. 827. 828. 829. 830. 831. 832. 833. 834. 835. 836. 837. 838. 839. 840.

ब्रह्म मूल्य दत्तनेमें स्वीकृत है और ब्रह्म मूल्यकायममें प्रोभासे जगसाक्षकोंके मनमें जोड़े लेगा है। उनका फलित मूल्य स्वष्टिकामनिके सम्मान विर्मल, जगत्नेकासे सम्मान, अत्यन्त सौम्य तथा तीन प्रमुख नेकायमोंसे प्रकाशमान है।

[illegible]

(ईशानः सर्वविघ्ननाम् इत्यादि षोडशध्यानाः)  
अथ, प्रत्यक्षध्यानं तथा ईशसमर्पितसे सम्पन्नं है।  
इन्द्रादिक्रान्ति करने के अधिकार आकाश है, हान-  
क्रान्ति प्रतिष्ठापकत्वमें है तथा क्रियाशक्ति  
कामध्याने विराजमान है। ये क्रियाध्याने हैं।  
अर्चात् आत्मसत्त्व, विद्यासत्त्व और शिवासत्त्व  
करके प्रकट हैं। ये सन्दर्भित साक्षात् विद्या-  
पति हैं। इस प्रकार केवल ध्यान करने  
परिणाम है।

મૂલ્યવચ્ચાલે મૂર્તિની અવ્યવસ્થા ઓર  
 જાગૃતીકારવાળી ક્રિયા કરાવે મૂલ્યવચ્ચાલે જી  
 વચ્ચેકર નીતિને સ્થાપના: પદા આદિ  
 વિશેષાધ્યયન પૂજન કરે । કિર પરાક્રમિક  
 સાથ સાક્ષર મૂર્તિના ક્રિયાના મૂર્તિના મૂર્તિને  
 અવ્યવસ્થા કરાવે સ્થાપનાવિનાશ પામેશ્વર  
 અવ્યવસ્થા ગતિને પદાવ્યવસ્થાને પૂજન કરે ।  
 જીવ જાગૃતીનાં જ: અવ્યવસ્થા, માતૃકા-  
 વચ્ચે, જાગૃતીને સ્થાપના, વિશ્વવચ્ચાલે,  
 જાગૃતી અથવા અવ્યવસ્થાને અવ્યવસ્થા સ્થાપના  
 વિશ્વવચ્ચાલે જી વચ્ચે સ્થાપના મૂજન કરે ।  
 પાદાને સ્થાપના મુલ્યવચ્ચાલેના મૂજન અવ્યવ  
 કરાવે જાગૃતીનાં વિશ્વવચ્ચાલે કિરે કિરે જીવ જી  
 અવ્યવ જીવ અવ્યવસ્થાની પૂજા આદ્ય કરે ।  
 (અવ્યવ ૩૮-૩૯)

(अध्याय २४-२६)

•

**आवस्थापनाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महत्त्वाका वर्णन**

आत्मन्तु कहते हैं- अद्वयद्वयः । पहले अद्वयः राधेश और कर्तविक्रमन नाम आदि  
 दिवा और राधेश राधेश और राधेश नामों  
 की उपचारोंद्वारा पूजन करे । फिर इन सबको

[illegible]



बारों और ईश्वरसे लेकर सदाशक्तपर्यन्त  
की एक ब्रह्मापूर्तिपर्यन्त सकलसक्ति क्रमशः पूजन  
करे। यह प्रथम आचरणमें विष्णु चतुर्वर्ण्य  
पूजन है। उसी आचरणके द्वय आदि क्रः  
अङ्गों तथा सित्त और सित्तमय अस्त्रिकेवासे  
लेकर पूर्वविद्यापर्यन्त आठ दिग्गजकीये  
क्रमशः पूजन करे। यही साध आदि  
शक्तिधर्मके साथ साथ आदि आठ सत्त्वकी  
पूर्वदि विद्याओंमें क्रमशः पूजा करे। यह  
पुनश्च वैष्णविक है। चतुर्दश। यह भी  
मुमसे प्रथम आचरणका प्रथम विधा है।

अब प्रेक्षपूर्वक मुझे आचरणका प्रथम  
विधा बतल है, ब्रह्मापूर्वक पूजे। पूर्व  
दिशावाले कर्णों अलगवा और इनके  
बाधकगले इनकी शक्तिकर पूजन करे।  
शक्ति विद्यावाले कर्णों सकलसक्ति मुद्रा-  
देवकी पूजा करे। शक्ति विद्याके कर्णों  
सकलसक्ति शिखरपर्यन्त। इन दिशावाले  
कर्णों शक्तिपुत्र स्वयम्भुव, ईशानस्वयम्भुव  
कर्णों स्वयम्भुव और इनकी शक्तिकर, अस्त्र-  
कोणकावे कर्णों शक्ति और इनकी  
शक्तिकर। वैष्णवकोणके कर्णों श्रीकृष्ण और  
इनकी शक्तिकर तथा कर्णकोणकावे कर्णों  
सकलसक्ति शिखरपर्यन्त पूजन करे।  
ममत्त भक्तशक्तिधर्मों की प्रतीक आचरणमें  
ही पूजा करनी चाहिये। प्रतीक आचरणमें  
शक्तिधर्मोंका अष्टपूर्तिपर्यन्त पूर्वदि आठों  
दिशाओंमें क्रमशः पूजा करे। कथ, सर्व,  
ईशान, जग, वसुधति, सत्, जीव और  
महादेव — ये क्रमशः आठ भूर्ति हैं। इनके  
बाद उसी आचरणमें शक्तिधर्मोंका महादेव  
आदि आठ भूर्तिधर्मोंकी पूजा करनी चाहिये।  
महादेव, शिव, सत्, ईशान, जीवधर्मिक,  
ईशान, शिव, जीव, देवदेव, ममत्त तथा

कर्णधर्म (या कर्णधर्म) — ये आठ  
भूर्ति हैं। इनमेंसे जो प्रथम आठ भूर्ति हैं,  
इनका अस्त्रिकेवासे कर्णों सेकर पूर्वदिग्ग-  
जपर्यन्त आठ दिग्गजोंकी पूजा करना चाहिये।  
देवदेवको पूर्वदिशाके कर्णों सेकर पूर्व  
पूर्ति करे और ईशानका कर्ण — अस्त्रिकेवासे  
स्वात्म-पूजा करे। फिर इन छेनोके बीचमें  
भक्त-पूजाकी पूजा करे और अङ्गोंके साथ  
कर्णधर्म या कर्णधर्मका साधन-पूजा  
करना चाहिये। अब प्रतीक आचरणमें फिर  
पुनश्चकर्णों की पूर्व, ममीका शक्तिधर्म,  
कर्णधर्मका कर्णों, कर्णधर्म अस्त्रिकेवासे  
कर्णों वातुकाअस्त्र उक्ति विद्याके कर्णों,  
ममीकाअस्त्र वैष्णव कोणके कर्णों,  
कर्णधर्मका कर्णधर्म, जीवका  
कर्णधर्मकोणके कर्णों कीरिका उत्तरावली,  
कर्णका ईशानकोणके तथा कर्णका एवं  
ममीका कर्णों कीरिका कर्णका कर्ण  
करे। यहकर्णोंके उत्तरावली विष्णुका,  
कर्ण और वातुकाओंके बीचमें  
कर्णधर्मका, कर्णका और तथा ममीकाओंके  
कर्णों कीरिकाका, कर्ण और ममीकाओंके  
कर्णों ममीकाओंके, देवका और  
कर्णधर्मके कर्णों विष्णुकाओंकी अर्चन  
करनेवाली जीविका, जीव और ममीका  
(ममी) के बीचमें ममीकाओंकी पूजा करे।  
ममीका और कर्णके बीचमें देविकाओंकी  
पूजा करे। इसी आचरणमें पुनः शिवके  
अनुचरणकी पूजा करे। इन अनुचरणोंमें  
साधन, प्रथमसाध और प्रथमसाध आने हैं। इन  
साधोंके विविध रूप हैं और वे सब-के-सब  
अपनी शक्तियोंके साथ हैं। इनके बाद  
कर्णधर्मिक से शिवके परकीर्णका भी पूजा  
एवं पूजन करना चाहिये।











ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

## शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं भङ्गुलकी कामना

उपमन्युवाच

श्रोतं ब्रह्मसि मे पुण्यं पञ्चवस्त्रधारिणः ।  
योगेश्वरस्य पुण्यं क्वीं येन सम्पद्यते ॥ १ ॥

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! आप ही  
तुम्हारे समस्त पञ्चावराण-धारिणी विन्दे  
जानेवाले ब्रह्मका अर्चन करीगा, जिससे  
मैं योगेश्वर नामक पुण्यकार्य पूर्णरूपसे  
सम्पन्न होता हूँ ॥ १ ॥

अथ अथ सर्वदेवतासु सर्वं  
भङ्गुलिन-शेखर निर्वाणकमलम् ।

अतीवप्रसन्नवदनसदा-

महि कस्यै चार्चनार्थीतलपम् ॥ २ ॥  
आगत्यै एकमात्रं दण्डक । निरुप  
विश्रमपक्षभावः । प्रकृतिमन्त्रेण सम्पद्ये ।  
आपका तब कामधराधारे रहित, निर्मल  
बाणी तथा मनकी चक्षुषसे भी चोरे है ।  
आपकी जय हो, जय हो ॥ २ ॥

सप्तार्चनार्थीलाभेण अथ सुन्दरवेष्टितः ।  
स्वात्मपुण्यपदार्थेण अथ सुदृग्मन्त्रिणः ॥ ३ ॥

आपका श्रीविष्णु स्वभावसे ही निर्मल  
है, आपकी चेष्टा परम सुन्दर है, आपकी जय  
हो । आपकी स्वाध्यायिक आपकी ही तुल्य है ।  
आप विस्तृत व्याख्यानमय गुणोंके मन्दिरसागर  
हैं, आपकी जय हो ॥ ३ ॥

अमलवर्णितसम्पन्न अथ सर्वदुर्लभम् ।  
सहस्रार्चनार्थिनाम् अथ भङ्गुलसम्पन्नः ॥ ४ ॥

आप अनन्त कल्पितसे सम्पन्न हैं ।  
आपके अतिप्रहृष्टी कहीं तुल्य नहीं हैं,  
आपकी जय हो । आप अमल वर्णितके  
आधार हैं तथा छान्तिमय भङ्गुलके निवेदन  
हैं । आपकी जय हो ॥ ४ ॥

निरुपम विष्णु अथ निरुपमोदयः ।

निरुपममन्द अथ निर्गुणमन्त्रः ॥ ५ ॥

निरुपम (निर्मल), आधाररहित तथा  
विश्रम कल्पके प्रकट होवेवाले शिव !  
आपकी जय हो । निरुपम परममन्त्रमय !  
छान्ति और सुखके कारण ! आपकी जय  
हो ॥ ५ ॥

अमलवर्णितसम्पन्न अथ सर्वदेवतासु सर्वं

अथ अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं ॥ ६ ॥

अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं  
तथा अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं । आपकी  
जय हो । प्रभो ! आपका सब कुछ सत्त्व है  
तथा आपके वैभवाकी कहीं समता नहीं है;  
आपकी जय हो, जय हो ॥ ६ ॥

अमलवर्णितसम्पन्न अथ सर्वदेवतासु सर्वं  
अथ अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं ॥ ७ ॥

आपने विष्ट विष्टसे व्याप्त कर रखा  
है, किन्तु आप किसीसे भी व्याप्त नहीं हैं ।  
आपकी जय हो, जय हो । आप सबसे  
अच्छ हैं, किन्तु आपसे कुछ कोई नहीं है ।  
आपकी जय हो, जय हो ॥ ७ ॥

अमलवर्णितसम्पन्न अथ सर्वदेवतासु सर्वं  
अथ अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं ॥ ८ ॥

आप अनुम है, आपकी जय हो । आप  
अमल (मन्द) हैं, आपकी जय हो । आप  
अमल (निर्मल) हैं, आपकी जय हो ।  
आप अविनाशी हैं, आपकी जय हो ।  
अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं । आपकी जय हो ।  
अमलवर्णित अथ सर्वदेवतासु सर्वं । आपकी जय हो ।  
निर्मल  
संकर ! आपकी जय हो ॥ ८ ॥

महाभुज महाशर महागुल महाकव ।  
 महाबल महाशय महासस महारथ ॥ ९ ॥  
 महाबाहो ! महासार ! महागुल !  
 महावी कीर्तिकभासे युक्त ! महाबाहो !  
 महाबायावी ! महान् रक्षित तत्त्वा महारथ !  
 आपकी जय हो ॥ ९ ॥

नमः परमेष्ठये नमः परमेष्ठये ।  
 नमः शिवाय शान्तये नमः शिवाय ते ॥ १० ॥

आय परम आराध्यको नमस्कार है ।  
 आय परम कर्मकायमे नमस्कार है । ज्ञान  
 शिवाय नमस्कार है और आय परम  
 कल्याणायक प्रभुको नमस्कार है ॥ १० ॥  
 एतन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ ११ ॥  
 अतस्त्वष्टिर्विश्वम्भो हवते श्रीगणेशाय ॥ १२ ॥

देवताओं और असुरोंसहित यह सम्पूर्ण  
 जगत् आपके अधीन है । अतः आपको  
 आज्ञाका अनुपालन करनेमें कौन समर्थ हो  
 सकता है ॥ ११-१२ ॥

अथ एतन्मन्त्रं शिव गणेशाय नमः ।  
 गणेशाय नमः प्रार्थिते समस्तजगत् ॥ १३ ॥  
 हे सनातनो ! यह सौम्य श्रद्धासे  
 आपके ही आश्रित है ; अतः आप इसपर  
 अनुग्रह करके इसे इसकी प्रार्थित वस्तु  
 प्रदान करें ॥ १३ ॥

जगत्किं करोति जगन्नाथस्य सर्वजगत्किं ।  
 जगन्नाथस्यैव नमस्तुते ॥ १४ ॥

अम्बिके । जगन्नाथ ! आपकी जय  
 हो । सर्वजगत्की । आपकी जय हो ।  
 असीम ऐश्वर्यशालिनि ! आपकी जय हो ।  
 आपके अतिप्रहारी कहीं जगत् नहीं है,  
 आपकी जय हो ॥ १४ ॥

यस्य वाङ्मनसादीनि जगद्भिर्भक्त्यभिज्ञे ।  
 नम जगन्नाथस्यैव नमः ॥ १५ ॥

यन, वाणीसे उगीत शिरो । आपकी

जय हो । अज्ञानान्धकारका घट्टन  
 करनेवाली देखि ! आपकी जय हो । जय  
 और जरासे रहित यमे ! आपकी जय हो ।  
 कालसे भी अतिशय उत्कृष्ट शक्तिकाली  
 हुई ! आपकी जय हो ॥ १५ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १६ ॥  
 यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १६ ॥

जानेकर प्रकरके विधानोंमें शिव  
 परमेष्ठि । आपकी जय हो । विश्वनाथ-  
 शिरो ! आपकी जय हो । समस्त  
 देवताओंकी आज्ञाधीन देखि । आपकी  
 जय हो । सम्पूर्ण विश्वका विस्तार करनेवाली  
 जगत्किं करोति ! आपकी जय हो ॥ १६ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १७ ॥  
 यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १७ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १८ ॥  
 आपकी जय हो । जगत्की प्रकाशित  
 करनेवाली ! आपकी जय हो । जगत्काय  
 करिप्रकाशकी सर्वप्रहारी ! आपकी जय हो ।  
 जगत्किं करोति ! आपकी जय हो ॥ १७ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १९ ॥  
 यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ १९ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ २० ॥  
 परम कल्याणायक गुणोंकी आप वृत्ति  
 है, आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत्  
 अधीन हो आपका हुआ है, अतः आपमें ही  
 स्तन होगा ॥ २० ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ २१ ॥  
 यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ २१ ॥

यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ २२ ॥  
 यन्मन्त्रोऽयं कृत्वा सर्वत्र नमस्तुते ॥ २२ ॥

देवेन्द्र ! अतः आपके बिना ईश्वर भी  
 कार्य देनेमें समर्थ नहीं हो सकते । यह जन  
 जगत्कायसे ही आपकी शरणमें आया हुआ  
 है । अतः देखि ! आज अपने इस भक्तका

मन्त्रेय शिरो कीजिये ॥ २१ ॥



शिव-शरणाजैन-परायण, शिवके जीजोमें  
प्रथम और शरणाजोमें चार शरणाजोसे  
पूज्य है, जैसे पूर्वदिशामें पश्चिमपक्षसे  
शक्तिरहित शिवका पूजन किया है, वह  
पवित्र परब्रह्म शिव मेरी शार्ङ्गना संपन्न  
करे ॥ ३०—३२ ॥

अज्ञानविपरीतावाचकं चेतनम् ।  
देवता दक्षिणं पश्चिमं देवदेवतापूजकम् ॥ ३३ ॥  
विद्यापदे सदाकालं प्रतिपन्नसमस्तकम् ।  
त्रितीयं शिवजीनेषु जगत्सर्वकारिणाम् ॥ ३४ ॥  
आनन्देतिपरीक्षाभावे शक्त्या सह सम्बन्धितम् ।  
पश्चिमं पश्ये ब्रह्म शार्ङ्गना मे प्रपन्नम् ॥ ३५ ॥

जो अज्ञान आदिसे स्वयम् स्वयम्, शर  
शरीरवाला एवं अज्ञान रूपसे प्रसिद्ध है,  
महादेवजीके शक्ति प्रभुका अभिधानी तथा  
देशाधिपति शिवके शरणाजो पूज्य है,  
विद्याकरतापर आनन्द और अविनाशकालके  
सदा शिराजयम् है, शिवजीजोमें द्वितीय तथा  
कालाजोमें अज्ञानतापूज्य एवं भगवान्  
शिवके शक्तिप्राप्तसे शक्तिके साथ पूजित  
है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु  
प्रदान करे ॥ ३३—३५ ॥

भूतप्रेतक्षयकारिणी शक्त्या चैव शक्त्या ।  
शक्त्यापूज्योऽपि जगत्प्रतिपन्नं प्रतिपन्नम् ॥ ३६ ॥  
पारिवर्तनप्रकारेण चैव शक्त्या चैव ।  
तृतीयं शिवजीनेषु जगत्सर्वकारिणाम् ॥ ३७ ॥  
देवतापूजकं प्रतिपन्नं जगत्सर्वकारिणाम् ।  
पश्चिमं पश्ये ब्रह्म शार्ङ्गना मे प्रपन्नम् ॥ ३८ ॥

जो भूतप्रेतक्षयकारिणी शक्त्या चैव शक्त्या  
शक्त्यापूज्योऽपि जगत्प्रतिपन्नं प्रतिपन्नम्, सुन्दर  
सेवधारी और कर्मयोग कायसे प्रसिद्ध  
है, भगवान् शिवके शरणाजो पूज्य  
अभिधानी है, प्रतिपन्नकालमें प्रतिपन्न  
है, जसके मण्डलमें शिराजयम् तथा

महादेवजीकी अर्चनामें तापर है,  
शिवजीजोमें संपूर्ण तथा शरणाजोसे  
पूज्य है और महादेवजीके शरणाजोमें  
शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह  
पवित्र परब्रह्म मेरी शार्ङ्गना पूर्ण  
करे ॥ ३६—३८ ॥

जगत्सर्वकारिणाम् शक्त्या चैव शक्त्या ।  
शिवका पश्चिम पश्ये शिवपूजकं पश्ये ॥ ३९ ॥  
शिवजीनेषु चैव शक्त्या चैव शक्त्या ।  
तृतीयं शिवजीनेषु जगत्सर्वकारिणाम् ॥ ४० ॥  
देवता पश्ये ब्रह्म शार्ङ्गना मे प्रपन्नम् ।  
पश्चिमं पश्ये ब्रह्म शार्ङ्गना मे प्रपन्नम् ॥ ४१ ॥

जो भूत, भूत और शक्त्यापूज्य शक्त्या  
शक्त्या, शक्ति तथा शक्तिप्राप्त नामसे शिराजयम्  
है, शक्त्या शक्तिके पश्चिम पश्ये  
अभिधानी एवं शिवशरणाजो अर्चनामें रत  
है, शिवजीनेषु प्रतिपन्न तथा पृथ्वी-  
पश्ये शक्ति है, शिवजीजोमें तृतीय, आठ  
शरणाजोसे पूज्य और महादेवजीके पश्चिम-  
पश्ये शक्तिके साथ पूजित हुआ है,  
वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी शार्ङ्गना  
पूज्य दे ॥ ३९—४१ ॥

शिवका चैव शक्त्या चैव शक्त्या ।  
शक्त्यापूज्योऽपि जगत्प्रतिपन्नं प्रतिपन्नम् ॥ ४२ ॥  
शिव और शिवजी स्वयम् शक्ति शक्ति  
शक्तिप्राप्तसे शक्ति है शक्ति शक्ति शक्ति  
शक्तिप्राप्त करके शक्ति मनोरम पूर्ण  
करे ॥ ४२ ॥

शिवका चैव शक्त्या चैव शक्त्या ।  
शक्त्यापूज्योऽपि जगत्प्रतिपन्नं प्रतिपन्नम् ॥ ४३ ॥  
शिव और शिवजी शिवपूज्य शक्ति  
शक्ति है शक्ति शक्ति शक्ति शक्ति  
शक्तिप्राप्त आनन्द करके मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु  
प्रदान करे ॥ ४३ ॥



शिवस्य च शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४४ ॥

शिव और शिवशक्ती कलकलका भूमिर्चा  
निवाधावसे पापिन हो शिव-कार्यशक्ती  
आज्ञाका सत्कार करके मेरी कायका सफल  
करे ॥ ४४ ॥

शिवस्य च शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४५ ॥

शिव और शिवशक्ती नेककल भूमिर्चा  
शिवके आशित यह कहीं कोनोकी कल  
किरोधार्थ करके मुझे मेरा मनोरथ प्रदान  
करे ॥ ४५ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४६ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा  
नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी  
आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट  
बस्तु प्रदान करे ॥ ४६ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४७ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट

बस्तु प्रदान करे ॥ ४७ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४८ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट

बस्तु प्रदान करे ॥ ४८ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ४९ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

अनन्त, सुख, शिव (अथवा

शिवशक्त्या), एकनेत्र, एकलक्ष, त्रिमूर्ति,

श्रीकण्ठ और शिवशक्ती—ये अलक

शिवशक्त्या तथा इन्की पैसी ही आठ

लक्षियों अनन्त, सुख, शिव (अथवा

शिवशक्त्या), एकनेत्र, एकलक्ष, त्रिमूर्ति,

श्रीकण्ठ और शिवशक्ती, शिवकी

हिनीय अलकलके पूजा हुई है, शिव और

शिवके ही कायकासे मेरी मनःकायका पूर्ण

करे ॥ ४९-५० ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ५१ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट

बस्तु प्रदान करे ॥ ५१-५२ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ५३ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट

बस्तु प्रदान करे ॥ ५३ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ५४ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट

बस्तु प्रदान करे ॥ ५४ ॥

शिवशक्त्योऽर्थक्यं शिवशक्तिरे ।

सकृत्स्य शिवशक्त्या ते ये कथं प्रपन्नान् ॥ ५५ ॥

शिव और शिवशक्ती अलकल भूमिर्चा

नित्य कहीं कोनोके अलकले सपर यह कलकी

आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट











शिवकी आज्ञासे अर्धन हो चुके मङ्गल  
प्रदान करें ॥ ११३-११५ ॥

अथारभ्य तत्रा वेदः केन्द्रप्रमुखकः ॥११५॥  
सर्वसामर्थ्य विदुषिर्गोपिकोपि समर्थकः ।

गत्समाधिक्यार्थं शिवसंकीर्तनकः ॥११६॥  
तत्काले शिवदेवतां गच्छन् प्रेरयन् ये ।

पार वेद, इतिहास, पुराण, सर्वज्ञान  
और वैदिक विचार—ये सब-के-सब  
एकमात्र शिवके लक्षणकी प्रतिफल  
करनेवाले हैं; अतः इनका गहन  
एक-दूसरेके विरुद्ध नहीं है। ये सब शिव  
और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके  
मङ्गल करें ॥ ११३-११६ ॥

अथ अने मन्त्रके लक्षणोंके शिवकी ॥११८॥  
गङ्गाधरसामोक्तः पौनर्विक्रमं उच्यते ।

शिवानिगन्तव्यकाले निर्गुणकृतकः ॥११९॥  
वेद्यते शान्तिवशात् तत्रास्ति तत्रा ।

अधिकतरतः पूर्वं काले सर्वज्ञान ॥१२०॥  
अथकारणकाले च सुखादिकरवत्कालः ।

आज्ञाप्रति विदुषोऽपि जनेकस्तत्र गच्छन् ॥१२१॥  
अनन्तरतः शिवोऽपि शिवकः ।

बोधकाले सर्वज्ञानकालः प्रथमः ॥१२२॥  
अथसामर्थ्यविरुद्धं उच्यते लोकाधिक्यः ।

शिवानिगन्तव्यकाले शिवकाले सः ॥१२३॥  
शिवकाले च शिवः सः शिवः मङ्गलः ।

मन्त्रके यह सामग्री रखने गरिब नहीं  
है। ये अधिकतरके अर्धन हैं। समस्त  
पुराणों और वेदोंसे सम्पन्न हैं, सर्वसमर्थ  
हैं। इनमें शिवकाल अधिकतम जानते हैं। ये  
निर्गुण होने हुए भी विगुणकाल हैं। केवल  
सात्विक, राजस और तामस भी हैं। ये  
पहलेसे ही निर्विकार हैं। सब कुछ इसीकी  
सृष्टि है। सृष्टि, पालन और लोकार्थ करनेके  
द्वारा इसकी कार्य असाधारण मान जाते हैं।

ये मन्त्रके भी बसतका ऐतन करनेवाले  
हैं। मन्त्रके शिव और पुत्र भी हैं। इसी तरह  
शिवके भी अन्त और पुत्र हैं तथा अने  
विशेषोंसे रहनेवाले हैं। ये इन दोनों—मन्त्र  
और शिवके ज्ञान देनेवाले तथा शिव उन्पर  
अनुष्ठान करनेवाले हैं। ये प्रथम मन्त्रके  
भेदा और साधन भी आता है तथा अन्तके  
और बालके—दोनों स्वरूपके अधिपति रख  
हैं। ये शिवके शिव, शिवमें ही आत्मज्ञ तथा  
शिवके ही कारकारिकोंकी अर्थकसे तात्पर्य है,  
अतः शिवकी आज्ञासे सम्पन्न रहने हुए मन्त्र  
मङ्गल करें ॥ ११८-१२३ ॥

तत्रा च ॥१२४॥ शिवोऽपि तत्रास्ति ॥१२५॥  
अथोऽपि शिवोऽपि शिवकः ।

शिवो चोऽपि शिवः प्रथमः तत्रा ।  
शिवकाले च शिवः मङ्गलः प्रेरयन् ॥१२६॥

अथान्तरकाले सर्वज्ञान शिवानादि  
मन्त्र, कृतकः च ॥१२७॥ अथ शिवोऽपि, शिव  
अथ चोऽपि शिवः—शिव, चो, शिव और  
मन्त्र—ये सब-के-सब शिवके पूजक हैं। ये  
स्वयं शिवकी आज्ञासे शिरोधार्य करके  
मन्त्र मङ्गल प्रदान करें ॥ १२४-१२६ ॥

अथ शिवानिगन्तव्य शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१२८॥

निर्गुण तत्रास्ति शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१२९॥

अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१३०॥

अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१३१॥

अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१३२॥

अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले च शिवः ।  
अथान्तरकाले च शिवः शिवकाले ॥१३३॥





























[illegible][illegible]

100

[illegible]

\* उपर्युक्त एवं अधिकांश कार्य में १५ वर्षों के लिए २५-३० की आयु वर्ग के लोग और संलग्नता योग्य हैं।

[illegible]















\*\*\*\*\*

कल्पित सुवर्णके समान है। जड़से जड़मय 'व' से लेकर 'स' तकके चार अक्षर चर चरके रूपमें विद्यत हैं। इन कमलोगेसे जिसमें ही अपना मन रखे, उसीमें यज्ञदेव और यज्ञदेविका अपनी थीर बुद्धिसे चिन्तन करते। उनका स्वभाव जीगूठके बराबर, निर्मल और सब ओरसे दीप्तिमान् है। अथवा यह शुद्ध दीपशालाके समान अक्षरबालक है और अपनी कृतिकसे पूर्णतः परिष्कृत है। अथवा जगत्के या ताराके समान कण्ठवाल है अथवा यह नीलारके रींग या कण्ठनालके निकलेवाले सुन्दर सखन है। कदम्बके गोकुल या ओसके कण्डसे भी उनकी कला ही जा सकती है। यह कम पृथिवी आदि लक्षणोंपर विचार प्राप्त करनेवाला है। ध्यान करनेवाला पुनः किस तकपर विचार करनेकी इच्छा रखता हो, उसी लक्षणके अभिव्यक्ति की स्थूल मूर्तिके चिन्तन

करे। जड़मसे लेकर सदाशिवपर्यन्त तथा सब आदि अष्ट मूर्तियाँ ही दिव्यशालामें निरूपणी स्थूल मूर्तियाँ निहित की गयी हैं। भुविभरोने उन्हें 'चोर', 'शान्त' और 'भिन्न' तीन प्रकारकी कलाक है। फलस्वी आवाग चलनेवाले ध्यान-कुशल पुस्तोके इनका विचार करना चाहिये। यदि चोर मूर्तियोंका चिन्तन किया जाय तो वे हीन ही पाय और रोमका मत कराती हैं। निन्न मूर्तियोंमें दिव्यका चिन्तन करनेपर चिरकालमें सिद्धि प्राप्त होती है और सौख्यमूर्तिमें दिव्यका ध्यान किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होनेमें व लो अथवा सौख्य होती है और व अथवा चिन्तन हो। सौख्यमूर्तिमें ध्यान करनेसे विशेषतः पुष्टि, शक्ति एवं शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है। अथवा सभी सिद्धि ही प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ३८)

☆

**ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राप्ति देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन**

उपश्रु कहते हैं - श्रीकृष्ण ! श्रीकण्ठनाथका स्मरण करनेवाले लोनोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तत्काल हो जाती है, ऐसा जानकर कुछ लोग उसका ध्यान अवश्य करते हैं। कुछ लोग उनकी स्थिरताके लिये स्थूल रूपका ध्यान करते हैं। स्थूल रूपके चिन्तनमें लगाकर जब चित्त निश्कल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूपमें यह स्थिर होता है। भगवान् शिवका चिन्तन करनेपर सब सिद्धि ही प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती

है। अन्य मूर्तियोंका ध्यान करनेपर भी शिवलक्षण अथवा चिन्तन करना चाहिये। निन्न-निन्न रूपमें उनकी स्थिरता लक्षित हो, उस-उसका वांछित ध्यान करना चाहिये। ध्यान पढ़ने सम्बन्ध होता है, किन्तु निर्विकल्प होता है - ऐसा ज्ञानी पुस्तोका कथन है। इस विषयमें कुछ सम्प्रदायोंका मत है कि कोई भी ध्यान निर्विकल्प होता ही नहीं। बुद्धिहीन ही कोई प्रवाहलक्ष्य संतति 'ध्यान' कहलाती है, इसलिये निर्विकल्प बुद्धि

केवल—विशुद्ध विराजमान प्रकाश ही प्रकृत  
 होती है :

अतः सन्निवृत्त कालम् अतःकारणमेव  
सुखीयं विराजमानं समस्तं जगन्निवासं अस्माकं  
निवेद्यामः । तस्य विनिर्दिष्टं कालम्  
सुखीयतायाः अस्माकम् कारणमेवास्ति । इमं  
लोके विनाशः अस्ति यदाहं कालं कारणात्मेयं यदा  
है । अस्माकां सन्निवृत्त कालम् यदाहं कालमेवास्ति  
अस्माकम् कारणमेवास्ति । तस्य विराजमानं  
समस्तं कालं यो लोकः वा अस्ति वा है, यदा  
विनिर्दिष्टं कालं कालं गता है ; यदा सन्निवृत्त  
अस्ति विनिर्दिष्टं कालम् है कालम् : कालीयः अस्ति  
विनिर्दिष्टं कालं कालं है । विराजमानं अस्माकं  
लोके अस्ति विनिर्दिष्टं अस्ति कालम् अस्माकं  
लोके अस्ति कालीयः कालं ही गता है । अतः  
कालम् सन्निवृत्त वा कालीयः कालं कालम्  
अस्ति तस्य कालीयः विनिर्दिष्टं निवे  
दिष्टं अस्ति विनिर्दिष्टं कालं कालम्  
कालीयः । अस्माकम् कालीयः कालम् : कालीयः  
अस्ति विनिर्दिष्टं विनिर्दिष्टं कालं है । अतः  
कालं है—कालीयः, अस्ति, कालीयः और  
अस्ति । अस्माकां अस्ति अस्ति कालीयः है  
कालीयः कालं कालं है । तस्य (अस्ति) कालं  
कालीयः और कालीयः कालं है अस्ति है ।  
कालीयः और कालीयः कालं कालं कालं है ।  
अस्ति कालं कालीयः है तस्य कालीयः को  
कालीयः (अस्ति) है, कालीयः अस्ति  
कालं कालं है । कालं और अस्ति कालीयः को  
कालीयः कालं है, ये कालीयः अस्ति कालं है  
अस्ति (विनिर्दिष्टं) को कालं है :

ध्याता, ध्यान, योग और ध्यान-प्रयोग—इन ध्यानको सम्बन्धन ध्यान करनेवाला व्यक्ति ध्यान करने । जो ध्यान और ध्यानको सम्बन्धन है, तथा ध्यानको सम्बन्धन

[illegible]







प्रज्ञाजीको बतानी। फिर अपने कार्योंके लिये उनसे आज्ञा ले के अपने नगरको जाने गये। तदनन्तर अपने एकज्जा के डेर हुए प्रज्ञाजी गहनकी बगानों परकर लड़कें रहने और विद्या करनेवाले मुमुक्षु और नरार्थके गान्धर्वसिंह राजाका आलम्बन करने हुए वहाँ बधायकता करने लगे। उस समय वे गन्धर्वों और अचाराओंमें सेविग हो सुखपूर्वक होते थे। उस वकालमें किसी आदमी धर्मिण्यो वहाँ जानेका अवसर नहीं दिया जाता था। इसीलिये उस वैविचारधर्मिण्यो मुनि वहाँ पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें द्वार पर ही रोक दिया। वे मुनि ब्रह्मभवनमें बाहर ही धार्मिक-भागमें बैठ गये। द्वार जमीन-पेड़ोंमें बाधसे मुमुक्षुकी समाप्तता प्राप्त थी। तब परमेष्ठी प्रज्ञावे उन्हें मुमुक्षुके साथ रहनेकी आज्ञा दी और वे वास्तविक जगत्की व्यापक मुमुक्षुके वरम विगत हो गये। तत्पश्चात् गन्धर्वों और अचाराओंमें डेर हुए कपट गुरुदेवता रहनेवाले जीवनकाल गुनाकर संतुष्ट करनेके लिये मुमुक्षुके साथ ब्रह्मभवनमें अती अवसर निकाले, जैसे मैथिली कहाले मुनिदेव बाहर निकाले हैं।

उस समय मुनिदेव काव्यको देखकर उस का: कुम्भोंमें अथवा हूँ बर्तनमें अथवा किया और बड़े आहारके साथ प्रज्ञाजीसे मिलनेका अवसर प्राप्त। वास्तविक विचार दूसरी ओर लग्न था और वे वही उल्लासमें थे। अतः उनके मुखमें बोलते—'वही अवसर है। आपलोग भीतर जानें।' यह कहते हुए वे चले गये। तदनन्तर द्वारपालोंने प्रज्ञाजीकी उन मुनिदेवके अवलम्बकी

सूचना दी। उनकी आज्ञा परकर वे सब एक साथ प्रज्ञाजीके पत्रमें प्रविष्ट हुए। भीतर बाहर उन्होंने दुरासे ही दृष्टिकोण धर्मिण्यो मुनिदेव गिरकर प्रज्ञाजीके प्रभाव किया। फिर उनका अनेक प्रकार के मुनि उनके पास गये और वाने ओरके उन्हें केन्द्र में। उन्हें वही देखा जाकरअनन्य प्रज्ञावे उनका कुशल-अवस्था पूछा और बताया कि मुझे मुनिदेवोंका ज्ञान सुलभ प्राप्त हो चुका है। वनार्थक बाधोंसे ही वहाँ सब कुछ बढ़ा है। अब तुम जानो, अब बाधोंसे तुम्हें कल सुककर अनुपम हो गये, तब तुम्हें क्या किया ?

केन्द्रका प्रज्ञाके इन अवसर पड़नेपर उन मुनिदेवों अवलम्ब-आनन्दे ब्रह्म गन्धर्वसिंह जगत्, धाराणातीकी बाध करने, वहाँ केन्द्रकोष्ठका स्थापित विज्ञानिधर्म और अधिबुद्धका सिद्धांत की दर्शन-पुस्तक करने, आकाशमें पक्षी नेत्र-पुच्छके दिखाने के, धर्मिण्यो धर्मिण्योके अनेक तीन लोके सब विगत उन केन्द्रके अनुपम हो जानेकी बात बतली प्रज्ञाजीके विचारपूर्वक उन्हें बाधोंका प्रभाव करने कहीं। ज्ञान ही वह भी जानकर कि 'हम अपने वनमें बहुत विचार करनेपर भी उन केन्द्रको डीक-डीक जान व लगे।' मुनिदेवोंका कथन सुनकर विचारवादी अनुपम प्रज्ञावे विचारित विचारकार गन्धीर धर्मिण्यो कह—'वर्तमान ! तुम्हें वास्तव ज्ञान वास्तविक सिद्धि प्राप्त होनेका अवसर आ रहा है। तुम्हें धर्मिण्योके समझाया विचारकालक प्रामुखी आरम्भ ही है। इसीलिये वे प्रभाव केन्द्र सुखलोकोंपर गुना



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

करनेको उत्सुक है। उस तेजःपुङ्खके दर्शनकी जो छटना घटित हुई है, उससे बड़ी बात सुनिता होती है। तुमने वासुदेवजीके आकाशके भीतर जो दीप्तिमान् दिव्य तेज देखा था, वह अद्भुत ज्योतिर्मय विष्णु ही था, उसे महेश्वरका अङ्गुष्ठ तेज समझो। उस तेजमें जीत और वायुमय-आकाश कात्म्य कायेवाले सुनि, जो स्वर्णमें कुल्लः निहा रखनेवाले थे और अपने पापको कण कर चुके थे, लीज हुए हैं। लीज होकर वे स्वयं एवं मुक्त हो गये हैं। इसी कारणसे तुम्हें भी सीधे ही सुक्ति प्राप्त होकेवाली है। तुम्हारे देखे हुए उस तेजसे बड़ी बात सुनिता होती है। तुम्हारे लिये वह बड़ी समय देववत् एवं उन्मिष हो गया है। तुम वेदवर्गीयके दक्षिण तिसरधर, जहाँ देवता रहते हैं, उनमें, यहाँ मेरे पुत्र सनत्कुमार, जो अद्भुत सुनि है, निवास करते हैं। वे यहाँ अद्भुत भूतवास नन्दीके आगमनकी प्रतीक्षा में हैं।

पूर्वकालकी बात है सनत्कुमार अज्ञानवश अपनेको सब भेनिसीका शिरोधार्य मानने लगे थे। इसीलिये दुर्बिनीत हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय धर्मेश्वर शिष्यको सामने देखकर भी उनके लिये उचित अभ्युत्थान नहीं समझा था। वे अपने स्वान्वर निर्धन बैठे रहे। उनके इस अवसाथसे कुतिल हो नन्दीने उन्हें बहुत बड़ा डंक बना दिया। तब उनके लिये मुझे बड़ा शोक हुआ और मैंने

कीर्तकालका महेश्वर और महादेवजीको ज्ञापन करके नन्दीसे भी बड़ी अनुनय-विनय की। इस प्रकार प्रवास करके किसी तरह उनको डीठकी कोनिसे छुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनत्कुमार-कन्यकी प्राप्ति करावी। तब स्वयं महादेवजीने धुत्कारते हुए-मे अपने गवायका नन्दीसे कहा—  
‘अन्ध ! सनत्कुमार सुनिने मेरी ही अवज्ञेय्य करके अपना कैसा अहंकार प्रकट किया था, अतः तुम्हीं उनके परे यथार्थ सन्तुष्टता उद्देश्य हो। अज्ञानका जेठु पुत्र कुलवी प्रति धैर्य धरणा कर रहा है, अतः मैंने ही उनको तुम्हें शिष्यके रूपमें दिया है; तुमसे उद्देश्य पाकर वह परे ज्ञानका प्रकीर्ण होना और बड़ी तुम्हारा धर्मावधारण बहुर अभिनेक करेगा।’

महेश्वरजीके ऐसा कहनेपर समस्त भूतवर्गीके अन्धका नन्दीने प्राप्त-काल परलका सुकालका अवधीकी यह आज्ञा शिरोधार्य की तथा सनत्कुमार भी मेरी आज्ञासे इस पनराज नन्दीको प्रसन्न करके लिये मेरुपर हुम्बर उपस्थित कर रहे हैं। यथावत् नन्दीके स्वागतसे पहले ही तुमलोग सनत्कुमारसे मिलो; क्योंकि उनपर कृपा करनेके लिये नन्दी सीधे ही यहाँ आयेगे।

विद्युद्योनि अज्ञानके इस प्रकार सीधे अन्धेस देकर भेजनेपर वे सुनि थक पर्वतके दक्षिणवर्ती कुम्हार-क्षिप्रधर गये।

(अध्याय ४०)

\_\_\_\_\_

मेरुगिरिके खन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनत्कुमारजीसे मिलना,  
भगवान् नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपातमात्रसे पाशछेदन एवं  
ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिष्यपुराणकी  
महिमा तथा जन्मका उपसंहार

सूतजी कहते हैं—वहाँ सेक जगत्तर  
सागरके समान एक विस्तार भरोसा है,  
विस्तार नाम ब्रह्म-सर है। उसका जल  
अमृतके समान स्वादिष्ट, शीतल, लज्ज,  
अगाध और बलवान है। वह सरोवर सब  
ओरसे एकदिक बगिचे विस्तारलक्ष्मीद्वारा  
संघटित हुआ है। उसके पास ओर सभी  
ब्रह्मजीवों के विलम्बवाले फूलोंके पत्र हुए हुए  
उसे आच्छादित किये रहते हैं। उस सरोवरके  
सेवार, जलरस, लज्जल और कुसुमके सुगन्ध  
सारीके समान सोभा पत्ती हैं और वरुण  
बाह्यलोकके समान उज्ज्वल रहती है, जिससे जान  
पड़ता है कि आकाश ही भूमिपर जल आया  
है। वहाँ सुलभपूर्वक उतरने-उड़नेके लिये  
सुन्दर घाट और लीढ़ियाँ हैं। वहाँसे भूमि  
नीची विस्तारलक्ष्मीके आकाश है। अगले  
दिशाओंकी ओरसे वह सरोवर बड़ी लोच  
पाता है। वहाँ बहुत-से लोग बहानेके लिये  
उतरते हैं और कितने ही नष्टकर निकलते  
रहते हैं। जान करके श्रेष्ठ ब्रह्मजीव और  
जन्मलक्ष्मीय धारण किये, वसन्त पड़ने,  
शिरमर जल अथवा शिवा रसाले या मृद  
भुङ्गने, लज्जलक्ष्मीके विपुल लज्जल, वीरलक्ष्मीके  
विमल एवं सुसज्जित मुखवाले बहुत-से  
सुनिकुमार ब्रह्मजीव, कमललक्ष्मीके बलके  
दोनोंमें, सुन्दर कललक्ष्मी, कमललक्ष्मी  
तथा वैसे ही करबों (करबों) आदिमें अपने  
लिये, दूसरोंके लिये, विशेषतः देवपूजाके  
लिये बड़ासे नित्य जल और फूल ले जाते हैं।

यहाँ ब्रह्म और विष्णु प्रलय कालमें जाग्न करते देखे जाते हैं। उस शरीररके किनारेकी विजयशैल पर शिव, अक्षय, पूरुष और छोटे हुए पश्चिमाय दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ स्वयं-ज्ञानपर अनेक प्रकारकी पुष्पवलि आदि दी जाती है। कुछ लोग सूर्यको अर्घ्य देते हैं और कुछ लोग वेदीपर बैठकर पूजन आदि करते हैं।

उस सरोवरके ऊपर तटपर एक  
कालकृष्णके पीछे झिंझी हिलाने लगी हुई  
केटीया कोयल कुम्हार विद्यावार सदा  
कालकारकारी समस्तुमारकी बैठे थे। ये  
अपनी अधिकांश समाधिसे उसी समय उपास  
हुए थे। उस समय बहुत-से ब्राह्मि-मुनि  
उन्नी केवासे बैठे थे और योगीश्वर भी  
उन्नी पूजा करते थे। वैश्विपारण्यके  
मुनिबोले यहाँ समस्तुमारकीया दर्शन  
किया। उनके कारणोंसे यत्नाक मुक्तिया और  
उन्ने जल-वास कैद गये। समस्तुमारकी  
पूजनेपर उन ब्राह्मियोंने उनसे ज्यों ही अपने  
आचमनका कारण चलाना आरम्भ किया,  
तो ही अन्धकारने कुन्दुभिबोका मुपुल नाव  
सुनयी दिया। उसी समय स्वर्गके समान  
तेजसी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो  
अलंकरण गलेहरतारा चारों ओरसे घिरा हुआ  
था। उसमें अक्षरार्थ तथा स्रजज्याएँ भी  
थीं। यहाँ मृदङ्ग, दोल और वीणाकी ध्वनि  
गूँज रही थी। उस विमानसे विभिन्न स्रजजटित  
चैतेज्य तना था और बोलियोंकी रक्षिया

उसकी सोचा कदा रही थी। बहुत-से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, वृक्ष, वायु और विष्णु वायुसे, गते और गते कलसे हुए उन विमानको सब जगती घेरकर बस रहे थे, उसमें सुबचबिड़से कुछ और दूसरेके दृष्टको विधुमिल जगता-वायुका बहना रही थी, जो उसके गोपुष्पकी सोभा बढ़ाती थी। उस विमानके भक्तभाग्यसे जो चीखरीके बीच कल्लालके सचन उल्लास मलिनस दृष्टकाले हुए उनके नीचे दिव्य सिद्धासनपर विराजमान नन्दी देवी सुवर्णके राज्य की थी। वे अत्यन्त कान्तिके, छीरसे तथा सीनों मेझीये बड़ी सोभा का रहे थे। सनसन् संकराको आभरणका कान्तीकी सुबन हेमबाले से नन्दी माने अलङ्कारकाले आलङ्कारीय आदेशका भुविवायु वायुम होकर चढ़ आये थे, अथवा उनके जगने माने आशासु सन्नुका सन्पूर्ण अनुसु ही साकार काय धारण करके चढ़ उसके जगने उपरिष्ठा हुआ था। सोभाजगती सेह विष्णु ही उनका आत्मुध है। वे विरोधर गन्धके अध्यास है और दूसरे विष्णुवाक्यकी मलि सक्तिवाली है। जगने विष्णु-जग विद्यावाक्यकी भी विष्णु और अनुसु कालेकी छक्ति है। उनके काय मुजर्द है। अङ्ग-अङ्गसे सारला सुमिल होती है, वे कल्लालेवाले विधुमिल है। कल्लाले काग और मलकजरा पण्डना उनके जलसुगर हैं। वे साक्षा ऐश्वर्य और सक्तिव सगन्धके स्वरूप-से जान पड़ते हैं।

उन्हें देखकर भक्तिमोहकित जगत्पुत्र सन्नुकावाक्य सुन प्रसन्नतासे मिल बस। वे जेयों इत्य जेह्मकर जो और उन्हें आवासरमर्षण-सा करते हुए सदैव हो गये।

काले ही वे वह विमान बरसीपर आ गया, सन्नुकावाले देव नन्दीको सहाय्य प्रणाम करते उनकी सुति की और सुविधोका परिचय को हुए कहा—‘वे छः कुलोंसे जगत् प्रथि है, जो वैविध्यात्मसे दीर्घकालसे सत्यका अनुमान करते थे। आशातीके अनेकसे अथवा दुर्गम कालके लिये वे स्नेह पड़नेसे ही चढ़ आये हुए हैं।’ जगत्पुत्र सन्नुकावाक्य का कथन सुनकर नन्दीने दुर्गमकालसे उन सत्यके चार्मिको सत्यका काय जगत् और ईश्वरीय दीर्घकर्म एवं जगन्मोहका जगत्स देकर वे फिर जगत्सजीके पास चले गये। सन्नुकावाले वह जगत् जगत् सन्नुका मेरे गुरु काशकी दिव्य और सुबनीय व्यासजीने मुझे संश्लेषसे का सब कुछ बताया। विधुवाती दिव्यके इस पुराणसत्यका जगत्स जेह्मे न जाननेवाले स्नेमोको नहीं ऐसा कहिये। जो भक्त और दिव्य न हो, उसके तथा मलिनकोकी भी इसका जगत्स नहीं ऐसा कहिये। यदि मोहकज इन अवधिकारियोंको इसका जगत्स दिव्य गया तो वह नयक प्रहम करता है। निच स्नेमोमे सन्नुकावाक्य-वाक्यसे इस पुराणका जगत्स दिव्य, निच, पढ़ा अथवा सुना है, उसके का सुल तथा बर्ष आदि विष्णु प्रहम करता है और अथसे विष्णु ही मोह केत है। इस पौराणिक चार्मिके सत्यकाले आज स्नेमोने और नीचे एक सुतेका जगत्स किया है; अतः मैं सत्यल-मोहक होकर जा रहा हूँ। हमस्नेमोका सदा सब जगत्ससे मनुस ही हो।

सुतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और जगत्सले उस सहाय्यके पूर्ण हो जानेपर वे सहाय्यारी मुनि दिव्य-कल्लाल

कालिकात्मके आनेसे काशीके आसपास निवास करने लगे। तदनन्तर यशु-यादसे सूत्रेकी इच्छासे उन सबने कूर्वातला पदभुज-प्रसक्ता अनुष्ठान विद्या और सम्पूर्ण बोध एवं सम्पत्तिपर अधिकार करके वे अनिष्ट यशुर्वि परमानन्दको प्राप्त हो गये।

**पञ्चास उपास्य**

एतच्छिष्यपुत्राणां हि सम्पत्तिं शिष्यवत्पुत्रः ।  
 पतिव्रतायां प्रयत्नेन श्रोतव्यां च तथैव हि ॥  
 नक्षि-३३७ न कर्तव्यमभ्युद्यमं प्रयत्नं च ।  
 अभ्युद्यमं नक्षि-३३८ तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥  
 एतच्छिष्या श्रोतव्यां नक्षि-३३९ तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥  
 अभ्युद्यमं नक्षि-३४० तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥  
 पुनः श्रुते च सत्पत्तिर्भुक्तिः स्वयं भुक्ते पुनः ।  
 तस्मात् पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यां हि पुनर्भुक्तिः ॥  
 पञ्चवृत्तिः प्रयत्नस्य पुनश्चैव नक्षि-३४१ ॥  
 न च कर्तव्यं सत्पत्तिरभ्युद्यमः श्रोतव्यां न चर्तव्यः ॥  
 पुनश्चैव नक्षि-३४२ तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥  
 सत्पत्तिरभ्युद्यमः श्रोतव्यां न चर्तव्यः ॥  
 श्रोतव्यां नक्षि-३४३ तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥  
 इह भुक्त्वा शिष्यान् भोगान्भुक्ते भुक्तिं लभेत् न च ॥  
 एतच्छिष्यपुत्राणां हि शिष्यवत्पुत्राणां पत्न्यः ।  
 भुक्तिर्भुक्तिरभ्युद्यमः श्रोतव्यां न चर्तव्यः ॥  
 एतच्छिष्यपुत्राणां भुक्तिः श्रोतव्यां न चर्तव्यः ॥  
 श्रोतव्यां नक्षि-३४४ तत्र चर्तव्यमभ्युद्यमं च ॥

(वि. पु. भा. सं. अ. भा. ४२. ४३—५२)

ग्यासजी कहते हैं—यह शिवपुराण पुरा  
ण, इस हितकार पुराणको बड़े आदर एवं

प्रत्यक्षसे पहचान तथा सुनना चाहिये। नस्लिक, लड़ाहीन, जठ, लोहराके प्रति भक्तिसे रचित तथा बर्षाध्वजी (पासाध्वी) को इसका उल्लेख नहीं देना चाहिये। इसका एक बार बखान करनेसे ही सारा पाप भस् हो जाता है। भक्तिहीन भक्ति पाता है और भक्त भक्तिहीन समुद्रिकका भागी होता है। लोकास अन्धकार करनेपर उत्तम भक्ति और तीव्ररी बार सुननेपर बुद्धि सुलभ हो जाती है, इसलिये समुद्र पुरुषोंको बारम्बार इसका बखान करना चाहिये। किसी भी उत्तम पदार्थको पानेके लिये शुद्ध-बुद्धिसे इस पुराणकी पंक्ति अवलोकित करनी चाहिये। ऐसा करनेसे धनुष्य इस पदार्थको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन कालके राजाओं, ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ वैश्योंने इसकी सत्ता अवलोकित करके शिवका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है। जो धनुष्य भक्तिपरायण हो इसका अवलोकन करेगा, वह भी इसलोकार्थ सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तर्गत मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिवपुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। अपने प्रवचनगी, दो-दो पुत्रों तथा देवी पार्वतीजीके साथ भगवान् संसार इस पुराणके वरता और मोक्षका सदा करवाण करें।

(अध्याय ४६)

☆

॥ श्रावणीयसंहिता सम्पूर्ण ॥

॥ शिवपुराण सम्पूर्ण ॥